ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ — माघ-फाल्गुण संवत् १९८४ — अङ्क १-२
जनवरी, फरवरी १९२८

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २) इस अङ्क का मू० ।=)

विषय सूची

वीर-सन्देश के नियम

१—वीर-सन्देश प्रति मास की शुक्ला २ को प्रकाशित हो जाता है।

२—नए पुराने कवियों, वीरों और महान् पुरुषों की कीर्ति अमर करना, वीर-साहित्य का प्रचार करना और देश तथा जाति को समुन्नत करना ही वीर-सन्देश का मुख्य उद्देश्य है।

३—वार्षिक मूल्य २) है। एक अङ्क का ।)—नमूना मुफ्त नहीं मिलता।

४—लेखकों से प्रार्थना है कि लेख कागज के एक ही ओर स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेजने की कृपा करें। लेखों के छापने न छापने अथवा घटा बढ़ा कर छापने का अधिकार सम्पादक के आधीन है।

५—अस्वीकृत लेख पोस्टेज प्राप्त होने पर वापिस कर दिए जाते हैं।

६—उत्तम लेखों पर यदि लेखक स्वीकार करें तो पुरस्कार भी दिया जाता है।

७—ग्राहकों को पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखनी चाहिए अन्यथा पत्रोत्तर में विलम्ब होने की संभावना रहेगी।

विज्ञापन छपाई के नियम।

१–विज्ञापन बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जाती।

२–कोई विज्ञापन बिना कुछ पेशगी मिले नहीं छापा जाता।

३–अश्लील और भ्रमोत्पादक विज्ञापन नहीं छापे जाते।

४–विशेष स्थान और छोटे बड़े विज्ञापनों के लिए मैनेजर से लिखा पढ़ी करनी चाहिए।

५–विज्ञापन छपाई की दर निम्न भांति है:—

साधारण	पृष्ठ	प्रति मास	४)	प्रति वर्ष	३५)
टायटिल का दूसरा	,,	,,	६)	,,	५५)
,, तीसरा	,,	,,	५)	,,	४५)
,, चौथा	,,	,,	७)	,,	६५)

६–विज्ञापन बटाई १।) प्रति सैकड़ा ली जावेगी। भारी विज्ञापनों के लिए अलग लिखा पढ़ी करनी चाहिए।

७–उपरोक्त दर सस्ती से सस्ती रक्खी गई है। अब इस दर में किसी तरह की भी कमी नहीं हो सकती। इसके लिए लिखा पढ़ी करना व्यर्थ होगा।

मैनेजर "वीर-सन्देश" कार्यालय, आगरा।

गृहदेवी।

(लेखक—बाबू सूरजभान जी वकील)

बड़ी ही सीधी और सरल भाषा में स्त्रियों के लिये बहुमूल्य उपदेश हैं। स्त्रियों की गार्हस्थिक दुर्वस्था सुधारने में यह पुस्तक अद्वितीय साबित हुई है। सभी प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं और विद्वानों ने मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा की है। नीचे कुछ सम्मतियां उद्धृत की जाती हैं जिनसे पुस्तक की उत्कृष्टता का ज्ञान हो सकता है। मूल्य केवल ।=) है।

देवेन्द्र:—"इस पुस्तक का घर २ में प्रचार होना चाहिए।"

विज्ञान:—बड़ी सरल भाषा में लिखी गई है। स्त्रियों की दशा का सच्चा वर्णन करके और उसके सुधारने का उपाय बतलाके लेखक ने लड़कियों और स्त्रियों के लिए एक सुपाठ्य पुस्तक रचने में सफलता प्राप्त की है। इन वृद्ध महोदयों के अनुभवों और उपदेशों से सब को लाभ उठाना चाहिए।"

सम्मेलन पत्रिका:—"यह स्त्रियों के लिए बड़ी ही उपयोगी है।"

महिला-संसार:—"उपदेशों से भरी हुई परम उपयोगी पुस्तक है।"

प्रभा:—अत्यन्त सरल भाषा में, ६ अध्यायों में स्त्रियों के जानने योग्य अनेक उपदेशप्रद और उपयोगी बातें कही हैं।"

आर्यमित्र:—"यह पुस्तक उन थोड़ी पुस्तकों में है जो स्त्रियों की दशा सुधारने के निमित्त हिन्दी में निर्माण की गई हैं।"

वैद्य:—स्त्रियोपयोगी अनेक उत्तम शिक्षाएं बड़ी सुन्दर और सरल भाषा में लिखी गयी हैं। इनको मनन कर भारत की महिलायें सच्ची गृह-देवियाँ बन सकती हैं।"

मिलने का पता—

महावीर ग्रन्थ कार्यालय, आगरा।

विवाह का उद्देश्य ।

यह पुस्तक है तो बहुत छोटी पर उपयोगी बहुत है। हिन्दू-समाज में विवाह बड़ा जरूरी काम है। किन्तु विवाह क्यों किया जाता है, इसे बहुत थोड़े लोग जानते हैं। इस पुस्तक में बड़े ही अच्छे ढंग से यही बात दिखाई गई है। मूल्य =) विवाह के अवसर पर भेट कीजिए। १०० प्रति का ६।) रुपया।

महिला सुधार ।

हिन्दी संसार में ऐसा कौन होगा जिसने ला० कन्नोमल जी एम० ए० का नाम न सुना हो। आप ही के लेखों का इस पुस्तक में संग्रह है। स्त्रियों के सुधार करने और उन्हें उन्नत बनाने के जितने भी साधन हो सकते हैं लाला जी ने उन सब पर प्रकाश डाला है। अतएव प्रत्येक सुधार प्रेमी स्त्री, पुरुष को यह पुस्तक एक बार अवश्य पढ़ जानी चाहिए। मोटा काग़ज़, सुन्दर छपाई, १८० पृष्ठ की पुस्तक का मू० ।=), मुफ़्त बांटने के लिए १०० प्रति का २५) रु०

विधवा कर्त्तव्य ।

विधवाओं के कर्त्तव्य बताने वाली और उनको सुमार्ग पर लाने वाली अद्वितीय पुस्तक। प्रथमावृत्ति की एक हज़ार प्रति मुफ़्त बाँटी गई थी। यह दूसरी आवृति है, इसकी भी कुछ प्रतियाँ मुफ़्त बँटी हैं। मूल्य लागत मात्र केवल ॥) रक्खा गया है।

मिलने का पता.—

महावीर ग्रन्थ कार्यालय, आगरा।

वीर-सन्देश —



आधुनिक सर्व-श्रेष्ठ ब्रजभाषा कवि

स्वर्गीय पं० सत्यनारायण कविरत्न

महावीर प्रेस, आगरा।

वीर-संदेश

(वीर रस-प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग २ { आगरा—पौष-माघ शुक्ला २ सं० १९८४ जनवरी-फरवरी १९२८ } अङ्क १-२

प्रताप-स्मृति

[लेखक—श्री० जगन्नाथ जी मिश्र, गौड़ "कमल"]

सम्मुख आ अरियों का दल जब करता कभी वार पर वार।
कहीं न दिखलायी पड़ता है, मृदु आशाओं का आधार॥
वीर भूमि के अनल-गर्भ से, निकल अचानक बनकर गान—
स्मृति 'प्रताप' की सिखलाती है, मुझको हो जाना बलिदान॥
घायल हो संग्राम-क्षेत्र में, होता है जब हृदय अधीर।
गर्म आंसुओं में परिवर्तित हो जाती कराहती पीर॥
जाता साहस छूट, प्राण जब करने लगते हैं प्रस्थान।
स्मृति 'प्रताप' की कहती "तुम हो जननी की सच्ची सन्तान"॥
सभी भांति परतन्त्र देख अपने को जब होता दुख खेद।
जी करता स्वाधीन बनूं बाधाओं के दल पल में भेद॥
होता पर संकुचित शीघ्र मन, अपने बल का कर अनुमान।
स्मृति 'प्रताप' की कहती "आगे बढ़ो विजय करना लो ठान"॥

महाकवि भूषण और छत्रपति शिवाजी

[लेखक—श्री० किशोरीदास जी वाजपेयी, शास्त्री]

जो द्विजराज प्रसिद्ध सबै जग,
श्री शिव ने सिर भूखन कीन्हों।
सिगरे बुध औ कवि जा पद की,
अभिलाखन में अपनों मन दीन्हों॥
जासु उदै जद्यपि कछु काल कौं,
तोऊ प्रकास सबै जग लीन्हों।
सो जगबंदित तेज की रासि,
सबै बसुधा कौं सुधारसु दीन्हों॥*

महाकवि भूषण और उनके नायक छत्रपति शिवाजी का परिचय देना सचमुच सूर्य्य भगवान् को दीवा से देखना या दिखाना है। यहाँ केवल उस महाकवि की सुधा-प्रस्यन्दिनी वाणी के द्वारा उस प्रबल प्रतापी की कुछ दमकती हुई छटा देखना है, जिसने 'नौरंग में रंग एक न राख्यो' और जिसके लिए कहा गया है—'शिवाजी न होत तो 'सुनत' होति सब की'।

यद्यपि भूषण के सब भाई कवि थे, जो बड़े आश्चर्य्य और आनन्द की अद्वितीय बात है; पर भूषण भूषण ही थे। इनकी कविता परम पतिव्रता और अनन्यव्रता मालूम होती है, जिसकी छाया तक और जगह—अन्य कवियों पर—नहीं पड़ी, वह सदा उनकी रही, उनके

* यह पद्य मेरे 'वीरकवि-विनोद' नामक अप्रकाशित निबन्ध का है। इस के श्लिष्ट शब्दों का शब्दार्थ यह है।

द्विजराज—श्रेष्ठ ब्राह्मण और चन्द्रमा। शिव—छत्रपति शिवाजी और शंकर। भूखन—भूषण कवि और आभूषण। बुध—विद्वान् सहृदय और एक नक्षत्र। कवि—काव्यकर्ता और बृहस्पति। पद—दर्जा और चरण तथा वाक्यांश। सुधा-रस—अमृत तुल्य वीर रस और अमृत रस। शेष विशेषण दोनों पक्षों में समान हैं।

साथ रही और उन्हीं के साथ चली गयीं; पर इस भूतल पर अपना सजीव चित्र छोड़ गयी, जो उसका और उसके पति-भूषण—का नाम सदा स्थिर रक्खेगी।

भूषण की कविता में भूषणों की सजावट चित्त को आकर्षित करती है, ओज गुण में चित्त तन्मय हो जाता है, जिसका व्यञ्जन सब जगह 'गौड़ी' रीति विलक्षण रीति से करती है।

शिवाजी से औरंगजेब भेंट करता है। भेंट करने से पहले उसका चित्त कैसी घबड़ाहट में है, उसने कैसी-कैसी तैयारियाँ की हैं और फिर भी गुसलखाने में ठिठकता है। ये सब इस दिल्ली के बादशाह की बातें हैं; पर हमारे छत्रपति के पास कोई हथियार भी नहीं। शेर किसी हथियार के बिना ही बड़े बड़े मत्त मतङ्गों को विचलित कर देता है। देखिए, भूषण जी की फड़कती हुई उक्ति में इस चित्र को:—

कैयक हजार जहाँ गुर्जबरदार ठाढ़े,
करि कै हुस्यार नीति पकरि समाज की।
राजा जसवन्त कौं बुलाय कै निकट राख्यो,
तेऊ लखैं नीरें जिन्हैं लाज स्वामि काज की॥
'भूखन' भनत ठिठकत ही गुसलखाने,
सिंह लौं झपट सुनि साहि महाराज की।
हटकि हथियार फड़ बाँधि उमरावन की,
कीन्हीं तब नौरंग ने भेंट सिवराज की॥

कहिए, कैसा खाका खींचा है। वाह! महाराज की चढ़ाई का हाल सुनिए:—

बद्दल न होहिं दल दच्छिन घमंड माहिं,
घटा जू न होहिं दल सिवाजू हँकारी के।
दामिनी दमक नाहिं खुले खग्ग बीरन के,
बीर सिर छाप लख तीजा असवारी के॥
देख देख मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि उझकि उठैं बहत बयारी के।

दिल्ली मति भूली कहै बात घन घोर घोर,
बाजत नगारे जे सतारे गढ़धारी के ॥

'निश्चय' अलंकार ने रस की अच्छी पुष्टि की है। रसराज-विषयक कवि-रति 'भाव' का अंग है अतः 'रसवत्' अलंकार है। अनुप्रासों की भरमार है। मुख्य व्यञ्जन यहाँ 'त्रास' भाव का है। इसे ही 'भावोदय' कहते हैं। 'निश्चय' अलंकार भी यहाँ पूर्ण है।

युद्ध का मैदानः—

छूटत कमान और तीर गोली बानन के,
होति कठिनाई मुरचान हू की ओट में।
ताही समय सिवराज हाँक मारि हल्ला कियो,
पर्यो भारी शोर उत वीरभट जोट में॥
'भूखन' भनत तेरी हिम्मत कहाँ लों कहौं,
किम्मत यहाँ लग है जाकी बल मोट मैं।
ताव दै दै मूँछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदे परे कोट में॥

और क्या ? मूँछों की मरोड़ ही तो ठहरी। ये क्षत्रियों की मूँछें हैं ! एदिल जैसे सूबों की बेगमें शिवाजी की लड़ाई सुन घबड़ाकर कहती हैं:-

'चन्द्रावल' चूर करि 'जावली' जपत कीन्हीं,
मारे सब भूप औ संहारे पुर धाय कै।
'भूखन' भनत तुरकान दल-थम्भ काटि,
अफजल मारि डारे तबल बजाय कै॥
'एदिल' सों बेदिल हरम कहैं बार बार,
अब कहा सोवौ सुख सिंह कों जगायकै।
भेजना है भेजो सो रिसालें शिवराज जू की,
बाजीं करनालें 'परनालें' पर आयकै॥

कैसी घबड़ाहट है ! इधर भी कैसी बहादुरी है। यह वही अफजलखाँ है, जिसने छल से छत्रपति को मारना चाहा था, पर यहाँ

तो डंके की चोट मारा—'अफ़जल मारि डारे तबला बजाय के'। सिंह को जगा कर गीदड़ भला कहीं सुख की नींद सो सकते हैं ?

केवल बेगमें ही नहीं, बड़े बड़े बहादुर थर्रा उठे हैं। वे आपस में कहते हैं:-

अफ़जल खाँ को गहि जाने मैदान मार्‌यो,
'बीजापुर' 'गोलकुण्डा' मार्‌यो जिन आज है।
'भूखन' भनत फरासीस और फिरंगी मारे,
हबसी तुरक डारो उलटि जहाज है॥
देखत ही खान रुस्तम जिन खाक कियो,
सालत सुरति आज सुनी जो अवाज है।
चौंकि चौंकि चहुँघातें कहत 'चकत्ता' यारो,
'लेत रहो खबरि कहाँ लौं सिवराज है'॥

और क्या ? खबर पाकर भाग तो चलेंगे, जान तो बच जायगी, एक जान लाख न्यामत !

यही दशा सब जगह मच गयी—'लङ्का में हनूमान कूद पड़े'। ओहो ! कैसी बहादुरी ! कैसा आतंक छाया है ! देखिए:—

दरबर दौरि करि नगर उजारि डारि,
कटक कटायो कोटि दुजन दरब की।
जाहिर जहान जंग जालिम है जोरावर,
चलैना कछुक अब एक राजा रब की॥
सिवराज ! तेरे त्रास दिल्ली भयो भुव-कम्प,
थर थर काँपति विलायति अरब की।
हालत दहलि जात काबुल कन्धार वीर,
रोष करि काढ़ै समसीर ज्यों गरब की॥

ऐसों को ऐसा ही चाहिए। वीर की हाँक से घबड़ा कर भाग खड़े होते हैं, कोई किसी की खबर नहीं लेता, अपनी अपनी जान की पड़ी है बेचारी बेगमों की और आफ़त है, मारी मारी फिरती हैं। बड़ी दुर्दशा है, इस भगोड़पन का चित्र देखिए:—

बाजि गजराज सिवराज सैन साजतहि,
दिल्ली दल गही दसा दीरघ दु-बन[१] की ।
तनियाँ न तिलक[२] सुथनियाँ न रहीं अङ्ग,
घामें घुमरात[३] छाँड़ि सेजियाँ सुखन की ॥
'भूखन' भनत काहू काहू की न छाँह पैयाँ,
छहियाँ छबीली ताक रहियाँ रुखन[४] की ।
बालियाँ[५] बिथुर जिमि आलियाँ[६] नलिन पर,
लालियाँ[७] मलिन मुगलानियाँ मुखन की ॥*

यमक की छटा इस दुर्दशा में भी देखिये कैसी है.—

ऊँचे घोर मन्दर[१] के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं ।
कन्द मूल भोग करें कन्दमूल[२] भोग करें,
तीन बेर[३] खाती थीं सो तीन बेर खाती हैं ।
भूखन[४] सिथिल अङ्ग भूखन[५] सिथिल अङ्ग,
बिजन[६] डुलातीं[७] तेई बिजन डुलातीं हैं ।
'भूखन' भनत शिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ातीं हैं ॥

---

(१) दुखदायी वन, (२) लम्बा कुर्ता, (३) घूमती थी, (४) रूखों की, वृक्षों की, (५) बाल, केश, (६) अलि, भौंरे, (७) लाली, गुलाबीपन ।

* मुगलानियों के मुख पर बाल बिखर रहे हैं, मानो कमलों पर भौंरे बैठ गये हों । सो इन बालों से उन के मुखों की लाली मैली हो गयी है ।

(१) मन्दर—घर, मन्दराचल पहाड़, (२) मिश्री के बने हुए पदार्थ और जंगली फल कन्द, (३) बेर फल और बार, (४) भूख के मारे, (५) आभूषण गहने, (६) पंखा और निर्जन वन, (७) हिलाती थीं, (८) डोलती फिरती हैं ।

उद्बोधन !

[लेखक—श्रीयुत कन्हैयालाल जी मिश्र, "प्रभाकर", विद्यालंकार]

बालक-वनिताओं का उड़ना उड़ाना देख,
हिन्दुओं का नित्य-कर्म निज-खून पीना है।
मन्दिरों का ध्वंस, अपमान मूर्तियों का सुन,
आह भर बैठते हैं मानो हिय[1] जी-ना है ॥
शत्रुओं पर पूर्ण-जय पाने के हेतु हमें,
करना पड़ेगा एक खून औ पसीना है ।
आओ ! रण रंग के सुवेष से सुसज्जित हों !
जीवन बिन जीना भी मनुजों का जीना है ?

सिक्ख

[लेखक—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक विद्यार्थी]

सिक्ख ! शिख—सीखने वाला ! पाठक जानते हैं कि सिक्ख कौन हैं ? गुरु नानक के अनुयायी । ठीक है । पर इन पुराने पहाड़ों को दुह-राने से क्या लाभ । सिक्ख मानवी समाज के वे उज्वल रत्न हैं जिनका प्रकाश अनादि काल तक रहेगा व भारत वर्ष की बारूद हैं जो जलने और मरने को पैदा हुए । वे भारतीय वीरों के हृदय के टुकड़े हैं जो भारतवर्ष की ख़ातिर जन्मे और बूढ़ी माता के नाम के लिए मलियामेट हो रहे हैं । ज़रा देखिये तो कि कितना लम्बा क़द है फिर लाल्हुशाही पिंजर ही पिंजर नहीं। भरे हुए गाल, रसीली आँखें, भरी हुई छाती, कसे हुए पुट्ठे, और छः छः फुट लम्बा शरीर देखते ही बनता है । जब कभी मैं किसी क़द्दावर सिक्ख को देखता हूं तो खड़े होकर उस जननी की प्रशंसा करता हूँ जिसने उसे जना ! और तब विचार तरंग में गोते लगाता हूँ कि भगवन् ! जिस देश में ऐसे वीर लोग मौजूद हों फिर भी

१ हृदय में शक्ति नहीं है ।

वह देश ग़ुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहे। अन्तरात्मा उस समय कहती है, "तू पागल है। यदि भारतवर्ष में अकेले सिक्ख होते तो उन्होंने कब की स्वतंत्रता प्राप्त करली होती। जो काम महात्मा गान्धी से न हुआ वह सिक्खों ने कर दिखाया। तू जानता है कि सिक्ख माता अपने बच्चे को प्रतिदिन क्या उपदेश देती है? वह कहती है। बेटा! सूरा सोई पहचानिये जो मरे दीन के हेत। बोटी बोटी कट मरे और तौऊ न छोड़े खेत॥ सूरा सोई०।" इस उत्तर को सुनकर चुप हो जाता हूँ। मेरी धारणा है कि यदि कोई क़ौम संसार में ऐसी है जिसने क़ुर्बानी की है तो वह सिक्ख है। संगठन दृढ़ता और संयम का कुछ ठिकाना है। हेली महाशय के होश ढीले हैं। ब्रिटिश सरकार ने गान्धी प्रोग्राम को मसल दिया। पर क्या सिक्ख प्रोग्राम को वह मेट सकी। नहीं, कदापि नहीं। आज हज़ारों सिक्ख—कैनाडा और चीन से आने वाले भी—जेलखानों में सड़ रहे हैं। गुरु के बाग़ में उनके केश खींचे गये, तीन टके के एक मरियल पुलीस कर्मचारी ने एक बार एक सिक्ख की दाढ़ी पकड़ कर खींचा और उसके डण्डे जमाये। वार कहता है, "की गल्ल रे सिपाही! गान्धी दे हुकम नहीं तां।" हुआ क्या? ब्रिटिश सरकार घुटने टेक गयी है और जानती है कि बर्र के छत्ते रूपी सिक्ख संगठन को छेड़ना अपनी नाक काट कर ख़ुशी मनाने के समान है।

जिस भारतीय ने सिक्खों का इतिहास नहीं पढ़ा—वह इतिहास नहीं जो एम० ए० और बी० ए० की डिग्री प्राप्त करने के लिए पढ़ा जाता है—उसने भारतीय अर्वाचीन काल के इतिहास का एक अक्षर भी नहीं पढ़ा। बहुत समय नहीं बीता जब सिक्खों का लोहा अफ़ग़ानों ने माना था। डाक्टर किचलू और मियाँ ज़फ़र अली ने अफ़ग़ानी भय की धमकी दी है। पर उन्हें ख़याल रखना चाहिए कि अफ़ग़ान आक्रमण भय रूपी मैलेरिया ज्वर के लिए सिक्ख कुइनैन मिक्श्चर हैं जिसकी सूरत से ही मुँह की नसें खिंच जाती हैं।

सरसावत हैं

[लेखक—श्री० एक शास्त्री महोदय]

कबहूँ तरवारि निकारि कै चूमहिं,
फेरि फराक फिरावत हैं।
कबहूँ बरछी कबहूँ पुनि साँग,
निहारि कै नैन जुड़ावत हैं॥
रन की धुनि में प्रिय और सबै,
बनिता पितु मातु भुलावत हैं।
रजपूत जबै रन-भूमि चलैं,
तब मोद हिये सरसावत हैं॥ १ ॥

गरजैं तरजैं जनु केहरि मत्त,
दिसा-विदिसानि गुंजावत हैं।
अरि कौं समुहैं परते ही उमंग के-
बेग न अंग समावत हैं॥
कपरे चरकैं बखतर तरकैं,
जिय जोम भरे मन भावत हैं।
रजपूत जबै रन में चितवैं,
रंग रक्त तबै सरसावत हैं॥ २ ॥

अरि-मत्त-गयन्दनि नाहर लौं-
झपटैं झुँझलाइ नसावत हैं।
बिथरी किरपानन पाँति लसै,
सोइ दन्तन रासि बनावत हैं॥
गजमोतिन भूमि घिरी सिगरी,
जब सूँडिल तोपनि ढावत हैं।
किलकैं भरि खप्पर जोगिनियाँ,
रजपूत जिन्हैं सरसावत हैं॥ ३ ॥

दीपमालिका ।

[लेखक—श्री० कवि० पं० जगदीशचन्द्र जी आयुर्वेदाचार्य]

दीपमालिके !

जिसके लिए तुझे इतनी प्रतीक्षा थी वह निर्मोही इस बार भी नहीं आया।

सुनते हैं कि एक दिन था जब वह तेरी अनिन्द्य रूप छटा पर अपना सब कुछ खो बैठा था—तेरी एक मुसकराहट के लिये उसका प्राण तरस कर मिट गया था।

विश्व की समस्त माधुरी, जगत् का सकल सौन्दर्य, उस जादूगर के पीछे पीछे उसका कण भर अभिलाषा कोर पाने के लिये जरासी भाव-भंगी पर अपना सर्वस्व नौछावर करने को छाया की तरह फिर रहा था, पर वह सलोना, अजब मनचला, तेरे अनन्त अनुराग की निश्चल सुधा पीकर किसी को आँख भर भी न देख सका; क्योंकि उसकी हृदय की पिपासा शान्त हो चुकी थी उसका शून्य हृदय, रिक्त-जीवन, अनन्त निधि पाकर तृप्त हो चुका था। तेरी इस चंचल माधुरी के कठोर ऐन्द्रजालिक पाश में आबद्ध हो गया था। तेरे मन-मोहक सुन्दर चित्र ने उसके विशाल नेत्रों में घर कर लिया था।

पर आलोकमाले !

अब न मालूम तूने ऐसे अपने भक्त को, प्रेमी को, क्यों बिछोह दिया तुमसे उसने विश्वास-घात किया हो, यह तो सम्भव नहीं क्योंकि हृदय में इतनी चाह भर कर अधर में ही क्या कोई अपनी प्रेयसी को—हृदयेश्वरी को-विमुख कर देगा ?

विश्व के समस्त भू प्रदेशों को छोड़कर जो तेरे कारण ही इस भारत में आ बसा था। स्वर्ग की अप्सराएं, इन्द्र की राजसभा, जिसके लिये विकल थीं वह केवल तुम्हारे कोमल कर-कमल नाल से बंध कर ही तो मुक्त हो गया था।

प्रकाश लतिके !

लोग कहते हैं तुम्हारा वह बाल-सखा तुमसे रूठकर पश्चिम प्रदेश में चला गया। सुन्दरि, तुम्हें उसके वियोग से हार्दिक पीड़ा हुई या नहीं, यह तो तुम ही जानो। पर उसको पाकर हम तो संसार के सब कष्टों से छूट गए थे।

उसके कारण हम विश्व-विख्यात हुये थे, हमारा पाण्डित्य, हमारा आध्यात्मिक अन्वेषण, हमारी सामाजिक शान्ति, राजनैतिक शान्ति और और सत्य शिव रूप सभ्यता की धाक सकल संसार में उसी के कारण शिरोधार्य हुई थी।

मानिनि !

वह उस सलोने का बाल्यकाल था, किशोरावस्था में पदार्पण करते ही जिसने अपनी गुण-गरिमा से स्वर्ग को भी नवा दिया, युवावस्था के चरम विकास में शायद वह हमें विश्व की सुन्दर कला के (जो कुछ भी इस प्राकृतिक या आत्मिक राज्य में सम्भव हो) उच्च शिखर पर ले उड़ता। पर हाय! यह हमारे भाग्य में बदा नहीं था। अधरम! केवल तुम्हारे अभिमानी हृदय की कठोर अवहेला से ही वह अगाध-जल प्रवाह में हमारी विकास नौका छोड़ कर चला गया।

चंचले !

तुमने अपनी चंचलता के कारण अपना सौभाग्य तो खोया ही, पर साथ साथ हमारा घर, अन्तर सब शून्य कर दिया। हम तो उसे पाकर आत्म-विस्मृत हो गये थे। उस छलिये ने अपने मोहन रूप की एक ही झलक में हमें अनन्त शक्ति भाण्डार दे दिया था उसी में हमने विश्व का, तथा स्वर्ग का सार पा लिया था। तभी तो हमारा सारा ममत्व, सारा वात्सल्य-उसे मिला था। अपना सर्वस्व उसके चरणों में समर्पण कर हम सुख की नींद सोये थे।

हाँ, उसी समय घोर सुख निद्रा में—प्रमाद के गहरे नशे में—वह निर्मोही हम से रूठ कर चला गया। हमारा सारा गौरव, सारा प्रभुत्व

सारा ज्ञान, सारा सुख छाया की तरह उसके पीछे पीछे चला गया।

बहुत दिनों के बाद जब आंखें खुलीं तो देखा, हमारी निधि-हमारा शौर्य-सब कुछ खो गया, हमारी सारी उमंग, सारा उत्साह और साहस क्षण भर में ही कहीं उन्नत आकाश के अनन्त शून्य में विलीन होगया। वियोग की प्रखर ज्वालाओं से हृदय दग्ध हो गया, चेतना विकृत हो गई, हिताहित ज्ञान विलुप्त हो गया, चिर-प्रेम सुधापरितृप्त कोमल पारस्परिक जीवन उसके अभाव से यकायक आघात पा पागलों की तरह बुद्धि विचार खोकर एक दूसरे को डसने लगा क्योंकि वह सबको प्यारा था, सबको जान थी।

हम नहीं समझ सके वह अब फिर किस प्रकार हमें मिल सकेगा। उसके रुष्ट हो जाने की अनेक गाथायें प्रचलित हैं पर देवि, सचमुच हम उसके से उत्कृष्ट रत्न के योग्य न थे, उसके सद्‌गुणों का सम्मानित करने की—परखने की—हम में बुद्धि न थी—ज्ञान न था। समस्त कार्य कलाप उसे सौंप हम निश्चिन्त हो गये थे, आलसी और प्रमादी हो गये थे, परमुखापेक्षी होने से हमारी वीरता जाती रही, धीरे धीरे हम कायरता की गहरी खाई में फिसलते फिसलते जा गिरे इसी से वीर-प्रेमी उस सुन्दर युवक की नजरों से गिर गये।

और हमारी ही तरह तुम भी ऐसा उज्वल रत्न आञ्चल में बाँध अभिमान से भर गयी। एक उन्मत्त युवक के साथ कुछ समय तक भारत के रंग मंच पर एक सुन्दर वीर सभ्यता का—सम्पन्न राजकला का—अभिनय कर मान और उल्लास से मचल गयी। मान की अधिक मात्रा से उपेक्षा का भाव जागृत हो गया। सतत उपेक्षा और अवहेल से तुम्हारे जीवन सखा का मन विरक्त हो गया।

दृढ़बद्ध अभिन्न-हृदय ग्रन्थि एक आन में टूट गयी, सुनते हैं फिर भी वह भग्न हृदय निराशा के उद्दण्ड तूफान में बहता हुआ भी करुणाभरी दृष्टि से तुम्हें देख रहा था। पर उस दृष्टि का महत्त्व तुम न जान सकी। विधुरे!

मान से, यह प्रणय सुधा इस प्रकार बिखर पड़ेगी? शायद यह

तुम्हें भी ध्यान न था ठोकर खाकर ही राह सूझती है।

उसका मूल्य तभी तो अब समझी हो। तभी तो प्रति वर्ष इस अभागे देश में उसकी पुण्यस्थली पर उसके चरण-चिन्हों पर बलि-होने को आती हो। उस सलोने सौन्दर्य की एक झलक के लिए कितनी उमंग, कितनी आशा, कितना लावण्य, कितना अनुराग-हृदय में भरलाती हो।

अतीत मधुर स्मृतियों के प्रबल वेग में सब मान, सब गौरव, बहा कर हर बार नया रंग, नया-रूप, लाती हो पर यहाँ आकर तुम पाती हो निराशा की अथाह सम्पत्ति, भग्न आशाओं का अनन्त रोदन।

चिर तपस्या के अनन्तर-घोर प्रतीक्षा के बाद-प्रायः साध पूरी हो जाती है। सतत एक चिन्तन प्रेमी का हृदय आकर्षित कर लेती है। पर हा! तुम्हारे दारुण वियोग की यह लड़ियां तो अनन्त काल की तरह अनन्त हो रही हैं। वह स्वर्ण-संयोग जिसकी मधुर प्रतीक्षा में तुम विह्वल हो अतीत की तरह दूर होता जा रहा है।

सुनते हैं, वह आत्माभिमानी तब तक इस स्थली पर पदार्पण न करेगा, जब तक हम कायर-जिनसे कि वह वीर ऊब उठा था, कायरता तथा दुराचार की घोर कर्दम कालिमा इस आर्यदेश से प्रक्षालित न कर सकेंगे।

अतः हे आलोकमाले, अब यदि हमे उसे लाना ही अभीष्ट है तो आओ पहिले उन कारणों को, उन दुर्गुणों को, दूर कर, उस सुन्दर युवक के योग्य एक सुन्दर सदन निर्माण करें जिसका कलेवर एक दुर्ग के अनुरूप हो जिससे फिर कभी वह इस प्रकार भाग न जाये। उसकी कठोर भित्तियां आचार की बनी हों। वीरता के पलस्तर से एक एक आत्मरक्षा की ईंट चुन चुन कर पोवदी गई हो। दृढ़ उत्साह की नीव पर उसका उठान हो। अत्यधिक स्फूर्ति की लोह-शृंखलाओं से बने विकट कपाट चढ़े हों। ऐसा सुन्दर सदन उसके लिये निर्माण न होजायगा तब तक पहिले की तरह तुम उस अपने जीवन-सर्वस्व—वैभव—के साथ उस सुन्दर छाया में वीर-भारत की अक्षुण्ण कीर्ति के उज्वल प्रकाश में एक दूसरे को भूल कर आदर्श केलि करना।

मरदाने की

कौंधी दामिनी सी दृष्टि चौंधी सब सैन्य की थी,
लागी भागने थी सैन्य सारी तुरकाने की ।
एक क्षण ही में रक्त-धार थी बहाई वीर,
पाई सुधि रंच थी किसी ने नहीं आने की ॥
मार डाले, काट डाले, हृदय विदार डाले,
"पंकज" रही न शक्ति वार भी बचाने की ।
चण्डिका सी क्रोध मई प्यासी दुष्ट रक्त की थी,
कौंधी करवाल शिवराज मरदाने की ॥

—'पंकज'

होते ही प्रभात कुरुनन्दन पठाये दूत,
भेदो जो न व्यूह तो तयारी बन जाने की ।
सुनि के मधुप सब पांडु दल शोकित भो,
करें का उपाय चक्रव्यूह के नशाने की ॥
ताही छिन वीर अभिमन्यु हू प्रणाम करि,
कहन लगो तात नहीं बात घबड़ाने की ।
इंद्र औ वरुण यम रक्षा व्यूह की जो करें,
तोड़ि छवो द्वार राखों आन मरदाने की ॥
सुनि मिथिलेश बैन लाल भे लखन नैन,
कह्यो सुनो तात बात नहीं मही जाने की ।
कह्यो जो विदेह रघुवंशिन बुलाय गेह,
जानत न नीति रीति रघु के घराने की ॥
कंदुक समान छिति मंडल उठाय फेंकों,
कछु ना बिसात है शरासन पुराने की ।
जिय में अस जानि आज आज्ञा जो देहु नाथ,
तोड़ि शिवचाप राखों आन मरदाने की ॥

—'मधुप'

लक्ष्मी

[लेखक—श्री अयोध्याप्रसाद जी पाठक बी० ए०, एल० एल० बी०]

(१)

सुमेरसिंह को नुमाइश देखने का पहला ही अवसर था। वृद्ध नम्बरदार को स्वर्ग सिधारे तीन मास हो चुके थे। एकलौता बेटा, धन-संपत्ति की कमी नहीं, जमींदारी भरपूर और उम्र भी २०-२१ साल की! आस पास के बिगड़े दिलों की नीयत बिगड़ी कि सुमेरसिंह सरीखी सोने की चिड़िया हत्थो चढ़े तो दिन फिर जांय। हरीसिंह ने लपक नीम तले दरी बिछा दी और झट रकाबी मे पान इलायची पेश करके सुमेरसिंह को बड़ी आवभगत से बैठाया। चलती बेर तक जँचा दिया कि सुमेर-सिंह के पिता से बड़ी मित्रता रही और मरने का नाम सुनकर चार आँसू भी ढलका दिए। चार दिन पीछे हरीसिंह सुमेरसिंह के घर पर पहुँचे और बड़ी सहृदयता दिखा कर कहा—

लल्लू—आज तो जरूरी काम से मैं जा रहा हूँ तीस हजार का दस्तावेज लिखाना है फिर आऊँगा, तुम बेफिक्र रहना, मैं सब तरह तैयार हूँ, कोई दुख न होने दूंगा।

सुमेरसिंह भक्ति से गद्‌गद्‌ हो गया, पिता की याद आगई।

चार छः दिन का ओझा दे हीरासिंह फिर पहुँचा और ऐसी ही बातें बना कर चलता हुआ, परन्तु अपने कारोबार से फुरसत न होने के कारण ज्यादा नहीं ठहरा।

(२)

सुमेरसिंह का विवाह लक्ष्मी के साथ हुआ था जिसे आज तीन वर्ष हो गए। लक्ष्मी पढ़ी लिखी साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा थी। सास ससुर के न होते हुए वह घर का कुल बन्दोबस्त बांधे हुए थी। लक्ष्मी को हीरासिंह का आना जाना खटकने लगा। एक दिन सुमेरसिंह से कहा—

"भला यह भी कोई भलमनसाहत है कि ठाकुर साहब हीरासिंह तो हमारे घर कई बेर आए गए, परन्तु आप एक बार भी उनके घर नहीं गए। अबकी दफे उनके घर जरूर जाना।"

सुमेरसिंह को भी ध्यान हुआ कि सच तो कहती है। हीरासिंह के आने पर हाथ जोड़ क्षमा प्रार्थना करते हुए उनके घर चलने का विचार प्रगट किया—वहाँ तो मामला दूसरा ही था। हीरासिंह ने बहुत टालटूल की परन्तु सुमेरसिंहने एक न मानी। इधर हीरासिंह ने अपने मित्रों को बुलाकर यह धर्म संकट बयान किया।

(३)

सुमेरसिंह हीरासिंह के स्थान पर जा ही पहुँचे। एक ठाकुर ने लपक कर घोड़े की लगाम पकड़ी, दूसरे ने उतारा, तीसरे ने पलंग पर कालीन बिछा दिया और सुमेरसिंहको बिठा दिया। हीरासिंह ठंडाई बनाने भीतर हवेली में चले गये और सब लोग इधर उधर बैठ कर बातें करने लगे।

पहिला—लल्लू को हमने आज कई बरस पीछे देखा, जब हम अजमेर गए थे, तब लल्लू की दस बारह की उम्र थी हम भी दस बरस पीछे लौटे हैं। लम्बरदार का सा ही शील स्वभाव है।

दूसरा—क्यों न हो बड़े घर के सपूत है। लम्बरदार के सब गुन इनमें भी हैं। लम्बरदार बड़े दयालु, ईमानदार और सच्चे आदमी थे।

तीसरा—हाँ सो तो है ही—मेरा सब रुपया उनके ही पास रहता था, कभी एक पैसे की भूल नहीं पड़ी।

पहिला—भूल क्यों पड़ती नीयत अच्छी थी। अब देखो न, मेरे ही पाँच हजार बिना रुक्का परचा के लम्बरदार के पास जमा थे।

तीसरा—इसकी क्या फिक्र है रुपया दूध पीता है जब चाहे ब्याज समेत ले आना—लल्लू को तो सब मालूम होगा ही।

इस पर सुमेरसिंह चौंका, कहा कि मेरे पिता के पास तो किसी का रुपया जमा नहीं है।

ठाकुर साहब, मेरे बाप को नरक में मत डालो—ऐसी बातों से कुछ फल नहीं उठाओगे।

सुमेरसिंह बिगड़ उठा—कड़क कर कहा, यह बेहूदा बकवाद मेरे सामने मत करो।

पहिला—(उछल कर) तो क्या इन बेईमानी की बातों से मेरा रुपया पचा जाओगे, मैं भी तो देखूं कौनसा सूरमा तुम्हारे घोड़े को मुझ से ले जाता है और तुम कैसे यहां से चले जाते हो।

यह कह चार छः आदमी दौड़ पड़े—एक ने सुमेर के घोड़े को खोला बाकी लगे शोर मचाने और लाठी पर लाठी बजाने। हीरासिंह इसी समय दौड़ता आया और परिस्थिति देख सुमेर को इशारा किया कि घोड़े पर चढ़कर चलदो। हीरासिंह भी लाठी लेकर कूद पड़ा और बोला "देखूं तो मेरे होते सुमेर के घोड़े को रोकने वाला कौन है"। लाठी खटा-खट बजने लगी। इधर सुमेरसिंह घोड़े पर चढ़ अपने घर पहुँचा और लक्ष्मी को कुल वृत्तांत सुनाया और हीरासिंह की भूरि २ प्रशंसा की। लक्ष्मी ने मुस्करा कर कहा कि आप को भी अपने मित्र पर दया न आई, पिटता हुआ छोड़ आए, अब मैं ही कोई कार्रवाई कराऊँगी।

(४)

हीरासिंह को उसके मित्रों ने बधाई दी।

पहिला—क्यों भाई अब तो रँग पूरा जम गया।

दूसरा—अब क्या है, मार लिया—अहसान से जनम भर दबा रहेगा, ठाकुर के माथे में बुद्धि कहाँ!

हीरासिंह अब मैं खुद जाकर परिचय तो लूँ—अब की दफे तो आप लोगों ने लाज रखली, भेद भी नहीं खुला और काम भी बन गया।

हीरासिंह सीधे सुमेरसिंह के घर पहुंचे। लक्ष्मी ने बड़ी आव-भगत दिखाई खूब खातिर की और डोढ़ी पर हीरासिंह को बुलवा लिया हीरासिंह भी प्रसन्न मन जा पहुंचा कि ठकुराइन पर भी जादू चल गया अब क्या है किस्मत फिरना चाहती है।

लक्ष्मी—ठाकुर साहब, आप ही मेरे ससुर की जगह बड़े बूढ़े हैं। आपने ही लड़के की सी मुहब्बत दिखाई है, नहीं तो भाई बन्दों में किसी ने खबर तक नहीं ली।

हीरा—बहूरानी, तुम कोई चिंता मत करो। अब यह तो बताओ कि सुमेरसिंह कहां है, उस दिन कोई चोट तो नहीं खाई। गांवके उजड्ड तो होते ही हैं उनके मुँह नहीं लगना चाहिए था।

लक्ष्मी (रोकर)—मेरे भाग्य में सुख कहाँ है! उस दिन जब लाठी चली तब एक उचटती चोट ऐसी खाई है कि सिर फिर गया है। पर उन्हें पड़े पड़े जब सनक आती है रस्सी गंडासा लेकर निकल भागते हैं। जो रास्ते में मिला रस्सी के फँदे में फँसाया और गँडासा चला बैठते हैं। जान पहचान वाले को तो देख ही नहीं सकते। अभी थोड़ी देर हुई है कि निकल गए हैं आते ही होंगे। आप जब तक ठहरें मैं आपके खाने पीने का प्रबंध कराती हूँ—उनका इलाज आप के ही हाथ है।

हीरासिंह ने सोचा कि सचमुच ही क़िस्मत का फेर है—कहीं लौटती बेर सुमेरसिंह ने देख पाया तो उसकी रस्सी के फन्दे से बचना कठिन होगा। नौजवान और उस पर पागल, भला उसके बल का क्या प्रमाण। निगाह बचा कर निकल चलें। इधर सुमेरसिंह कुए पर से स्नान करके घर आया। लक्ष्मी ने मुंह बनाकर कहा—

"आज हीरासिंह आए थे—ऐसे जल्दबाज़ हैं तो आते ही क्यों हैं—जब देखो मुझे फ़ुरसत नहीं है! मैंने लाख निहोरे किए मगर नहीं ठहरे एक रस्सी और गँडासा माँगते थे। गँडासा तो मैंने निकलवा दिया रस्सी आप कुँए पर ले गए थे, परन्तु वह इतनी देर भी नहीं ठहरे"।

सुमेर के मन में बड़ी चोट लगी जिस सहृदय मित्र ने उसके प्राण इस वीरता से बचाए उसकी ख़ातिर उसकी स्त्री ने नहीं की। धिक्कार!

(५)

सुमेर गँडासा व रस्सी हाथ में ले उलटे पैर लौट पड़ा—देखा, हीरासिंह दो खेत दूर चिंतामग्न चला जा रहा है। सुमेरसिंह लपका और

चिल्लाकर हीरासिंह को ठहरने को कहा। हीरासिंह ने पलट कर देखा कि सुमेर नंगे सिर नंगे पैर एक हाथ में रस्सी और दूसरे में गँड़ासा लिए दौड़ता चला आ रहा है। समझ गया कि बहूरानी ने जो कुछ कहा था सच है। इस पागल से जान बचानी चाहिए। कुछ दूर हीरासिंह आगे आगे सरपट भागता गया और पीछे पीछे सुमेरसिंह। आख़िर सुमेरसिंह गांव को लौट पड़ा परन्तु हीरासिंह को उस दिन पीछे उस गाँव के आस पास भी किसी ने नहीं देखा।

❀ ❀ ❀

लक्ष्मी ने सुमेरसिंह को कुल हाल बता दिया है। सुमेरसिंह भी समझ गया कि इन बदमाशों के चंगुल से उसकी संपत्ति तथा प्राण लक्ष्मी ने किस योग्यता से बचा लिए। दशहरे और दिवाली पर रस्सी और गँड़ासा उस घर में अब तक पूजा जाता है।

आकांक्षा

[लेखक—श्री० गन्धर्वसिंह जी वर्म्मा, 'सलिल']

मां! दुर्गे का पद प्रचालन, करूं रक्त की अञ्जलि भर।
जीवन-सुमन चढ़ा हँस हँस कर, हरूं भार भू का सत्वर॥
विपदाओं को बना सहचरी, विजय केतु फहराऊं मैं।
मिटा ताप भारत जननी का, वीर पुत्र कहलाऊं मैं॥

तलवार

[लेखक—श्री० किशोरीदास जी वाजपेयी]

*भीतर ही रहती नित ही, कबहूँ बिजुरी सम बाहर आवै।
दमकै तब कोऊ अपूरब जोति, मचै चकचौंधि जो सामुहें आवै॥
पानीवती चलै पानी की भाँति, करै धुनि प्रान हरै मन भावै।
है तरवारि कि नारि कोऊ, लगि कंठहिं मुक्ति-अनन्द बतावै॥

धर्म-वीर श्री गोस्वामी तुलसीदास जी

[लेखक—श्री० बाबा राघवदास जी]

तुलसी मस्तक तब नवें, धनुष बाण लो हाथ।

श्री गोस्वामी जी को इस असार संसार से गये आज तीन सौ वर्ष से ऊपर बीत गये। उनका कार्यक्षेत्र कितना व्यापक है इसका अनुभव हिन्दी के जानकार दिन प्रति-दिन कर रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व केवल भावुक लोगों में परिचित गोस्वामी आज पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त विद्वानों के लिये भी आदरणीय और अनुकरणीय हो रहे हैं। कभी वह हिन्दी में ही सर्वश्रेष्ठ कवि समझे जाते थे परन्तु आज उनकी तुलना संसार के सर्वमान्य कवियों से करके विदेशी विद्वान (डा० ग्रियर्सन) भी संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में उनकी गणना कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य-सेवियों के लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है।

अभी तक श्री गोस्वामी जी के कार्यों पर कवि के नाते प्रकाश डाला गया है पर जब हम उनके राजनैतिक तथा धार्मिक कार्यों पर विचार करते हैं तब उनमें भी हमको उनकी अलौकिक शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। इस समय हम हिन्दुओं को ३०० सौ वर्ष पूर्व हिन्दुओं पर क्या बीत रहा था इसका ठीक ठीक ज्ञान भले ही न होता हो परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि मुसलमान बादशाहों के ये प्रयत्न उस समय भी हो रहे थे कि हिन्दू-राष्ट्र मिट जाय। हिन्दू-सभ्यता, हिन्दू-जाति, हिन्दू-तत्त्व-ज्ञान, हिन्दू-आदर्श इनका नाम भी संसार में न रहे! और हमारे दुर्भाग्य से कुल-कलंकी मानसिंह ऐसे नीच क्षत्रिय भी अपनी बहिन इन हिन्दू-जाति के शत्रुओं को दे कर अपने को कृत-कृत्य समझ रहे थे!! बड़े बड़े हिन्दू सरदार और राजा बीरबल ऐसे हिन्दू विद्वान् मुसलमान बादशाहों को प्रसन्न करने में ही अपनी अपनी शक्ति लगा रहे थे!!! सचमुच हिन्दू जाति की परीक्षा का समय था। कोई सच्चा नेता, कोई सच्चा उपदेशक, कोई सच्चा वीर नहीं, सब के सब

मान और धन के पीछे पड़े थे। ऐसी अवस्था में नेत्र हीन हिन्दू प्रजा को—अपने धर्म तथा सभ्यता का अपने आँखों के सामने मिट्टी में मिलाया जाने देखने वाली प्रजा को कितना कष्ट होता होगा? वह हृदय में क्षुब्ध होकर शक्ति हीन और नेत्र हीन होने के कारण किस प्रकार उद्विग्न होती होगी इसका अनुभव वही कर सकेंगे जिनको ऐसी परिस्थिति में रहने का कभी संयोग प्राप्त हुआ हो। इस परिस्थिति में गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म हुआ था। उनकी दृष्टि जब चारों ओर पड़ी होगी, उनका दयालु हिन्दू हृदय सौ बार रक्त के आँसू बहाता होगा! उनके हृदय में ग्लानि उत्पन्न होकर उन्होंने अपने को सैकड़ों बार धिक्कारा होगा! पर गोस्वामी जी साधारण पुरुष नहीं थे। वह तो महापुरुष थे। उन्होंने महाभारतान्तर्गत भगवान व्यास देव जी के दिये हुये पाठ को पढ़ा था—

"न जानपदादिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हति।
प्रतिकुर्वीन अशोचन यदि पश्येदुपक्रमम् ॥१॥

अर्थात्—समाज पर आये हुये संकट को देखकर केवल शोक करना ठीक नहीं। यदि कोई मार्ग दिखाई दे तो उसका ही अवलंबन करके उस संकट का प्रतिकार करना चाहिये। गोस्वामी जी ने भी इस उपदेशानुसार अविलंब कार्य में प्रवृत्त होने का निश्चय किया। और वह उपाय था 'नाम' द्वारा, हिन्दुओं को सभ्यता, आदर्श तथा उसके कार्य का बोध कराना।

जब वह अपने आदर्श ग्रन्थ श्री रामायण में 'भाव कुभाव अनख आलसहु, नाम जपत मंगल दिशि दसहुँ'। यह चौपाई लिखते हैं उस समय 'नाम' की पारमार्थिक महत्ता देखने के साथ साथ ही हिन्दुत्व का महत्त्व लोगों के सम्मुख रखना था।

श्री रामायण में पद पद पर श्री राम नाम का गुण गान करने में गोस्वामी जी के हृदय में अन्य भावों के साथ यह भाव अवश्य होगा कि हिन्दुत्व संसार से न मिटे। जिस प्रकार आज कर्म-वीर गान्धी जी अपने चर्खे में राष्ट्रोन्नति के सम्पूर्ण साधन दिखाते हैं और अपने अदम्य

उत्साह से उसका महत्व उन्होंने लोगों के सम्मुख रख ही दिया है। ठीक उसी प्रकार श्री गोस्वामी जो श्री राम नाम को केन्द्रीभूत करके हिन्दू-समाज को संगठित करने, उसको हिन्दू आदर्श पर लाने, उसके हृदय में जो निराशा उत्पन्न हुई थी उसको दूर करके उसके स्थान पर आशा पैदा करने और श्री रामायण की रचना करके उसमें वीरता के भाव पैदा करने का असाधारण कार्य किया। जब हम निराशा से उत्साहहीन हिन्दू जाति के उत्थान के निमित्त श्री गोस्वामी महाराज को "आमीर यवन किरात खल श्वापचादि अति अघ रूप जे। कहि नाम वारेक तेपि पावन होत राम नमामि ते" यह लिखते हैं उस समय उनके हृदय में अछूतोद्धार मुसलमानों के बलात्कार के कारण विधर्मी हुये हिन्दुओं को एक आशा पूर्ण सन्देशा देना था।

इसी प्रकार जब हम गोस्वामी जी को अपने इष्टदेव श्री रामचन्द्र जी को सदैव धनुष बाण धारण करते हुये वर्णन करना पड़ते हैं उस समय उनके हृदय में क्या यह भावना नहीं होगी कि रामायण का पाठक वर्ग श्री रामचन्द्र जी के अन्य भावों को भूल कर एक मात्र वीर रस (जो उस समय अत्यन्त आवश्यक था और आज भी उसी प्रकार आवश्यक है) को स्मरण करें और तदनुसार अपना जीवन बनावें। क्योंकि जब हम किसी का आदर्श रखते हैं उस समय तदनुकूल बनने की चेष्टा भी करते हैं।

श्री गोस्वामी जी को यह वीर भाव कितना प्रिय था इसका अनुभव उस स्थान पर मिलता है जहां धर्म-वीर गोस्वामी महाराज मथुरा पहुँचते हैं। भगवान् के मन्दिर में पहुँच कर भगवान् से विनय करते हैं कि—"तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बाण लो हाथ!"

कितनी बड़ी वीर पूजा! वीरों के ऐसे उपासक संसार के इतिहास में बहुत कम मिलेंगे।

इसलिये हम कहते हैं कि हिन्दू वीर गोस्वामी श्री तुलसीदास जी को केवल यह समझ कर न स्मरण करें कि वह एक कवि और भगवत्

भक्त ही थे पर एक कट्टर हिन्दू जाति के उपासक और हिन्दुवीर थे। उनके "स्वान्तः सुखाय" में हिन्दू जाति के उत्थान की उत्कट इच्छा छिपी हुई है जो बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध वीर श्री छत्रसालसिंह जी के रूप में समय प्राप्त होने पर प्रकट हुई। Like attracts like इस सिद्धान्त से वीर उत्पन्न करने के लिये स्वयं वीर बनने की भी आवश्यकता है। जिस को श्री गोस्वामीजी महाराज ने अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया।

नोट—चित्रकूट के पास बुन्देलखण्ड है और गोस्वामी महाराज के जीवन का अधिक समय काशी और चित्रकूट में ही व्यतीत हुआ था।

छाये हैं

[लेखक—श्री० रघुबरदयाल जी मिश्र, विशारद, 'मान']

आजु घन घोर मोर सोर सुने कौन ! मा पै,
　　दमन के घन जोर सोर घिरि आये हैं।
तौलों कहा गायें जौलों गायें कटैं भारत में,
　　कारे गोरे हाय गाय गाय गाय खाये हैं॥
सावन भयावन सुहावन कहौ न तौलों,
　　वृन्दावन सावन विदेसी अपनाये हैं।
तौलों वीर बाला को न 'मान' वीर बाला जौलों,
　　वृन्दावन वारे प्यारे आन देस छाये हैं॥

ना

सत्य कहा यह जानतो को हरिचन्द्र जो पै सत धारतो ना।
दानहु की महिमा घटती जो पै कर्ण महापन पारतो ना॥
को रटतो जग मोहन जो सर्वस्व स्वकर्म पै वारतो ना।
मान पै जो मिटतो न सुयोधन 'मान' पै कोऊ निसारतो ना॥

दानवीर भामाशाह

[लेखक—श्री० प्रताप महोदय]

संसार में धनिकों की कमी नहीं। एक से एक बढ़के पड़े हैं। प्रति दिन लाखों की आय व्यय कर देते हैं। शादी विवाहों में लाखों फूंक देते हैं। राय बहादुर और सर नाइट की दुमों के लिए करोड़ों रुपयों की आहुति देते हैं। भड़कीली पोशाकों और मोटर गाड़ियों में अगणित रुपया बरबाद कर देते है परन्तु देश की खातिर, स्वतन्त्रता के नाम पर उन धनपतियों की आँट में से एक दमड़ी भी नहीं निकलती।

दान दाता भी बहुत हैं, परन्तु वे देते हैं मांगने पर, मिन्नतें करने पर और बड़े अहसान के साथ। उस पर भी वे चाहते हैं कि वह संस्था उनके नाम से प्रसिद्ध हो या कम से कम उनके नाम का पत्थर अवश्य लगा दिया जाय। ऐसा दान दाता किसी देश में ही खोजने से मिलेगा जिस ने बिना मांगे, निस्स्वार्थ भाव से, स्वयं ले जाकर अपना जन्म भर का कमाया हुआ धन दान कर दिया हो। परन्तु इस भारत भूमि ने ऐसे ऐसे भी दान वीर पैदा किये हैं जिन्होंने अपनी सारी सञ्चित सम्पत्ति स्वतन्त्रता के पुजारियों के पद पंकजों मे स्वयं लेजा कर रख दी थी।

आज वीर-सन्देश के प्रेमी पाठकों को एक ऐसे ही दानवीर का परिचय कराया जाता है जिसने कोई साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व केवल अपनी ही नहीं, पूर्वजों की कमाई हुई सारी सम्पत्ति भी स्वतन्त्रता की वेदी पर चढ़ा कर अनुपम आत्मोत्सर्ग का परिचय दिया था। अपने इस महान् कार्य से देश के दिन फेर दिए थे। उस दानवीर का नाम भामाशाह था। वह प्रातः स्मरणीय मेवाड़पति महाराणा प्रताप का मंत्री था।

स्वतन्त्रता के पुजारी प्रताप सम्राट् अकबर से लड़ते २ सब कुछ खो बैठे थे। उनके साथ थोड़े से राजपूत सर्दार और भक्त भीलों के सिवाय कोई न रहा था। वे अपने परिवार को लिए जंगल जंगल भटकते फिरते थे। उनकी दशा एक मामूली गृहस्थ और भिखारी से भी गई बीती

हो गई थी। कितना ही गरीब होने पर भी एक गृहस्थ के पास भूख बुझाने की सामग्री अवश्य होगी पर इनके पास कुछ न था। एक भिखारी रात्रि को किसी पेड़ के नीचे पड़ कर चैन से सो सकता है परन्तु प्रताप बैरी के भय से सो भी न पाते थे।

एक दिन जब कि बच्चे भूख के मारे बिलबिला रहे थे, राजमहिषी ने घास की रोटियाँ सेकीं और सबों को एक एक रोटी दे दी। वे बड़े आनन्द से उन रोटियों को खाने लगे। प्रताप पास ही बैठे मेवाड़ के भाग्य तथा अपने कष्टों पर विचार कर रहे थे कि सब से छोटी बालिका के रुदन ने उनका ध्यान तोड़ा। देखा कि एक जंगली बिल्ली उस बालिका के हाथों में से रोटी का टुकड़ा झपट कर भाग गई और भूखी बालिका रो रही है। इस करुणामयी दृश्य को प्रताप धर्म से न देख सके। जो प्रताप हँसते हँसते हल्दी-घाटी के युद्ध में असंख्य मुगल सेना में घुस पड़े थे, धन दौलत, राज पाट और सुख शान्ति सब कुछ राष्ट्रीय यज्ञ में होम चुके थे, उस दुधमुही बच्चे की बिलबिलाहट से काँप उठे। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे और वे प्रतिज्ञा भंग करने को तैयार हो गए। बालिका को गोद में लेकर बोले, "हाय! अब नहीं सहा जाता। सहिष्णुता की पराकाष्ठा हो गई। इन दुधमुँहे बच्चों को इतना कष्ट! धिक्कार है इस प्रतिज्ञा को।" राजमहिषी और सरदारों के बहुत समझाने पर भी उन्होंने अकबर से सन्धि की प्रार्थना कर दी।

सन्धि का समाचार लेकर दूत अकबर के दरबार में पहुँचा। दूत को देखते ही अकबर के आनन्द का ठिकाना न रहा। क्यों नहीं, जिस प्रताप के कारण वर्षों से उसके नाकों में दम था, आज वही प्रताप उसकी आधीनता स्वीकार करे इससे बढ़कर उसके लिए कौनसी आनन्द की बात हो सकती थी।

जब वह पत्र दरबार में पढ़ कर सुनाया गया तो सबके सब मारे खुशी के फूल उठे परन्तु बीकानेर नरेश पृथ्वीराज को इससे बड़ी वेदना हुई। वे अकबर के दरबार में राजनैतिक कैदी अवश्य थे परन्तु उन्होंने

अपना स्वतन्त्र आत्मा नहीं बेच दिया था। वे प्रताप में बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखते थे। अकबर से बोले, "जहांपनाह, यह प्रताप को बदनाम करने के लिए किसी वैरी की करतूत मालूम होती है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि प्रताप आपका मुकुट पा जाने पर भी आप से सन्धि न करेंगे। यदि आज्ञा हो तो वास्तविक बात का पता लगाने के लिए मैं उनको एक गुप्त पत्र लिखूं।"

अकबर की अनुमति ले बीकानेर नरेश ने राणा के पास ओजस्विनी भाषा में रग रग में खून दौड़ा देने वाला एक पत्र लिख भेजा। उन्होंने पत्र भेजने का कारण अकबर को असली घटना का पता लगा लेने का बताया था परन्तु वास्तव में वे प्रताप को प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने के लिए उत्साहित करना चाहते थे।

पृथ्वीराज के पत्र ने एक अद्भुत कार्य किया। उसने राणा के रक्त में फिर से बिजली सी दौड़ा दी। वे अपने किये पर पछताने लगे और पुनः कटिबद्ध हुए। परन्तु वर्षों से लड़ते लड़ते उनके पास कुछ न रहा था। सेना बटोरने के लिए न धन ही था और न खाने के लिए अन्न। अतः मेवाड़ में रहकर आत्म-रक्षा असम्भव जान उन्होंने अरावली पर्वत पार कर सिन्ध नदी के किनारे सोगदी में जाकर राष्ट्रीय झण्डा गाड़ना निश्चय किया। प्रताप भी बच्चों और सरदारों के साथ रवाना हुए। भक्त भीलों ने भी साथ न छोड़ा। अरावली की चोटी पर पहुँच कर उन्हें परम पुनीत चित्तौड़ दुर्ग के दर्शन हुए। दुर्ग को देखते ही राणा का हृदय भर आया। उन्होंने शोक भरी स्वासें लीं—हा, प्यारे चित्तौड़! क्या मैं इस जन्म में तेरा उद्धार न कर पाऊंगा। हा, पुण्य-भूमि मेवाड़! क्या मैं विधर्मियों से तुझे न बचा सकूंगा। इस प्रकार प्रताप के हृदय को बड़ी वेदना हुई। वे खिन्न-हृदय मातृ-भूमि को प्रणाम कर आगे बढ़े। वे मारवाड़ की मरु-भूमि तक ही पहुँच पाये थे कि एक ऐसी घटना हुई जिससे उन्हें अपना विचार बदलना पड़ा।

प्रताप के स्वदेश छोड़ने का समाचार मेवाड़ के कोने कोने में फैल गया था। मेवाड़ का बच्चा बच्चा उनके वियोग से दुखी था। वैश्य-कुल भूषण, राज्य-सेठ भामाशाह तो इस समाचार को पाकर व्याकुल हो उठे। राणा और देश की दयनीय दशा देख वे रो पड़े और विचारने लगे, "राणा तो हमारी खातिर रात दिन नंगे पैरों पहाड़ी पहाड़ी घूमें, भूखों मरें और हम चैन से बैठे रहें, आनन्द करें। धन न होने से धर्म और मातृ-भूमि की रक्षा के लिए सेना न जुटा सकें और हम धनपति देश की सम्पति पर पड़े पड़े अलसाया करें देश को संकट में और भूखों मरते देख कर भी हम गुलछर्रे उड़ाया करें, क्या अधिकार है कि हम देश की सम्पत्ति इस प्रकार दाब कर बैठे रहें और देश का स्वामी दर दर का भिखारी हो पैसे पैसे को तरसे। हमारे ही लिए तो राणा इतना दारुण दुःख भोग रहे हैं। धिक्कार है हमें, और हमारे धनवान होने को। यदि यह धन देश के ही काम न आया तो किस काम का!"

भामाशाह से न रहा गया। वे केवल अपनी ही सञ्चित सम्पत्ति नहीं, अपने पूर्वजों का कमाया हुआ सारा धन भी लेकर प्रताप के पद-पङ्कजों में, स्वतन्त्रता की वेदी पर चढ़ाने को रवाना हुए। यह धन इतना था जिससे १२ वर्ष तक मेवाड़ के स्वामी २५००० सैनिक रख सकते थे।

मंत्री प्रवर भामाशाह मारवाड़ की मरु भूमि मे राणा से मिले और प्रणाम कर सविनय प्रार्थना की, "नाथ, आप इस देश को सूना छोड़ कर न जायं। मातृ-भूमि आपके बिना बिलखती है। चित्तौड़ का दुर्ग वियोग में रोता है। प्रभो, हमें अनाथ न करें। हम आपके हैं, हमारा शरीर आपका है और हमारी सम्पत्ति आपकी है। यदि आप समुचित धन न होने के कारण मेवाड़ छोड़ते हैं, तो ऐसा न करें। लीजिये यह सारी सम्पत्ति आपके चरणों में समर्पित है।"

भामाशाह का यह अलौकिक त्याग देख कर प्रताप दंग रह गये। उन्हें स्वप्न में भी इस सहायता की आशा न थी। निराशा का स्थान आशा ने लिया और चिन्ता का हर्ष ने। उन्होंने भामाशाह को गले से

लगा लिया और बोले, "भामाशाह! धन्य हो, आज तुमने संसार के सामने वह उदाहरण रक्खा है जो स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। तुमने मेवाड़ की डूबती नौका को उबारा है। आज से तुम मेवाड़ के उद्धारक कहलाओगे" राणा जी के ऐसे प्रशंसात्मक शब्दों को सुन कर भामाशाह ने मस्तक नीचा कर लिया।

इस सहायता ने संजीवनी का काम किया। राणा दुगने उत्साह से युद्ध की तय्यारियां करने लगे। जो सिपाही धन न होने से बिदा कर दिये गये थे, वे फिर से बुलाये गये और शस्त्रादि एकत्रित किये गये। यह सब गुप्त रूप से हुआ। बैरी यही समझ रहा था कि प्रताप भागने का प्रयत्न कर रहे है। युद्ध की सारी सामग्री इकट्ठी कर प्रताप ने शाहबाज खां को सेना पर धावा मारा जा देवीर में पड़ाव डाले हुए थी। मुगल सेना भाग खड़ी हुई। राजपूतों ने आमेट तक उनका पीछा किया और वहाँ के गढ़ रक्षकों को भी मौत के घाट उतारा। उसके बाद कुम्भलमेर पर धावा मारा। यवन यहाँ भी हारे और राजपूतों की जय हुई। वहाँ का रक्षक अब्दुल्ला खाँ भी सारी सेना के साथ मार डाला गया। इस प्रकार एक ही वर्ष सन् १५८६ ई० में चित्तौड़, अजमेर, और मांडलगढ़ को छोड़ समस्त मेवाड़ हस्तगत कर लिया।

इसके बाद मानी मान को शिक्षा देने के लिए आमेर पर चढ़ाई कर दी और उसके वाणिज्य-स्थल मालपुरा को विध्वंस कर डाला। मुगलों को उदयपुर भी छोड़ना पड़ा क्योंकि अकबर को राजपूतों के डर से उसकी रक्षा असम्भव जान पड़ी।

इस प्रकार वैश्य कुल-तिलक भामाशाह के अनुपम त्याग ने ही मेवाड़ को स्वतन्त्र किया। उस दानवीर ने मेवाड़ का इतिहास बदल दिया। कर्नल टाड ने भी लिखा है—

"To Bhamashah belongs the honour of having saved his country at the critical Juncture."

महावीर-सन्देश

[लेखक—श्री० पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार]

सुनो सब महावीर-सन्देश !
मनुज मात्र को तुम अपनाओ, हर सबके दुख-क्लेश।
असद्भाव रक्खो न किसी से, हो अरि क्यों न विशेष ॥
यही है महावीर-सन्देश ॥१॥
वैरी का उद्धार श्रेष्ठ है, कीजे सविधि-विशेष।
वैर छुटे, उपजे मति जिससे, वही यत्न यत्नेश ॥
यही है महावीर-सन्देश ॥२॥
घृणा पाप से हो, पापी से नहीं कभी लव-लेश।
भूल सुझा कर प्रेम मार्ग से, करो उसे पुण्येश ॥
यही है महावीर-सन्देश ॥३॥
तज एकान्त-कदाग्रह-दुर्गुण, बनो उदार विशेष।
रह प्रसन्नचित, सदा, करो तुम मनन तत्व-उपदेश ॥
यही है महावीर-सन्देश ॥४॥
जीतो राग-द्वेष-भय-इन्द्रिय-मोह-कषाय अशेष।
धरो धैर्य, समचित्त रहो औ', सुखदुख में सविशेष ॥
यही है महावीर-सन्देश ॥५॥
वीर उपासक बनो सत्य के, तज मिथ्याऽभिनिवेश।
विपदाओं से मत घबराओ, धरो न कोपावेश ॥
यही है महावीर-सन्देश ॥६॥
संज्ञानी-संदृष्टि बनो, औ' तजो भाव संक्लेश।
सदाचार पालो दृढ़ होकर, रहे प्रमाद न लेश ॥
यही है महावीर-सन्देश ॥७॥
सादा रहन सहन-भोजन हो, सादा भूषावेश।
विश्व प्रेम जागृत कर उर में, करो कर्म निःशेष ॥
यही है महावीर-सन्देश ॥८॥
हो सब का कल्याण, भावना ऐसी रहे हमेश।
दया-लोकसेवा-रत चित हो, और न कुछ आदेश ॥
यही है महावीर-सन्देश ॥९॥

उन्माद !

[लेखक—श्रीयुत 'राष्ट्रीय पथिक']

उफ़ ! मैं इस उन्माद का क्या करूं ? इसे कहां रक्खूं ? किस तरह रक्खूं ? किसे दे कर इससे पीछा छुड़ाऊं ?

इसके वश होकर मैंने क्या क्या नहीं किया ? किस २ के दरवाजे अलख नहीं जगायी ? किस-२ से दुश्मनी मोल नहीं ली ? किन्तु फिर भी, यह छूटता कहां है ?

ओह ! कैसी अन्धेरी—कज्जल के कूट जैसी रात्रि थी ? कितनी तेज और ठण्डी आन्धी चल रही थी ! कैसे ओले पड़ रहे थे ? कितने जोर से बादल गर्ज रहा था ? मानो आकाश मेरे ऊपर दाँत पीस रहा था ! फिर भी, इस उन्माद के व ीभूत होकर मैं भीजता, काँपता, दाँत कटकटाता स्वतंत्रता के कारा द्वार पर खड़ा था !

\+ + +

मेरे रहने के लिये महल तैयार थे। सारे सुख-भोग कर-बद्ध सम्मुख खड़े थे। बड़े बड़ों की कृपा बादल बन कर सिर पर छायी हुई थी। सङ्केत होते ही वह बरस पड़ने को तैयार थी। सौंदर्य का समुद्र सामने था। किन्तु बाह रे उन्माद ! सब को छोड़ा ! और लिया क्या ? कारागार ! कष्ट ! बेड़ियां ! अपमान ! थी न परले सिरे की मूर्खता ?

\+ + +

किन्तु इस उन्माद की विशेषता देखिये। यह कमबख्त विष को अमृत बना देता है। दु:ख को सुख में परिणत कर देता है। मरु-स्थल को सरोवर का रूप दे देता है। इसीलिये, और लोग घर त्यागते समय रोते हैं—मैं हँसा। लोग कुटुम्बियों की चिन्ता करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं, मैंने उसे अनावश्यक समझा। लोग समझदारी हासिल करने को लाखों खर्च करते हैं, मैंने पागल बनने के लिये सर्वस्व लगा दिया !

अब, तुम्हीं बताओ, ऐसे उन्माद का मैं क्या करूं ? उसे कहां रक्खूं ? किस तरह रक्खूं ? और, कैसे छोड़ूं ?

वीरों की विधि

[लेखक—श्रीयुत दिव्य कवि जी]

—— ::❀:: ——

वीरों की विधि अड़ा रहे प्रभु सदा समर में सीना।
वीरों की विधि अन्त अवधि तक होवे जग में जीना॥
वीरों की विधि देव सिखाना विजय-केतु फहराना।
अथवा वीरों की विधि रण में हँस हँस कर मर जाना॥
शत्रु-शकट आयें न क्यों चढ़ कर कालकुव्याल सा।
वीरों की विधि युद्ध की, किन्तु बनी हो लालसा॥
वीरों की विधि उथल पुथल मैं अवनी तल पर कर दूं।
वीरों की विधि रण-चण्डी का शोणित प्याला भर दूं॥
वीरों की विधि अरि-प्रदेश में भीषण आग लगा दूं।
वीरों की विधि सिंहनाद कर कायर-यूथ भगा दूं॥
वीरों की विधि मेट कर बाधाओं का गढ़-गहन।
दहलाने को चल पड़ूं तीन लोक चौदह भुवन॥
वीरों की विधि देश यज्ञ मे अपने प्राण चढ़ा दूं।
वीरो की विधि मर जाने को आगे पैर बढ़ा दूं॥
वीरों की विधि पर-हित साधन में शूली पा जाऊं।
वीरों की विधि दुष्ट दमन में निर्वासित हो जाऊं॥
वीरों की विधि इष्ट हो ले लेना स्वाधीनता।
स्वर्ग भूमि की भी न हो अङ्गीकृत आधीनता॥
वीरो की विधि क्रूर कुशासन का कर अन्त दिखा दूं।
वीरों की विधि अमर शहीदों में निज नाम लिखा दूं॥
वीरों की विधि मुर्दों में नव जीवन ज्योति जगा दूं।
वीरों की विधि क्रान्ति-कारिणी दावा फिर सुलगा दूं॥
वीरों की विधि स्वत्व पर—मर जाना या मारना।
'दिव्य देव' मम ध्येय हो और हेय हो हारना॥

क्रान्ति के विधाता

[लेखक—श्रीयुत 'अजाम']

जब किसी देश पर शासक दल अन्याय और अत्याचार करने पर तुल जाता है और देशवासी अपनी दशा का ज्ञान करके अनीति के भार को मिटाने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं तब उत्कट भावनाओं की सृष्टि होती है। देश की स्वतन्त्रता के निमित्त अनेक आन्दोलनों की शरण लेनी पड़ती है। इधर शासकदल भी जनता की जागृति को प्रारंभ में ही कुचल देने के लिए सब प्रयत्न करता है। महान शान्त और वैध आन्दोलनों का भी दमन किया जाता है, फलतः देश का नवयुवक मंडल कुछ दूर और कदम बढ़ा कर सब प्रयत्नों से देश के मुक्ति-लाभ की चेष्टा करता है। इनके निकट देश स्वतन्त्रता का ध्येय होता है। उसकी प्राप्ति चाहे शान्ति द्वारा हो अथवा क्रान्ति द्वारा।

अपने देश में विशेष कर जोश खाने वाले दिलों में ऐसा कौन है जिसे अब भी वर्तमान शासन-प्रणाली द्वारा भारत का कुछ भी हित होने का विश्वास शेष है। इसके प्रति इसी की करनी से उपेक्षा और असहयोग के भाव स्थायी रूप से जम गए हैं और उनका बहिष्करण इस कुप्रणाली के अन्त के साथ ही होना अनिवार्य है।

देश के सभी आन्दोलन कुचले गए। इतने शान्त और धैर्य आन्दोलन भी कुचल दिये गए जिनके नेता इतने कट्टर शान्ति तथा अहिंसा-वादी हैं कि वे देश की स्वतन्त्रता भी नहीं चाहते यदि उनकी शान्ति में बट्टा लगे। इस दमन ने भी हृदय की भावनायें नहीं कुचल पाईं। प्रति क्रिया से निराश नवयुवक दल अभीष्ट सिद्धि के लिये पागल बन कर यदि कुछ और आगे बढ़े तो आश्चर्य ही क्या।

नौकरशाही ने असहयोग का दमन करके अपनी दृष्टि उस कल्पित आन्दोलन की ओर फेरी जिसकी भयंकरता को उसी के कल पुरजे बैठे ठाले गढ़ा करते हैं। कहीं एकाध पिस्तौल पकड़ कर, कहीं उत्तेजक

साहित्य का पुर्जा धर कर और कहीं एक आध टूटे फूटे बम पाकर उसने भारतीय भयङ्कर षड्यन्त्र कारियों का कल्पित गढ़ बना डाला। खुफिया के कर्मचारी अष्ट प्रहर इसकी चिन्ता में रहते हैं कि किस प्रकार एक नया शिगूफा तैयार किया जावे और 'भारतीय गदर' का नाम देकर उस में देश के नवयुवक, जिन्हें देश-भक्ति की सनक है, फाँसे जावें। धन की कमी नहीं, और न कमी है उन महा पुरुषों की जो इनके इशारे पर चाक्षुष प्रमाण दें और किसी सज्जन को षड्यन्त्रकारी बतला दें।

बङ्गाल आर्डीनेंस से लेकर काकोरी केस तक विचित्र ढङ्ग से काम लिया गया। काकोरी में तो एक डाका भी पड़ गया, बंगाल में कौन से ग़दर की रचना हो गई जिसके आधार पर कितने ही नवयुवक अकारण अज्ञात समय के लिये नजरबन्द किए गये। उनके लिये कोई व्यवस्था नहीं कोई न्याय नहीं रहा। जो हो, अधिकार के मदमाते शासक इतना भी बहुत नहीं कर रहे।

स्वतन्त्रता के इतिहास देख जाइये पता चलेगा कि सदा ही शासक वर्ग का दमन चक्र परतन्त्रता से मुक्ति चाहने वाले पर बड़े वेग से घूमता रहा है। किन्तु होता क्या है! रूस की ज़ारशाही और फ्रांस की अरिस्टोक्रेसी की दशा किस से छिपी रही। यह दमन ही घातक होता है इसकी प्रतिक्रिया नाश का बीज वपन करती है। इस स्थान पर इसी का संकेत करना है। क्रान्ति के विधाता कौन होते हैं? सोचिए। क्रान्ति के विधाता वास्तव में वे नहीं होते जो मातृभूमि के शुद्ध प्रेम में अपनी सर्वस्व आहुति दे कर स्वतंत्रता के लिये कुछ प्रयास करते हैं—दूसरों की दृष्टि में चाहे यह प्रयास अवैध ही क्यों न हो—किन्तु वे जो तिल का ताड़ बना कर समय समय पर देश की उठती हुई भावनाओं को कुचल देते हैं। माना कि उनके कार्य कभी २ संयम की एक सीमा को पार कर जाते हैं किन्तु उन्हें ऐसा करने पर विवश करने का उत्तर-दायित्व शासकों पर है।

काकोरी केस का फैसला सुन कर उन्हें आश्चर्य होगा जिन्हें अब भी सरकारी न्याय और सुबुद्धि पर विश्वास हो। फिर भी इस निर्णय

के विषय में एक बात कहने को जी चाहता है और वह इन निर्णायकों के ही हित की है। ऐसे मामलों में उसे सोच विचार से काम लेना चाहिये और कल्पित भयंकरता तथा उसके कर्ता का भली भांति निर्णय कर लेना चाहिये। इस समय संभव है उसे अपने पशु बल के उन्माद में कुछ भी न सूझे किन्तु इस अविचार का फल बुरा है। काकोरी केस के अभियुक्त फांसी पर लटका दिये गए। वे स्वतंत्रता के पुजारी हँसते २ मर गए। उनके हृदय में आत्मा की अमरता का ज्ञान, बलिदान की उत्कट भावना और न्यायेश्वर की सत्ता पर विश्वास था। किन्तु सरकार ने अपने विरुद्ध स्वयं वातावरण उत्पन्न कर लिया। ऐसे ही कार्यों से लोगों के मन क्षोभ से भर जाते हैं। उनका गरम खून उन्हें अन्धा बना देता है और इस प्रकार क्रान्ति के विधाता ये शासक ही बनते हैं।

ईश्वर करे वह दिन शीघ्र ही आवे जब अपराधी मनुष्य को भी मृत्यु दण्ड देना पाप समझा जाये।

वीर-सन्देश

[लेखिका—श्री० कुमारी पुरुषार्थवती आर्य्य, वैदिक धर्म विशारदा]

उठो उठो भारत के वीरो मत मन में भय लाओ !
दुष्ट-दलन, खलदमन करो रिपु-दल को मार भगाओ !!
वीर-वेष से सज्जित हो कर रण-प्राङ्गण में आओ !
प्रलयङ्कारी गीत समर के स्वर-लहरी में गाओ !!
कर-धृत कर, करवाल खूब शोणित की फाग मचाओ !
शौर्य्य, तेज से अपने जी में विजय-ध्वजा फहराओ !!
दुर्बल हिय में साहस भरदो ताण्डव-नाच नचाओ !
सुप्त विश्व को जाग्रत कर शुचि वीर-सन्देश सुनाओ !!

एक अमेरिकन वीराङ्गना

[लेखक—श्रीयुत इन्द्रदत्त जी शर्मा बी० ए०]

हाल ही में, रूथ एल्डर नामक एक अमेरिकन युवती ने एटलांटिक महासागर को आकाश द्वारा पार करने का यत्न किया था। अपने संकल्प में पूर्ण सफलता न मिलने पर भी रूथ एल्डर को गर्व होना चाहिए कि उसने जल के ऊपर आकाश में उड़ने वाले आजतक के सारे वीरों को मात खिलादी है।

एल्डर की इस अनोखी यात्रा का समाचार पाकर अनेक पत्र पत्रिकाओं ने समालोचनाएं की। किसी ने इस यात्रा के संकल्प को प्रमाद और दुस्साहस बताया तो किसी ने इसे 'एक अमेरीका की अजीब बालिका' कह कर इसका उपहास किया। कुछ लोगों ने यह भी लिखा कि यह मदमत्त होकर प्रकृति को अपनी दासी बनाने का दिखावा कर रही है, और पतियों को चाहिये कि इस प्रकार स्त्रियों को स्वतन्त्र छोड़ कर उन्हें अन्धी और बावली न बन जाने दें।

इस प्रकार की अनेक बातों की किञ्चित परवाह न करती हुई एल्डर ने अपनी यात्रा शुरू कर दी सैकड़ों मील उड़ चुकने पर हवाई जहाज पर बर्फ के ढेर जम गये और मशीन में उतना बोझ सम्भालने की शक्ति न रही। निदान एरोप्लेन समुद्र में आ गिरा। पास ही में वैरेन्ड्रेच नामी एक डच जहाज, जिसे एल्डर ने ऊपर से ही देख लिया था जा रहा था। जहाज के कप्तान ने एक किश्ती रक्षार्थ भेजी। किश्ती के मनुष्यों ने एल्डर की ओर एक रस्सा ज्योंही फेंकना चाहा त्योंही वह वीराङ्गना बोली कि "रस्सा पहिले मेरे साथी हैल्डरमैन की ओर फेंको मैंने तो जल-रक्षक वस्त्र धारण कर लिये हैं किन्तु इनके शरीर पर अभी आकाशी वस्त्र ही हैं।"

दो रस्से फेंक दिये गये और किश्ती द्वारा दोनों उड़ाकों को जहाज पर भी ला चढ़ाया। किन्तु धन्य है एल्डर के साहस और धैर्य को, कि

जब तक अनुभवी कप्तान हैल्डरमैन अपने आपको सम्भाल भी नहीं पाये तब तक एल्डर की पोशाक भी तबदील हो गई। और फिर, पहले रस्से को अपनी रक्षा नहीं वरन अपने मित्र की रक्षा के लिये माँगा। युक्ति-शीलता, साहस और धैर्य का कैसा उदार संगम है!

इस आश्चर्य प्रद यात्रा से पूर्व एल्डर ने इस विषय में पूछे जाने पर कहा था कि "मौसम के ठीक होते ही मैं एटलांटिक सागर को उड़ कर पार करना चाहती हूँ—लोग इसका विश्वास करें अथवा नहीं, इस से क्या? मैं तो विश्वास रखती हूँ।" उस ख्याति और प्रशंसा के प्रति जिसे महाकवि मिल्टन भी उच्च पुरुषों की अंतिम निर्बलता मान चुके थे, एल्डर की इतनी अनवधानता प्रशंसनीय नहीं तो क्या है।

यही नहीं, अपने विषय में बयान करते हुए एल्डर ने एक प्रसन्न मुस्कराहट के साथ कहा था, "मेरे विषय में उल्लेखनीय कोई खास बात नहीं है। २३ वर्ष की अन्य कुमारियों की भांति मैं भी हूं। जिन्दा रहना और कुछ करना मुझे प्रिय है। एक रोज जब मैंने आकाश में एरो-प्लेन उड़ता हुआ देखा तो मैंने सोचा कि जीवन और जागृति यह ही है। इसलिए मैंने निश्चय कर लिया और उड़ना सीखने लगी।"

बहुत से सज्जनों को मिस एल्डर के विवरण से आश्चर्य हुआ होगा—यह मिस उसी देश को अलंकृत करती है जिसमें मिस मेयो सरीखी नीच और नमक हराम स्त्रियों की भी भरमार है। परन्तु केवल मेयो की देश बहिन होने के नाते ही एल्डर हमारे हृदयों से गिर नहीं सकती। हम, भारतवर्ष की देवियों में आज इस प्रकार के साहस का साधारणतः अभाव देख कर दुःखी होते हैं; परन्तु इसमें उनका दोष नहीं बता सकते।

जिस देश की स्त्रियाँ घूंघट और बुरकों से सदा मुँह ढके रहें और आँखें होते हुए अंधों से परे दुःख भोगें; जिस देश में किसी प्रकार का भी शारीरिक व्यायाम स्त्रियों के लिये शर्मनाक और अपमान जनक माना जाय; जिस परतन्त्र देश में स्त्रियों के लिये, पुष्टिकारक वस्तुयें अना-

वश्यक; प्रसन्नचित्त एवं फुर्तील रहना, अथवा किसी भी प्रकार की कला में भाग लेना, प्रत्येक दशा और अंश में सदाचार का शत्रु माना जाय; उस देश में, और उस देश में, जहाँ कि स्वार्थी सरकार स्त्रियों की क्या चलाई, मनुष्यों तकको उचित और आवश्यक शिक्षा देने के नाम जोरों से खर्राटे लेने लगती हो—दिलेर और कर्मण्य स्त्रियों की आशायें करना मन के लड्डू नहीं तो और क्या हैं—फिर चाहे वह देश सीता और पार्वती सी देवियों की पवित्र जन्म-भूमि ही क्यों न हो !

जीवन—संग्राम

[लेखक—श्री० विद्याभूषणजी 'विभु', एम० ए०]

रण-स्थल यह सारा संसार, भयङ्कर काल चक्र की मार ।
हो रहा वीरों का संहार ! चतुर्दिक फैला हा हा कार ॥

रात दिन यहाँ नहीं विश्राम ।
जटिल है यह जीवन-संग्राम ॥

कहीं पर षड्रिपुओं की छाप, जलाते कहीं त्रिविध सताप ।
घात में ईति भीति चुपचाप, लगा फिरता है पीछे पाप ॥

बिछा द्वन्दों का दुष्कर दाम ।
मचा घर घर जीवन-संग्राम ॥

कहीं असुरों का अत्याचार, दे रहा पीड़ा विविध प्रकार ।
कहीं देवों का हृदय उदार, सह रहा भक्तों के हित भार ॥

यहाँ नित अहि-महि-रावण-राम ।
मचाते हैं जीवन-संग्राम ॥

कौरवों से पड़ जाता काम, झेलते दुःख सवेरे शाम ।
घूमते बन बन तज कर धाम, नहीं जब पाते एक छदाम ॥

महाभारत के वह घनश्याम।
रचाते तब जीवन-संग्राम ॥
लगाते मुंह में अश्व लगाम, अन्य पशु देते अपना चाम।
सुए पढ़ते हैं सीता राम, बन्दरों के हैं अद्भुत काम ॥
तृणों को थाम दीन हा राम।
काँपते लख जीवन-संग्राम ॥
विद्ध है रवि किरणों से नीर, दे रहा धक्के उधर समीर।
मकर झष रहे उदर को चीर, तीव्र तोरों से रुद्ध शरीर ॥
किया फिरभी गिरि काम तमाम।
विलक्षण है जीवन-संग्राम ॥
देख कर उसका रूप कराल, धीर! मत कन्धों को दो डाल।
सभल कर जुत जाओ तत्काल, फेंक दो छिन्न भिन्न कर जाल ॥
भीरु बतलाते विधि को वाम।
वीर करते जीवन-संग्राम ॥
धरा है वीरों का आराम, दहलते सुन कर जिनका नाम।
कायरों का है यहाँ न काम, जो कि मरते हैं आठों याम ॥
नहीं घबड़ाते सुन कुहराम।
वही लड़ते जीवन-संग्राम ॥
बढ़ो आगे निर्भय हो वीर, लक्ष्य पर मारो अपना तीर।
कलेजा नीच मृत्यु का चीर, वेग भारत की हर लो पीर ॥
अमर कर लो भूतल पर नाम।
जीत कर यह जीवन-संग्राम ॥
न हारो हिम्मत हो बलवान, भले हो जाओ लहूलुहान।
जान में समझा जब तक जान, छोड़ कर भागो मत मैदान ॥
मिले बस विजय या कि स्वर्धाम।
सफल हो तब जीवन-संग्राम ॥

——:※:——

वीर पुत्रों के प्रति

[लेखिका—श्रीमती विद्याधरी जौहरी, विशारदा]

—— ::❋:: ——

भारत मा के वीर पुत्रो ! तुमने मा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। तुमने हंसते २ मा के चरणों पर अपना सर्वस्व चढ़ा दिया। स्वतन्त्रता देवी को प्रसन्न करने के लिए तुम जब तक जिए पत्र पुष्पों के बदले देवी के चरणों पर अपना मन, अपना धन, अपना सब कुछ चढ़ाते रहे किन्तु फिर भी जब देवी ने दर्शन न दिये तो तुमने अन्त में अपना शीस भी देवी के चरणों पर चढ़ा दिया। तुम चले गये भारत मा की गोदी के लाल ! तुम चले गए ! पर क्या तुम सदा के लिए चले गए ? क्या तुम अपनी मा को रोता हुआ छोड़ कर जा सकते हो ? क्या तुम अत्याचार पीड़ित मा को सिसकते छोड़ स्वर्ग में सुख की नींद सो सकते हो ? कभी नहीं। तुम्हें अपने उद्देश से, अपने देश से स्वर्ग अधिक प्यारा नहीं। तभी तो तुम कहते थे कि हम चोला परिवर्तन करने जाते हैं। जाओ वीरो ! चोला बदलने जाओ ! और शीघ्र ही नया रूप धर कर आओ। जाते २ अपने कायर भाइयों को भी हँसते २ मरना सिखाते जाओ।

\+ \+ \+

मा के आदर्श पुत्रो ! क्या तुम्हारी मृत्यु से, तुम्हारे वियोग से तुम्हारी जननिएं तुम्हारी बहनें दुःखी हैं ? क्या सचमुच उनके नेत्रों से आँसू टपक रहे हैं ? कदापि नहीं। तुम इस भ्रम को मन में लाकर मृत्यु विजय से गर्वित हृदय को दुखी न करना। तुम्हारी माताओं ने ही तो तुम्हें मरना सिखाया था। उन्हीं ने तो तुम्हें बताया था कि तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है और हमने तुम्हें किस लिए जन्म दिया है। उन्होंने ही तो तुम्हारे हृदय में देश प्रेम का बीज बोया था। यदि वह तुम्हें अपने दूध में मारण मन्त्र न पिलातीं, यदि वह तुम्हें तुम्हारे जीवन का लक्ष्य, तुम्हारे जीवन का उद्देश न बतातीं और तुम्हारे हृदय में देश-भक्ति का बीज न

होतीं तो आज तुम मृत्यु को हँसते २ गले न लगाते आज तुम अपने उद्देश पर बलिदान न होते। आज तुम देश की आंखों में यह आदर यह सन्मान न पाते। तुम्हारी माताएं तुम्हारे ऐसे वीर-पुत्रों को पाकर आज ही पुत्रवती कहलाने लायक हुई हैं। आज उनका मातृ-जीवन सफल हुआ आज वह धन्य हुईं। जी चाहता है उनकी चरण-रज मस्तक पर लगा लूं। भारत मा के पागल पुत्रो! तुम मा के पग पर बलि हुए मा तुम ऐसे वीर पुत्रों पर बलिहारो जा रही हैं। देखो प्रेम के मारे मा का हृदय गद् गद् हो रहा है आंखों से प्रेमाश्रु टपक रहे हैं।

\+ \+ \+

लोग कहते हैं तुम ठीक रास्ते पर नहीं चले। तुमने अदूर-दर्शिता और जल्दबाजी से काम लिया। वह तुम्हारी कार्य्य प्रणाली को दूषित कहते हैं और उसकी आलोचनाएं करते हैं। भले ही तुम्हारी कार्य्य प्रणाली दूषित हो पर तुमने दिखा दिया कि सच्चे कर्मवीर कौन हैं। तुमने दिखा दिया कि आदर्श पर मरना किसे कहते हैं। आज तुमने अपने कर्त्तव्य से यह प्रगट कर दिया कि भारत की स्वाधीनता कोरी बातों से नहीं मिलेगी उसके लिए हजारों लाखों शीश बलिदान करने की जरूरत है। रामप्रसाद! तुमने अशफाकुल्ला को अपना "दाहिना हाथ" बना कर दिखा दिया कि हिन्दू-मुसलिम ऐक्य किसे कहते हैं और उसके बिना कोई भी कार्य्य पूर्ण नहीं हो सकता। तुम्हारा विश्वास था कि एकता हो सकती है और होगी। किन्तु यदि अब भी भारतवासी तुम ऐसे सच्चे कर्मनिष्ठ स्वर्गारोहियों की बात पर भी विश्वास न कर इस "तू तू" "मैं मैं" में ही लगे रहें तो भारत माता के बंधन कैसे कटेंगे? यदि तुम्हारे बलिदान से भी इस मुर्दा देश में जान नहीं पड़ेगी तो कब पड़ेगी?

स्वतंत्रता के दीवानो! क्या तुम्हारा खून रंग नहीं लायेगा? क्या तुम्हारे रक्त से घर २ में तुम्हारे जैसे स्वातंत्र्य-प्रेमी कर्मवीर उत्पन्न न होंगे?

ऐ हिन्दू मुसलिम वीरो ! क्या तुम्हारा सम्मिलित बलिदान हिन्दू-मुसलमानों में प्रेम उत्पन्न नहीं करेगा !

+ + +

आज चाहे लाखों नवयुवक इन स्वतन्त्रता के मतवालों की तरह वीर वीर बन जायँ और स्वातन्त्र्य की वेदी पर अपना सर्वस्व होम करने को कटिबद्ध हो जायँ पर क्या इन चार आदर्श प्रिय देश के अमूल्य रत्नों की क्षति-पूर्ति हो सकती है ? क्या माताओं के प्यारे दुलारे पुत्र उन्हें फिर मिल सकते हैं ? क्या बहनों के प्यारे भाई उनसे फिर राखी बँधवायेंगे, टीका लगवायेंगे ? क्या मातायें और बहनें तुम्हें एक बार केवल एक बार फिर जी भर कर देख सकेंगी ? मेरे वीर भाइयो ! पूरा साल हुआ जब लखनऊ के न्यायालय में बन्दी की दशा में तुम्हारे दर्शन किए थे। तुम्हारे सामने जाते ही आदर से मस्तक अपने आप झुका जाता था। न्यायालय में प्रवेश करते समय तुम्हारे गगन-भेदी "भारत माता की जय" और "बन्देमातरम" के नारे शत्रुओं के हृदयों को बैठा रहे थे। तुम्हारा गर्व से मुसकराना और अपने कटघरे मे हँसते हुए इधर उधर घूमना देख हृदय फूला नहीं समाता था। दिल में रह रह कर यह विचार आता था कि यदि यह वीर सकुशल कारागार से छूट जायँ तो भविष्य में क्या नहीं बन सकते। इन जैसे वीरों पर ही देश का भविष्य निर्भर है और यदि यह देश के नौनिहाल अकाल ही कुचल डाले गए तो देश की क्या हालत होगी। सोचती थी, क्या इन वीरों के दर्शनों से फिर भी नेत्रों को सफल कर सकूंगी, पर वह स्वप्न स्वप्न हो गए। हृदय में जो आशंका थी वह सत्य हुई अब तुम्हारे दर्शन फिर न होंगे। पर इससे तुम्हारी बहिनें, तुम्हारी माताएं दुःखित नहीं हैं। उनको यह सन्तोष है कि तुम वीरों की मौत मरे, तुमने वीर गति पाई और अक्षय-स्वर्ग प्राप्त किया। फाँसी के तख्ते पर भी मर्दानगी से झूलते और हँसते देख जिनके शत्रु भी मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते हों, जिनकी वीरता, आदर्श-वीरता और असीम देश-भक्ति के लिए आज कौन ऐसा अभागा है जो नत-मस्तक न हो रहा हो। जो

मरने के बाद सबके प्रिय हो गए हैं। उन पूज्य वीरों की माताएं और बहनें होकर क्या वह दुःखी होंगी ? उन्होंने तो तुम्हें उसी दिन केसरिया धागा पहना दिया था जिस दिन तुम्हें नौकरशाही ने अपना बन्दी बनाया, और तुम्हारी फांसी के बाद भी तो कहा है, "मैं पुत्र की इस मृत्यु से दुःखी नहीं हूं। तुम लोग सत्य न छोड़ना और सत्य के लिए मर मिटना। मैं राम सा ही पुत्र चाहती हूं।" किन्तु भारत मा को तुम जैसे लालों की बहुत जरूरत है। वह तुम जैसे पागल पुत्रों का वियोग अधिक देर सहन नहीं कर सकेगी। देखो ! कितनी आतुर होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। वीरो ! आओ ! फिर आओ ! जर्जरित, वृद्धा मा को ढाढ़स बंधाओ अपने भाई बहनों को देश पर मरना सिखाओ, और मा को बंधन-मुक्त कराओ।

भारत को स्वाधीन बनाओ

[लेखिका—श्री० विद्यावती जौहरी, विशारदा]

वीर-वेश से सज कर वीरो, रण प्रांगण में जाओ।
प्रलयंकारी, गर्जना कर के, रिपु को तुम दहलाओ॥
भारत को स्वाधीन बनाओ !

रिपु को तुम दहलाओ अथवा, भारत पर बलि जाओ।
समरांगण से पीठ मोड़ मत, मा का दूध लजाओ॥
भारत को स्वाधीन बनाओ !

मरते हो मरजाओ रण में, वीरादर्श दिखाओ।
अथवा रण-विजयी हो, भारतको स्वाधीन बनाओ॥

पं० सत्यनारायण कविरत्न*

ऐसा कौन हिन्दी-प्रेमी होगा जो पं० सत्यनारायण कविरत्न को न जानता हो। उन्हें मरे हुए आज १० वर्ष होने आए पर आज उनकी एक जीवनी पढ़ कर हमें ऐसा मालूम पड़ता है कि आप सम्मुख ही खड़े हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में साहित्याचार्य पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने चार आंसू बहाये हैं। आंसू बहाते हुए उन्होंने कहा है कि 'सत्यनारायण की जीवनी करुणा रस का एक दुःखान्त महा नाटक है।' पण्डित जी ने बड़ी गम्भीरता से कविरत्नजी की सरल तथा मधुर प्रकृति और उनकी निस्पृह साहित्य-सेवा का जिक्र किया है। चतुर्वेदी जी के चार शब्दों के बाद पण्डित सत्यनारायण की आत्मगाथा प्रारम्भ होती है। जन्म और बाल्यावस्था का वृत्तान्त पढ़ कर पता चलता है कि पण्डित सत्यनारायण जी बचपन में ही कविता करने लगे थे। उनका विद्यार्थी जीवन निर्मल एवं काव्य मय था। भूगोल और इतिहास की बातों पर तुकबन्दी कर डालना तो उनके बायें हाथ का खेल था। बी० ए० तक अंग्रेजी पढ़ लेने पर भी पं० सत्यनारायण जी का वेष-भूषा सदा सादा रहा। ग्रामीण मिर्जई और दुपल्लू टोपी में बहुत ही सादा जीवन बिता कर वे ऊंचा सोचने के आदी थे। बड़े बड़े विद्वानों और उनके अग्रज मित्रों तक ने इस बात की सराहना की है। किसी कवि का हृदय उसकी कविताओं में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। गान्धीस्तव, तिलक-वन्दना, सरोजनी षट्पदी तथा कुली प्रथा पर लिखी गई देशभक्ति पूर्ण सरल कविताओं में कोरे ग्राम-वासी 'सत्य' के हृदय के स्पष्ट दर्शन होते हैं। कुली प्रथा पर की गई 'दुखियों की पुकार' से कविरत्न के दर्द-भरे दिल का और भी स्पष्ट रूप से दर्शन हो जाता है। सौदा-सट्टे और व्यापारिकता के इस युग में पंडित जी की निस्पृह साहित्य सेवा अनूठी है। जीवन की अन्तिम घड़ियों तक

* लेखक—पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी, प्रकाशक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग। मूल्य एक रुपया।

वे इसी में लगे रहे। मालती माधव, उत्तररामचरित और हृदय-तरंग आदि ग्रन्थ सत्यनारायण जी की अमर कृतियों के रूप में सदा हिन्दी-साहित्य की शोभा बढ़ाते रहेंगे। आप की कविता का प्रभात काल बीत चुका था और यौवनकाल का श्रीगणेश ही हुआ था, तब तक वे इस दुनिया से चल बसे। यदि वे कुछ दिनों और जीवित रह पाते और उनकी काव्य-प्रतिभा को पूर्ण रूप से विकसित होने का अवसर मिलता, तो न जाने अभी कितनी प्रस्फुटित काव्य-कलिकाओं के सौरभ से हिन्दी-साहित्य का उद्यान सौरभित होता! परन्तु—

"हसरत उन गुञ्चों पै है जो बिन खिले मुरझा गये।"

पण्डित सत्यनारायण के विवाह के लिए उनके मित्रों को बड़ी खींच-तान करनी पड़ी थी। पहले तो वे अपने स्वास्थ्य की खराबी के कारण विवाह करने पर किसी तरह राजी ही न होते थे, पर अन्त में किसी तरह अपने कृपालु मित्रों के अनुरोध पर उन्हें विवाह-बन्धन में बँधना पड़ा। विवाह के बाद पण्डित सत्यनारायण का गृह-जीवन एक दुःखान्त करुण नाटक के रूप में सामने आता है। श्रीमती सावित्री देवी के निर्दय व्यवहार के कारण कविरत्न जी को जो भयङ्कर मानसिक कष्ट हुए उनका कुछ अनुमान उस पत्र व्यवहार को पढ़कर हो सकता है जो इस पुस्तक में प्रकाशित किया गया है।

श्रीमती सावित्री देवी ने, पण्डित जी के यह प्रार्थना करने पर भी कि—"हाथ गहे की लाज से अथवा दुनियाँ के लिहाज से क्या मैं आप से आशा करूं कि आप मेरा इस व्यथित एवं विपन्नावस्था में कटु तथा तीव्र पत्र लिखने की कृपा न करेंगी?"—उन्हें कटु तथा हृदय को संतप्त करने वाले पत्र लिखे। ऐसा करके उन्होंने शिक्षा और सहृदयता का कैसा अच्छा नमूना पेश किया, यह प्रत्यक्ष है। इस दशा में व्यथित कविरत्न के दर्द भरे दिल से—"परेखौ प्रेम किये कौ आवे"—"भयौ क्यों अन चाहत को संग" आदि उद्गार निकल पड़े थे। एक मित्र को पत्र लिखते हुए सत्यनारायण जी ने सावित्री

देवी जी को इन शब्दों में स्मरण किया है—"जाना था उसे सहृदया किन्तु, निकली जड़ की जड़।" जब इस पुस्तक में हम ने पढ़ा कि मथुरा से श्रीमती सावित्री देवी ने 'यारों की यारी', 'एक रात में ४० खून' आदि पुस्तकें वी० पी० से मँगाई थीं, और ४० खून में से नमूने के तौर पर दी हुई कुछ पंक्तियां पढ़ीं, तब तो हमें अवाक् रह जाना पड़ा। अचानक मुँह से निकल पड़ा, ओफ् 'शारदा सदन' ऐसी संस्थाओं के धार्मिक वायु मण्डल में पली हुई, तथा सीधे-सादे किन्तु ज्वलन्त चरित्र के पं० सत्य-नारायण की धर्म-पत्नी श्रीमती सावित्री देवी क्या इस प्रकार की रुचि भ्रष्ट करने वाली पुस्तकें पढ़ती हैं? क्या आर्य्य कुल में जन्म लेने वाली महिलाओं से केवल यही आशा की जा सकती है?

श्रीमती सावित्री देवी के पत्रों और पण्डित सत्यनारायणजी के प्रति किये गए उनके बर्ताव को पढ़ कर तो हमें यह बात अधिक उपयुक्त जँचती है कि अपने पतियों की आज्ञानुसार जानवरों की तरह जीवन बिताने वाली वे सहृदय ग्रामीण लड़कियां लाख दर्जे अच्छीं, जिनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। क्योंकि वे पति को कष्ट देने के स्थान पर खुद ही सामाजिक रूढ़ियों पर बलि चढ़ कर निर्दई समाज की आंखें खोल देती हैं। विवाह से पहले जिन पं० सत्यनारायण की कविता सूर्य का प्रकाश होना आरम्भ ही हुआ था, कौन जानता था कि उसके बाद थोड़े ही दिनों में उनका गृह-जीवन इतना दुःखदायी हो जायगा कि उस बाल-रवि का तरुण तेज सदा के लिए अस्त हो जाय।

यह जीवनी लिख कर पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने हिन्दी का बड़ा उपकार किया है। उन्होंने अथक परिश्रम करके पं० सत्यनारायण जी के जीवन की छोटी से छोटी घटनाओं, कविताओं, उनके पत्रों, तथा मित्रों और हितैषियों के पत्रों को एकत्रित कर इस पुस्तक में रख दिया है। इससे स्वर्गीय कविरत्न की अनूठी और अमर कृतियां हिन्दी भाषी जनता को सदा पढ़ने को मिलती रहेंगी।

साहस

[लेखक—साहित्योपाध्याय पं० ब्रह्मदत्तजी शास्त्री, काव्यतीर्थ, एम० ए०]

जलते अनल ही में तेज तीव्र होता सदा,
बुझने पै 'राख' नाम उसे दिया जाता है।
बन्दना सदैव रवि भासमन की ही होती,
घनों में घिरे को देख लोक घबराता है॥
दूषणों के शोषण की प्राण-परिपोषण की,
शक्ति वायु चपल ही नित्य प्रकटाता है।
इसी भांति साहस तो युवकों में होता सदा,
बूढ़ा झुक कहीं न पुराण पढ़ पाता है॥१॥
साहस से नीरधि के उदर को चीर वीर,
एक द्वीप से सुदूर अन्य द्वीप जाते हैं।
साहस से गगन की ग्रीवा पै सवार हुए,
वैज्ञानिक विज्ञवर कौतुक रचाते हैं॥
कहीं मकरों के लोक कहीं विहंगों के बीच,
क्लेश का न पाते लेश केलियां मचाते हैं।
कौनसा है काम जिससे साहसी युवक जन,
सिद्ध-हस्त पल में न सिद्ध कर लाते हैं॥२॥
साहस से हिम गिर शिखरों को पार किया,
साहस से धरणी का छोर घोर पा लिया।
साहस से गोता मार जलधि गम्भीर में ले,
मनुजों ने मुक्ता फल लाके दिखला दिया॥
साहस से सिंह और मदमत्त हाथियों को,
नर ने अधीन कर शव भी जिला दिया।
साहसी हो युवको, बिसार घोर आलस को,
साहस से कार्य कहो किसने न क्या किया ? ॥३॥

स्थिति की कायापलट

चारों ओर निराशा ही निराशा थी। ऐसा अन्धकार था कि हाथों हाथ नहीं दिखाई पड़ता था। छोटों की बात कौन कहे, बड़े बड़े भी किं कर्त्तव्य विमूढ़ हो रहे थे। किसी को कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था। ऐसी स्थिति में—ऐसी निराशा निशा में जिस प्रकार आशा सूर्य का उदय हुआ, स्थिति का जिस प्रकार कायापलट हुआ वह देखते ही बनता है। तीन महीने नहीं हुए, हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक निस्तब्धता थी, शान्ति नहीं थी पर क्रियशीलता भी न थी। भारत के बड़े से बड़े नेता अकर्मण्य की भांति बैठे थे। राष्ट्रीय प्रगति के स्थान को हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष ने ग्रहण कर रक्खा था। जहां देखो वहीं भाई भाई का सिर फोड़ने को तैयार था। ऐसी विकट परिस्थिति में देश फँसा हुआ था, जब सरकार ने रायल कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की।

रायल कमीशन की नियुक्ति से भी पूर्व अमेरिका की एक स्त्री मिस मेयो ने 'मदर इंडिया' लिख कर भारत को बदनाम किया। इस भ्रष्ट पुस्तक में लेखिका ने भारत की नालियों की गंदी कीचड़ को अमेरिका और इंग्लैण्ड में उछाला। अनेक झूठी सच्ची बातें लिख कर और हिन्दुस्तान की सामाजिक बुराइयों को तिल का ताड़ बना कर इस लेखिका ने अपनी लेखनी को गंदा किया। इसने हर प्रकार से इस बातकी चेष्टा की कि सफेद कौमें हम कालों को सचमुच काला समझने लगें। इस पुस्तक के लिखने और उसके प्रचार में भारत की ब्रिटिश सरकार ने भरपूर सहायता दी। पुस्तक पार्लियामैंट के मेम्बरों को मुफ्त बांटी गई। एक ही महीने में उसके कई संस्करण समाप्त किए गए। गरज कि भरसक इस बात की चेष्टा की गई कि कमीशन की नियुक्ति से पहले संसार में इस बात की घोषणा हो जाय कि भारतवासी सब तरह नालायक हैं।

भारत में भी इस पुस्तक के दर्शन हुए पर जिसने उसे पढ़ा उसीने लेखिका के कमीनेपन और उसकी बुरी नीयत का स्पष्ट उल्लेख किया।

उसकी झूठी बातों का मुंह तोड़ उत्तर दिया गया। उसके भ्रष्ट आक्षेपों का पर्दा फाश किया गया। अमेरिका और इङ्गलैंड का कलई खोली गई। यही नहीं हिन्दुस्तान की अपनी आँखें भी खुलीं। उसे भी मालूम हुआ कि मेरी क्या स्थिति है। उसके आत्म सन्मान को ठेस लगी, कुछ जागृति पैदा हुई। पर वास्तव में कायापलट हुई कमीशन ही से।

१९१९ में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने भारत के लिए स्वराज्य की पहली किस्त दी थी। लड़ाई में लाखों हिन्दुस्तानियों की जान झोंकने और प्रबल आन्दोलन करने के फल स्वरूप अँगरेज़ सरकार ने यह एक खिलौना बालक भारत के हाथ में दिया था। भारत कोई वास्तव में बालक तो था नहीं, उसे इस खिलौने से कैसे सन्तोष हो सकता था। अस्तु भारतीय नेताओं ने शासन सुधार के इस खिलौने को स्वीकार करना पसन्द न किया, उससे असहयोग किया। उधर पंजाब हत्याकाण्ड और रालट एक्ट ने अलग आग भड़कादी थी। बस असहयोग आन्दोलन शुरू हो गया और दो तीन वर्ष तक उसका ऐसा ज़ोर रहा कि भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग तक की बुद्धि हैरान हो गई। उन्हें भी यही सूझी कि असहयोग के नेता महात्मा गांधी से सुलह कर ली जाय। यह स्थिति अधिक न रही। भारत मे जयचन्द और विभीषण पैदा हो गए और इस जीवित आंदोलन को बुरी तरह कुचला गया। हजारों आदमियों से भारत की जेलें भर दी गईं। फिर बुरा समय आया और हिंदू मुसलमानों की आपसी लड़ाई ने भारत के कौने कौने में घर कर लिया।

१९१९ के स्वराज्य के खरीते में एक शर्त यह भी थी कि दस वर्ष बाद स्वराज्य शासन प्रणाली की जाँच की जायगी और फिर १९२९ में और हक़ दिए जायंगे। वर्तमान कमीशन उसी शर्तका परिणाम है। पर १९२९ के बजाय यह कमीशन १९२७ में ही कैसे बन गया? अँग्रेजों ने देखा कि इस समय भारतवर्ष में आपसी कलह फैली हुई है, कोई जाग्रति के चिन्ह दीखते नहीं, इस समय इन्हें वेवकूफ बनाने का अच्छा अवसर

है। उधर 'मदर इंडिया' के जरिए भारत से बाहर भारत की स्थिति को उल्टेरूप में अलग दिखाया ही गया था। इस मौके को न चूकना अंग्रेजों ने ठीक ही समझा। चट ही तो कमीशन की नियुक्ति कर दी गई।

हम लोग आशा वादी हैं। बुरे से भी भला ही होता है, ऐसा हम लोगों का विश्वास है। भारत की उस बुरी दशा से और कमीशन के इस जाल से भी अच्छा ही हुआ। अंग्रेजों ने सोचा था कि हिन्दुस्तानियों को वेवकूफ बनाएंगे पर खुद वेवकूफ बन गए। पार्लियामेंट के सात गोरे सदस्यों को कमीशन का मेम्बर बनाया गया। किसी हिन्दुस्तानी को मेम्बर न बनाने का कारण बताते हुए, उनकी काफ़ी बेइज्जती की गई। जितने भाषण हुए सब में हिन्दुस्तानियों की बुराई की गई। फल ऐसा हुआ कि हम उसके कारण कमीशन और उसके बनाने वाले सभी को बधाई दे सकते हैं।

कमीशन की नियुक्ति हुई और भारत के कोने २ से उसका विरोध शुरू हुआ। निस्संदेह अंग्रेजों के इस कमीशन की अंग्रेजों ने प्रशंसा की। पर वे तो करते ही। हाँ उनमें कुछ सच्चे आदमी थे, उन्होंने इस प्रकार अभारतीय कमीशन की मुक्त कंठ से निन्दा की। भारत में तो सभी दल के लोगों ने इसका विरोध किया। कांग्रेस तो उसका विरोध करती है, उन लोगों ने भी उसका विरोध किया जो असहयोग के जमाने में सरकार के दाहिने हाथ बने हुए थे। और जो अब तक सरकार की नेकनीयती पर विश्वास करते थे। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी ने कमीशन का बायकाट करना तय किया। कांग्रेस, हिन्दू सभा, खिलाफत, मुस्लिम लीग, व्यापारिक सभाएँ, सब उसके विरुद्ध हो गईं। मद्रास में कांग्रेस हुई, अभूत पूर्व उत्साह के साथ! उसने भी बायकाट करना ही तय किया। बनारस में भारत के सब दलों की एक सम्मिलित सभा की गई। सभी दलों के प्रमुख प्रमुख पुरुष उसमें सम्मिलित हुए। उसने भी एकमत होकर यही तय किया कि इस कमीशन का बायकाट किया जाय।

अब क्या स्थति है? जिस समय यह पंक्तियां लिखी जा रही हैं

और जिस समय यह अङ्क हमारे पाठकों के हाथ में पहुँचेगा, कमीशन के विरोध में जगह जगह सभा हो रही होंगी। देश के नेता यहाँ से वहाँ भ्रमण कर रहे होंगे और चारों ओर जीवन और जागृति के चिह्न स्पष्ट रूप से प्रकट होते होंगे। कमीशन का स्वागत भारतवर्ष हड़ताल मना कर करेगा और उसके साथ सहयोग करने वालों का बायकाट। निराशा निशा से आशा सूर्य का किस प्रकार उदय हुआ, यह हमारे पाठक देख चुके। कमीशन देश के लिए अफ़त बन कर आया था—पर वह न्यामत साबित हुआ। परमात्मा करे स्थिति का यह कायापलट देश के लिए सौभाग्यप्रद हो और शीघ्र ही हमें स्वतन्त्रता की वायु में विचरने का अवसर प्राप्त हो।

वीर रस का बसन्त-विनोद

[लेखक—एक शास्त्री महोदय]

माधुर्य्य-जग की 'माधुरी' सब विश्व के लालित्य की;
करती 'सुधा' को भी सुधा है माधुरी साहित्य की।
साहित्य के सर्वस्व नव-रस नृपति उनका वीर है;
आमोद हित उस वीर के ऋतुराज की तदबीर है।
कायर करीलों के बिना सब आज परम प्रसन्न हैं;
जड़ और चेतन विश्व भर के अतुल सुषमाऽऽछन्न हैं।
पल्लवित फूले फले सब ही हरित है दीखते;
फिर भी प्रकृति-परिवृत्ति से कुछ पाठ नव हैं सीखते।
है सुपूज्य 'सरस्वती' सन्नद्ध मंगल के लिए;
यत्न में है 'त्याग-भूमि' 'विशाल भारत' के लिए।
अब 'वीर का सन्देश' वीरों के लिए बस है यही;
ठान दो स्वातन्त्र्य-रण अर्चित करो जननी मही।
होती विजय है धर्म्म की सब काल में सब देश में;
धर्म्म की खातिर लड़ो रख चित्त को सर्वेश में।

पथ-परिवर्तन

[लेखक—श्री० पं० जगदीशचन्द्र जी आयुर्वेदाचार्य]

वर्षाकाल का अन्तिम समय था। शरदकाल की मधुर प्रभा धीरे धीरे नभस्तल से विश्व में अवतीर्ण हो रही थी। घनश्याम की श्यामता विमल आलोक से आकाश के और भी ऊर्ध्व भाग में जा छुपी थी। मानवीय जीवन शरद् के सुन्दर समागम का विमल हृदय से स्वागत कर रहा था। जल थल सब निर्मल था। पर उसके हृदय का कालुष्य इतना गहरा बैठा था कि वर्षा की सतत धार और शरद् का विमल आलोक उस तक पहुँच ही नहीं पाया। आशा की मधुर लहरों, प्रलोभनों का प्रबल आकर्षण, अनिच्छा से विद्वेष की धधकती ज्वालाओं को शान्त करने के लिये उसे पाप पथ पर लिये जा रहा था। वह भी तत्वान्वेषी का एकान्त मौन धीरे धीरे आंख मूंदे निर्जीव सा किसी बलवती प्रेरणा से उसी निन्द्य पथ पर चला जा रहा था।

समस्त कोमल भावों को तिलाञ्जलि दे, प्रिय प्रेम तथा करुणा की समस्त सम्पत्ति शून्य में ढकेल हृदयहीन हतबुद्धि सा चला जा रहा था। कौन लिये जा रहा था, यह तो नहीं मालूम परन्तु अन्तर को मथ कर प्रतिक्षण जो वह्नि निकल रही थी, अपमान का परिशोध ही उसके शान्त करने का चरम उपाय था। वह इसी धुन में अपमान से त्राण पाने के लिये जान कर भी पापपूर्ण विनाश पथ पर चला जा रहा था अवश्य! पर उसका हृदय मसल कर रह जाता था। अन्तर की छुपी हुई अज्ञात वेदना से अधीर हो कभी कभी वह सोचने लगता, यदि यह कलुषित हृदय विमल हो जाता, यदि यह भ्रष्ट जीवन, पापपूर्ण कलेवर विश्वप्रिय वीर प्रताप की राजस्थली की विनाश कल्पना के पूर्व ही विनष्ट हो जाता, यदि यह क्षोभ, ग्लानि तथा प्रतीकार की भावना का अंकुर जन्मते ही उन्मूलन कर दिया जाता, यदि भाई भाई का नाश करने वाले धर्मप्रिय

वीर हिन्दू हृदयों को विधर्मी म्लेच्छों के पाद प्रहार से ठुकरा देने की इच्छा रखने वाले अधर्मी घोर पातकियों को यह वसुन्धरा किसी प्रकार उदर में समा लेती और देशवासियों को गुलामी की शृंखला में आबद्ध कर भाई का रक्त पिला कर जननी जन्मभूमि के वक्षःस्थल पर विदेशी लोगो का अट्टहास कराने का पुण्य सञ्चय, करने वाले, अपना सर्वस्व नष्ट कर दूसरों की झूठन खाने वाले, मुझसे नारकीय पशु को मेवाड़ के विग्दध हृदय की ज्वाला में भस्मसात् कर सकती तो क्या ही अच्छा था। फिर संसार कितना सुन्दर सुखी और भाव मय होता। मनुष्य जीवन परस्पर प्रेम सहानुभूति से देवसम हो जाता। पर क्या अब पथ-परिवर्तन का समय है। अब बचा ही क्या है? जीवन का सर्वस्व इस सुन्दर देश के विनाश में ही लगा है। सारा उत्साह पौरुष, हिन्दूधर्म की जड़ खोदने में ही खर्च हो गया है। जो कमी थी वह स्वदेश पर मुगलों को चढ़ा कर पूरी कर दी है। और जिस पथ पर एक बार अटल हो प्रयाण किया था वह अब छोड़ा नहीं जा सकता। इस नीच हृदय की चिर अभिलाषा तो पूर्ण करनी ही है। हिन्दू समाज की नितान्त मूर्खता पूर्ण सामाजिक कुरीतियों के परिणाम स्वरूप जो तपस्या की थी उसके मधुर फल की उपेक्षा भी तो नहीं की जा सकती।

पर हृदय तुम आज दुर्बल क्यों हो? इतनी विषम वेदना का अनुभव आज से पहिले तुमने कभी नहीं किया था!

भक्त की उपासना पूरी हो गयी, वह दान मिला चाहता है उसको लेने से हिचकते क्यों हो?

यदि तुम्हारा यह भाव परिवर्तन कुछ पहिले हुआ होता। तो आज मेवाड़ का इतिहास पलट जाता! पर हाय, अब क्या है? अब तुम्हारी यह उपेक्षा-परिवर्तन-विश्व का उपहास, मनुष्य की कायरता है!

जीवन भर के अतीत, तुम एक वीर के कट्टर वज्रसम हृदय को छलने क्यों आये हो? देशद्रोह जैसा भयानक पाप, शिशु वनिताओं के क्रन्दन जैसा करुणा जनक राग, पराधीनता जैसी हेय वस्तु जिसे कभी

विचलित न कर सकी, उसे आज तुम क्यों रुला रहे हो ? क्या यह अनुताप है ? जीवनभर के कुकृत्य समस्त पापराशि आज तुम आंखों में प्रत्यक्ष होकर क्यों एक वीर को पथ-विचलित कर रहे हो। अनुताप ही तथ्यकी प्रतारणा से हृदय में उमड़ी हुई क्रान्ति को बहाने वाला श्रेष्ठतम स्वाभाविक उपाय है।

समस्त दुर्बलता त्याग आज वह द्विगुणित उत्साह से रण रंग मञ्च पर आया। आज का खेल भी नया था। ऐसा प्रहसन, ऐसा अभिनय, इतना रोमाञ्च कारी दृश्य आज होना था। क्या कभी हुआ होगा ? भाई अपने सहोदर भाई को विदेशी शत्रुओं की शक्ति से कुचल कर खाना चाहता है।

ओह, कैसी बीभत्स कल्पना है। युद्ध नाटक आरम्भ हुआ बड़े वीरों की विकट चीत्कार से आकाश कांप उठा। आज केवल युद्ध ही नहीं था बल्कि भाई भाई के खून का लेना देना था। वह आगे बढ़ा। उसने देखा, मुट्ठी भर राजपूतों को लेकर प्रताप आज किस विकरालता से भिड़ रहा है। मानो क्रुद्ध काल विस्तृत सृष्टि के संहार में लगा है। उस वीर केशरी के घोर गर्जन से रण स्थल कांपने लगा। बड़े बड़े वीर मुह चुरा कर भागने लगे। कुछ ही क्षण में जन समुद्र अगणित शवों के ढेर में परिणत होने लगा। इस प्रकार अपनी सेना का संहार होते देख वह विकल हो सेना को चीर सामने आया। ललकारते हुए उसने कहा इन सैनिकों के बध से क्या लाभ आज मेरा और तुम्हारा युद्ध है। शान्त भाव से सामने आकर प्रताप ने कहा तुम भ्रम मे हो। यह मेरा तुम्हारा युद्ध नहीं, धर्म और पाप का युद्ध है। देव और असुरों का संग्राम है। स्वाधीनता और गुलामी की मुठ भेड है। मनस्वी वीर के ओजस्वी शब्द तीर की तरह उसके उर में जा घुसे। वह बुत की तरह खड़ा देखता रहा। मदान्ध प्रताप फिर सैनिक मुण्डों से क्रीड़ा करने लगा।

वह सोचने लगा सचमुच यह मेरा और उनका युद्ध नहीं, आर्य-सभ्यता का युद्ध है, हिन्दू संस्कृति का युद्ध है। मुझे निमित्त बनाकर मेरे

ही हाथ से मेरे भाई पर और देश पर छुरी फेरी जा रही है। विजय होगी यवनों की मेरे पौरुष से। देश और भाई का विनाश होकर मुझे मिलेगा तपस्वी भाई का शाप ! जननी जन्म भूमि के विदग्ध हृदय की विदग्ध-ज्वाला !! और विपुल पाप राशि !!!

इस तथ्य से उसकी आँखों का परदा हटने लगा। कुत्सित ध्येय दूर होने लगा। सञ्चित अधर्म जीवित हो सामने नाचने लगा। भयत्रस्त मन कांपने लगा। पैर डग मगाने लगे। सहस्रों वृश्चिक दंश की पीड़ा की तरह उसका उर व्यथित होने लगा। उसने चाहा कि सुदूर काननों में भटकता हुआ शिला खण्डों से टकराकर प्राण देदूं—पर दे न सका। सेना का भार छोड़ वह एक तरफ को चल दिया। दृढ़बद्ध लक्ष्य का तार सहसा टूटते ही पथ-परिवर्तित होने लगा। मार्ग का ध्यान न रहा।

सामने मातृ-भूमि मेवाड़ का वीर द्वारपाल अचल अपने उरस्थल में प्रताप के से उज्वल रत्न को छुपाये विश्व की समस्त कठिनाइयों से उसकी रक्षा कर रहा था। उसकी उपत्यका से निकल कर एक निर्मल जल स्रोत निर्भीकता से बहा जा रहा था। मानो राजपूतों की सकल दुर्बलताओं को मेवाड़ से खींच कर सुदूर सागर में लिये जा रहा था।

इसी पर्वत प्रदेश में मेवाड़ का तपस्वी विपुल वैभव पर लात मार कर जननी जन्म-भूमि के उद्धारार्थ घोर तपस्या कर रहा था। उसी तपस्वी का मान मर्दन करने के लिये अकबर से बली बादशाह ने उसके भाई की सहायता से यह रण-यज्ञ रचाया। संसार का समस्त प्रलोभन, विपत्तियों का घोर गर्जन जिसे विचलित नहीं कर सका, क्या वह ऐसे संग्राम से भयभीत हो जाता ?

पर्वत की तरह प्रतिज्ञा का अटल, विपत्तियों से अचल हिमाचल मन का दृढ़ प्रताप विश्व की किसी शक्ति से भी विजित हो सकता था ? काल भी जिसे भयभीत न कर सके उसे मानवीय शस्त्रों से डराना निरा पागलपन नहीं तो और क्या था।

अन्य मनस्कता से, हताश भाव से, उसका प्रयाण जारी था। अचानक अरण्य प्रदेश की नीरवता में किसी के पद-शब्दों ने उसका चिन्ता जाल विछिन्न कर दिया। उसने देखा, वीर केशरी पुण्यात्मा, प्रताप हजारों वीरों का दिन भर संहार करने के अनन्तर अगणित शस्त्रों के प्रहारों से ऐसे लहू लुहान सान्ध्य कालीन सूर्य की तरह विश्राम को जा रहा है और दो पठान सैनिक पीछा करते हुए चुपचाप चले आ रहे हैं।

युद्ध-स्थल से युद्ध समाप्त होने के अनन्तर इस प्रकार पीछा करते आना रहस्य का कार्य था, उसका सन्देह पूर्ण हृदय, अनिष्ट की आशंका से कांप उठा। वह भी उसके पीछे हो लिया। प्रताप का युद्ध थकित अश्व स्रोत के निकट आ रुक गया, पठान शीघ्रता से झपटे। वह सब समझ गया। भाई का प्रबल शत्रु भाई के अपमान से व्याकुल हो उठा। स्नेह लिप्त हृदय की प्रनीकार भावनाएं आंदोलित हो उठीं। धमनियें प्रबल रक्त सञ्चार से स्पन्दित होने लगीं। चिर अभ्यस्त कर किसी आन्तरिक प्रेरणा से खड्ग के मस्तक पर जा गिरा। सम्पूर्ण शरीर किसी आवेश से उत्पीड़ित हो उछल पड़ा। 'सावधान पिशाचो' शब्द के मुख से निकलते ही दो पठान शरीर मस्तक विहीन हो पृथ्वी पर लोटने लगे।

प्रताप ने चौंक कर देखा, उस दृष्टि में कितनी वीरता, कितना औदार्य्य, कितना ममत्व, कितनी क्षमा थी। उससे देखा न गया, विह्वल हो कर प्रताप उस जैसे अधम अस्पृश्य पापी से चिपट गया।

जो आनन्द उसे जीवनभर न मिला था वह पथ परिवर्तन करते ही वीर भाई के अन्तःकरण से मिलकर समस्त शरीर में संचरित होने लगा। लक्ष्य भ्रष्टों का पथ परिवर्तन ही भविष्य जीवन के शुभ लक्षणों शुभ सन्देश है।

पूजा

[लेखक—श्री० किशोरीदास जी वाजपेयी, शास्त्री]

धर्म की बलि-वेदी पर वीर, समर्पित कर देना निज प्राण;
कदर्थित कर देना अरि सैन्य, निर्बलों का जिस से हो त्राण।

न अच्छी श्वान-मृत्यु जग बीच,
खाट पर सड़ सड़ कर दुख भोग;
केसरी के समान रण-भूमि,
वीर-गति है वीरों के योग।

मातृ-चरणों की अर्चा हेतु,
अर्चना—सामग्री उतनी;
जुटाना बन्धु! सयत्न-विवेक,
पूर्ण हो आवश्यक जितनी।

अर्चना-भू समरांगण पुष्प,
बनाना अरि-नेत्रों के फूल;
गूँथना माला विविध प्रकार,
बीच दे शत्रु-मुण्ड जग-शूल।

अस्थि-पंजर चूर्णित कर खूब,
सजाना अक्षत-थाल महान;
वहीं फिर पिच्छिल शोणित-धार,
बनी होगी कुंकुम की खान।

युद्ध के वाद्यों की ध्वनि बीच,
आरती कर लेना जी खोल;
अभय पद पा जाओगे शीघ्र,
ध्वनित होगा—"क्या लेगा? बोल।"

तभी तुम हो जाओगे धन्य,
बनोगे जगती के सिरमौर;
उड़ेगी विजय-पताका शुभ्र,
न होगा तुम सम कोई और।

तभी है जीवन सत्य पवित्र, कीर्तिमय है सब ही संसार;
अन्यथा होते हैं उत्पन्न, सभी फिर मरते हैं निःसार।

वीरों के सन्देश

[लेखक—श्रीमान् बाबू श्रीप्रकाश जी]

"काशी से चलने के पहले ही पता लग गया था कि हम लोगों की सब दौड़-धूप, सब पैरवी और अपील व्यर्थ हुई और काकोरी वाले अभियुक्तों में चार को फांसी होगी ही। अहमदाबाद पहुँचने पर यह दुःखद समाचार मिला कि इन नवयुवकों की इह लीला समाप्त हो गई। द्वारका में 'आज' के अङ्क मिले उनमें श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' के अन्तिम उद्गारों के प्रथम अंश और यहां पर जो अङ्क देखे उनमें बाकी अंश पढ़े। क्या करुणाजनक शब्द हैं! कितना उत्साह, कितना गर्व, कितनी देशभक्ति, कितना साहस, उनमें भरा है। अशक्ता का व्यर्थ क्रोध हमारे लिये करना किस अर्थ का होगा? जब से यह अभागा मामला चला तभी से इन नवयुवकों की चिन्ता करता रहा। आरम्भ में इन से सहानुभूति दिखलाने वाले बहुत से लोग थे। जब मुकदमे ने बड़ा तूल पकड़ा और गवर्नमेण्ट की तरफ से बड़े से बड़े वकील रख कर ज़बरदस्त पैरवी होने लगी तो बहुत से सहायक हट भी गये। थोड़े से बच गये जिन्होंने यथा सम्भव यत्न किया। पर कुछ भी न हुआ। श्री मोहनलाल सक्सेना, श्री गणेश शङ्कर विद्यार्थी और प० गोविन्द वल्लभ पन्त अन्त तक लगे रहे। श्री चौधरी ने बड़ा ही आत्म त्याग कर इन अभियुक्तों की पैरवी की थी। अन्त में नाना प्रकार के और प्रयत्न किए पर कुछ न हुआ। देश कैसा असहाय है, इसके बड़े से बड़े लोगों की कितनी आन्तरिक मर्यादा है, यह सब इस मुकद्दमे से मालूम हो सकता है। इस विवश अवस्था में हृदय मसोस कर ही रह जाना पड़ता है।

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' को मैंने जीवन में केवल एक बार देखा था। लखनऊ में स्पेशल मजिस्ट्रेट के इजलास में जब मुकद्दमा चल रहा था तो मैं वहां गया और सब अभियुक्तों से मिला। बिस्मिल से प्रथम—और खेद है—अन्तिम बार वहीं मिला—थोड़ी ही सी बातें हुईं। कैसा बहादुर आदमी मालूम पड़ता था। मुख पर कैसी ज्योति थी। मनुष्यों का पैदायशी नेता मालूम पड़ता था। किसी दूसरे देश में न जाने यह किस ओहदे पर होता। इस अभागे देश में डकैत की हैसियत से इसने फांसी पायी। श्री लाहिड़ी को भी प्रथम और अन्तिम बार मैंने वहीं देखा। दूसरे दो सज्जनों को मैंने कभी नहीं देखा था। ये मर गए, अपना सन्देश छोड़ गए हैं। प्रकृति का कैसा निर्दय नियम है—उन्नति के लिये, स्वतन्त्रता के लिये, अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को प्राप्त करने के लिये देश

को अपने नवयुवकों की आहुति देनी होती है। मैं नहीं कह सकता—सम्भव है वे दोषी थे, सम्भव है वे भ्रान्त थे, पर थे तो नवयुवक ही। एक डकैती के लिए चार चार जानें गयीं। और कितनो ही डकैती होती रहती हैं, जिनमें कितना ही धन लूटा जाता है, जान भी जाती हैं पर उनमें सरकार की तरफ़ से न इस जोश खरोश से पैरवी होती है, न पांच पाच सौ रुपये रोज पर वकील ही रखे जाते हैं। मेरा दिल बहुत भरा है। कुछ अधिक कहते नहीं बनता।

आश्चर्य है कि इन की फांसी की सज़ा दया ही करके कम क्यों न की गई, ये आजन्म कैदी ही क्यों न कर दिये गये? भारत के अग्रगण्य लोगों ने गवर्नमेंट से प्रार्थना की, पर कुछ सुनाई न हुई। क्या ऐसी दशा में प्लेटफार्म की लम्बी स्पीचें मक्कारी सी नहीं मालूम पड़तीं? चन्द हृदयों में स्वाधीनता की सच्ची लगन है। चन्द लोग अपने को भून भून कर मार रहे हैं। कभी कभी घबड़ा कर वे ग़लत रास्ते पर चले जाते हैं, गलती भी कर बैठते हैं। पर इनके भाव अच्छे हैं, प्रशंसनीय हैं। जज ने फांसी देते हुए इसको स्वीकार किया है। मैं तो जितना ही सोचता हूँ उतना ही मेरा यह विश्वास दृढ़ होता है कि जब तक स्वतन्त्रता का सच्चा प्रेम जन साधारण में नहीं फैलेगा, जब तक परतन्त्रता पीड़ाजनक न मालूम होगी, तब तक इन चन्द नवयुवकों का आत्मत्याग और प्राण अर्पण कुछ न कर सकेगा। क्या मैं पाठकों से प्रार्थना करूँ कि बिस्मिलजी के अन्तिम शब्द प्रेम और आदर के साथ आप बार बार पढ़े। और उनकी शिक्षा हृदय से ग्रहण करें? इनकी आत्मा को सादर नमस्कार है। मैं अपने भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि इन नवयुवकों आश्रयहीन कुटुम्बियों, बहादुर पर संतप्त माता पिताओं और अन्य सम्बन्धियों को अपनावें और उनकी रक्षा करें। मैंने अपने प्रिय और सम्मानित मित्र श्री गणेशशंकर विद्यार्थी को इस सम्बन्ध में लिखा भी है और काशी पहुँचने तक मुझे आशा है कि उनकी सम्मति मुझे मिल जायगी और हम एक कोष खोल सकेंगे जिसके द्वारा इनका भरण पोषण भविष्य में किया जाय।"

काकोरी के इन अभागे अभियुक्त वीरों ने अपने अन्तिम समय पर जो विचार प्रकट किये हैं, उनसे उनकी वीरता और दृढ़ता स्पष्ट प्रकट होती है। यही नहीं, यह हृदयोद्गार हमारे देश भाइयों के लिए भी लाभदायक हैं। इसलिये उनका कुछ अंश यहां सहयोगी 'प्रताप' से उद्धृत किया जाता है। श्री० बा० श्रीप्रकाशजी का उपर्युक्त लेख सहयोगी 'आज' से लिया गया है।

श्री रोशनसिंह ने अपने अन्तिम पत्र में किसी मित्र को लिखा था:—

"इस सप्ताह के भीतर ही फाँसी होगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आपकी मुहब्बत का बदला दे। आप मेरे लिये हरगिज रंज न करें। मेरी मौत खुशी का बाइस होगी। दुनिया में पैदा हो कर मरना जरूर है। दुनिया में कोई बद फेल करके अपने को बदनाम करे और मरते वक्त ईश्वर की याद रहे—यही दो बातें होनी चाहिये और ईश्वर की कृपा से, यहाँ ये दोनों बातें हैं। इसलिए मेरी मौत किसी प्रकार अफ़सोस के लायक नहीं है। दो साल से मैं बाल-बच्चों से अलग हूँ। ईश्वर भजन का खूब मौका मिला। इस से मेरा मोह छूट गया और कोई वासना बाकी नहीं रही। मेरा पूरा विश्वास है कि दुनिया की कष्ट भरी यात्रा समाप्त करके आराम की जिन्दगी के लिये जा रहा हूं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जो आदमी धर्मयुद्ध में प्राण देता है, उसकी वही गति होती है, जो जंगल में रह कर तपस्या करने वालों की।

जिन्दगी जिन्दा दिली को जान, ऐ रोशन!
वरना कितने मरते और पैदा होते जाते हैं!

आखिरी नमस्ते।"

श्रीयुत् राजेन्द्र लाहिड़ी ने लिखा था:—

"पूरे छः मास तक बाराबंकी और गोंडा जेल की कालकोठरियों में बन्द रहने के पश्चात् कल मुझे सूचना दी गयी कि एक सप्ताह के भीतर ही फांसी हो जायगी, क्योंकि वायसराय ने प्रार्थना पत्र अस्वीकार कर दिया है। अब मैं अपना यह कर्त्तव्य समझता हूँ कि उन सब मित्रों के (यहां मित्रों के नाम हैं) प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करूं, जिन्हों ने हम लोगों के लिये तरह तरह की कोशिश की। आप लोग मेरा अन्तिम नमस्कार स्वीकार कीजिये। हमारे लिये मृत्यु शरीर का परिवर्तन मात्र है, फटे पुराने कपड़े को फेंक कर नये कपड़े पहन लेना है। ......"

दूसरे पत्र में आप लिखते हैं:—

"कल मैंने सुना कि प्रिवी कौंसिल ने मेरी अपील खारिज कर दी। यह मालूम पड़ता है कि देश की बलिवेदी पर हमारे प्राणों के चढ़ने की ही आवश्यकता है। मृत्यु क्या है? जीवन की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं! इसलिये मनुष्य मृत्यु से दुःख और भय क्यों माने? वह तो नितान्त स्वाभाविक अवस्था है। इतनी ही स्वाभाविक, जितना कि प्रातःकालीन सूर्य्य का उदय होना।

यदि यह सच है कि इतिहास पलटा आया करता है, तो मैं समझता हूँ कि हमारी मौत व्यर्थ न जायगी। मेरा नमस्कार सबको; अन्तिम नमस्कार!"

आपका—राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी।

श्री अशफाक उल्लाह ने अन्तिम समय के पहले इन शेरों की रचना की थी:—

"कजा है सब के लिये हम पै कुछ नहीं मौकूफ़!
बका है एक फकत जाते किब्रिया के लिये!
तंग आ कर हम भी उनके जुल्म से, बेदाद से।
चल दिये सूये अदम जिन्दाने फैजाबाद से॥"

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने लिखा था:—

"फांसी पाने का मुझे कोई भी शोक नहीं, क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि परमात्मा को यही मंजूर था। मगर मैं नवयुवकों से नम्र निवेदन करता हूँ कि जब तक भारतवासियों की अधिक संख्या सुशिक्षित न हो जाय, जब तक उन्हें कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान न हो जाय, तब तक भूल कर भी किसी प्रकार के क्रांतिकारी षड्यन्त्रों में भाग न लेना। यदि तुम लोगों को देश सेवा की इच्छा हो तो खुले आन्दोलनों द्वारा यथाशक्ति कार्य करना। अन्यथा बलिदान उपयोगी न होगा। इस से अधिक दूसरे प्रकार देश सेवा हो सकती है जो अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। परिस्थिति अनुकूल न होने से अधिकतर परिश्रम व्यर्थ जाता है। जिनकी भलाई के लिये कार्य करो वही बुरे बुरे नाम धरे और अन्त में मन ही मन कुढ़ कुढ़ कर प्राण त्यागने पड़े।

नवयुवकों से मैं फिर कहता हूँ कि किसी की चिकनी-चुपड़ी बातों में फँस कर ख्याली सब्जबाग की सैर करके अपना जीवन आपत्तिमय न बनाना। कोई हजार कहे अभी भारतवर्ष की स्थिति कदापि क्रांतिकारी आन्दोलन तथा गुप्त षड्यन्त्रों के उपयुक्त नहीं है और न कुछ वर्षों तक होगी। हमें पिछले अभियोग से बड़े बड़े तजरुबे हुए किन्तु क्या करें, उन तजरुबों से फायदा उठाने के लिये सरकार ने अवसर ही न दिया। जिसके लिये भारत सरकार ही नहीं इंगलैण्ड की सरकार को भी पछताना पड़ेगा कि उसने काकोरी वालों को फांसी देकर बड़ी गलती की। मुकदमे में घरबार तबाह हो गया; माता, पिता, भाई इत्यादि पैसे पैसे को तबाह हो गए और उनके बुढ़ापे का सहारा भी उनसे छीन कर फाँसी पर लटका दिया गया। ईश्वर इच्छा और उनके कर्मों का फल।

अपने देशवासियों से मेरी यही अन्तिम विनय है कि जो कुछ करें सब मिल कर करें और सब देश की भलाई के लिये करें। इसी से सब का भला होगा।"

वीर-सन्देश —



मिश्र के महात्मा

स्वर्गीय जगलूल पाशा

महावीर प्रेस, आगरा।

संसार के महापुरुष

ज़गलूल पाशा का परिचय

मिश्र के महात्मा जगलूल पाशा का स्वर्गवास समाचार 'वीर-संदेश' के पाठक पढ़ चुके हैं। इस अङ्क में हम आप का चित्र दे रहे हैं। आपके परिचय के लिए 'स्वदेश' से निम्न पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं: —

"स्व० सम्राट् जगलूल पाशा का राजनीतिक जीवन बड़ा ज़ोरदार था। राजनीतिक क्षेत्र में आने के पूर्व वे एक कालेज में अध्यापक थे। १९१४ के दिसम्बर में जब इजिप्ट के बृटिश शासन के संरक्षण में होने की घोषणा की गई तो ज़गलूल ने स्वदेश की स्वाधीनता का आन्दोलन उठाया। १९१८ की सन्धि परिषद् में वे एक डेप्यूटेशन ले गये और वहां इजिप्ट की स्वाधीनता का दावा पेश किया। १९१९ में ब्रिटिश गवर्नमेंट ने लार्ड मिलनर की अध्यक्षता में एक कमीशन बैठाया जिसका कार्य ईजिप्ट को स्वराज्य देने व सुधार करने की बातों पर विचार करना था। इस कमीशन का पूरा पूरा और सफल बहिष्कार किया गया। ज़गलूल पाशा और तीन अन्य नेताओं को देश निकाले का दंड देकर सिलोन भेज दिया गया। इस देश निकाले पर घोर अशान्ति फैली। इजिप्ट के स्वतन्त्र दल के लोग ने जो आन्दोलन उठाया, उसमें विद्यार्थियों और सरकारी नौकरों की हड़ताल भी एक अङ्ग थी। ब्रिटिश सेना द्वारा इन उपद्रवियों को बुरी तरह सताया गया। २८ फरवरी १९२२ को इजिप्ट के ऊपर से संरक्षण उठ गया और इजिप्ट एक स्वतंत्र राज्य मान लिया गया। किन्तु गमनागमन के साधन, रक्षा, वैदेशिक नीति तथा सुडान के प्रश्न फिर भी ब्रिटिश के हाथों में रहे। २० अप्रैल १९२३ में इजिप्ट में एक शासन विधान रचा गया। १९२४ में जो चुनाव हुआ उसके अनुसार जगलूल के दल ने 'चेम्बर आफ डेप्यूटीज़' में १७९ जगह ले लीं। २८ जनवरी १९२४ में जगलूल प्रधान मंत्री बनाये गये और उन्हों ने अपना मंत्रिमण्डल बनाया। पहली पार्लमेंट किङ्ग फुआद द्वारा खोली गई। उस समय ज़गलूल पाशा ने सिंहासन से अपना भाषण पढ़ा। उस

भाषण में ज़गलूल पाशा ने इजिप्ट को पूर्ण स्वतंत्रता का दावा किया और इसी सिद्धांत पर ब्रिटिश सरकार से बात-चीत करने का विचार प्रगट किया। श्री रैमजे मैकडानेल्ड (तत्कालीन प्रधान मन्त्री) ने ज़गलूल के पास इजिप्ट के प्रतिनिधि शासन की प्राप्ति पर बधाई का तार भेजा। उन्होंने यह भी संदेसा भेजा कि ब्रिटिश सरकार इजिप्ट से बात-चीत करने को तैयार है, किन्तु ज़गलूल और रैमजे मेकडोनेल्ड का पत्र व्यवहार निष्फल हुआ। नवम्बर सन २४ में सूदान के गवर्नर जनरल सर ली स्टेक की हत्या किन्हीं षड्यंत्रकारियों द्वारा कर डाली गई। उस समय पार्लमेंट में अनुदार दल का बोलबाला था। उसने इस अवसर से लाभ उठा कर इजिप्ट को अन्तिम संदेसा भेज दिया कि वह अमुक–अमुक शर्तों को पूरी करे। इस स्थिति में ज़गलूल पाशा ने त्यागपत्र दे डाला और उनके स्थान पर ज़ीवर पाशा नियुक्त हुए, जिन्हें सदा गवर्नमेंट से दबना ही पड़ा। अभी हाल ही में जो चुनाव हुआ था उसमें ज़गलूल पाशा चेम्बर के प्रेसीडेण्ट चुने गये थे। ज़गलूल ने सदा स्वदेश की स्वाधीनता के लिए युद्ध किया और कई अंशों में उन्हें सफलता मिली। मिश्र की स्वाधीनता के इतिहास में स्वर्गीय सम्राट् ज़गलूल पाशा का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।"

स्वर्गीय दयाराम गींदूमल

'विशालभारत' के प्रथमांक में स्वर्गीय दयाराम गींदूमल का संक्षिप्त परिचय प्रकाशित हुआ है। अपने पाठकों लिए भी उपयोगी समझ कर हम उसे नीचे उद्धृत करते हैं:—

गत ७ दिसम्बर को वर्तमान भारत की एक पवित्र आत्मा संसार से उठ गई। स्वर्गीय दयाराम गींदूमल ने इतने अधिक दिन एकान्त वास में बिताये थे कि बम्बई के पत्रों का भी ध्यान उनके जीवन-चरित्र की चर्चा की ओर नहीं गया। कोई बीस वर्ष हुए जब बांदरा में समुद्र के किनारे एक बङ्गले में आपने अपना आश्रम बनाया था, तब से उसे छोड़कर आप कभी किसी दूसरे स्थान पर गये ही नहीं। आप में प्रकाण्ड पाण्डित्य के साथ दुर्लभ सच्चरित्रता भी थी। सरकारी नौकरी आपने इतनी योग्यता पूर्वक की थी कि आपको हाईकोर्ट के जज का पद दिया गया था, पर आपने उसे अस्वीकार कर दिया। परोपकार ही आपका कार्य क्षेत्र था, आप उन धनाढ्यों में से नहीं थे, जो अपने विलासी भोजन से गरीबों को एक टुकड़ा फेंक देते हैं। आप बड़े त्यागी थे, अपने मासिक वेतन से थोड़े रुपये अपनी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये रखकर बाकी रुपये विद्यार्थी और

विद्यालयों को दे देते थे। आपको एक बहुत बड़ी मौरूसी जायदाद भी मिली थी पर उसे आप जीवन भर एक धरोहर समझते रहे और एकान्तवास के पूर्व ही आपने उसका बाजाब्ता ट्रस्ट बना दिया। यह जायदाद, जिसे आपने इस प्रकार त्याग दिया, २५ लाख से अधिक मूल्य की थी। आपके दान का ढंग निराला ही था। कितने लोगों को यह बात मालूम होगा कि पूना के सेवा-सदन और धर्मपुर की सैनीटोरियम को मलाबारी ने विशेषतः दयाराम की सहायता से स्थापित किया था।

सिन्धी-साहित्य में श्री दयाराम का एक विशेष स्थान है। आपके लिखे 'ग्रन्थ' साहब, और 'गीता की टीकायें' सिन्धी-साहित्य की अमूल्य पुस्तक हैं। आपका 'योगदर्शन' भी उत्कृष्ट और चिरस्थायी ग्रन्थ है। सिक्खों की धर्म-पुस्तक ग्रन्थ-साहब को समर्पित Scourge of the mind नामक पुस्तक आपकी अन्तिम रचना है। इस पुस्तकके कतिपय अंश बड़े ही हृदयग्राही हैं। इसमें श्री दयारामकी विद्वता और धार्मिकता का अच्छा विकास हुआ है। कविता की दृष्टि से चाहे पुस्तक बहुत उच्चकोटि की न हो, क्योंकि भिन्न भिन्न विषयों पर हजारों पृष्ठ कविता लिखना कोई साधारण काम नहीं, पर है यह पुस्तक महत्वपूर्ण। आप गद्य के सुलेखक थे, यदि उक्त पुस्तकोंके कतिपय अंश गद्य में लिखे गये होते तो और भी अधिक भावमय होते। संस्कृत और फारसी की योग्यता के कारण आप का शब्द-कोष बहुत व्यापक था। विस्तृत अध्ययन और अच्छी स्मरणशक्ति के कारण आपके लेखों में समीचीन उद्धरणों की भरमार है।

श्री दयाराम ने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग सिन्ध के बाहर ही बिताया था। आपका अधिकांश जीवन गुजरात में व्यतीत हुआ और अहमदाबाद के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति आज भी उनके नाम का उल्लेख बड़े सम्मान-पूर्वक करते हैं। महात्मा गांधी जी भी आपको बड़े आदर की दृष्टि से देखते रहे हैं। शायद ही कोई ऐसा सिन्धी-सुधारक होगा जो उनके पास जाकर निराश लौटा हो। अनेकों को आपने सहायता दी थी और बीसियों को उत्साहित किया था। स्वयं सदा एकान्त-वास करते हुए भी आप ऐसे सहायकों की खोज में रहते थे, जो आपके सामाजिक सुधार के भावों का प्रचार करें। खेद की बात है कि उन्हें ऐसा कोई सहायक नहीं मिला। विना लोगों में मिले-जुले ऐसे आदमी को पाना कठिन ही था। श्री दया-राम गीदूमल बड़े ईश्वर-भक्त थे। एक जगह आपने प्रार्थना की है। "हे परमात्मन्, इस 'भरत खण्ड' को 'भजन खण्ड' बना दे"।

—ए० टी० गिडवानी।

शाह अफगानिस्तान

अफगानिस्तान के बादशाह के विषय में सहयोगी 'आज' लिखता है:—

"अफगानिस्तान के शाह अमानुल्ला खाँ केवल एक स्वतन्त्र देश के होने के कारण ही हमारे आदर भाजन नहीं हैं वरंच अल्प समय में ही आपने अपने सौजन्य का परिचय भी भारत सन्तानों को दे दिया है। बम्बई में हकीम अजमल खां आपको मानपत्र दे रहे थे जब मौलाना मुहम्मदअली के साथ श्रीमती कस्तूर बाई गांधी सभा स्थान में गयीं और दूर, मौलाना साहब के पास, बैठ गयीं। शाहने उन्हें देखा और उनके सम्बन्ध में पूछ-ताछ की। यह मालूम होते ही कि आप श्रीमती गांधी हैं आपने आज्ञा दी कि श्रीमती के लिये कुर्सी आपके पास रखी जाय। मौलाना मुहम्मद अली आपको मंचपर ले गये। श्रीमती के आते ही शाह स्वयं उठकर खड़े हुए और टोपी उतार कर झुककर सलाम किया तथा आपको आदर के साथ अपने पास बैठाया। सभास्थान अल्ला-हो-अकबर की ध्वनि से गूंज उठा। इस छोटी सी घटना से ही शाह की उच्चाशयता का परिचय मिलता है। इस कार्य से आपने एक व्यक्ति का नहीं वरंच समस्त भारत का और विशेष कर भारतीय महिलाओं का आदर किया है। भारत इस घटना का सदा स्मरण रखेगा। शाह के इस व्यवहार से इस देशके उच्च-पदस्थ विदेशी शासकों के व्यवहार की तुलना कर देखिये तो मालूम हो जायगा कि सच्ची और बनावटी उदारता में कितना अन्तर होता है।"

हकीम अजमलखां

हकीम अजमल खां की स्मृति में महात्मा गांधी लिखते हैं:—

"हकीम साहब अजमल खां के स्वर्गवास से देश का एक सबसे सच्चा सेवक उठ गया। हकीम साहब की विभूतियां अनेक थीं। वे थे एक दरबारी देशभक्त, यानी अगर्चे कि उनका वक्त राजा महाराजों के साथ में बीतता था, मगर थे वे पक्के प्रजावादी। वे बहुत बड़े मुसलमान थे, और उतने ही बड़े हिन्दुस्थानी। हिन्दू और मुसलमान दोनों से वे एकसा प्रेम करते थे। हिन्दू-मुसलिम एकता पर वे जान देते थे, हिन्दू-मुसलमान दोनों एक समान उनसे मुहब्बत रखते थे, उनकी इज्जत करते थे। उनका खयाल था कि आखिर दोनों सम्प्रदायों का मेल करना ही पड़ेगा। यह अटल विश्वास लेकर उन्होंने एकता के लिये प्रयत्न करना कभी नहीं छोड़ा।"

विविध विषय

१—हमारा अवकाश और नूतन वर्ष—

पिछले तीन महीने का जो अवकाश हमें अचानक लेना पड़ा, उसके लिए हम अब अपने पाठकों से क्षमा याचना करते हैं। कई ऐसे निजीकार्य हमारे सामने आ गए थे, जिनके छूटने से पूर्व हम अपने पाठकों की सेवा नहीं कर सके। हम जानते हैं कि इस कारण हम अपने पाठकों के अप्रीति भाजन हुए होंगे पर हमारी विवशता पर लक्ष्य कर पाठक हमें क्षमा करेंगे।

'वीर-सन्देश' का अब नया वर्ष शुरू हो रहा है। गतवर्ष में हमने देश, साहित्य और समाज की जो सेवा की वह सब पर प्रकट है। हमारा विश्वास है कि इस वर्ष हम उससे भी अधिक सेवा कर सकेंगे। पर पाठकों से हमारी एक प्रार्थना है। 'वीर-सन्देश' का प्रथम वर्ष में सैकड़ों रुपयों का घाटा उठाना पड़ा है, जिसे उसके उदार प्रकाशक ने स्वयं सहन किया है। हिन्दी प्रेम के नाते हम अपने पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे इस वर्ष हमें कम से कम इतने ग्राहक दे दें जिससे इस वर्ष भी पत्रको घाटा न उठाना पड़े।

२—भारत पर कमीशन—

जब कभी कोई बड़ी संस्था या राज्य कोई अपराध करता है या उसका कोई कार्य अनुचित प्रतीत होता है तब उस पर कमीशन बैठाया जाता है। यह कमीशन उसके अनुचित कार्यों की जाँच करता है। यही कारण है कि कमीशन का बैठना अपमान की बात समझी जाती है।

यहाँ बिना ही किसी अपराध के भारत शासन की जाँच के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक शाही कमीशन भेजा है जो तीन फरवरी को बम्बई में उतरेगा। जिन परिस्थितियों में कमीशन भेजा गया है, जिस उद्देश्य से वह भेजा गया है, भेजते समय ऐलान में जो बातें कहीं गई हैं, कमीशन में जैसे आदमी भेजे गए हैं, वे यहाँ आकर जो कुछ करेंगे— ये सब बातें आदि से अंत तक भारत के लिए घोर अपमान कारक हैं।

सौभाग्य से इस समय भारत के सम्पूर्ण नेता एक मत हैं, सबकी सम्मिलित एक राय है। और वह यह है कि कमीशन का पूर्ण बहिष्कार किया जाय। सभी दलों के भारतीय नेता इस विषय पर एकमत हैं कि भारत वासियों को इस कमीशन से कोई सम्बन्ध न रखना चाहिये, उसका बहिष्कार करना चाहिए और उसके स्वागत में अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के लिए सार्वदेशिक हड़ताल मनाई जानी चाहिए। तदनुसार तीन तारीख को देशभर में हड़ताल मनाई जायगी। हर जगह सार्वजनिक सभा होंगी और उनमें कमीशन के प्रति घृणा प्रकट करने का प्रस्ताव होगा। हमें विश्वास है कि यह सब होगा और खूब धूम से होगा और अब नौकरशाही की आखें खोलने के लिए यही होना चाहिए।

३—मद्रास कांग्रेस—

भारत के इतिहास में मद्रास की अड़तालीसवीं राष्ट्रीय महासभा स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हुई है। सभी दृष्टियों से यह कांग्रेस पिछली सब कांग्रेसों से बढ़ कर हुई। विगत कांग्रेस के अध्यक्ष श्रीमान् श्रीनिवास जी आयंगर ने कांग्रेस को सफल बनाने की पूरी चेष्टा की थी, और वर्तमान राष्ट्रपति डाक्टर अंसारी ने उसे पूर्ण सफल बनाया। निश्चय ही कांग्रेस का यह अधिवेशन चिरस्मरणीय रहेगा। इसका हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का प्रस्ताव, पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा का प्रस्ताव, कमीशन के बायकाट का प्रस्ताव ऐसे प्रस्ताव हैं जिनसे देश में नवजीवन का सञ्चार हुआ है, मुर्दे में जान आ गई है, निराशा आशा में परिणत हो गई है।

४—पूर्ण स्वाधीनता का प्रश्न—

मद्रास कांग्रेस ने यह निश्चय कर लिया है कि भारत का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है। अब तक कांग्रेस का ध्येय था साम्राज्य के भीतर उत्तर दायित्व पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना, किन्तु इस बार उसका रूप बहुत विस्तृत बहुत विशाल हो गया है—स्वतंत्र रूप से पूर्ण स्वाधीनता। देश के सौभाग्य सूर्य महात्मा गांधी इस प्रस्ताव से असहमत हैं। उनकी राय में राय मिलाते हुए हम भी यह समझते हैं कि देखने और सुनने में यह बात बड़ी सुन्दर है पर व्यवहार में वैसी नहीं है। वर्तमान अवस्था में इसका प्राप्त करना भी कठिनतर है। कुछ भी हो—अब जब यह प्रस्ताव कांग्रेस पास कर चुकी है तब उस पर विचार करने की बात नहीं रह जाती। अब तो केवल एक बात रह जाती है और वह यह है कि हम देश को इसके लिए तैयार करें।

५—हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य—

असहयोग आन्दोलन को नष्ट करने वाला सबसे अच्छा प्रयोग, जिसे हमारे शत्रुओं ने काम में लिया था, हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष ठहरा। ५-६ वर्ष तक इनकी लहर रही और इनके कारण देश की राजनैतिक जागृति सर्वथा नष्ट हो गई। जगह जगह हिन्दू-मुसलमान आपस में लड़ते फिरे। देश के बड़े बड़े नेताओं ने इस विद्वेष को कम करने का प्रयत्न किये, अनेकों तदबीरें सोचीं, पचासों व्याख्यान दिए—पर वे सब व्यर्थ रहे। अवसर आने पर मद्रास कांग्रेस ने इस विकट समस्या को ऐसे अच्छे ढंग से सुलझा दिया कि उसके फल स्वरूप सर्वत्र शान्ति छा गई। कांग्रेस ने ऐक्यता का जो प्रस्ताव पास किया है, उसे हमारे पाठक समाचार पत्रों में पढ़ चुके होंगे। इस प्रश्न का उससे श्रेष्ठतर हल हो ही नहीं सकता था। प्रसन्नता की बात है कि हिन्दू और मुसलमान सभी ने उसे पसन्द किया है। हमारा विश्वास है कि अब वातावरण बदल गया, मोह निशा दूर हुई और संभवतः देश अब इन झगड़ों का शिकार अधिक न बनेगा।

६—देशी राज्यों की दशा—

यह बात कम परिताप की नहीं है कि हमारे देशी राज्यों को वास्तव में कुछ भी अधिकार नहीं है और जो हैं उनका उपयोग वे सद् रूप से नहीं कर रहे हैं। अधिकांश राज्यों की दशा बुरी है। सहयोगी 'सैनिक', 'प्रताप' और 'तरुण-राजस्थान' में इन राज्यों की दुर्दशा के जो समाचार छपते रहते हैं उनसे विदित होता है कि हमारे देशी राज्यों की दशा वास्तव में दयनीय है। राजा लोग अपने ऐश आराम में मस्त हैं, प्रजा पर मनमाना अत्याचार हो रहा है और सरकार की नीति महा निंदनीय है। प्रजा पर बुरे से बुरे अत्याचार करते रहने पर भी जो राज्य सरकार की खुशामद में लगा रहता है, उसकी ओर सरकार आंख उठा कर नहीं देखती, पर जो राज्य ज़रा भी स्वतंत्र विचार से काम लेता है उसकी आफ़त आ जाती है। देशी राज्यों के प्रति सरकार की वर्तमान नीति का स्पष्ट रूप दिखाई देने पर भी हमारे राजा करवट नहीं बदलते। हम देखते हैं कि सरकार मुंह से इन राजाओं को अपनी बराबरी का बनाती है पर इज्जत किंचितमात्र भी नहीं करती। इंदौर नरेश को मक्खी की तरह से निकाल कर फेंक दिया गया। नाभा नरेश के साथ कितना अन्याय हुआ। इन उदाहरणों के होते हुए भी यदि देशी राज्य न चेतें तो यह दुर्भाग्य की बात है। अब तो सरकार ने एक और चाल चली है। देशी राज्यों की जाँच के लिए उसने एक कमेटी बैठाई है जिसका नाम है बटलर कमीशन। यह कमीशन इस बात की जाँच करेगा कि भविष्य में देशी राज्यों का ब्रिटिश सरकार के साथ क्या सम्बन्ध रहे। परिणाम स्पष्ट नजर आता है कि इन राज्यों को जो थोड़े बहुत अधिकार मिले हुए हैं, वे भी छिन जायँगे। बात बड़े दुःख की है, पर जब नरेशों को ही उसकी परवाह नहीं है, तब दूसरा कोई क्या कर सकता है?

७—वीर बादशाह—

अफग़ानिस्तान के अमीर जो अब बादशाह कहलाते हैं, हाल ही में विलायत गए हैं। रास्ते में आप भारत में भी दो दिन ठहरे थे। स्वतंत्र नरेश की हैसियत से विलायत में सभी जगह आपका अपूर्व स्वागत हो रहा है। भारत में भी आपका स्वागत बड़ी धूम से हुआ था। स्वागत के उत्तर में जो भाषण अमीर अमानुल्लाखां साहब ने यहां दिए, वे बड़े महत्व पूर्ण थे। अपने इस्लामी भाइयों से जो बातें आपने कहीं उनसे आपकी वीरता, निर्भयता और स्पष्ट वादिता स्पष्ट प्रकट होती है। आपने मस्जिद के सामने बाजा न बजाने देने की निन्दा की, गोकशी बन्द करने पर ज़ोर दिया और हिन्दू मुसलमानों से मिल कर रहने की दरख्वास्त की। विद्वेष पैदा करने वाले मुल्ला मौलवियों की आपने कड़ी आलोचना की। स्वतंत्रता की आबहवा में मनुष्य कितने उच्च विचार रख सकता है, इसका अमीर एक ज्वलंत उदाहरण हैं।

८-आगरा विश्वविद्यालय—

आगरा विश्वविद्यालय का श्री गणेश हो गया। उसकी सीनेट आदि व्यवस्थापक और प्रबन्धक सभाओं का चुनाव तो पहले ही हो गया था, अब उसके मुख्य अधिकारी भी चुन लिए गए। वायस चैंसलर का महत्व पूर्ण पद सैंटजान्स कालेज के प्रिंसिपेल प्रसिद्ध ईसाई पादरी, मि० केनन डेविस को दिया गया है। यह नियुक्ति बुरी नहीं हुई है। पर इस स्थान पर यदि कोई भारतवासी चुना जाता तो अधिक प्रसन्नता की बात होती। विश्व विद्यालय के रजिस्ट्रार का पद श्रीमान् पं० श्यामसुन्दरदास जी एम० ए० को दिया गया है। आप लखनऊ विश्वविद्यालय में इसी पद पर रह चुके हैं। आज कल जयपुर राज्य के शिक्षा विभाग के डायरेक्टर हैं। निश्चय ही आप बहुत योग्य, अनुभवी और गुणी व्यक्ति हैं। इस नियुक्ति पर हम आपको, विश्वविद्यालय को, और कार्य कारिणी समिति के मेम्बरों को हार्दिक बधाई देते हैं। हमें विश्वास है कि आपके प्रबन्ध में विश्वविद्यालय की यथेष्ट उन्नति होगी।

९—शराबखोरी की रोक—

भारत के हिन्दू मुसल्मान और ईसाई एवं अन्य सभी धर्म वाले स्पष्टरूप से कहते हैं कि शराबखोरी बुरी बात है, इसकी रोक होनी चाहिए। असहयोग के ज़माने में भारतीय नेताओं ने शराबखोरी की रोक की भी चेष्टा की थी। कितने ही स्थानों में शराब की दूकानों पर धरने दिए गए थे। पर हमारी आलिया सरकार को यह इष्ट न था, इसलिए सफलता न मिली। उसने धरने देने वालों को जेल तक भेजा। वैसे भी कितनी ही बार सरकार के सामने यह प्रश्न उठ चुका है कि शराब की बिक्री क़तई बन्द कर दी जाय। पर शराब की दूकानों से सरकार को जो आमदनी होती है उसके लोभ से वह यह प्रस्ताव मंजूर नहीं करती। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि रुपए के लोभ में लोगों को उल्लू बनाने उनकी मति भ्रष्ट करने और स्वास्थ्य नष्ट करने में वह कुछ भी बुराई नहीं समझता। ऐसी दशा में जब हमने यह सुना कि मध्य प्रान्त और मद्रास की सरकार जाँच के तौर पर एक एक जिले मे शराब की दूकानें बन्द करा रही है, तो हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। हम तो बहुत शीघ्र ही उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जिस दिन सपूर्ण भारत से शराब बेचना और काम में लाना जुर्म बना दिया जायगा।

१०—मृत्यु दंड की निस्सारता—

यूरोपीय देशों में जैसे जैसे सभ्यता बढ़ती जाती है, वे इस पक्ष में आते जाते हैं कि अपराधी को मृत्यु-दंड देने से दंड देने का यथेष्ट लाभ नहीं मिलता। दूसरों के ऊपर उसका आतंक भले ही जम जाय पर अपराधी के ऊपर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी सम्बन्ध में मि० हेनरी फोर्ड के यह विचार वास्तव में विचारणीय और ग्राह्य हैं:—
"इस बात से तो सब सहमत हैं कि मनुष्य को मारना पाप है। इस से न तो अपराधी का ही भला होता है न समाज ही का। जिस प्रकार दान देते रहने से दरिद्रता और भिखमंगापन नहीं मिट सकता, ठीक

उसी तरह मृत्युदंड से अपराधों का होना नहीं मिट सकता। मुझे तो विश्वास है कि मृत्युदंड से अपराध घट नहीं सकते। जिस मनुष्य ने यह निश्चय कर लिया कि वह किसी को मारेगा तो फिर वह अपने मरने की परवाह नहीं करता।" इस समस्या को सुलझाने के लिये अमेरिका के सब से बड़े अटर्नी मि० फिलिप्स की राय जान लेना चाहिए। आप लिखते हैं:—"ऐसा प्रयत्न कीजिए जिस से क़त्ल करना ही बन्द हो जाय। यह तब हो सकता है जब जेल में रहने वाले लोगों को इंसान समझा जाय। उन्हें ऐसा वहशी या जंगली पशु न माना जाय कि जो कभी समाज में रहने के पात्र ही न हो सकें। बड़े अपराधियों के साथ लड़कों को जेल में न रक्खा जाय। और सब से बड़ी बात तो यह है कि बेकारी की समस्या को सुलझा दिया जाय। जिस प्रकार मच्छर मेलेरिया फैलाते फिरते हैं उसी प्रकार बेकारी से ही आदमी का ध्यान अपराध की ओर झुकता है।" इस बेकारी की दशा भारत में कैसी है और हमारी सरकार उसे दूर करने का क्या प्रयत्न कर रही है?

११—बिहार में हिन्दी—

इधर चार वर्ष से बिहार प्रान्त मे उर्दू को प्रधानता देने और हिन्दी को पीछे करने के जो प्रयत्न हो रहे हैं, उनसे पाठक अपरिचित न होंगे। वहाँ आधे से ज्यादा हिन्दी बोलने वाले रहते हैं और स्कूलों में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थी पचास प्रतिशत से अधिक ही हैं। उर्दू वालों की संख्या इनके मुक़ाबिले में बहुत कम है। अभी मुसलमानों ने जोर लगा कर कौंसिल में यह प्रस्ताव भी पास कर लिया है कि प्रान्त भर में उर्दू में भी सरकारी काम काज हो सकेगा। इस प्रस्ताव के पास कराने में सरकारी सदस्यों ने जो ढंग रक्खा वह निन्दनीय था। स्पष्ट रूप से प्रस्ताव के विरुद्ध होते हुए भी सरकारी सदस्यों ने प्रस्ताव पर अपने मत नहीं दिए, चुप बैठे रहे और प्रस्ताव मुसलमानों के पक्ष में पास हो गया। निस्संदेह इसमें सरकार का एक ही उद्देश्य हो सकता है कि इससे हिन्दू मुसलमानों का मनोमालिन्य बढ़े।

१२—मसीह-उल-मुल्क हकीम अजमल खां—

१९२७ के अन्त में देश के एक बड़े सेवक का भी अन्त हो गया। हकीम अजमल खाँ भारत के उन पुत्रों में से थे जिन पर देश को गर्व हो सकता है। वे जब तक जिए देश के लिए जिए। हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के आप कट्टर पक्षपाती थे। उसके लिए आपने काफी प्रयत्न भी किया। भारतीय कांग्रेस के आप सभापति रह चुके थे। दिल्ली के राष्ट्रीय मुस्लिम विश्व-विद्यालय और यूनानी तिब्बी कालेज की स्थापना करके आप देश के लिए बड़ा भारी काम कर गए हैं। हमें आपके कुटुम्ब के साथ, जिसकी संख्या तीस करोड़ से ऊपर है, पूरी सहानुभूति है।

१३—तीन नये मासिक—

हमारे सम्मुख इस समय हिन्दी के तीन उच्च कोटि के नये मासिक पत्र हैं सुधा, त्याग-भूमि और विशाल भारत। 'सुधा के छः अङ्क निकल चुके हैं अतएव अब उस पर अपनी सम्मति स्पष्ट रूप से प्रकट की जा सकती है। यह तो पाठक जानते ही हैं कि 'सुधा' के सम्पादक 'माधुरी' के आदि सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव और पं० रूपनारायण जी पांडेय हैं। आप लोगो ने माधुरी की जैसी उन्नति की, वह किसी से छिपी नहीं है। निस्संदह 'सुधा' का रूप रंग आपकी 'माधुरी' के सर्वथा अनुरूप होते हुए भी उससे उन्नत है। विशेषता यह है कि सुधा में कई स्तम्भ नए खोले गए हैं जिनमें विभिन्न विषयों की चर्चा होती है। लेख गंभीर रहते हैं और पत्रिका को अधिकाधिक आकर्षक और उपादेय बनाने की पूरी कोशिश की जाती है। 'सुधा' में जो चित्र निकलते हैं, वे प्राय: 'हकीम' जी के होते हैं। एक ही चित्रकार के चित्र निकालना कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। तथापि 'सुधा' सुधा ही है और हम समझते हैं कि साहित्यप्रेमी उसे अवश्य अपनाएंगे।

'त्यागभूमि' का प्रकाशन अजमेर के सस्ता साहित्य मंडल की ओर से हुआ है। सुरुचि और सस्तेपन की दृष्टि से इसका मूल्य वास्तव में

में सब से कम है। अब तक इसके चार अङ्क निकल चुके हैं। एक अङ्क में लगभग १२० पृष्ठ होते हैं और मूल्य केवल चार रुपए वार्षिक है। तिस पर चित्र भी कई रहते हैं। तीसरे अङ्क में प्रकाशित शिवाजी का चित्र हिन्दी मासिक पत्रिकाओं के लिए आदर्श का काम दे सकता है। 'त्याग भूमि' जीवन, जागृति, बल और बलिदान की मासिक पत्रिका है और सचमुच उसके प्रत्येक लेख से यह उच्च भाव प्रकट होते हैं। पत्रिका के सम्पादक हैं श्री हरिभाऊ उपाध्याय और श्री क्षेमानन्द राहत। सम्पादकीय लेखनी से जितना 'मैटर' 'त्याग-भूमि' में निकल रहा है उतना शायद किसी दूसरे पत्र में नहीं निकलता। 'त्याग-भूमि' अपने नाम को सार्थक करने वाली पत्रिका है। उसमें न विज्ञापन छपते हैं न विज्ञापन बाजी से काम लिया जाता है। ऐसी सुन्दर, सस्ती और सुरुचि प्रचारक पत्रिका के प्रकाशन के लिए हम मंडल को हार्दिक बधाई देते हैं।

'विशाल-भारत' का अभी केवल पहला अङ्क ही निकला है। इस के सम्पादक हिन्दी संसार के सुपरिचित मिशिनरी पं० बनारसीदास चतुर्वेदी हैं। 'माडर्नरिव्यू' के सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय इसके सञ्चालक हैं। यह एक नया पत्र है और इसकी सब बातें हिन्दी संसार के लिए नई हैं। माधुरी, सरस्वती, सुधा, मनोरमा, चाँद, जिसे देखिए सब एक ही ढंग पर निकल रही हैं, पर 'विशाल भारत' का अपना ढंग है, नया ढंग है, अनुपम ढंग है। इसके हमारे ग्राम, हमारा पुस्तकालय, प्रवासी भारतीय, महिला-मण्डल, चित्र-संग्रह आदि स्तम्भ ऐसे हैं जो किसी दूसरी पत्रिका में नहीं मिलेंगे। सम्पादकजी ने सूचना दी है कि अगले अङ्क से श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय की लिखी हुई राजनीतिक टिप्पणियाँ भी प्रकाशित हुआ करेंगी। इसमें सन्देह नहीं कि यह टिप्पणियाँ बड़ी गंभीर महत्त्वपूर्ण और विद्वत्तापूर्ण होंगी। हमें विश्वास है कि शीघ्र ही यह पत्र आशातीत उन्नति करेगा और हिन्दी का सर्व सम्मत सर्व श्रेष्ठ राजनैतिक और साहित्यिक मासिक पत्र हो जायगा। ९१ अपर सर्कुलर रोड कलकत्ता से यह पत्र ६) वार्षिक में मिल सकता है।

१४—हिन्दी साहित्य सम्मेलन—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आगामी अधिवेशन मुजफ्फरपुर में होने वाला है। स्वागत समिति ने सूचना दी है कि संभवतः सम्मेलन अप्रेल के महीने में ईस्टर की छुट्टियों में होगा। हमारी समझ में ईस्टर की छुट्टियाँ सम्मेलन के लिए स्थायी रूप से नियत कर दी जायँ और प्रति वर्ष इसी समय सम्मेलन हुआ करे। इस वर्ष भी स्वागत समिति को भरपूर प्रयत्न करके इसी अवसर पर सम्मेलन कर डालना चाहिये और इसकी निश्चित सूचना शीघ्र प्रकाशित करनी चाहिये। अब तक के ढंग से मालूम होता है कि मुजफ्फरपुर वाले बहुत सुस्ती से काम कर रहे हैं। कम से कम अब तो उन्हें अधिक क्रियाशील होना चाहिए। सम्मेलन के स्थायी कार्यालय को भी जरा जोरों से काम करना चाहिये। हिन्दी संसार में जागृति फैलाना और आन्दोलन करना उसी का काम है। इधर हिन्दी के समाचार पत्रों ने इस ओर जैसी उदासीनता दिखाई है, उसे देख कर हमें उनके उत्तरदायित्व की उपेक्षा पर खेद होता है।

१५—जेल में सम्पादक—

हिन्दी समाचार पत्रों के सम्पादकों और प्रकाशकों की जान कितनी जोखम में रहती है, यह पाठकों से छुपा नहीं है। हमारे पाठकों को 'हिन्दू-संसार' के सम्पादकों पर चलाए गए मामले का ज्ञान है, सेशन जज ने उन्हें सर्वथा निर्दोष कह कर छोड़ दिया था, पर अपील करने पर हाईकोर्ट ने सेशन जज की आज्ञा को रद्द करके मजिस्ट्रेट का फैसला बहाल कर दिया, जिससे 'हिन्दू-संसार' के सम्पादक श्री पं० झाबरमल शर्मा और उनके सहकारी पं० बाबूराम मिश्र को जेल जाना पड़ा। कर्त्तव्य पालन के अवसर पर इस प्रकार जेल जाना स्वीकार करना सौभाग्य की बात है। हम आपको इसके लिए बधाई देते हैं।

इधर 'अर्जुन' सम्पादक प्रोफेसर 'इन्द्र' और उनके सहकारी पं० सत्यकाम पर भी मुकदमा चला था। जैसी कठोर सजा आप लोगों को

दी गई है उसे देखते हुए हमें दुःख होता है। जिस अपराध पर अनेक समाचार पत्रों को केवल चेतावनी देकर छोड़ दिया जाता है, उसी के लिए प्रोफेसर इन्द्र को तीन वर्ष का कठिन कारावास और डेढ़ हजार रुपए का जुर्माने की सजा मिली। श्री सत्यकाम को डेढ़ वर्ष की सजा और पांच सौ रुपया जुर्माना हुआ। हुकूमत के इस नंगे नाच की क्या तारीफ की जाय!

प्रोफेसर इन्द्र वीर पिता के वीर पुत्र हैं उनकी निर्भीकता, राष्ट्रीयता और विद्वत्ता शंका की वस्तु नहीं है। हमें विश्वास है कि जेल से आप कुन्दन बन कर निकलेंगे।

१६--संसार का सिरमौर पहलवान—

पटियाले में संसार प्रसिद्ध पहलवान गामा ने भारतवर्ष की लाज रख ली। इस गए गुजरे जमाने में भी गामा ने यह प्रमाणित कर दिया कि जिस प्रकार भारत वर्ष अब भी संसार भर में सब से बड़ा कवि, सब से बड़ा महान पुरुष, सब से बड़ा वैज्ञानिक पैदा कर सकता है उसी प्रकार सब से बड़ा पहलवान पैदा करने की शक्ति भी रखता है। २९ जनवरी को पटियाले में संसार भर के सिरमौर पहलवान की जांच करने के लिए पोलिश पहलवान जेविस्को और गामा की कुश्ती होने वाली थी। जेविस्को इसी के लिए पोलैण्ड से भारत आया था। इस कुश्ती को देखने के लिए अनेक राजा महाराजा और लगभग ६० हजार आदमी उपस्थित थे। लिखते हुए हर्ष होता है कि एक मिनट भर में गामा ने जेविस्को को चित कर दिया, पछाड़ दिया। इस विजय से यह निश्चित हो गया कि दुनिया भर में सबसे बड़ा पहलवान भारत में है और उसका नाम है गामा। गामा की यह विजय देश की विजय है और इसके लिए उसे गर्व होना चाहिए। 'वीर-सन्देश' के आगामी किसी अङ्क में हम इसका सचित्र परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

बहादुरी की बातें

सहयोगी भारत-मित्र में प्रकाशित हुआ है:—

"लायलपुर १० जनवरी—समुद्री हाई स्कूल में पढ़ने वाले एक ब्राह्मण छात्र को लाश बोर्डिंग हाउस के समीप एक कुंए में लटकी हुई मिली जिससे नगर में भारी आतङ्क छा गया। कहा जाता है कि कुछ मुसलमानों ने इसे गोमांस खाने के लिये विवश किया था परन्तु ब्राह्मण होने के कारण उसने ऐसा नहीं किया, और भविष्य में अपना जीवन विशेष संकटापन्न होने के भय से आत्महत्या कर डाली। पुलिस मामले की जांच कर रही है और जनता भी पूर्ण विवरण जानने के लिये व्यग्र हैं।" यदि यह घटना सच्ची है तो बालक की धर्म-धीरता के लिए वह बधाई का पात्र है।

❃ ❃ ❃

एक साप्ताहिक पत्र से उद्धृत बालक की बहादुरी के इस समाचार को पढ़ कर कौन प्रसन्न न होगा:—

"सिकन्दराबाद १७ जनवरी—अभी एक बालचर के वीरतापूर्ण कार्य का समाचार मिला है, जिसने कल एक लड़के को डूबते से बचा लिया। स्काउट सिकन्दराबाद के कस्टम सुपरिण्टेंडेंट मिस्टर महबूब अली का मुमताज अली नामक १४ वर्ष का बालक है और बचा हुआ बालक उसका एक मंजूर अहमद नामक साथी है।

यह मालूम होता है कि उमदसागर तालाब के किनारे ठहरे हुए कुछ विद्यार्थी उसमें स्नान कर रहे थे, जबकि मंजूर अहमद, जो तैरना नहीं जानता था अचानक ताल में गिर पड़ा मुमताज अली एकदम ताल में कूद पड़ा और उसको निकाल लिया। तालाब की गहराई २५ फुट से अधिक है और केवल मुमताज अली के कार्य ने ही अपने साथी की जान बचा ली।"

❃ ❃ ❃

आपत्ति ग्रस्त पुरुष या स्त्री की सहायता करना मानव धर्म है। एक गार्ड ने इस धर्म को जिस वीरता से निभाया है—वह निम्न समाचार से पाठक जानेंगे:—

"अम्बाला १३ जनवरी—समाचार प्राप्त हुआ है कि पटियाला और कौली के बीच एक स्त्री एक चीते के पास आ गयी थी। १३५ अप ट्रेन का गार्ड मि० रहमान यह समाचार पाकर बन्दूक के साथ उस स्थान पर पहुँचा और चीते को गोली से मार गिराया। वह स्त्री जो बेहोश अवस्था में पड़ी थी अस्पताल में पहुंचाई गयी, परन्तु कुछ देर में मर गयी। चीते को मार कर आस पास के लोगों का बड़ा भारी डर दूर कर दिया गया। पटियाला के महाराज ने गार्ड की वीरता पर प्रसन्न होकर उसे १२५) रु० तथा एक राइफल पारितोषिक दिया। चीते के कारण पटियाला स्टेट के लोगों में सनसनी फैल गयी थी।"

❀ ❀ ❀

हिन्दी साहित्य के नवीन मासिक पत्र 'विशाल-भारत' ने 'इण्डियन डेलीमेल' से एक स्त्री की दानवीरता का समाचार प्रकाशित किया है:—

"श्रीमती जानबाई रोडक ने जो विधवा हैं, अपना २० वर्ष की कमाई, जो उन्होंने धात्-कर्म द्वारा एकत्रित की थी, मांडवी के फ्री प्राइमरी स्कूल को दे दी है। इसके सिवाय आपने अनथक परिश्रम द्वारा २५०००) रु० इकट्ठे कर उक्त विद्यालय को दिये हैं। यह विद्यालय आप के पिता की स्मृति में स्थापित किया गया है। बम्बई की म्यूनिसिपैलिटी ने आपकी सहायतार्थ विद्यालय को भवन प्रदान किया है और इसमें निःशुल्क शिक्षा देने का निश्चय किया है। अपनी बहिन अहिल्या बाई की स्मृति मे आपने धात्-गृह खोला है। अपने भाई की स्मृति में विद्यालय ही में आपने एक पुस्तकालय खुलवाया है। इन सेवाओं को ध्यान में रख कर सरकार ने आपको कैसरे हिन्द पदक दिया है।"

साहित्य परिचय

Who's who among North American Authors—प्रस्तुत पुस्तक की एक प्रति हमें प्राप्त हुई है। इसमें उत्तरी अमेरिका के लेखकों का संक्षिप्त परिचय है। ४२० पृष्ठों में लेखकों का जीवन है। ३२ पृष्ठ में सम्पादकों का जीवन और समाचार पत्रों का नाम है। १४ पृष्ठ में लेखकों का नाम अमेरिका के प्रान्त के हिसाब से दिया गया है। २ पृष्ठ में इसी प्रकार कवियों के नाम हैं। २ पृष्ठ में उपनाम से लिखने वालों के नाम और उपनाम दिए गए हैं। परिचय में संक्षेप में प्रायः सभी बातें दे दी गई हैं:—नाम, स्थान, जन्म तिथि, अब तक कहां कहां क्या क्या किया, अब क्या कर रहे हैं, कौन कौन सी पुस्तक कब लिखी, आदि सभी बातें लिखी हैं। इस पुस्तक के सम्पादक मि० ए० लारेन्स हैं और प्रकाशक हैं गोल्डन सिंडीकेट पब्लिशिंग कम्पनी, लोस एंजिल्स, केलिफोरनिया। पुस्तक का मूल्य है पांच डॉलर।

मीठी चुटकी—लेखक त्रिमूर्ति, प्रकाशक साहित्य-मन्दिर, दारागञ्ज, प्रयाग। सजिल्द, पृष्ठ १७०, मूल्य १॥) स्थायी ग्राहकों से १)

'त्रिमूर्ति' महोदय की यह मीठी चुटकी' बड़ी मजेदार है। भाषा और भाव, चरित्र-चित्रण और कथानक, छपाई और सफाई सभी दृष्टियों से पुस्तक दिव्य, दर्शनीय और आदरणीय है। मौलिकता इसकी विशेषता है। इस की रचना के लिए त्रिमूर्ति जी को बधाई!

सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति—स्वेट मार्डेन अङ्गरेजी के नामी आध्यात्मिक लेख हैं। इनकी सभी पुस्तकें बड़ी रुचि के साथ पढ़ी जाती हैं। आप ही की Peace, Power and Plenty का यह भावानुवाद है। अनुवादक हैं हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक बा० रामचन्द्र जी वर्मा और प्रकाशन हुआ है हिन्दी की सब से अधिक आदरणीय माला-हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर सीरीज में। हीराबाग, गिरगांव बम्बई के पते से १।।) में मिलती है। २५५ पृष्ठ की इस सुन्दर पुस्तक में उन तीनों बातों का समावेश है जिनके लिए प्राणीमात्र प्रति क्षण लालायित रहते हैं। निस्संदेह इसमें लिखी गई बातें पढ़ने, मनन करने और उन पर आचरण करने से मनुष्य सुख, सम्पत्ति और शक्ति प्राप्त कर सकता है।

प्राच्य और पाश्चात्य—लेखक स्वामी विवेकानन्द, अनुवादक—पं० नरोत्तम व्यास, प्रकाशक—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा। पृष्ठ ९०, मूल्य ।≈)

स्वामी विवेकानन्द की मशहूर पुस्तक East and West का यह अनुवाद भारत वासियों के अवश्य पढ़ने की वस्तु है। इसमें भारत और विलायत की मार्मिक आलोचना की गई है। मिस मेयो के अनेक आक्षेपों का उत्तर इस पुस्तक में सहज ही मिल जाता है।

सुफ़ेद डाकू—लेखक-मुन्शी मोहम्मद इस्माईल साहेब 'फ़रोग', सम्पादक और प्रकाशक-तात्या नेमिनाथ पांगल, सरस वाङ्मय रत्नमाला, पूना। पृष्ठ १०१, मूल्य १)

यह एक सामाजिक नाटक है। निस्संदेह, है मनोरंजक पर हिन्दी में होते हुए भी इस पर मराठी भाषा का बहुत प्रभाव है। पुस्तक में कई सुन्दर और मनोहर चित्र भी हैं, फिर भी मूल्य कुछ अधिक मालूम होता है। मराठी प्रान्त से इस हिन्दी नाटक के प्रकाशित होने पर हमें हर्ष है आशा है कि हिन्दी भाषी प्रकाशक का उत्साह बढ़ाएंगे।

निम्न लिखित समाचार पत्रों के विशेषांक भी हमें मिल गए हैं। खेद है कि स्थानाभाव और विलम्ब हो जाने के कारण अब हम उनकी समालोचना नहीं कर सकेंगे। इसके लिए हम उनसे सादर क्षमा प्रार्थना करते हैं:—

(१) विश्वमित्र (कलकत्ता) का दीपावली का विशेषांक।
(२) भारतमित्र " " "
(३) श्रीवेंकटेश्वर समाचार (बम्बई) का " "
(४) हिन्दूसंसार (देहली) का " "
(५) हिन्दू पञ्च (कलकत्ता) का विजयांक
(६) भारतवीर (भरतपुर) का महिलांक और बालकांक
(७) आर्यमित्र (आगरा) का ऋष्यङ्क
(८) खंडेलवाल जैन हितेच्छु (कलकत्ता) का विशेषांक
(९) बालसखा (प्रयाग) का विशेषांक
(१०) सैनिक (आगरा) का कांग्रेस अंक और कमीशनांक
(११) दिगम्बर जैन (सूरत) का निर्वाणांक

निम्न लिखित पुस्तकें, पत्र और रिपोर्टें भी प्राप्त हो गई हैं। प्रेषक महोदयों को धन्यवाद:—

(१) ज्योतिष समाचार (मासिक पत्र)—सम्पादक पं० प्रह्लाद-दत्त शर्म्मा, रिवाड़ी।

(२) बलवन्त राजपूत हाई स्कूल (आगरा) की त्रैमासिक पत्रिका।
(३) दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार का संक्षिप्त कार्य-विवरण।
(४) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी का चौबीसवां वार्षिक विवरण
(५) कला वैभव—उद्योग कला विषयक त्रैमासिक।
(६) विधु (त्रैमासिकपत्र)—हिन्दी साहित्यक मन्दिर, गया।
(७) कानपुर नागरी प्रचारिणी सभा का द्वितीय वार्षिक विवरण।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ } चैत्र सं० १९८५, मार्च १९२८ { अङ्क ३

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २) एक अङ्क का मू० ≡)

विषय सूची

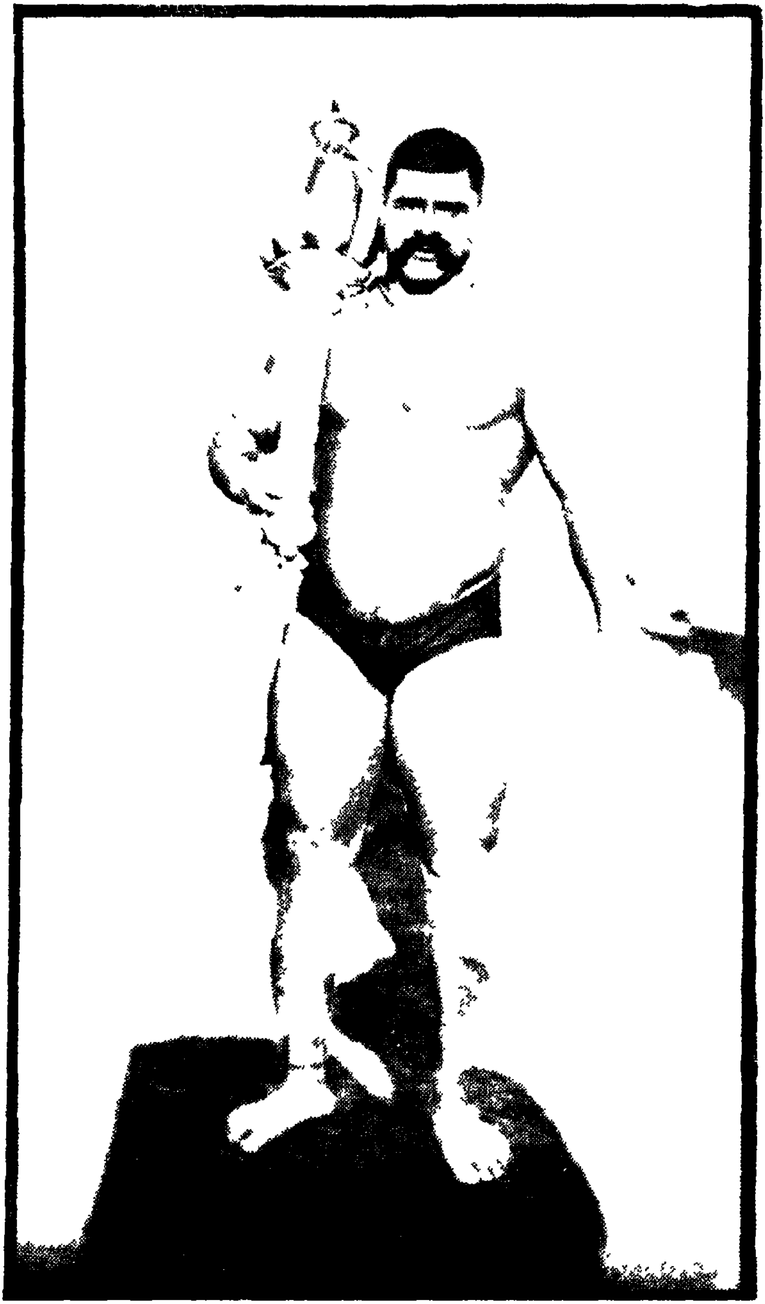
संसार के महापुरुष

मासिक सूचीपत्र

इस अङ्क के साथ हम अपना मासिक सूचीपत्र भेज रहे हैं। इस में नई छपी हुई पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय है। आशा है कि पाठक इसे बड़ा उपयोगी समझेंगे और ध्यान से पढ़ेंगे जो सज्जन प्रति मास इस सूचीपत्र को मंगाना चाहें वे हमारे स्थायी ग्राहक बन जायं।

निवेदक—मैनेजर

साहित्य-रत्न-भण्डार, किनारी बाजार—आगरा।



विश्वविजयी गामा

ॐ

वीर-संदेश

(वीर रस-प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश" ॥

भाग २ } आगरा—चैत्र सं० १९८५, मार्च १९२८ { अङ्क २

बसन्ती वीर बानों है

[लेखक—श्रीयुत पं० हरिशङ्कर जी शर्मा, कविरत्न, सम्पादक आर्यमित्र]

जाति को जगानों, भ्रम-मोहता भगानों,
वीर भाव दरसानों बस यही वर बानों है।
पालन करेंगे करतब ध्रुव धीरता सों,
कायर कहाय मा को दूध न लजानों है ॥
पीठ दिखलानों, घबरानों, हा हा खानो कैसो,
वीर प्रण ठानों, पग पीछे न हटानों है।
धरम के कारनैं समोद मर जानों हमें,
याही लिये धारो ये "बसन्ती वीर बानों है।"

भारत का भविष्य

[लेखक—एक बैठाठाला ग्रेजूएट]

हमारा प्यारा भारतवर्ष महाभारत काल में गौरव-गिरि की सब से ऊँची चोटी पर चढ़ा हुआ था। उसी समय उसने युधिष्ठिर से धर्मावतार, अर्जुन से धनुर्धर और भीम से बली उत्पन्न किये थे। उसी समय उसमें 'पूर्ण पुरुष' कृष्ण भगवान ने अवतार लिया था। उसी समय उसने अखिलविश्व को परम पुनीता भगवद्गीता सुनाई थी!

परन्तु महाभारत के बाद वह उन्नति के उच्चतम शिखिर से गिर कर एक दम अवनति के गह्वर गर्त में जा गिरा तब से उसने उस गड्ढे में से निकलने की और आक्रमण कारियों से अपना धर्म, अपनी संस्कृति, अपनी मान-मर्यादा और अपनी स्वाधीनता बचाने की अनेक कोशिशें कीं। कुछ काल तक उसे इन कोशिशों मे सफलता भी मिली। यह काल शकों और हूणों के आक्रमणों से बच कर उन्हें पचा जाने का काल था। यह काल ग्रीकों के आक्रमण को विफल करके विजय श्री की प्रतिमा स्वरूप सिल्यूकस की सुता को विवाह लेने का काल था। यह काल चन्द्रगुप्त का काल था। यह काल अशोक का काल था जब भारत वर्ष एक बार फिर जगद्गुरू बन गया था। जब भारतीय साम्राज्य की सीमा वर्त्तमान ब्रिटिश भारत की सीमा से भी कहीं बड़ी थी, जब भारत के धर्म-प्रचारक संसार के दूसरे देशों को धर्म का उपदेश देने जाते थे, जब दूसरे देशों के यात्री भारत के दर्शन करने आते थे और मन्त्र मुग्ध से होकर उसके गौरव के सामने सिर झुका कर उसकी स्तुति गाते थे। परन्तु, इस काल के बाद विफलता ने उसका पीछा न छोड़ा! अरब से एक नया सन्देश लेकर आने वाले आक्रमण कारियों से वह अपनी रक्षा कर न सका। अन्त में, उसे उनकी पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी। वह पराधीनता पूर्ण पराधीनता थी, उस वक्त तक उसका हाजमा भी खराब हो चुका था। वह मुसल्मानों को न पचा सका न अपना सका और इसी विजातीय द्रव्य

से आज उसके पेट में दर्द हो रहा है और कलेजे पर जलन पड़ी हुई है। घोर पतन और घनघोर पीड़ा के इस हज़ार वर्षों में भी उसने अपनी कोशिश न छोड़ी। महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविंद-सिंह और महाराजा रणजीतसिंह इन्हीं कोशिशों के प्रतिमा थे। इन कोशिशों में उसे कई बार सफलता भी मिली परन्तु वह सफलता स्थायी न रह सकी! विफलता ने उसका पीछा न छोड़ा।

विकराल काल की कराल गति ने उसे अंग्रेजों का गुलाम बना दिया। भारत मा रूपी दमयन्ती व्याल से बचाई जा कर बचाने वाले व्याध के पंजे में पड़ गई। फिर भी बुड्ढे भारत ने अपनी कोशिश न छोड़ी! उसने स्वराज्य संग्राम छेड़ दिया। असहयोग भारत का आत्मोद्धार का महान प्रयत्न था। उस प्रयत्न का प्रत्यक्ष फल न मिलने के कारण जो निराशा उत्पन्न हुई वह कैसी भयावह थी! चारों ओर निराशा-निशा में विविड़ तम का साम्राज्य था। उस अत्यन्त अंधकार में हाथों हाथ नहीं सूझता था! अपना पराया कुछ नहीं सूझता था। भाई का हाथ भाई की गर्दन पर था! चारों ओर त्राहि त्राहि मची हुई थी—उस हाहाकार को सुन कर हृदय में ऐसी हूक उठती थी मानो सहस्रों बिच्छुओं ने एक साथ डङ्क मार दिए हों!

हज़ारों वर्ष से विपत्तियों से निरन्तर संग्राम करते करते बूढ़ा भारत पहले ही बुरी तरह थक गया था। इस बार की विफलता से उसकी हिम्मत बिलकुल पस्त सी हो गई थी! कितनी कठिन समस्याओं का सामना करना है? कैसे कैसे कष्टों से पार पानी है? अपने ही पुराने पापों से जर्जरित और प्रबल प्रभुओं द्वारा पराधीनता की प्रचण्ड बेड़ियों से जकड़ा हुआ यह बुड्ढा क्या अपने प्राण बचा सकेगा? क्या हिन्दुस्तान का नामो निशान ही मिट जायगा? भारत का भविष्य क्या होगा?

ये प्रश्न रह रह कर प्रत्येक देश हितैषी के हृदय में उठते थे और निविड़ निशीथ में विलीन हो जाते थे। उनका कोई उत्तर नहीं मिलता था। भारत का भविष्य ऐसा अन्धकार मय कभी नहीं दिखाई दिया था

जैसा इस समय। परन्तु घनघोर अन्धकार की यह सघनता ही उषा के आगमन की सूचिका है। क्योंकि उषा के आगमन के समय जितनी अंधियारी होती है, उतनी और कभी नहीं होती। अब तो प्रकाश की कुछ किरणें घनी अंधियारी के घनपटलों को फोड़ कर दिखाई देने लगी हैं।

हमारा मतलब तीसरी फरवरी की हड़ताल और उसके बाद की राजनैतिक तथा उससे पहले की और बाद की सामाजिक हल-चलों से है। पराधीन भारत वर्ष के इतिहास में यह पहला अवसर था कि बिना किसी प्रकार की उत्तेजना के इतने ठण्डे दिमाग से, विशुद्ध राजनैतिक उद्देश के लिए और बिना महात्मा गान्धी जैसे अवतारी के नेतृत्वके इतनी व्यापक, और ऐसी भारी हड़ताल मनाई गई। यह हड़ताल इस बात की प्रत्यक्ष प्रमाण है, कि स्वराज्य की भावना दिन पर दिन लोगों के हृदयों में प्रवेश करके अधिकाधिक प्रबल होती जाती है। यू० पी० कौंसिल, मद्रास कौंसिल, सी०पी० कौंसिल और एसेम्बली में तथा इतने डिस्ट्रिक्टबोर्डों और म्यूनिस्पलबोर्डों में कमीशनके बायकाटके प्रस्तावोंका पास होना, इतने अधिक विद्यार्थियोंका हड़ताल में शामिल होना, और देश के कोने २ में, छोटे छोटे कसबों और गांवों तक में लोगों का स्वेच्छा पूर्वक हड़ताल मनाना बल का, आशा का, साहस का, विजय का और भारत के उज्वल भविष्य का सन्देश दे रहा है। बुड्ढा भारत अन्तिम समय के लिए शक्ति-सञ्चय करके तैयार हुआ है। उसकी इसबार की उठान में आशा है, विजय का विश्वास है और इसीलिए इतना धैर्य है। इस बीच में उसने अपने बहुत से पापों को बहुत कुछ धो बहाया है।

इस बात को कौन नहीं जानता कि पिछले पांच सात वर्षों में भारत में भीतर ही भीतर कैसी चमत्कारिणी सामाजिक क्रान्ति हो गई है। जहां तक विचार जगत से सम्बन्ध है। वहां तक सुधार की भावना ने जनता पर पूर्णतया विजय पाई है। आज से सात वर्ष पहले लोग सुधार की बात कहते डरते थे, अब लोग सुधारोंका विरोध करते डरते हैं, बड़ी से बड़ी नाकवारी जातियों में डंके की चोट विधवा विवाह होने लगे हैं। ब्राह्मण

ब्राह्मणों में, वैश्य वैश्यों में, क्षत्रिय क्षत्रियों में और शूद्र शूद्रों में रोटी बेटी सम्बन्ध न होना घातक पापमय और शास्त्रों की आज्ञा तथा वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था के सर्वथा प्रतिकूल माना जाने लगा है। दकियानूसी परदे पर लोगों को लज्जा आने लगी है। सनातन धर्म सभा तक बाल-विवाह के विरोध और अछूतोद्धार के पक्ष में प्रस्ताव पास करने लगी हैं। यह ठीक है कि हमारे यहां अभी कोई कमालपाशा नहीं पैदा हुआ परन्तु समय की चपेट वह काम कर रही है जो कोई कमालपाशा क्या कर सकता है ? उदाहरण चाहिये तो इलाहबाद इन्टरमीडिएट बोर्ड का वह आदेश देखलो कि सन् १९३१ से कोई विवाहित विद्यार्थी स्कूलों और हाई स्कूलों में न पढ़ सकेगा।

हम एक बार फिर दुहराते हैं कि ये शुभ चिन्ह भारत के उज्ज्वल भविष्य के सूचक हैं। भारतवासियों के विनाशकारी शक्तियों के विरोध की जो क्षमता दिखलाई है वह संसार में अपना सानी नहीं रखती। इसी क्षमता ने इतने हजार वर्षों के विपत्तिमय जीवन में उसे जीवित बनाये रक्खा है। यही क्षमता उसे अन्तिम सफलता दिखलायेगी। लेखक भविष्यवक्ता नहीं और राजनैतिक भविष्य वाणी तो और भी हास्यास्पद मानी जाती है। परन्तु यदि कुछ सिद्धान्तों के बल पर यह जाना जा सकता है कि ग्रहण कब पड़ेगा तो कुछ सिद्धान्तों और चिन्हों के आधार पर उतने ही निश्चय के साथ यह भी जाना जा सकता है कि किसी देशकी प्रगति किस ओर है ? विनाश की ओर या विकास की ओर ? अब तक जिन अचूक चिन्हों की चर्चा की गई है वे इस बात के प्रबल प्रमाण हैं। कि भारत का भविष्य उज्वल है। आत्म-विकास, अत्मोद्धार और स्वराज्य के संगम में उसकी विजय निश्चित है।

विद्रोही

[लेखक—श्रीयुत कविवर 'प्रभात' जी]

है नृशंस ! तेरे पापों का पूर्ण हो गया प्याला है;
सावधान ! रह अभिमानी ! वह शीघ्र छलकने वाला है।
यह मीठी-बोली न छिपा सकती है अत्याचारों को;
अस्त्र-हीन पर किये गये, तेरे पाशविक प्रहारों को।
　　आज उमंगों में नस-नस की ज्वलित हो उठी ध्वंसक आग।
　　प्रलयंकर हूँ बना हुआ मैं, दुष्ट ! तू खड़ा रह मत भाग !!

संसार के दो प्रसिद्ध पहलवान

[लेखक—श्रीयुत प्रताप महोदय]

भारत भूमि वीर प्रसविनी है। ऐसे ऐसे वीरों ने इस देश में जन्म लिया है जिनकी धाक संसार भर में रही। पुरुषोत्तम रामचन्द्र, गांडीवधारी अर्जुन, गदाधारी भीम, महारथी अभिमन्यु, पितामह भीष्म, प्रतापी प्रताप और महाराष्ट्र वीर शिवाजी आदि की वीरता पूर्ण कथाओं को पढ़कर आज भी भारत वासियों के कुचले हुए हृदय लहलहा उठते हैं। इस बीसवीं शताब्दि में भी भारतवर्ष को अपनी बात बनाये रखने का पूरा पूरा गर्व है। एक महिला का अपमान सहन न कर प्राणों की बाजी लगाने वाले खड्ग बहादुर, भारत का अपमान सहन न कर एसेम्बली में सिंहनाद करने वाले स्वराजी वीर, रिजर्व बैंक बिल के सरकारी प्रस्ताव को रोक कर अपनी निर्भयता दिखाने वाले पटेल, विदेशों में अपने शरीर बल की धाक जमाने वाले प्रोफेसर राममूर्ति जैसे वीर आज भी इस देश में जीवित हैं।

पहलवानी में तो बूढ़ा भारत संसार का गुरु होने का दावा रखता है। भूखा है तो क्या, गुलाम है तो क्या, आज भी वह इस फन में किसी को अपना सानी नहीं रखता। इस बात का निर्णय उस दिन पटियाले की रंगभूमि में अर्द्ध लक्ष जन समुदाय के सामने भारतीय पहलवान गामा और संसार प्रसिद्ध पोलिश पहलवान जेबिस्को की कुश्ती से हो चुका है। स्वयं मुकाबले का हौसला करने वाला जेबिस्को भी इस बात को मान चुका है कि 'गामा शेर है।'

गामा की जन्मभूमि पञ्जाब है। इसके बाप और बाबा भी नामी पहलवान थे। बचपन में ही इसके पिता की मृत्यु हो गई थी। दस वर्ष की आयु से ही इसने अखाड़े जाना प्रारम्भ किया और थोड़े ही समय में भारत का सर्वश्रेष्ठ पहलवान हो गया। भारत के कोने कोने में इसका नाम हो गया।

भारत में नाम कमा कर इसने अपने भाई इमाम बक्स के साथ यूरोप की यात्रा की। १९१० ई० में यह इंगलैंड पहुंचा। इस अवसर पर वहां दूर दूर से नामी नामी पहलवान आये थे। इसने यूरोप और अमेरिका के पहलवानों को लड़ने के लिए ललकारा। वे समझते थे कि पोच

वीर-सन्देश



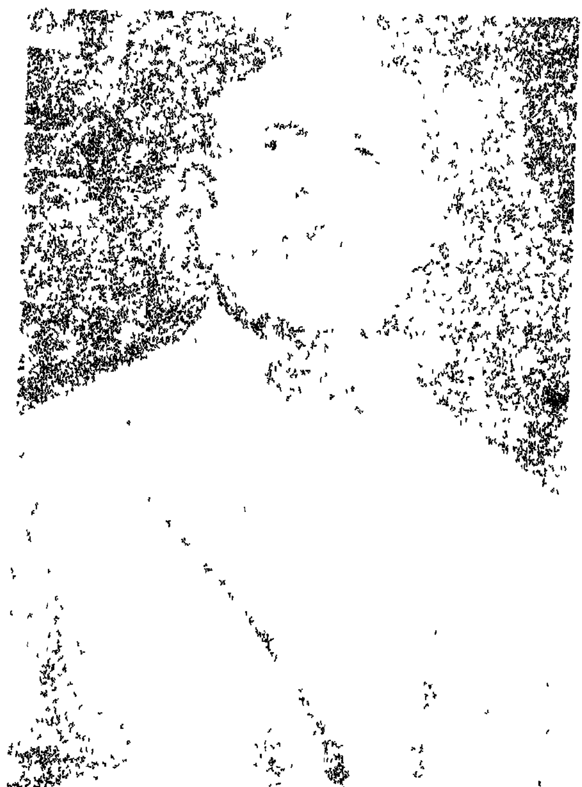
संसार के दो प्रसिद्ध पहलवान

२९ जनवरी को पटियाले में कुश्ती के समय

पोलिश ज़िबिस्को भारतीय गामा

महावीर प्रेस, आगरा।

वीर-सन्देश

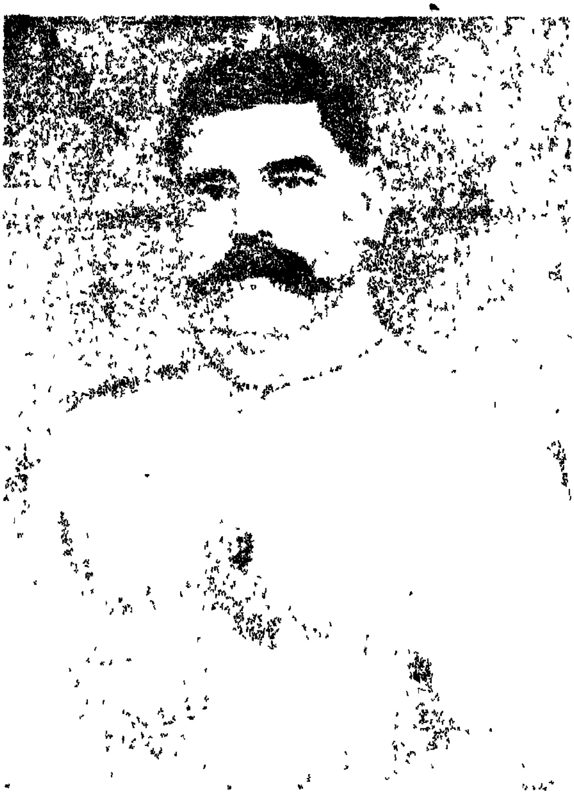


[illegible]

[illegible]

महावीर प्रेस, आगरा।

वीर-सन्देश

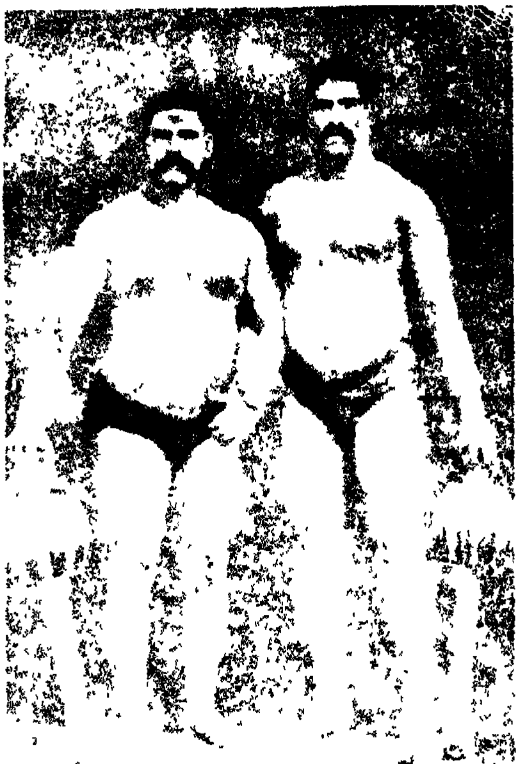


एक मिनट के भीतर दो कुश्ती जीतनेवाला

विजयी गामा

महावीर प्रेस, आगरा

वीर-सन्देश



वीर-विजेता बन्धु-द्वय

विश्व-विजयी गामा   भारत-विजयी इमामबख्श

महावीर प्रेस, आगरा

हिन्दुस्थानी क्या जानें लड़ना, पर जब इसने ग्लेसगो, लिवरपूल और मैंचेस्टर के पहलवानों को हाथ मिलाते ही दे मारा तो बर्मनियों की आंखें खुलीं और डा० रोलर सबसे पहले मुकाबले के लिए आए। उनको गामा ने तीन ही मिनट में आसमान दिखा दिया। इसके बाद रूसी पहलवान हैकनस्मिट को चारों खाने चित्त किया और जापान के प्रसिद्ध पहलवान टारामाय और उसके साथियों को ललकारा, परन्तु इस शेर को देख कर उसने तो लड़ने तक की हिम्मत न की। इसके भाई इमामबक्स ने भी इटली के सर्वश्रेष्ठ पहलवान जोह्न लेम्ब को पछाड़ कर अच्छा ख्याति पैदा करली थी। इंगलैंड ने गामा को पंजाब का शेर और इमामबक्स को चीता की उपाधि दी।

जब गामा यूरोप भर के पहलवानों को पछाड़ चुका तो सन् १९१२ में संसार का सबसे जबरदस्त पहलवान जेबिस्को सामने आया। बराबर तीन घंटे तक गामा उसे नीचे डाले रहा परन्तु चित्त न कर सका। कुश्ती दूसरे दिन के लिए रक्खी गई परन्तु जेबिस्को रातको ही चला गया।

जेबिस्को महोदय रूस देश के बाल्टिक प्रान्त के निवासी हैं। आप कोरे पहलवान ही नहीं हैं, उच्च कोटि के विद्वान् भी हैं। आठ भाषा जानते हैं और वकालत पास हैं। वकालत न करके आप पहलवानी करते हैं। जब आप २५ वर्ष के थे तब बहुत थोड़े पहलवान आपसे भिड़ने की हिम्मत करते थे। उस समय आपका वजन २४५ पाउंड था। उन दिनों विग मन नामक पहलवान स्ट्रेंगलर लेविस को पछाड़ कर संसार प्रसिद्ध पहलवान हो चुका था। प्रथम बार तो उसने जेबिस्को को दबाया था परन्तु दुबारा फिलेडेल्फिया में कुश्ती होने पर जेबिस्को ने उसे जीत लिया। महायुद्ध के समय वह रूस पहुँचा। वहां उसने रूसी पहलवान अबगे को पटखनी दी। यह कुश्ती उसने प्राणों की बाजी लगाकर लड़ी थी। इसके बाद ये अमरिका गये। वहां जैस शेमा, डॉन मेकलोइड, आदि कई पहलवानों को पटक दी। यूरोप में उसने पोज पाल, टॉम कैनन, आदि कई पहलवानों को पछाड़ा। न्यूजीलैंड में रोबिन को, आस्ट्रेलिया में साम चैपलम, माइक माजिक आदि को गिराया। इस प्रकार जेबिस्को संसार का सब से बड़ा पहलवान हो गया।

विलायत में जेबिस्को से लड़ने के बाद पटियाला नरेश गामा को

अपने साथ ले आये थे। उन्होंने उसे अपने यहां रख लिया था और भेंट स्वरूप २५०) रु० माहिक देते थे।

अपने प्रतिद्वन्द्वी गामा को कुश्ती में पछाड़ने का पूरा इरादा कर के १७ वर्ष बाद जेबिस्को हिन्दुस्तान आया। संसार की आँखें इस जोड़ की ओर लगी हुई थीं। सब लोग बड़ी उत्सुकता से इस कुश्ती की प्रतीक्षा कर रहे थे। महीनों से देश में इसकी धूम मच रही थी।

आखिर २९ जनवरी को पटियाले में यह कुश्ती लड़ी गई। रंग-भूमि ४०-५० हजार विदेशी और देशी दर्शकों से ठसाठस भरी हुई थी। दर्शकों में पटियाला, धौलपुर, भरतपुर, कपूरथला, जामनगर और मिश्रह के महाराज, सर-हारकोर्ट बटलर और तिवान के नवाब आदि भी थे। करतलध्वनि के साथ जनता की उत्सुकता बढ़ाते हुए दोनों वीर अखाड़े में कूद पड़े और लगे हाथ मिला कर पैंतरे बदलने। एक मिनट भी कुश्ती न हो पाई थी कि गामा ने जेबिस्को को चारों खाने चित्त दे मारा। इस कुश्ती ने संसार को चकित कर दिया। बात भी आश्चर्य की है, जिस जेबिस्को को सत्रह वर्ष पहले गामा लगभग तीन घन्टे लड़ते रहने पर भी चित्त नहीं कर सका था और जो संसार के सब पहलवानों को पछाड़ कर गामा को जीतने के लिये पूरी तैयारी करके भारत आया था, उसको गामा ने पलक मारते ही धरती नपादी। इस जीत के उपलक्ष में गामा को एक चांदी की गुर्ज दी गई और वह संसार का सर्व-श्रेष्ठ पहलवान माना गया। जेबिस्को से फिर लड़ने को कहा गया पर उसने यह कह कर कि "गामा शेर है, कुश्ती का उस्ताद है" लड़ने से इनकार कर दिया। इसके एक दिन पहले गामा का भाई इमामबक्श भारत के अन्य सब पहलवानों को हराकर भारत विजयी पहलवान बन चुका था।

जिस कुश्ती के फन ने आज भारत की लाज रखली, देखा जाता है कि शिक्षित भारतवासी उससे पीछे हटे हुए हैं। वे पहलवानी को बुरा समझते हैं। हम समझते हैं कि गामा की इस विजय से उनकी मनोवृत्ति बदलेगी और वे शक्ति संचय करने के लिये कुश्ती लड़ना और कसरत करना अपना परम पावन कर्तव्य समझेंगे।

महाराणा प्रताप

[लेखक—साहित्य-रत्न श्री बाबूराम जी वित्थरिया 'नवीन']

वैसे तो राष्ट्रीय–इतिहास के जिज्ञासुओं के लिये, समस्त राजस्थान का इतिहास ही महत्त्वपूर्ण अथच पठनीय है; परन्तु, उसमें भी उसका मेवाड़ पर्व्व उनके लिये अत्यन्त ही मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद है। उसका यह विभाग आद्योपान्त आत्मोत्सर्गों के अत्यन्त ज्वलंत और और आदर्श पूर्ण, सच्चे दृष्टान्तों से परिप्लावित हो रहा है। संभवतः उस जैसे उदाहरण, संसार के इतिहास में अन्यत्र मिलना कठिन ही है। इसके अध्ययन से नस नस में विद्युत् का सञ्चार हो कर, निरालस्य, सुदृढ़ता, स्फूर्ति, धर्म परायणता, सत्यव्रत तथा कर्मण्यतादि अनेक सद्‌गुणों का प्रादुर्भाव होता है। वह मृत राष्ट्रों को महात्मा ईसा की भाँति, "कुम्मे जिन इल्लाह"—उठ ईश्वर की आज्ञा से—कह कर जीवन दान करता है। चित्तौरगढ़, बनासनदी, वहां के दुर्भेद्यप्राचीर, शहर पनाह की दीवाल तथा प्रधान द्वार-सूर्य्यतोरण-आदि अनेक वस्तुऐं आज भी पुकार पुकार हमें कर्मवीर, क्षत्रियों की उज्वल कृतियों की कथा सुना कर उत्तेजित कर रही हैं। इन वीरों की पवित्र कृतियों ने मेवाड़ को हमारा सच्चा तीर्थ बनाकर वहां के कंकड़ पत्थरों को शालिग्राम की पूजनीय प्रतिमा बना दिया है। भला ऐसा कौन पाषाण हृदय होगा जो ऐसे वीर शिरोमणि योद्धाओ के पवित्र चरित्र श्रवण कर अपने कर्ण कुहरों को पवित्र बनाने के लिये समुत्सुक न हो। परन्तु खेद कि, हम वहां के हुए तीन-तीन हृदय बेधक शाकों और शतशः शहीद वीरों के वर्णन सुनाने में असमर्थ हैं, क्योंकि यहां स्थान का संकोच है और साथ ही हमारी इतिहास विषयक योज्ञता भी अत्यल्प है। आशा है उदार पाठक इसके लिये हमें क्षमा करेंगे, और हमारे लिखे स्वाधीनता के केवल एक ही अन्तिम पुजारी महाराणा प्रताप के जीवन संबंधी कतिपय घटनाओं को पढ़कर शिक्षा ग्रहण करेंगे।

सूर्य्यवंशी महाराज रामचंद्र जी के पुत्र 'लव' के वंशधर गोह तथा पावा रावल के वंशधर अपनी प्राचीनता तथा रक्त विशुद्धता के लिये अत्यन्त प्रख्यात हैं, इस वंश में खुमान, हम्मीर तथा राणा सांगा इत्यादि अनेक वीर समय समय पर अपने वीरत्व का परिचय देकर भारत का मुख उज्वल करते रहे हैं, उसी वंश के महाराज जयसिंह की रानी—झालोर के सरदार शोणि गुरु की पुत्री—के पवित्र कुक्ष से हमारे चरित्र नायक अद्वितीय वीर प्रताप का प्रसव हुआ। महाराणा प्रताप, प्रसिद्ध मुग़ल सम्राट् अकबर के समकालीन तथा प्रतिद्वंदी वीर थे। उनका वंश, "सीसौदिया" के नाम से विख्यात है।

महाराणा प्रताप के राज्यासन सुशोभित करने के पूर्व ही, स्वर्ग भूमि चित्तौड़ पर मुग़लों का अधिकार हो चुका था। भोग विलास के दास, उनके पिता उदयसिंह अकर्मण्यता के शिकार बन कर इधर उधर भटकते हुए, उस स्थान पर पहुँचे जहां, दक्षिण अरवली पर्वत श्रेणी के मध्य, उन्होंने एक भव्य भवन तथा सुन्दर सरोवर निर्माण कराया था, इस स्थान का नाम उनके नाम के संबंध से उदयपुर पड़ा और वहीं आबादी हो गई। इस घटना के पश्चात्, नाम मात्र के राजा रह कर, अपने तीन चार साल के शेष जीवन को उदयसिंह ने ज्यों-त्यों करके, "मरे की लकड़ी" देकर पूरा किया, और सन् १५७२ ई० में पंचत्त्व को प्राप्त हो गये।

राणा उदयसिंह अपने राज्य के अधिकारी 'प्रताप' को राज्य-सिंहासन न देकर अपनी हृदयेश्वरी, छोटी रानी के पुत्र जो उनके चौबीस पुत्रों में सब से छोटा था—को राज्याधिकार दे गये। प्रताप के गुणों पर मोहित रहने तथा सनातन धर्म की नीति को नष्ट न करने वाले सरदार तथा जनता इस घृणास्पद कुकर्म को सहन न कर सकी और गद्दी पर, बैठे जगमल को उतार कर 'प्रतापी-प्रताप' को ही राज्य भार सौंपा। बस यहीं से 'प्रताप' के सार्वजनिक जीवन का श्री गणेश होता है।

बसंत ऋतु में प्रताप के शिर पर राज-मुकट रक्खा गया था, उन दिनों 'अहेरिया-उत्सव' होने वाला था। समय पर महाराज की आज्ञा-

नुसार समस्त सूर-सामंत शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर बड़े उत्साह तथा उल्लास के साथ निश्चित स्थान पर पहुंचे। प्रताप ने इस अवसर को समयोचित समझ कर सभी वीर क्षत्रियों को अपने रंग में रंगने का सरल उपाय जान कर अत्यन्त हृदयभेदी, मार्मिक तथा करुणा-पूर्ण शब्दों में अपनी मातृ-भूमि का अति दय-नोय चित्र खींच कर पुनः अत्यन्त ओज पूर्ण-शब्दों में उत्साह तथा कर्मण्यता का वशीकरण मंत्र फूंक कर एक अभूत पूर्व जाग्रति का सञ्चार कर अवर्णनीय स्फूर्ति का विकास कर दिया और वह निर्जन वन चारों ओर जय जय की ध्वनि से प्रतिध्वनित हो उठा।

"नर चाहा सो ना भया हरि चाहा तत्काल" लोकोक्ति के अनुसार ऐसे ही मनोमुग्धकारी उत्तम महूर्त में किसी खोटी घड़ी का वर्तमान हो गया—जिस समय लोग अखेट खेल कर देवी पर बलि चढ़ाने की तय्यारी कर रहे थे प्रताप तथा उनके लघुभ्राता में एक साधारण सी घटना पर बड़ा व्यापक मनो मालिन्य हो गया—दोनों वीरों ने एक ही बाराह को अपना लक्ष्य बनाया, दोनों ही के बाणों का आघात भी उस पर हुआ, वह शूकर प्राणहन हो गया। किस के बाण से मरा ? इसी पर वाक् युद्ध होते होते संग्राम छिड़ गया, सब योद्धा स्तम्भित हो गये, एक ब्राह्मण-राजपुरोहित के बहुत रोकने पर भी शान्ति न हुई, तो उसने दोनों वीरों के बीच में पड़कर कुल देवी की वंदना कर उनके चरणों पर अपनी आहुति देकर सीसोदिया वंश में शान्ति प्रसारित होने का वर मांगा। दोनों वीर इस घटना से शांत हो कर अपनी कृति पर पश्चाताप करने लगे। परन्तु मनो मालिन्य दूर न हुआ प्रताप की आज्ञा से शक्तसिंह राज्य छोड़ कर निकल गये और खेद कि वह मेवाड़ के चिरकाल के शत्रु अकबर से आ कर मिल गये। पाठक समझ लें कि यदि यह घटना न घटती तो मेवाड़ के इतिहास का नहीं वरन भारत के इतिहास का ही कुछ और रूप होता।

प्रताप को अपने बाप का कोरा राज्य ही प्राप्त हुआ था, धन, बल जनबल कुछ भी उन्हें न मिला था। मेवाड़ श्मशान तुल्य हो रहा था,

उसकी राजधानी चित्तौड़ यवनों के हाथ में थी। राजपूत निराशा की अन्धकारमयी निशा में इधर उधर ठोकरें खाते फिरते थे। अधिक क्या कहें, चित्तौड़ की शस्य श्यामला भूमि उस समय वस्त्राभूषण परित्यक्ता विधवा अबला के समान निस्सहाय तथा श्रीहत हो रही थी।

चाहे प्रताप के पास राजसी ठाठ-बाट कुछ भी न था, परन्तु उस के पास एक अनुपम बल था। वह बल था उसका देश-भक्ति से शराबोर, स्वाभिमान से पूरित, करुणा से परिप्लावित तथा कर्त्तव्य में विह्वल विशाल हृदय। बस उसी हृदय से उसने संसार में अपने को सब कुछ बनाकर दिखा दिया। उसने अपने दैन्य की परवाह नहीं की। जयपुर, जोधपुर इत्यादि क्षत्रियों के लक्ष्य भ्रष्ट पर भय नहीं हुआ, अकबर के सैन्य-बल प्रभंजन ने उसके सुदृढ़ हृदयकगार को तनिक भी न हिला पाया। उसने दृढ़ प्रण किया, भीष्म प्रतिज्ञा की कि "जब तक चित्तौड़ का उद्धार न होगा, हमारे वंशधर चौर न करायँगे, सोने चांदी के पात्रों में भोजन न करेंगे और कोमल शय्या पर शयन न करेंगे।" बस इसी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य किया गया, सभी राजसी ठाठ मिट्टी में मिलाया गया। सीसोदिया वंश के प्रभाव को प्रकट करने वाले धौंसे जो उसकी सेना के अग्र भाग में बजा करते थे पीछे बजने लगे, जिससे प्रतिज्ञा का विस्मरण न हो। उनकी प्रतिज्ञा थी कि मेवाड़ के उद्धार के लिये सभी कठिनाइयों को सहर्ष झेलेंगे, उसकी मान मर्य्यादा के लिए कुछ भी उठा न रक्खेंगे। और माता के दूध पर किसी प्रकार का कलंक न लगावेंगे। सभी प्रजा ने अपने स्वामी की आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया।

प्रताप ने मेवाड़ में मुगलों के आकर्षण की अब कोई सामिग्री न रक्खी थी, दुर्गम पर्वतीयस्थल कुंभलमेर को अपनी राजधानी बनाकर, गोगूदादि पहाड़ी दुर्गों को सुदृढ़ बनाया और मुसलमानों से लड़ने की सामिग्री इकट्ठी करने लगे। मुग़लों के लिये अगम्य पर्वतीय स्थल में विजय प्राप्त करना कुछ हँसी ठट्ठा न था, वहाँ पर उनकी सेना के लिए रसद आदि जीवन निर्वाह सम्बन्धी सामिग्री का नितान्त ही अभाव था।

परन्तु फिर भी साहस करके मुग़ल सेना धीरे धीरे उधर बढ़ रही थी। इधर वीर प्रताप भी बड़े उत्साह के साथ उनका अवरोध करने के लिए कटिबद्ध थे।

अकबर तो वैसे ही चाहता था कि किसी न किसी भांति 'प्रताप' का प्रताप प्रदीप बुझाकर अपनी कीर्ति-ज्योत्स्ना का प्रकाश कर दिगान्त में अपनी धाक जमावें। इतने ही में बिल्ली के भागों छींका टूटा और "मान के अपमान" सम्बन्धी घटना अकस्मात् घटित हुई। महाराणा प्रताप, स्वाभिमानी प्रताप मानसिंह के साथ सहभोज न कर सके, इसीलिये वह चोट खाये सर्प की भांति प्रताप से बदला लेने की बात कहकर चलता बना और अकबर के पास जाकर रोया गाया और आक्रमण के लिये उसे उद्यत किया। वीरवर प्रताप ने ऐसे कलंकित क्षत्री के स्पर्श तथा दर्शनादि के पाप का प्रायश्चित किया। सभी स्थल पवित्र गंगाजल से धोया गया। और सभी योद्धाओं ने स्नान किया। इसकी सूचना भी अमर तथा अकबर को मिल गई, इससे उनका पारा और भी अधिक चढ़ गया और बड़ी सज-धज से चढ़ाई की।

मुग़लों ने समझा था कि युद्ध के लिये राजपूत मैदान में आवेंगे परन्तु रण विशारद 'प्रताप' ने ऐसा नहीं किया, तब मुसलमान सेना उस स्थान में बढ़ी जिसे हल्दीघाट कहते हैं। दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ राजपूत लोग अपना सिर हथेली पर रख कर अदम्य उत्साह के साथ युद्ध-कार्य में लिप्त हुए। 'प्रताप' विद्युत छटा की भांति अश्व चेतक को उछालता, यवन सेना को चीरता फाड़ता तथा अपना अद्भुत कौशल दिखाता हुआ, कुल-कलङ्क अमरसिंह को खोजने लगा किन्तु वह भय-भीत होकर साधारण सेना में जा मिला। प्रताप की विजयनी पताका दिगान्त में जय जयकार की ध्वनि के साथ फहराने लगी और जहांगीर उसके आघात से बाल-बाल बचा। यद्यपि हल्दीघाट का राजपूतीय रण कौशल चिरकाल तक उनके गौरव को बढ़ाता रहेगा क्योंकि उसमें किसी प्रकार की भी कमी नहीं की गई थी फिर भी राजपूतों की ही भारी क्षति

हुई। बाईस सहस्र योद्धाओं में से चौदह सहस्र वीर, वीरगति को प्राप्त हुए। सन्ध्या हो जाने के कारण वीर प्रताप कुछ युद्ध सम्बन्धी परामर्श देकर अन्य-मनस्क होकर रणाङ्गण से चेतक पर सवार होकर चल दिये। उन्हें अपने आगे पीछे का कुछ हाल ज्ञात न था, दो मुसलमान सरदारों को उनका अकेला देखकर पीछा करते जानकर प्रताप से रूठा हुआ उनका बन्धु 'शक्त' भी उनके पीछे हो लिया। "चौंटू पेट को नवा"। उन दोनों दुष्टों को यमालय भेजकर भाई को उच्च स्वर से पुकारने लगा। 'प्रताप' ने मुड़कर देखा तो समझ लिया कि शक्त मेरे विनाश के लिए उद्योग कर के यहां आया है—उसने कहा "शक्त आओ मेरा विनाश कर तृप्त हो जाओ रण छोड़कर जाने वाले कायर इसी दण्ड के भागी हैं।" यह कह कर चुपचाप खड़ा रह गया। 'शक्त' भाई के चरणों पर गिर पड़ा और अपने पूर्व अपराधों के लिये क्षमा माँगी। प्रताप ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और दोनों भाई कुछ काल के लिए आनन्द सागर में निमग्न हो गए, किन्तु काल की विकराल कुटिलता के कारण यह आनन्द चिरस्थायी न रह सका—प्रताप का प्राणों से प्यारा वाहन चेतक युद्धश्रम के कारण धराशायी होकर सदैव के लिये उससे बिछुड़ गया और वह फूट फूट कर रोने लगा। शक्त भाई को समझा-बुझा कर अपना घोड़ा उसे देकर उसे भेजकर स्वयं मृत सरदारों में से एक के घोड़े पर सवार होकर मुग़ल सेना में जा मिला। इस दोष के कारण वह मुग़ल सेना से पृथक किया गया। इस प्रकार हल्दीघाट के युद्ध में विजय प्राप्त न करके भी प्रताप ने अपने भाई के हृदय पर पूर्ण विजय पाई और शूरवीरों के हृदय पर प्रथम से कई गुना अधिक अधिकार जमा लिया।

हल्दीघाटी के युद्ध के समान अनेक युद्ध प्रताप तथा अकबर के दलों में हुए, परन्तु, प्रताप अपनी की हुई प्रतिज्ञाओं से तनिक भी विचलित न हुआ। भील लोग इस संकट के समय में छाया की भांति सदैव अपने सम्राट् के साथ रहे और सर्वदा उनके परिवार की रक्षा की, उनपर तनिक भी आंच न आने दी।

प्रताप के सम्बन्ध में हम प्रथम ही कह चुके हैं कि उनके पास जन-धन कुछ भी न था, उस पर भी चिरकाल तक विशाल मुग़ल सेना का सामना करना पड़ा। पाठक समझ सकते हैं कि ऐसी अवस्था में विचलित न होना कितने धैर्य्य और साहस का कार्य्य है। प्रताप को कुंभलमेर का दुर्ग भी छोड़ देना पड़ा, वहां से वह चौंद नामक पर्वतीय दुर्ग में चले गये, वहां भी आराम से न रहने पाये, मानसिंह, मुहब्बत खाँ, फ़रीद खां और शहबाज खां प्रभृति प्रधान प्रधान मुग़ल सेनाध्यक्षों ने मेवाड़ भूमि को चारों ओर से घेर लिया, उनकी रसद इत्यादि का संबंध भी विच्छेद करा दिया यही नहीं, अब उनके लिये स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करना भी दुस्तर हो गया, उनकी दशा भिखारियों से भी गई बीती हो गई। आठ आठ दिन तक अपने परिवार से न मिल पाते थे। भील झोलियों में छिपा छिपा कर उनके परिवार की रक्षा करते थे। सम्राज्ञी के एक एक दिन में पांच पांच बार भोजन बनाने पर भी राजपरिवार को भोजन नसीब न होने पाता था। प्रताप तथा उनके सरदारों को उदर-पूर्ति केवल कन्द-मूल से होती थी। 'मल' नामक घास की रोटियां खाकर जीवन निर्वाह किया, परन्तु अपने प्रण से न टले। "हिम्मते मरदां मददे खुदा" अनेक संकट पड़ने पर भी दृढ़ रहने के कारण अकबर के हाथ कभी न आये। रूप छुड़ाने के लिये अकबर ने प्रताप के परिवार में से किसी को भी पकड़ने का ठाना, पर, वीर-भक्त आशाक्षित भीलों के प्रगाढ़-प्रेम और अनुपम राजभक्ति ने उसमें भी उन्हें सफल न होने दिया।

एक दिन प्रताप की कठोर परीक्षा का समय उपस्थित हुआ (प्रताप वीर होते हुए करुणाकर भी थे—उन्होंने मुग़लों के अफसर फ़रीद खां को अपने वश में करके भी छोड़ दिया था, मिरजा खां खान खाना के कुटुम्ब को पाकर भी सादर लौटा दिया था, जिसके कारण शत्रुओं के हृदय स्थल पर भी इनका साम्राज्य स्थापित हो गया था। यहां तक कि स्वयं अकबर तक उनका भक्त हो गया था) घास की रोटी बना कर उनके बालकों में विभाजित कर दी गई थी, इतने ही में छोटी बालिका

के हाथ से बन-बिलाव रोटी का टुकड़ा लेकर भाग गया, बालिका फूट २ कर रोने लगी। जिस अद्वितीय वीर के हृदय में बाण, चुभ कर कुंद हो जाते थे, तलवारों की धारें कुंठित हो जाती थीं और जिसे अगणित कठिनाइयां भी विचलित न कर सकी थीं, उसी के हृदय को एक बालिका के रोने ने द्रवी-भूत कर दिया और वे अकबर से सन्धि करने के लिये सन्नद्ध हो गए। महाराणी तथा सरदारों का समझाना भी कुछ कारगर न हुआ और अन्त में अकबर को संधि करने के लिये पत्र लिख कर दूत के हाथ भेज दिया।

पत्र पाकर अकबर के हर्ष की सीमा न रही, हर्ष दमामे बजने लगे, किन्तु पृथ्वीराज (वही पृथ्वीराज, जिसकी स्त्री ने मीनाबाजार में रूप सौंदर्य तथा सतीत्व के लुटेरे अकबर को शिक्षा देकर उससे तोबा कराई थी और जो प्रताप की भतीजी थी) ने रंग मे भंग कर दिया, चिट्ठी बनावटी बता कर वास्तविक रहस्य जानने की बादशाह से प्रार्थना की, बादशाह ने उन्हें ऐसा करने का अधिकार दिया और उन्होंने ओजपूर्ण भाषा में कवितामयी शब्द लिख कर इस बात पर खेद तथा आश्चर्य प्रगट करते हुए अपना अविश्वास प्रगट किया और उत्तर मांगा कि मेरा विचार शुद्ध है अथवा अशुद्ध। पत्र लिखने के पश्चात् प्रताप को बड़ी मानसिक वेदना हुई थी, वह इस पत्र से दूर हुई, उनमें प्रथम से दूना उत्साह हुआ और पुनः प्रण पर निश्चल रहने की ठान ली। यह सुनकर अकबर अवाक् रह गया।

प्रताप ने अपने पास जन्म-भूमि के बचाने की सामिग्री न देखकर सदैव के लिये मेवाड़ छोड़ कर निकलने की ठानी और गुप्त रीति से सरदारो के पास सूचना भेजकर सोगदी नगर में झंडा गाड़ने का विचार प्रगट किया। सूचना पाकर वीर लोग पुनः एकत्रित हो गये। प्रतापसिंह ने सकुटुम्ब पर्वत की चोटी पर चढ़कर सतृष्ण नेत्रों से मातृ-भूमि की ओर दृष्टि-पात किया और समझा कि अब इस जन्म में मातृ-भूमि का उद्धार न कर सकूंगा।

जिस समय प्रताप तथा उनके सहगामी वीर इष्ट मित्रों से मिल कर चलने लगे, तो मंत्री प्रवर भामाशाह का हृदय करुणार्द्र हो गया, अविश्रान्त अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। ऐसे समय में उसने अपूर्व साहस का कार्य किया अपना तथा अपने पूर्वजों का उपार्जित सभी द्रव्य प्रताप के श्री चरणों पर चढ़ा कर पुनः उन्हें राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ देखने की अभिलाषा प्रगट की। क्षत्रियों के आनन्द की सीमा न रही, जय-जय कार होने लगा।

प्रताप ने अत्यन्त गुप्त रीति से पुनः सेना का संगठन किया, और पुनः देशोद्धार का बीड़ा उठा कर चले। इस समय उन्होंने और भी कठिन प्रतिज्ञा की कि यदि मातृ-भूमि का उद्धार न हुआ तो आत्मघात कर लूंगा—"प्राण जांय पर बचन न जाहीं" तथा "तिरिया तेल, हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार"—सूर्यवंश व सीसौदिया वंश की प्राचीन चली आती बान को स्थिर रखने में परमात्मा सहायक हुआ। देवीर नामक स्थान में पड़े हुए शहबाज़ खां न मालूम क्या क्या शेखचिल्ली कैसे मनसूबे बांध रहे थे। क्यों न बांधते वह तो राजपूतों से निश्चिन्त ही हो चुके थे। एक दिन अकस्मात् वीर क्षत्रियों का यवन सेना पर आक्रमण हुआ। मुग़ल सेना के पैर उनके सन्मुख न जमे। उस समय संसार की कोई भी शक्ति, राजपूतों के साहस को भंग न कर सकती थी। उन्होंने मुग़लो को गहरी जक दी। सन् १५८६ के भीतर ही भीतर चित्तौड़, उदयपुर और मोंडल-गढ़ को छोड़ सारा मेवाड़ हस्तगत कर लिया। जयपुर नरेश मानसिंह के वाणिज्यस्थल मालपुर को लूटकर उसे भी शिक्षा दी। मुसलमान सेना भयभीत होकर उदयपुर से भी भाग निकली और इस तरह उदयपुर भी वीर प्रताप को प्राप्त हो गया। अकबर को मेवाड़ के निकलने पर महान शोक हुआ और पुनः कभी उधर को नज़र डालने का साहस न हुआ।

वीरवर प्रताप ने मेवाड़ का उद्धार भी किया, उदयपुर भी हस्तगत किया, किन्तु चित्तौड़ का उद्धार न हो सका। जिस चित्तौड़ के उद्धार के लिये कठिन प्रतिज्ञा की थी, उस चित्तौड़ से अभी तक मुसलमान दूर

नहीं हुए यह दारुण, असह्य वेदना, अन्तिम समय तक प्रताप को दुखित करती रही और सन् १६५३ में प्रताप का विसर्जन हो गया।

पाठकगण! वीरेन्द्र प्रताप का चरित्र अति सूक्ष्म भाव से चित्रित होकर यहीं समाप्त होता है। आप लोग भली-भांति समझ चुके हैं कि प्रताप देश के पीछे पागल हो गये थे, कितनी कठिनाइयों का सामना किया था, प्रजा उनमें कितनी अनुरक्त थी, अशिक्षित भीलों तक में उन की कितनी अटल भक्ति थी? इन सब बातों का एक मात्र कारण उनकी निस्स्वार्थ भाव से मातृ-भूमि की सेवा से प्रेरित होकर सर्वस्व त्याग करना ही था। आजकल के वीरों की भांति कोरे "स्वराज्य" की शाब्दिक रटना ही तक उनकी क्रिया-शीलता की इति नहीं थी। वह एक ओर प्रस्ताव करते थे, दूसरी ओर उसे तुरन्त ही कार्य्य रूप में परिणत करते थे। यही कारण था, एक दिन उन्हें बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई। आज वीरेन्द्र प्रताप बहादुर का प्रताप हमारे हृदय पर अपना अटल साम्राज्य जमा चुका है, उनकी धार्मिक भावनाओं का सभी के हृदयों में समान भाव से आदर है। हिन्दू जाति को उन पर गर्व है। हिन्दू जाति उनकी सदैव कृतज्ञ रहेगी..........ईश्वर से प्रार्थना है कि वह पुनः हमारे देश में प्रताप जैसे वीरों को जन्म देकर हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तान की रक्षा करे, उसके गौरव को स्थिर रक्खे और हमारी मनोभावना को पूर्ण करे।

समर्पण*

[लेखक—श्री कृपाराम मिश्र "मनहर"]

माँ! मन्दिर में तेरे आया, तेरा स्नेह लुटाने को।
माँ! गोदी में तेरे आया, अपना दुःख घटाने को॥
हँसते हँसते बलिवेदी पर, अपना शीश कटाने को।
'व्यथित' अभागे दुखियों का या, तेरा हाथ बंटाने को॥
हर्षित होकर तुम्हें समर्पण, भाव सुमन का "मनहर" हार।
माँ! करता हूँ प्रेमाञ्जलि को, अर्पित लो करलो स्वीकार॥

---

* बलि वेदी पर अन्तिम भावना।

विचार-तरङ्ग

[लेखक—श्रीयुत सुरेन्द्र जी शर्मा]

पूर्णाहुति—

अरुणोदय हो रहा था । माता के आंगन में बाल-रवि की सुनहली रश्मियां छिटक रही थीं । जिस मातृ-यज्ञ के विमल विधान की तैयारी दसों वर्ष पहले हो चुकी थी, उसमें, आज तुम्हारे पूर्णाहुति चढ़ाने की बेला थी । उस समय, तुम्हारे चित्त में असीम आनन्द था । तुम्हें वह गति प्राप्त थी, जो योगियों को भी दुर्लभ है । तुम ने ॐ शब्द का उच्चारण किया, और वेद-मन्त्रों की ध्वनि के साथ मातृ-यज्ञ में पूर्णाहुति चढ़ा दी । वेद-मन्त्रों की ध्वनि करते हुए तुम्हारे चेहरे पर गम्भीर हास्य की एक अनुपम रेखा थी । उसी हास्य-रेखा में मानव-जीवन का सारा रहस्य निहित था, गिरे हुए लोगों के उठाने के लिए दिव्य-सन्देश था, और था करोड़ों सन्तप्त प्राणिओं के लिए सान्त्वना देने वाला बलिदान का मूल मन्त्र !

पूर्णाहुति देख कर लोग दङ्ग रह गये ! खुदीराम, कन्हाईलाल, कर्तारसिंह पिङ्गले आदि योद्धाओं की आत्माहुति की याद आगई ! इनकी वीर-गाथाओं से मन में रह रह कर यह भावना उठती थी कि लोग, जिनको परम पिता ने दर्द-भरा दिल दिया है, हंसते हंसते, मातृ-यज्ञ में आत्माहुति कैसे चढ़ाते हैं ? आज, इस अकर्मण्यता के युग में, तुम ने अपने वीर बन्धुओं के साथ पूर्णाहुति देकर, इस बात को स्पष्ट दिखा दिया कि मृत्यु जीवन ही का दूसरा नाम है, अपने पुण्य आदर्श के लिए मर मिटने ही से मनुष्य जन्म सार्थक होता है । तुम मर कर अमर हो गये ! जिस दिन, भारत-माता के प्राङ्गण में पूर्ण तेज के साथ स्वातन्त्र्य-सूर्य्य की रश्मियां अपना प्रकाश फैला रही होंगी, दीन देश के करोड़ों दलित हृदय उठकर मानवीय स्वत्वों को प्राप्त कर रहे होंगे और वे गद्‌गद् हो अपनी हृदय-वीणा के प्रत्येक तार पर प्रजा-सत्ता, समता, स्वतन्त्रता और न्याय के सुमधुर गीत गा रहे होंगे उस दिन, केवल, उसी दिन, तुम्हारी आज की पूर्णाहुति के बल पर, जगह जगह तुम्हारे कीर्ति-स्तम्भ खड़े होंगे ।

तुम्हारी तड़प—

पूर्णाहुति देने के महीनों पहले तुमने कहा था:—

"आख़िरी शबदीद के क़ाबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प,
सुबहे दमगर कोई बालाए बाम आया तो क्या ?"

सचमुच तुम्हारी तड़प अनूठी रही। उस तड़प में दर्द था, मार्मिक वेदना थी। अनुपम अनुराग था, अपूर्व आत्म-त्याग था। और न जाने क्या क्या था! तुमने इस गिरे समय में भी देश के सामने शहादत का वह नज़ारा पेश किया जो आयरलैण्ड में वीर मेक्स्विनी ने किया था और ज़ारशाही के नाश के लिए रूस में अगणित देश-भक्तों तथा वीर रमणियों ने किया था। तुम्हारी गति-विधि से हमारा मत-भेद हो सकता है। परन्तु इससे क्या, हम तुम्हें कभी भूल सकते हैं? तुम्हारी शहादत से हमारे दिल में रह रह कर जो हूक उठती है, उसे क्या दुनिया की कोई शक्ति मिटा सकती है?

स्वार्थ-बुद्धि अथवा द्वेष-भावना से प्रेरित होकर कोई तुम्हें 'गुमराह' के नाम से पुकारे या 'डाकू' या 'लुटेरा', परन्तु ज्वलन्त देश-भक्ति और महान आत्म-त्याग के कारण प्रत्येक भारतीय तुम्हारी चरण-रज को अपने मस्तक पर धारण करेगा। क्यों? इसलिए कि, तुम अपने विश्वासों के बल पर अपने उच्च आदर्श के लिए जिये और उसी के लिए मर मिटे। सम्भव है कि आज के भारतीय कमज़ोरी या और किसी कारण से तुम्हारे बलिदान का महत्व न अनुभव कर सकें परन्तु यह निश्चय है कि तुम्हारे रक्त-बीज के प्रताप से देश की आगामी सन्तति में वह दम और खम होगा जो किसी भी जीवित देश के बच्चों में हुआ करता है, और तभी वह सन्तति तुम्हारी पूजा की अधिकारिणी समझी जायगी।

तुम्हारी कामना—

पूर्णाहुति चढ़ाते समय, तुमने सिंह-गर्जन करते हुए कहा—"मेरी हार्दिक इच्छा है कि ब्रिटिश साम्राज्य का नाश हो।" तुम्हारी यह कामना पूर्ण रूप से कब फलेगी, यह तो, भविष्य के गर्भ में निहित है। किन्तु, उसके फलने के आसार तो बहुत पहले से हो रहे हैं। बृटेन के अनेक बड़े बड़े दूर दर्शी राजनीतिज्ञ इस बात को वर्षों पहले से कहने लग गये हैं। उनका कहना है कि बृटेन की उपनिवेश विस्तार की रक्त-शोषणी नीति बहुत भयानक है। उसी दूषित नीति के कारण बृटिश साम्राज्य का विशाल भवन निकट भविष्य में खंडहर के रूप में परिणत हो जायगा। जिनके आँखें हों, वह इस सचाई को देखें। बृटेन के जुल्म और ज़्यादतियों के कारण, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि कितने ही उपनिवेश उसके हाथ से निकल गये। अँग्रेज इन उपनिवेशों के उसी तरह खुदायी ठेकेदार बनते थे। जिस तरह कि, आज वे भारत के बन रहे हैं। उन्होंने वहाँ जुल्मों की भरमार उसी तरह कर रखी थी, जिस तरह कि इस देश में। किन्तु, समय के थपेड़ों ने उपनिवेशों की जनता को जगाया, और उसने अपने स्वत्व प्राप्त किये। आज अँग्रेज़ी

शासन इस देश के ऊपर भार स्वरूप हो रहा है। साइमन कमीशन विलायत से चलता है यह बहाना करके कि, यहां वह जनता से मिल-भेंट कर, उसके दुःख दर्द की बात सुनेगा, किन्तु, यहाँ आकर, जुल्म और ज़्यादतियों से पिसे हुये करोड़ों प्राणियों के बहिष्कार की आवाज़ सुन कर, बिना किसी से मिले-जुले, चोरों की तरह गश्त करता हुआ निकल जाता है! आज इस देश के कोने कोने से यही आवाज़, आ रही है कि साइमन कमीशन को हमारे भाग्य निर्णय करने का कोई अधिकार नहीं! अपने घर के हम खुद मालिक हैं। विदेशी इस देश में जनता के हितैषी बन कर रह सकते हैं, मालिक बन कर नहीं! इन सब बातों का क्या अर्थ है? यही न कि अब भारतीयों को, उनकी गुलामी से पैदा हुई टीस और नवयुग के थपेड़ों ने जगा दिया है? वे अब, दुनिया में आज़ाद होकर रहेंगे। संसार की कोई भी दानवी शक्ति उन्हें, अब दबा कर नहीं रह सकती। यदि भारत आज़ाद हो गया, जैसा होना कि दिन के प्रकाश की तरह ध्रुव सत्य है, तो, ब्रिटिश साम्राज्य के नाश होने में भी कुछ सन्देह है? आज इस विशाल काय भारत के ही कारण ब्रिटिश साम्राज्य का भवन इतना बड़ा दिखाई दे रहा है। इस देश के आज़ाद होते ही, वह खिलौने की तरह खेलने और देखने की चीज रह जायगा।

रक्त बीज—

बट का बीज देखने में बहुत छोटा होता है, किन्तु उसकी छोटीसी आत्मा के अन्दर बड़ा भारी वृक्ष पैदा कर डालने की शक्ति छिपी हुई है।

पहले बीज गलकर मिट्टी में मिल जाता है, तब कहीं उसमें से पौधे का अङ्कुर फूटता है। पौधा बड़ा होता है और अन्त को प्रकृति देवी के मन्दिर के एक हरे भरे वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है। जो मूर्ख हैं वे कहेंगे कि बीज की हस्ती मिट गई। किन्तु सच बात यह है कि इतने बड़े वृक्ष और उसके हजारों सुमधुर फलों में, उस छोटे से बीज की हस्ती मौजूद है। केवल बात यह है कि छोटे से बीज का रूप बदल जाता है, व्यष्टि समष्टि के रूप में परिणत हो जाता है। इस सृष्टि का विकास इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

तुम्हारे रक्त-बीज में उस बट-बीज से किसी तरह भी कम क्षमता नहीं है, जिसके छोटे से आकार में विशाल काय वृक्ष उत्पन्न कर देने की शक्ति है तुम्हारे शत्रु जिन्होंने लोक-मत को कुचल कर, तुम्हारे नश्वर शरीर को विनष्ट किया है, अपनी करणी पर यह समझ कर सन्तोष भले ही कर लें कि उन्होंने तुम्हें दुनिया से मिटा दिया। किन्तु तुम्हारा यह अविचल विश्वास था कि पञ्चतत्व का शरीर मिट जाने से तुम्हारी आत्मा की पाक हस्ती पर कोई असर

न होगा। अपने इसी विश्वास के बल तुमने मृत्यु पर विजय प्राप्त की। तुम्हारा रक्त-बीज फैल कर भारतीय वसुन्धरा की गोद में समा गया। उससे वह लाल हो गई। जलियांवाला बाग की पुण्य-भूमि भी अनेक शहीदों के रक्त से लाल हुई थी। तुम्हारे इस रक्त-बीज के प्रभाव से इस देश के ज़र्रे ज़र्रे में वह शक्ति आवे जिससे करोड़ों युवकों में अपने आदर्श के लिए, मर मिटने की भावना का उदय हो यदि ऐसा हो सके तो कौन कह सकता है कि तुम्हारे रक्त-बीज में वट-वृक्ष से भी कहीं अधिक उत्पादन शक्ति नहीं है ?

अनुताप की आग—

अरे ओ, निर्बलों की पसीने की कमाई पर ऊँची ऊँची अट्टालिकाओं में अठखेलियाँ करने वाले जन्तु ! अपनी अन्याय पूर्ण कृतियों पर नजर डाल कर तो देख ! कहीं तेरे कामों से पडौसियों को धक्का तो नहीं लग रहा ? तू अपनी कमाई की धुन में कहीं दीन दुखियों के हितों को तो नहीं कुचल रहा ? तू ने जो विपुल धन राशि इकट्ठी करके रख छोड़ी है, तुझे पता है कि उसका एक एक कण किसके पुरुषार्थ का फल है ? क्या तुझे पता है कि जिस ऊँची अट्टालिका में तू उन्मत्त बना हुआ पड़ा, अपने मनुष्योचित कर्तव्य की अवहेलना कर रहा है उसकी एक एक दीवार—नहीं नहीं एक एक ईंट—किसके पसीने से बनाई गई है ? क्या तूने कभी स्वप्न में भी सोचा है कि जो मज़दूर तेरे विशाल काय भवन को खड़ा कर चला गया, वह कहाँ किस झोंपड़े में अन्न-वस्त्र के बिना अपनी मौत की घड़ियाँ गिन रहा है ? अब भी समय है कि तू अपने शानदार भवन से निकल कर उन लोगों से गले मिल जो तेरी जुल्म और ज्यादतियों के शिकार हुए हैं, उन दीन दुखियों के आँसू पोंछ, जिनके गाढे पसीने की कमाई पर तू सुखसे अठखेलियाँ खेलता है। ऐसा न हो कि समय निकल जाने पर अपनी भूल से तुझे आजीवन अनुताप की आग में जलना पड़े।

भगवान वीर के प्रति

[लेखक—श्री [illegible]न दिव्य कवि]

तेरे पथि का अनुगामी हूं, तेरा आज्ञाकारी हूँ।
शुद्ध अहिंसा का पालक हूं, निशदिन शाकाहारी हूँ॥
किन्तु समझना मत कायर हूं, शूर वीर बलधारी हूँ।
शत्रु पक्ष के लिये समर में, पैनी एक कटारी हूँ॥

कवि-कीर्तन

महाकवि दास और वीर रस

हमारी भाषा का जैसा कुछ काव्य-भाण्डार पूर्ण है, वैसे ही उसके दूसरे अंग नहीं। काव्य का लक्षण-शास्त्र—साहित्य-शास्त्र-भी वैसा नहीं है। यद्यपि कई आचार्यों ने साहित्य-ग्रन्थ भी लिखे हैं, पर वे प्रायः अपूर्ण और एक देशीय हैं। इनमें से महाकवि श्री भिखारीदास 'दास' का 'काव्यनिर्णय' ही एक ऐसा पुराना साहित्य-ग्रन्थ है, जिसमें साहित्य के सब विषयों पर लेखनी चलाई गयी है। यद्यपि हम इस ग्रन्थ को सब तरह से पूर्ण नहीं कह सकते और न इसके सब सिद्धान्तों से सहमत ही हैं, तो भी इतना अवश्य कहेंगे कि अपने विषय का यह पुराना ग्रन्थ एक ही है। इसका भली भांति सम्पादन होकर प्रकाशन होना आवश्यक है। कारण एक तो यह पुराना साहित्य-ग्रन्थ है इसमें प्रायः सब विषय हैं, और जो उदाहरण दिये गये हैं वे प्रायः ऊँचे दर्जे के काव्य हैं।

संस्कृत के साहित्य-ग्रन्थों में यह परिपाटी देखने में आती है कि आचार्यों ने लक्षण अपने निर्माण करके उनके उदाहरण और और कवियों के सुन्दर२ ढूंढ कर दिये हैं। कहीं कहीं उन्होंने स्वनिर्मित पद्य भी उदाहरण में रखे हैं। ऐसा करने से साहित्य-ग्रन्थों में बड़ा सौन्दर्य आ जाता है। एक तो प्रत्येक विषय के बढ़िया बढ़िया उदाहरण मिल जाते हैं, दूसरे ऊँचे दर्जे के सभी या बहुत से कवियों के काव्यों का रसास्वादन करने को मिल जाता है। परन्तु प्रसिद्ध श्री अप्पय दीक्षित के प्रतिद्वन्द्वी पण्डितराज श्री जगन्नाथ ने इस चाल को पलट दिया। उन्होंने अपने अद्वितीय साहित्य-ग्रन्थ 'रसगंगाधर' में लक्षण और उदाहरण सब कुछ अपना ही रक्खा है और बड़े अभिमान के साथ लिखा है कि हमारे इस

ग्रन्थ में "न परस्य किञ्चित" है। उन्होंने लिखा है "इसमें सब कुछ मेरा है मैंने दूसरे का कुछ भी नहीं लिया अपने नये उदाहरण बना कर दिये हैं। कस्तूरी उत्पन्न करने वाला मृग क्या कभी दूसरे फूलों की सुगन्ध मन से भी ग्रहण करता है?" सो यह बात उनके विषय में सोलहो आने ठीक है। इसका अनुभव वे ही कर सकते हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ को पढ़ा है।

इसी अनुकरण पर इधर हमारी भाषा के कवियों ने भी अपने साहित्यग्रन्थों में अपने ही उदाहरण दिये हैं। हम कह चुके हैं कि हमारी भाषा के जैसे कुछ काव्य रचयिता हुए हैं, वैसे साहित्यग्रन्थों के निम्मोता नहीं। उनके उदाहरण अच्छे हैं, पर यदि और और कवियों के उदाहरण भी दिये जाते, तो बात कुछ और हो जाती। "न हि खलु सर्वः सर्वं जानाति" सबके सभी पद्य अच्छे नहीं बन जाते। सोने की खान में कोयले पत्थर भी तो निकलते ही है। सब लक्षणों के उदाहरण अपने पद्यों में ढूंढ़ना या नये गढ़ना उतना अच्छा और स्वाभाविक नहीं, जितना विभिन्न कवियों के सुहावने पद्य चुन कर लाना। हां, इस में परिश्रम और अध्यवसाय की विशेष आवश्यकता है। इधर नये-नये भी कई साहित्य-ग्रन्थ हिन्दी में निकले हैं। उनमें 'काव्य कल्पद्रुम' सब से अच्छा है। पर, उसमें भी उदाहरणों की यही बात है। उसके निर्माता ने उदाहरण अपने तो नहीं बनाये हैं; पर, संस्कृत के पद्यों का अनुवाद करके दिये हैं। संस्कृत के साहित्य-ग्रन्थों में जो पद्य उदाहरण में दिये गये हैं, सेठ जी ने उन्हीं में से अपनी इच्छा के अनुसार चुन कर अनूदित कर लिये हैं।

तो, महाकवि 'दास' ने भी अपने 'काव्य-निर्णय' में लक्षण उदाहरण सब अपने ही दिये हैं। इस समय इस ग्रन्थ की पूर्ण समालोचना करने हम नहीं बैठे हैं। ऐसा करने में तो एक स्वतन्त्र पुस्तक अथवा लम्बे लेख की नीव पड़ जायगी। हमें तो यहां सिर्फ उनका वीररस-निरूपण देखना है।

और दूसरे कवियों और आचार्यों की तरह 'दास' ने भी वीर

रस पर कुछ भी विशेष प्रकाश नहीं डाला—केवल उदाहरण भर दे दिया है! उनका उदाहरण देखिए:—

क्रुद्ध दसानन बीस भुजानि सों, लै कपि रीछ अनी सर बट्टत;
लच्छन तच्छन रत्त किये दृग, लच्छ विपच्छन के सिर कट्टत।
मारु पछारु पुकारु दुहूँ दल, रुंड झपट्टि दपट्टि लपट्टत;
रुण्ड लरैं भट मत्थनि लुट्टत, जोगिनि खप्पर ठट्टनि ठट्टत।

यह वीर रस का उदाहरण है। इसकी रचना पर पहले ध्यान दीजिए। वीराभिव्यञ्जक पद्य की रचना में कर्ण-कटु और बीहड़ शब्द उपादेय हैं। अक्षरों में टवर्ग आदि श्रवण कटु माने गये हैं। इनके संयोग में और भी कटुता आ जाती है। इस पद्य में इसी लिए इतने टकार आये हैं और उनका आपस में संयोग किया गया है। पर, यह संयोग शब्दों को तोड़-मरोड़ कर और शब्द शास्त्र की अवहेलना करके ही किया गया है, जो अनुचित है। आप कहेंगे कि हिन्दी में ऐसा होता है, और 'रासो' आदि ग्रन्थ प्रमाण हैं। यह बात ग़लत है। रासो के रचना काल में भाषा वैसी लिखी और बोली जाती थी। रासो आदि में केवल वीर रस के ही वर्णन में नहीं, प्राय: सर्वत्र ऐसी ही रचना है। पर, दास के समय में यह बात नहीं। उनके और-और पद्य देखिए और मिलान कीजिए।

अलंकारों का भी इस पद्य में अभाव है। खींच-तान कर आप स्वभावोक्ति शायद कह दें; सो, वह भी यहां उत्कृष्ट और चमत्कृति जनक नहीं। हां, अनुप्रास अवश्य है। रचना शिथिल है। वीर रस की जैसी कुछ गाढ़ रचना होनी चाहिए; नहीं है।

अब, सब से बड़ी और मुख्य बात यह देखनी है कि असल में यह वीर-रस का उदाहरण हो भी सकता है या नहीं? सारा दारोमदार तो इस पर है। सो, भैया, बुरा न मानिए; यह वीर-रस का ठीक ठीक उदाहरण भी नहीं है। इसमें रावणगत रामविषयक उत्साह प्रधान रूप से अभिव्यक्त ही नहीं है—उत्साह में विश्रान्ति भी नहीं है। पहले तो उत्साह की अभिव्यक्ति ही नहीं, यदि मान भी लें, तो उसमें अन्तिम

विश्रान्ति नहीं है। अन्तिम विश्रान्ति है कविगत रावण विषयक रति में, जो भाव है। इसी रति भाव का वीर-रस यहां पर अङ्ग किंवा पोषक है। जब अङ्ग है, तो प्रधानता कहां ? फिर वह वीर-रस का उदाहरण कैसा?

देखिए, वीर-रस का यह कैसा सुन्दर उदाहरण है:—

"सीता-हरन तात ! जनि कहेहु पिता सन जाइ;
जो मैं राम, तो कुल सहित कहहि दसानन जाइ।"

कैसा वीर-रस का फड़कता हुआ उदाहरण है ? कैसी वाक्य-योजना है ? पद पद से रस टपकता है ! उत्साह की अभिव्यक्ति उछली पड़ती है। यह उत्तम काव्य है—ध्वनि है। 'जो मैं राम' इस वाक्यांश को देखिए, इसमें क्या कुछ भरा है ! यहां 'राम' शब्द में "अर्थान्तर संक्रमित वाच्य" ध्वनि है। "दसानन" शब्द भी गजब का है। जिस शत्रु के हृदय को राम के तीख तीर चीरेंगे, वह एकानन दो-आनन की कौन कहे, चतुरानन, पञ्चानन और षडानन से भी बहुत बढ़कर, दशानन है। जिसने त्रिलोकी थर थर कंपा रखी है, वह दशानन। दशानन शब्द में "अर्थान्तर संक्रमित वाच्य" ध्वनि भी है। रावण आदि शब्द छोड़ गोस्वामी जी ने 'दसानन' शब्द देकर कमाल कर दिया है। देखिए, न शब्दों को तोड़ा गया है न मरोड़ा। कठोर कर्कश शब्दों के लाने की भी वैसी चिन्ता नहीं की गई है। फिर भी कैसा कुछ काव्य है ! मिलान कीजिए, दास के उदाहरण से। मणि मिट्टी का फर्क है। इसे कहते हैं, वीर-रस का उदाहरण।

उस उदाहरण में 'दास' यदि चाहते, तो गलती न होती। वे अच्छे से अच्छा उदाहरण दे सकते थे। पर, उधर ध्यान हो, तब न ! ध्यान तो उनका शृंगार में है। यही कारण है कि शृंगार के एक से एक अच्छे उदाहरण आपने दिये हैं। केवल दास ने ही क्यों, हिन्दी के प्रायः सभी आचार्यों की यही दशा है।

हमने जो ऊपर गोस्वामी जी का दोहा वीर-रस के उदाहरण में दिया है, वह वीर-रस का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। उसमें श्रीराम का रावण विषयक उत्साह पूर्ण रूप से अभिव्यक्त है, जो सामने पड़े हुए रावण के

राक्षसों से जर्जरित जटायु के देह को देखने से विभावित और इस प्रकार के वाक्य-कथन आदि से अनुभावित है। रस की पूर्ण सामग्री है।

इस लेख से पाठक यह न समझ बैठें कि 'दास' कुछ ऐसे-ही-वैसे कवि थे, नहीं, वे जैसे कुछ कवि थे, वे ही थे। उनकी कविता में बड़ा चमत्कार है। रस-की तो धारा बहती है; पर शृंगार की। सब कुछ शृंगार के ही लिए उन्होंने किया है। शृङ्गार रस की उनकी रचनाएँ बड़ी अनूठी हैं। वीर की ओर तो उनका ध्यान भी न गया था, नहीं तो इधर भी कमाल करते। समय की गति है कि बड़े बड़े सन्त कवि भी शान्त और वीर आदि को छोड़ कर शृङ्गार के तालाब में फिसल पड़े।

वीर-वंश की बान

[लेखक—श्रीयुत जयनारायण झा "विनीत"]

अचल उन्नत मस्तक कर वीर, जगत को दे दो यह संदेश।
शूर सच्चे की शक्ति समीर, सदा करती सर्वत्र प्रवेश॥
भयंकर कानन अब्धि अपार, अगम गिरिवर पवि-गर्जन घोर।
सुमनवन गोपद रज झंकार, आप होते उसको सब ओर॥१॥
अनल हो जाता शीतल नीर, प्रभंजन भीषण मलय समीर।
फूल की वर्षा होते तीर, अमर यश विजय हार शमशीर॥
दिशाओं में फैली नभ चूम, दुसह दावानल लपट कराल।
तुमुल तम में कज्जल गिरि धूम, उगलता अनल गरल खल व्याल॥२॥
काल के क्रूर कर्म का हास, विघ्न बाधाओं के भंडार।
न कम कर सकते वीर-प्रयास, बढ़ाते बल्कि और उद्गार॥
शक्ति वह करती उसमें वास, मृतक पा जाता जिससे प्राण।
भीरुता कटती भैरव हास, प्रलय रण करती लिये कृपाण॥३॥
कुसुम को करता कुलिश कठोर, धूल को शैल तूल को शूल।
क्रान्ति कर देता जग में चोट, बनाता आब हवा अनुकूल॥
कुसुम से देता हीए छेद, उठाता फूंक मार से शैल।
कहीं कुछ कभी न पड़ता भेद, सदा है साफ वीर की गैल॥४॥
असंभव भी है कोई काम, मानता वीर कदापि कहीं न।
कोष में ही पाता यह नाम, लक्ष्य में अपने रहता लीन॥
सुदिन दुर्दिन में एक समान, ध्येय पर वह रखता है ध्यान।
रखता मर कट भी निज आन, यही है वीर वंश की बान॥५॥

"ऐसी होली खेलो लाल !"

[लेखक—श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र']

ठाकुर बघेलसिंह को पहले पहल जब मैंने देखा, उस समय मैं निरा बालक था, उम्र रही होगी कोई पांच वर्ष की। मगर हमारा वह प्रथम मिलन ही अन्तिम मिलन भी था। क्योंकि मुझसे परिचय होनेके दूसरे वर्ष ही यह वीर क्षत्रिय, रेल में किसी गोरे से भिड़ पड़ने के कारण जेल भेज दिया गया और वहीं उसने अपनी जीवन-कहानी समाप्त की।

मगर, ठाकुर साहब ने प्रथम दर्शन में ही मेरी छाती पर अपने अद्भुत व्यक्तित्व की जो छाप छोड़ दी थी वह आज १८—२० वर्ष बाद भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। वही होली का अवसर था। मैं घुटनों के ऊपर तक धाती और आधी बाँह का कुरता पहने, एक हाथ में रंग का पात्र और दूसरे में छोटी सी पिचकारी लिये मुहल्ले के बाल-सखाओं से होली खेल रहा था। मेरे बड़े बड़े रेशमी बाल अबीर और उस चमकती हुई चीज की बुकनी—जिसे हम लोग "बुक्का" कहते हैं—से भरे थे। मैं सिर से पैर तक लाल रंग से भींगा था।

उसी समय घरके नौकर ने आकर मुझे पुकारा "लालजी लालजी! दौड़ कर चढ़ तो बैठो मेरे कन्धे पर, हां, इस तरह ठीक है—चलो तुम्हें बाबूजी बुला रहे हैं। तुम्हें देखने के लिये कोई भले आदमी आये हैं।"

सच्ची बात यह है कि उस वक्त मुझे उस भले आदमी से मिलने का जितना लोभ नहीं था उससे कहीं अधिक लोभ उस नौकर के कन्धे पर बैठ कर "टिक्, टिक्, टिक्!" करते हुए घर आने का था। वहां पहुंच कर मैंने देखा, मेरे पिताजी किसी सफ़ेद बाल वाले, लम्बे-चौड़े व्यक्ति के साथ बातें कर रहे थे। उनकी दाढ़ी दूध की तरह सफ़ेद और काफ़ी लम्बी थी। उसे उन्होंने सिक्खों की तरह कान के ऊपर चढ़ा कर बाँध रक्खा था। उनके पैर में जयपुरी जोड़ा, सिर पर रजपूती पगड़ी और शरीर पर घुटनों से नीचे लटकता हुआ अङ्गरखा, और चूड़ीदार पायजामा था। कमर में गुलाबी रंग का एक दुपट्टा पेटी की तरह बँधा था जिसमें एक लम्बी सी तलवार लटक रही थी।

मुझे हाजिर देख मेरे पिताजी ने कहा—"यही है ठाकुर साहब

मेरा सबसे छोटा बच्चा। इसका नाम है लाला बहादुरसिंह" उन्होंने मुझ से कहा—"सलाम करो ठाकुर साहब को"

मैंने आज्ञा पालन की। प्रेम से गद्‌गद् होकर ठाकुर साहब ने मुझे गोदी में लेकर कहा—"जीते रहो, बेटा इधर आओ अब हमारे साथ खेलो।" बाबूजी से उन्होंने कहा—"अब आप जाइये अपना काम देखिये। मैं इस बच्चे से अपना जी बहला लूंगा।"

पिताजी के चले जाने पर ठाकुर साहब मुझे उसी कमरे में इधर से उधर घुमा घुमा कर अपना परिचय देने लगे।

"तुम मुझे पहचानते हो? नहीं। नहीं न?"

मैंने सिर हिला कर स्वीकार कर लिया कि हां मैं नहीं पहचानता।

उन्होंने कहा—"इस बार मैं सात-आठ वर्ष बाद आया हूं तुम्हारे घर। तुम्हारे दूसरे भाई मुझे अच्छी तरह जानते हैं। जब तुम्हारे पिता जी मेवाड़ के पास की एक रियासत में नौकर थे। तभी से मेरी उनकी मित्रता है। मैं देवपुर का रहने वाला हूं जो मेवाड़ की सीमा पर पड़ता है। चलोगे मेरे घर लाल? वहां दूध है, दही है, चीनी है, मिठाई है।"

मैंने बीच ही में टोक कर पूछा—"और कलुआ कुत्ता और भूरी बिल्ली भी है?"

"हां वह भी हैं" उन्होंने मुस्कराकर तुरन्त उत्तर दिया

"मुझे दोगे उन्हें?" उनकी दाढ़ी में अपना पंजा घुसेड़ते हुए मैंने पूछा।

"अरे हां, लाल, दूंगा क्यों नहीं। पहले चलो भी।"

मैंने कहा—"अच्छा तो फिर चलो!"

"अभी?"

"और नहीं तो कब?"

"कल चलेंगे लाल; आज तो मैं तुम्हें होली गाकर सुनाऊँगा; एक बढ़िया कहानी कहूंगा। सुनोगे"

"हां गाना सुनूंगा" मचल कर मैंने कहा—"गाओ!"

"और नाचूं भी?"

"ओहोहो! तुम क्या नाचना भी जानते हो? मुझे तो नहीं आता आओ!"

नाचने और होली गाने के पूर्व ठाकुर साहब ने बगल से अपनी तलवार खींच कर मुझे दिखाते हुए पूछा—

"इसे पहचानते हो ?"

"हाँ, हाँ, यह तो तलवार है ! मैं लूंगा इसे। मुझे देदो इसे !" मैं मचल पड़ा।

"ठहरो !" उन्होंने कहा—"जरा दूर हटकर खड़े हो। वहां,—थोड़ा और आगे—बस, अब जरा मेरे इस रजपूती नाच और होला को सुनो फिर तलवार लेना।"

इसके बाद सबला वृद्ध ठाकुर बघेलसिंह विविध प्रकार से उस तलवार को घुमा-घुमा कर पैंतरे बदलने, नाचने और अपने आपको भूल कर गाने लगे—

ऐसी होली—
ऐसी होली खेलो लाल ! ऐसी होली—

जन्म-भूमि का दुख हरने को, माता का मङ्गल करने को।
भरने को पीड़ित हृदयों में, सुख के झरझरझर झरने को॥
ले कर में कराल करवाल,

ऐसी होली—
ऐसी होली खेलो लाल !

(२)

गान समाप्त कर ठाकुर साहब ने पूछा—

"यह होली तुम्हें अच्छी मालूम पड़ी ?

मैंने कहा—"हाँ, अच्छी मालूम पड़ी। और गाओ, और नाचो ! खूब चमकती है तुम्हारी तलवार।"

"इस तलवार की, इस गाने की और मेरी इस अनोखी होली की एक कहानी है। बेटा, सुनोगे ?"

"हां, हां," वृद्ध ठाकुर साहब के गले से लिपट कर मैंने कहा—"कहानी सुनाओ। मुझे कहानियां अच्छी मालूम पड़ती हैं। मेरी दादी खूब सुनाती हैं।"

वृद्ध ठाकुर साहब ने कहानी आरम्भ की—

चारसौ वर्ष पहले की बात है। उन दिनों हमारे गांव देवपुर का यह किला आज की तरह खँडहर और सियारों के रहने की जगह नहीं

था। उसमें गांव के क्षत्रिय जागीरदार बड़े ठाट-बाट से रहा करते थे। किले के भीतर अनेक छोटे बड़े मकान, महल और बाग-बगीचे थे।

हेमन्त बीत चला था और प्रकृति के पत्ता-पत्ता पर बसन्त के आगमन की सूचना छपी-सी मालूम पड़ती थी। समय सायंकाल का था। जागीरदार के सुन्दर महल के सामने के उपवन में सुन्दरता से सजे हुए फूलों के पेड़ों से घिरे हुए एक संगमरमर के चबूतरे पर बैठे दो युवक-युवती धीरे-धीरे बात कर रहे थे—

"तुम्हारी मां क्या कहती थी ?" युवक ने युवती से पूछा।

"कहती थी," युवती ने उत्तर दिया—"इसी होली के बाद हम लोगों का ब्याह अवश्य हो जायगा। और तुम्हारी माता जी क्या कहती थीं ?"

"उन्होंने तो," युवक ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"मेरे पिता जी से कहा था कि इन दोनों की शादी कैसे हो सकती है। महासिंह तो पद्मा को बचपन से ही बहिन कह कर पुकारता है; और, पद्मा भी उसे भाई कह कर प्रसन्न होती है।"

"फिर ?" युवती ने किञ्चित संकोच से नेत्र नीचे कर पूछा।

"मेरे पिता जी ने मां को जवाब दिया कि," युवक ने कहा—"ये दोनों एक दूसरे को भाई, बहन कहते हैं तो क्या, हम गोत्र में भिन्न होने के कारण, एक दूसरे के बेटे-बेटी से ब्याह कर सकते हैं। कोई हर्ज नहीं है।"

"फिर ?" युवती ने इस बार युवक की आंखों से आंखें मिलाकर सवाल किया।

"फिर क्या, अब शीघ्र ही मैं तुम्हारा 'महा भैया' न रह कर 'कुछ और ही' हो जाऊंगा। और तुम···।" युवती के माथे से माथा सटा कर युवक ने कहा—"और तुम मेरी 'पद्मा बहन' न रह कर 'कुछ और ही' हो जाओगी। हमारा यह नाता अधिक सुन्दर दृढ़ और स्थायी होगा।"

"मगर हमारा ब्याह हो कैसे सकेगा ?" युवती ने पूछा—"सुना है शीघ्र ही फिर उन भयानक विदेशी और विजातियों की चढ़ाई, मेवाड़ पर होने वाली है। ऐसे अवसर पर तुम युद्ध करोगे या ब्याह ?"

"तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"मैं यदि पुरुष होती तो," युवती ने गर्व से उत्तर दिया—"ऐसे अवसर पर विदेशियों से युद्ध करती और जन्म भूमि मेवाड़ की उद्धार-चिन्ता में प्राण दे देती।"

"मगर, पद्मा, बुरा न मानना," युवक ने कहा—"मैं तो पहले तुम्हें चाहता हूं, फिर किसी और को। यदि युद्ध हुआ भी, तो, मैं पहले तुम से ब्याह करूंगा और फिर रण-प्रस्थान। हमारे माता-पिता की भी यही इच्छा है।"

"क्यों ?" भवों पर अनेक बल देकर युवती ने दरियाफ्त किया।

"इसलिये कि तुम-सी युवती सुन्दरियों का पता विदेशी सूंघते फिरते हैं। यदि कहीं उन्हें मालूम हो गया कि इस देवपुर रूपी गुदड़ी में भी पद्मा रूपी कोई मणि रहती है तो मुश्किल ही समझो !"

"छिः ?" बग़ल से कटार निकाल कर दिखाती हुई पद्मा बोली—"तुम भी कैसी बातें करते हो। जब तक यह मां दुर्गा हमारे साथ है तब तक विदेशी हमारी ओर क्या आंखें उठावेंगे। पिछले दो युद्धों में मेरी दो बड़ी विवाहिता बहिनें जौहर कर चुकी हैं।"

"और मेरे तीन भाई वीर-गति पा चुके हैं।"

"फिर क्या, जब तक हम राजपूत स्त्री-पुरुषों को स्वतन्त्रता और स्वधर्म और स्वदेश के लिये प्राण देना आता है तब तक एक विदेशी तो क्या लाख विदेशी भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"

(३)

"हम लोग घिरे हैं, बाबा !"

"पापी विदेशियों से, अंधी राक्षसी विदेशी सेना से, उनकी कुटिल राजनीति से, उनकी पर-धन की भूख और पर-रक्त की प्यास की इच्छा से। ओह ! बेटा; विदेशी विक्रेता, विदेशी शासक और विदेशी सैनिक कितने हृदयहीन, कैसे हिंसक और भयानक होते हैं।"

"सारी फ़सल चौपट हो गयी।"

"विदेशियों के कारण…।"

"देवपुर को श्मशान बना दिया…।"

"इन विदेशियों का नाश हो ?" बूढ़े ने इतनी ज़ोर से कहा कि उसे खांसी आने लगी। क्षण भर खांस कर वह तन कर खड़ा हो गया और बोला—"कल होली है। अनेक दिनों से घिरे रहने, सेना के हज़ारों वीर और स्वदेश भक्त राजपूतों के काम आ जाने, खाद्य सामग्री समाप्त

हो जाने और दुर्ग में चारों ओर हाहाकार का सिक्का जम जाने के कारण, प्राय: सब के उजड़े कलेजे में निराशा का उल्लू बोल रहा है।"

"फिर ? अब क्या होगा बाबा ?"

"होगा क्या—हमें दो में से एक को पसन्द कर लेना होगा। मृत्यु या परतन्त्रता। मुझे मालूम है, मैंने सुना है, कुछ लोग सन्धि की चर्चा चलाना चाहते हैं। मगर नहीं होना चाहिये ऐसा—नहीं होगा ऐसा। यदि हमारे राजा साहब ने सन्धि की, तो, मैं उससे अलग ही रहूँगा। बल्कि उस चर्चा के चलने के पूर्व ही, विदेशियों की सेना में घुस कर तलवार चलाते-चलाते, मर जाऊंगा।"

"बाबा, कल होली है। कुछ लोगों का विचार है कि अगर कल हम आत्म समर्पण करदें तो साल साल का त्योहार तो शान्ति से बीते!"

उक्त बातें सुन कर वह वृद्ध अपनी बड़ी-बड़ी तेजस्विनी आंखें पसार-पसार कर युवक की ओर देखने लगा—

"तू क्षत्री है ? किसने कही तुमसे यह बात ? ऐसी बात वीर राजपूत के मुंह से निकल ही नहीं सकती। ऐसी घृणित और कायरता भरी चर्चा क्षत्रिय सुन ही नहीं सकता। अरे, तूने सुनली ऐसी बात ! तू राजपूत का बालक है ? क्या हो गया है तेरे रक्त को बच्चे ? राजपूत का खून तो युद्ध और शत्रु के भय से कभी इतना ठण्डा नहीं होता था। राजपूत तो एक बार, पुलकित कलेवर हो—जय ! एक लिंग की जय !! बोल कर रक्त की उष्ण गङ्गा में कूद पड़ता है, प्रलय ताण्डव करने लगता है। इस पुण्य देश के रक्षक वीर राजपूतों का गर्म रक्त जब ऐसा ठण्डा पड़ जायगा तब यह हरी-भरी, सुन्दरी, प्यारी वसुन्धरा परायों के अत्याचार और व्यभिचार-ताण्डव का क्षेत्र बन जायगी। नाः, नाः, नाः ! हम सपरिवार इस यज्ञ में स्वाहा हो जायंगे पर परदेशियों के हाथों अपनी स्वतन्त्रता किसी भी दाम पर न बेचेंगे—न बेचेंगे—न बेचेंगे।"

बूढ़ा फूल फूल कर सांसें लेने लगा। उसकी प्रबल कलाइयों की बूढ़ी नसें चमड़े के बाहर झांकने लगीं—मानों, कहां हैं हमारी शान्ति के शत्रु ? आवें सामने। इस गयी गुजरी अवस्था में भी, उनके सर्व नाश का मुंह भरने के लिये हम में काफी रक्त और शक्ति है।

(४)

"इस वक्त तुम यहां कैसे आये महा भैया ?" महल के एक एकांत भाग में देवपुर के जागीरदार या छोटे मोटे राजा का युवती कन्या पद्मा

ने अपने भावी पति से पूछा—"उफ ! कैसी काली रात है । उजेला पक्ष होने पर भी न जाने कहां से आकर इन भयानक काले बादलों ने देवपुर और उसके सामने के विशाल मैदान और पीछे की पहाड़ियों और इस दुर्ग को घेर रखा है । ऐं ? बोलो—बोलो ! कुछ कहते कहते रुक क्यों गये, मझा भैया ?"

"तुम से अन्तिमबार मिलने आया हूं प्यारी बहन ।" युवक ने सजल-भाव से कहा ।

"अन्तिमबार !" धक सी होकर युवती राज कन्या ने दुहराया—"इसका क्या अर्थ है भैया ? किसी से सहायता मांगने के लिये, गुप्त रीति से, तुम किले के बाहर भेजे जा रहे हो क्या ?"

"नहीं, तुमने शायद अभी तक सब बातें सुनी नहीं आज रात ही को शत्रु पर धावा कर, कल सबेरे तक हम देवपुर के भाग्य का अन्तिम निर्णय कर लेना चाहते हैं ।"

"अभी तो कोई कह रहा था कि सन्धि होने वाली है ।"

"नहीं, हमारे शत्रु सन्धि नहीं आत्म समर्पण चाहते हैं । इधर देवपुर दुर्ग का एक एक राजपूत इस वक्त, ठाकुर कृपाणसिंह के आग लगाने से, भभक उठा है ।"

"कौन कृपाणसिंह । इस दरबार के वही बूढ़े और थके सेनापति ?"

"हां, उन्होंने आज इस क़िले में चारों ओर घूम घूम कर लोगों को मरजाने लेकिन आत्म समर्पण न करने के लिये ललकारा है । वह बूढ़ा वीर तलवार घुमा घुमा कर, नाच नाच कर और एक उत्तेजक गान गा गा कर लोगों को शत्रुओं के विरुद्ध उभाड़ता जा रहा है । उसका गाना सुन कर लोग मरने मारने के लिये पागल हो रहे हैं ।"

"कौनसा गान गाते थे ठाकुर कृपाणसिंह भैया ? ज़रा मैं भी सुनूं ।"

"पूरा तो मुझे याद नहीं, पर जितना याद है उतना ही तुम्हारे समझ लेने के लिये यथेष्ट होगा । सुनो !—

"ऐसी होली—

ऐसी होली खेलो लाल, ऐसी होली !

जन्म-भूमि का दुख हरने को, माता का मङ्गल करने को ।
भरने को पीड़ित हृदयों में, सुख के भर भर भर भरने को ॥

ले करमें कराल करवाल ।

ऐसी होली—
ऐसी होली खेलो लाल !
तुम स्वतन्त्रता के ज्ञाता हो, मुक्त, मुक्ति के निर्माता हो।
माता हो भारत पुकारती, ज्वलो, उठो ! देखते क्या हो ॥
ले कर में कराल करवाल।

ऐसी होली—
ऐसी होली खेलो लाल !

गाना गाते गाते युवक महासिंह के नथुने फड़कने लगे, कपोल और कान सुर्ख हो उठे, सांसें जोर से चलने लगीं। युवती पद्मा भी उत्तेजित हो उठी !

"अस्तु," युवक ने कहा—"आज रात को, पिछले पहर हम धावा करेंगे।"

"हमारी विजय होगी !"

"हो सकती है—होगी ही सही। मगर, हममें से शायद ही कोई उस विजय का आनन्द लेने के लिये बचे।"

"देवपुर की आने वाली पीढ़ी हमारी पूजा करेगी। हम पर गर्व करेगी। हम न बचेंगे तो क्या।"

"स्त्रियों को हमारे रण-प्रस्थान के पूर्व ही 'जौहर' करना होगा और बच्चों को किसी प्रकार बचाकर सुरक्षित स्थान में भेजना होगा। इसीलिये मैं तुम्हें यह सन्देशा सुनाने के लिये आया हूं कि मुस्कराती मुस्कराती आग में कूदने को शीघ्र ही प्रस्तुत हो जाओ !"

"मैं ?" कुछ सोचती हुई पद्मा गम्भीर भाव से बोली—"मैं जौहर नहीं करूंगी।"

"फिर क्या करोगी ?"

"होली खेलूंगी," मुस्कराहट के साथ उत्तर मिला।

"किससे ?"

"विदेशी मुग़ल सेनापति से, विदेशी दानव से।"

"तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आ रही है।"

"कल देख लोगे तब समझ में आ जायगी।"

"तो," युवक ने धीरे से कहा—"बिना तुम्हें 'अपनी' बनाये ही कल मुझे इस लोक से——?"

"मत बोलो ऐसी बात !" महासिंह को रोक कर पद्मा ने कहा—हमारा ब्याह तो होगा ही। हमें एक दूसरे से कौन अलग कर सकता है हम एक हैं—एक ही रहेंगे।"

युवक कुतूहल से अपनी बाल सखी पद्मा का मुंह देखने लगा। "यह कहती क्या है ? कल तो इस जीवन यज्ञ की पूर्णाहुति है, फिर ब्याह होगा कब ?"

(५)

मुझे ठाकुर बघेलसिंह की उक्त कहानी जितनी अच्छी नहीं लगी उससे कहीं अधिक अच्छे, कभी कभी उनके मुंह पर नाचने वाले अनेक भाव लगे। उन्हें क्षण भर विश्राम लेते देख मैंने पुनः उनकी धवल दाढ़ी में अपना पंजा घुसेड़ा और पूछा—

"फिर क्या हुआ ?"

फिर क्या बेटा उसी रात को दुर्ग में कई बड़े बड़े अग्नि-कुण्ड तैयार किये गये, आग भभका दी गई और राजपूत ललनाओं और माताओं ने, युद्ध के लिये सजे तैयार अपने प्रिय जनों से अन्तिम विदा ले ले कर, मुस्कराते हुए उन कुण्डों में कूदना आरम्भ कर दिया।

"आग में कूदने लगीं ?" ठाकुर साहब की दाढ़ी के बाहर झटके से अपना पञ्जा निकाल कर मैंने आश्चर्य से पूछा—"आग में वह जल न गयी होंगी ! आग में क्यों कूदीं ? भला कोई आग में भी कूदता है।"

हां बेटा, हमारे देश की माताएं, आवश्यकता पड़ने पर मुस्कराती हुई भस्म हो जाने में अपना सौभाग्य समझती हैं। खैर कहानी सुनो। जब प्रायः सभी औरतें अग्नि-कुण्डों में कूद पड़ीं और अङ्गारों के विमान पर बैठ कर स्वर्ग की ओर चल पड़ीं, तब, राजपूतों की बची-खुची विकट वाहिनी किले के बाहर हुई। उस सेना का प्रत्येक सैनिक केसरिया बाने से सजा था।

दुर्ग के बाहर सेना दो टुकड़ी में बांट दी गयी। एक भाग की संरक्षता में बच्चे एक सुरक्षित स्थान की ओर भेजे गये और दूसरा भाग, असावधान विपक्ष सेना पर "हर हर महादेव !" पुकार कर टूट पड़ा। मच गया चारों ओर हाहा कार। पड़ गयी दशों दिशाओं में मार मार की पुकार। तलवारें नाचने लगीं—दोनों ओर की, भाले चमकने लगे दोनों ओर के। रुण्ड पर रुण्ड और मुण्ड पर मुण्ड गिरने और नाचने और कूदने और पागल होकर हो हो हो हो करने लगे।

जब जरा प्रभात का प्रकाश फैला तो शत्रुओं से घोर युद्ध करते हुए महासिंह ने देखा, उनसे थोड़ी दूर पर कोई तेजस्वी युवक राजपूत विचित्र शीघ्रता और पराक्रम से शत्रुओं का संहार कर रहा था। महासिंह ने गद्गद् होकर उसे बढ़ावा दिया—

"धन्य वीर ! तुम मेवाड़ के गौरव हो !"

उस युवक योद्धा ने मानो अपने सहयोगी सैनिक की बातें सुन लीं। वह महासिंह की ओर देखकर मुसकराया—

"मैं कोई अपरिचित योद्धा नहीं–तुम्हारी पद्मा हूँ। महा भैया आज होली है न। मैं होली खेल रही हूं। विदेशी सेनापति मेरी कृपाण पिचकारी के प्रहार से यहीं कहीं रक्ताक्त पड़ा होगा। बड़ा आनन्द है—बड़ा सुख है इस अनोखी होली········ आह ! यह क्या ? आह !"

महासिंह ने देखा, एकाएक कई मुग़ल पद्मा पर प्रबल रूप से झपट पड़े।

"बढ़ो आगे महा भैया !" एकाएक वह पुकार उठी—"मारो अपनी खम भरी तलवार मेरे माथे पर। डालो सिन्दूर, नहीं तो तुम्हारी यह दुलहिन चली—आह ! ठीक-बस-चली मैं। मेवाड़ की जय हो।"

ठीक वक्त पर पद्मा के बीच माथे पर वार कर महासिंह ने उसे रक्त सिन्दूर पहना दिया। मगर अब वह भी शत्रुओं से बिलकुल घिर गये थे। देखते देखते चारों ओर से उन पर तलवारें बरसने लगीं। क्षण भर बाद वह भी अपनी सखी के बगल में समाप्त होकर गिरपड़े !

ब्याह हो गया ! अनोखा वर, अपनी प्रेयसी को लेकर अपने देश को चला गया।

❀ ❀ ❀

"फिर क्या हुआ ?" इस बार न जाने क्यों कांप कर मैंने उत्तेजित बघेलसिंह से पूछा।

इसके बाद पूरे दो घन्टे तक और बचे खुचे वीर राजपूत, विदेशियों के खण्डित शिरों से अपने प्राणों का मूल्य वसूल करते रहे। आखिर शत्रुओं के पांव उखड़ ही गये। सेनापति हीन सब सेना भाग खड़ी हुई।

उस दिन दोपहर के वक्त देवपुर स्वतन्त्र था, मगर सचमुच वहां का एक भी प्राणी उस स्वतन्त्रताका सुख देखनेको नहीं दिखाई पड़ता था

चारों ओर केवल गृद्ध, शृगाल और चील-कौए उस रक्त की गंगा में नहा-नहा कर होली का उत्सव मना रहे थे। देवपुर मरघटपुर सा दिखाई पड़ता था।

मगर उस भयानक सन्नाटे में, उस बीभत्स सन्नाटे में बहुत देर तक किसी घायल और वृद्ध सैनिक की क्षीण कण्ठ-ध्वनि सुनाई पड़ती थी—

"ऐसी होली,
ऐसी होली खेलो लाल!
ले कर में कराल करवाल!!"

"वह वृद्ध" अन्त में पुनः नाचते और गाते हुए बघेलसिंह ने कहा—"मेरे दादा के परदादा थे। भैया! और यह तलवार उन्हीं की जवानी की सखी है। मेरी इष्टदेवी है!"

मेरी चाहना

[लेखक—श्रीयुत दिव्य कवि]

जीवन से कुछ मोह नहीं है,
सुख, सम्पति की तनिक न चाह।
निठुर मृत्यु से द्रोह नहीं है,
और न है यश की परवाह॥
नहीं लालसा है यह मन की,
हो विस्तृत मेरा व्यापार।
वृद्धावस्था लख निज तन की,
जोड़ूं जग से मिथ्या प्यार॥
किन्तु चाहना है यह मेरी,
हरने को अरि-अत्याचार।
चमक उठे सुनकर रण भेरी,
चपला सी मेरी तलवार॥

संसार के महापुरुष

सेठ हरचन्दराय विष्णुदास

भारतीय एसेम्बली के लोक-निर्वाचित सदस्य, सिंध के प्रधान कार्यकर्त्ता सेठ हरचन्दराय विष्णुदास का उस दिन अचानक स्वर्गवास हो गया। उनकी वीरगति पर हमें हर्ष है। परमात्मा करे इस प्रकार कर्मक्षेत्र में— समर में— मरना सबको नसीब हो। इस सम्बन्ध में सहयोगी 'प्रताप' की निम्न टिप्पणी पठनीय है:—

१६ फरवरी को देहली में, सिंध के प्रसिद्ध कार्य्यकर्ता सेठ हरचन्दराय विष्णुदास का रोमांचकारी परिस्थिति में देहान्त हुआ। उस दिन एसेम्बली में कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव पेश था। उसके लिए दोनों पक्ष के बड़ी तैयारियाँ थीं। सरकारी आदमी अपने पक्ष को सबल रखने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे थे। देश के साथी भी उद्योग कर रहे थे। जो लोग बाहर थे वे बुलाये जा रहे थे। सेठ हरचन्दराय विष्णुदास ६६—६७ वर्ष के वृद्ध सज्जन थे। कुछ दिनों से उनकी तबियत ठीक न थी। इधर तो वे इतने झटक गए थे कि उनके साथियों ने एसेम्बली की पिछली बैठकों तक में उन्हें आने नहीं दिया था। किन्तु इस अवसर पर सेठजी के देश-भक्त हृदयने यह गवारा न किया कि वे रोग-शय्या पर पड़े रहें और देश की बाज़ी को एसेम्बली में हार जाने दें। इसी लिए, करांची से चलकर १६ फरवरी के सवेरे देहली पहुँचे। ११ बजे से एसेम्बली में बहस आरम्भ हुई। ला० लाजपतिराय ने प्रस्ताव पेश किया। सरकारी चारणों ने 'सात सयानों' की बिरुदावली गाई। मि० जयकर, मि० जिन्ना और श्री श्रीनिवास आयंगर ने सरकारी और खुशामदों की दलीलों के बखिये उधेड़ कर रख दिये। बड़ी तना-तनी और ज़ोर थे। लगभग २ बजे अपने स्थान से वोट देने के लिए सेठ हरचन्दराय लाये जा रहे थे कि राह में उन्हें मूर्छा आ गई। वे तुरन्त अस्पताल पहुँचाए गए। वहाँ पहुँचते पहुँचते उनका अन्त हो गया। एसेम्बली में खबर पहुँची। बहस अधूरी ही छोड़दी गई। एसेम्बली का काम स्थगित हो गया।

लोग इस वीर देश-भक्त का अन्तिम अभिवादन करके चल दिए । पुराने क्षत्रिय, रोग से चारपाई पर पड़े पड़े मरना अत्यन्त हेय समझते थे । रण में लड़ कर मरना कीर्ति-कर माना जाता था । सेठ हरचन्दराय विष्णुदास की मृत्यु पुराने क्षत्रियों की मृत्यु के समान यशस्विनी है । भारतवर्ष की स्वाधीनता के संघर्ष के इतिहास में इस मृत्यु का उल्लेख स्वर्णाक्षरों में होगा । परमात्मा इस देश के प्रत्येक युवक के मनमें सेठ हरचन्दराय विष्णुदास की यह भावना उदय करे कि वह अपने देश के लिए कर्तव्य का पालन करते हुए मरें ।

इंगलैंड का एक प्रसिद्ध लेखक

इङ्गलैंड के सुप्रसिद्ध लेखक श्री टामसहार्डी का स्वर्गवास हो गया। आप ऊंचे दर्जे के उपन्यास लेखक और कवि थे। इङ्गलैंड में आपका कैसा मान था और आपकी रचना कैसी थी, इसका परिचय 'माधुरी' की निम्न टिप्पणी से प्राप्त कीजिए:—

इंगलैंड के साहित्य-गगन का पियूषवर्षी शशधर टामसहार्डी सदा के लिए अस्त हो गया । इङ्गलैंड के जीवित साहित्य-सेवियों में उनका सबसे अधिक मान था । महारानी विक्टोरिया के समय के साहित्य-सेवियों में से अब तक जो सज्जन जीवित थे, उनमें टामसहार्डी ही प्रमुख थे । इस समय इनकी अवस्था ८७ वर्ष की थी । क्रम से ७० और ८० वर्ष की आयु पूरी करने के समय टामसहार्डी का बड़ा सम्मान किया गया था । इंगलैंड में इनकी बहुत बड़ी इज़्ज़त थी । स्वयं प्रिंस-आव् वेल्स ने इनके मकान पर जाकर इनके साथ चाय पीने में अपना सौभाग्य माना था । इनकी मृत्यु का समाचार प्रकाशित होते ही इनकी विधवा के पास जो सबसे पहला सहानुभूति सूचक तार आया, वह सम्राट् की ओर से था । आप की मृत्यु से इंगलैंड और फ्रान्स के साहित्य-सेवी बहुत दुखी हैं । इनकी अर्थी में बाल्डविन, मैकडानल्ड और बर्नार्डशॉ-जैसे लोगों ने कन्धा लगाया । टामसहार्डी इधर कई साल से साहित्य सेवा का काम नहीं करते थे । किसी प्रकार से अपने बुढ़ापे का समय काट रहे थे । समय-समय पर साहित्य-सेवियों का दल उनकी सेवा में उपस्थित होता था और उनकी दो चार बातों को सुनकर और दर्शन सौभाग्य प्राप्त करके कृतकृत्य होकर लौट आता । वर्तमान समय में साहित्य संसार से उनका इतना ही सम्बन्ध था, पर अब यह सम्बन्ध भी टूट गया ।

टामसहार्डी उपन्यास लेखक भी थे और कवि भी । फिर भी उपन्यास लेखक की हैसियत से इनका मान बहुत अधिक था । इनके उपन्यासों की बड़ी

प्रतिष्ठा है। इनमें मानव चरित्र का विश्लेषण बहुत सुन्दर हुआ है, मनोभावनाओं के चढ़ाव-उतार एवं संघर्ष तथा तारतम्य का इन्होंने ऐसा ऊहापोह किया है कि इनके उपन्यास अमर हैं। वे स्थायी साहित्य की सामिग्री हैं। इँगलैंड अपने देश के साहित्य-सेवियों का मान करना जानता है, तभी वहाँ बड़े बड़े साहित्य-सेवी जन्म लेते हैं। भारत भी कभी साहित्य-सेवियों का मान करना जानता था। यहाँ भी महाराजे लोग आसन से उठकर कवि को अपने हाथ से पान खिलाते थे। तब यहाँ भी साहित्य-सेवी थे। अब तो हमारे साहित्य-सेवी भूखों मरते हैं, उनकी उदर पूर्ति की ओर भी हमारा ध्यान नहीं है; हाँ, उनकी अच्छी से अच्छी कृतियों के लिए उन्हें कुछ गालियाँ दिलवा देने का प्रबन्ध यहाँ अवश्य है। हमारे जैसे भाव हैं, वैसे हमारे साहित्य-सेवी हैं।

महाराजा नैपाल

पाठक जानते होंगे कि पिछले दिनों नैपाल के महाराजा श्री ३ चन्द्र-शमशेरजङ्ग बहादुर राणा भारत पधारे थे। आजकल संसार में आप ही एक ऐसे हिन्दू नरेश हैं जो सर्वथा स्वतंत्र हैं। आपका परिचय देने के लिए फरवरी की 'सरस्वती' से हम यह अंश उद्धृत करते हैं:—

श्री महाराणा बहादुर ने अपने पचीस वर्ष के सुशासन में सुधार की दृष्टि से नैपाल में भारी क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। महासमर के बाद वर्तमान महाराज की अङ्गरेज़ों के साथ एक सन्धि हुई थी। उससे नैपाल एक स्वतन्त्र राष्ट्र माना जाने लगा है। यह सन्धि आप ही की नीतिज्ञता का सुफल है। हाल में फ्रांसने महाराज को अपनी सर्वोच्च उपाधि 'लिजन डी ऑनर" से सम्मानित किया है।

जो मनुष्य बड़ा सेनापति है वह प्रायः बड़ा राजनीतिज्ञ कम ही होता है। परन्तु आप इस नियम के अपवाद हैं। आप जहाँ एक ओर बड़े सेनापति हैं, वहां साथ ही उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ भी हैं। आपने नैपाल की शिक्षा में बड़ा भारी सुधार किया है। राज्य की ओर से बहुत से विद्यार्थी छात्रवृत्ति पा कर भारत में बिजली का काम, जङ्गल का काम, डाक्टरी और इंजिनियरिङ्ग आदि सीख रहे हैं। कुछ नैपाली स्त्रियां भी दाई का काम सीखने के लिए भारत आ रही हैं।

सेना-विभाग में भी अच्छा सुधार हुआ है। एक मिलिटरी स्कूल खोला गया है। सिपाहियों के निवास के लिए नये नमूने की बारकें बन रही हैं। नैपाल के पास पहले ही से बहुत बड़ी सेना थी, परन्तु अब और भी वृद्धि हुई है। सच पूछिए तो प्रत्येक गोरखा सैनिक है और इसी में नैपाल की सत्ता है।

महाराज का उद्योग-धन्धों पर भी विशेष ध्यान है। कपड़े और चमड़े के कारखाने हैं, जिनमें सेना का सारा सामान तैयार होता है। हाल में खादी बनाने के लिए भी एक कारख़ाना खोला गया है। महाराज स्वयं भी अपने सादे जीवन से स्वदेशी-वस्तुओं के प्रचार को प्रोत्साहित करते हैं। नगर में बिजली का प्रकाश होता है। टेलीफ़ोन, वैद्युतिक चिकित्सालय, बीनैवोलैंट सोसायटी इत्यादि अनेक लोकोपकारी संस्थायें भी मौजूद हैं। पहले नेपाल में दास-प्रथा किसी रूप में प्रचलित थी। आपने इस प्रथा को एकदम दूर करके दासों को स्वतन्त्र कर दिया और उनके निर्वाह के लिए भूमि मुफ़्त प्रदान कर अमलेखगञ्ज नाम की बस्ती बसा दी है। आपका यह पुण्य-कार्य इतिहास के पत्रों में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। महाराज में अबतक कार्यकारिणी शक्ति भरी पड़ी है। चौसठ-पैंसठ वर्ष की आयु होने पर भी आप दिन-रात राज्य की उन्नति के साधन ढूँढने में लगे रहते हैं।

नैपाल में महाराज की कृपा से एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बना है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत बड़ी संख्या में इस पुस्तकालय में मौजूद हैं।

नैपाल ही एक ऐसा हिन्दू राज्य है जिस पर हिन्दू गर्व कर सकते हैं। नैपाल ही में गो-ब्राह्मण की सच्ची रक्षा होती है। वर्तमान समय में नैपाल-नरेश ही सच्चे धर्म्म-रक्षक हैं। हाल में आपने एक क़ानून बनाकर धर्म्म-परिवर्तन की रोक कर दी है। आपके राज्य में मुसलमानों को भी वैसी ही धार्मिक स्वतन्त्रता है जैसी कि हिन्दुओं को। उनके बच्चों के लिए फारसी-शिक्षण का वैसा ही प्रबन्ध है जैसा कि हिन्दुओं के लिए संस्कृत का। यहाँ तक कि मुसलमान लड़कों को छात्रवृत्ति देकर यूनानी चिकित्सा सीखने के लिए भारत भेजा जाता है।

—गोकुलचन्द्र शास्त्री, बी० ए०

नोबल प्राइज़-विजेत्री

भारतवासी संसार-विख्यात 'नोबल प्राइज़' के नाम से अपरिचित नहीं हैं। संसार भरके सर्व श्रेष्ठ लेखक को यह पारितोषिक (लगभग एक लाख रुपए स्वरूप) दिया जाता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ टेगार भी इस पुरस्कार को प्राप्त कर चुके हैं। इस बार यह पुरस्कार एक महिला को प्राप्त हुआ। नीचे हम इसी महिला का परिचय 'त्यागभूमि' से देते हैं:—

इटाली यूरोप का एक छोटा पर शक्तिशाली देश है। स्त्रियों का आदर सब से ज़्यादा शायद यहीं होता है। इसके अन्तर्गत सार्डिनिया नामक एक प्रान्त है। वह तो और भी विचित्र स्थान है। पहाड़-पहाड़ियों से कुदरती तौर पर यह एक

वीर-सन्देश



नोबल प्राइज़ विजेत्री

श्रीमती ग्रेज़िया—डिलेड्डा

महावीर प्रेस, आगरा।



अलग टुकड़ा सा हो गया है। प्रतिहिंसा के भाव खूब हैं। अगर आप किसी को मार डालें तो उसका कोई न कोई सम्बन्धी बस पड़ते आपसे, नहीं तो आपके सम्बन्धियों से, वैसा ही बदला लिये बिना हर्गिज़ दम न लेगा! स्त्री-पुरुष का दर्जा यहां बराबर है।

इसी वातावरण में ग्रेज़िया-डिलेड्डा के विचार बने और परिपक्व हुए। ग्रेज़िया का जन्म इसी सार्डिनिया टापू के न्योरो नामक छोटे से स्थान में हुआ और बचपन व यौवन भी यहीं बीता। यौवनोपरान्त, विवाह होने पर, आप रोम चली गईं और तब से वहीं रहती भी हैं! पर हृदय पर तो अभी भी उसी ग्रामीण जीवन की छाप पड़ी हुई है।

इस समय आपकी अवस्था ५५ वर्ष की है। अपनी कृतियों से इटालियन साहित्य को जब से आपने समृद्ध करना शुरू किया उसे अब कोई ३० वर्ष से ऊपर हो गये। तब से आप बराबर कुछ न कुछ लिखती रहती हैं और उन सब में सार्डिनिया के जीवन की ही छाप प्रधानतः होती है। यही आपकी सब से बड़ी मौलिकता और विशेषता है।

नोबल प्राइज संसार-श्रेष्ठ साहित्यिज्ञ को मिलता है और जब से शुरू हुआ, कोई चौथाई शताब्दि बीत गई, स्त्री को मिलने का तो यह दूसरा ही अवसर है। इसलिए अब आप विश्व-विख्यात हो गईं। पहले पहल 'ला ट्रिब्यूना' नामक रोम के एक पत्र में आपके दो छोटे उपन्यास निकलने आरम्भ हुए और उसी पर आपकी इतनी खोज हुई कि आपको शीघ्र ही प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई। इसके बाद तो आपकी कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। और मुसोलिनी द्वारा स्थापित इटाली की 'अमर विद्वत्परिषद्' में जिन तीन महिलाओं को स्थान मिला है उनमें एक आप भी हैं। आपकी पुस्तकों में से कुछ के अनुवाद इङ्गलैंड, अमेरिका आदि में हो चुके हैं और बाक़ी पुस्तकों के अब हो रहे हैं। वे सब ही बड़ी अच्छी बताई जाती हैं, पर उन सब में श्रेष्ठ है 'माता' नामक पुस्तक। इसी पर आपको साहित्य-संबन्धी नोबल प्राइज़ मिला है।

चरित्र भी आपका महान् है। एक नियापालिटन के साथ आपका विवाह हुआ है। शुद्ध इटालियन भाषा में आप रचनायें करती हैं और प्राचीन परम्परा को आपने छोड़ नहीं दिया है। आपकी रचनाएँ तथ्यमूलक और प्रकृति-प्रधान होती हैं; पर दुःसाहसपूर्ण घटनाओं या ऐसी बातों के बजाय, कि जिनसे कामवासना जाग्रत हो, उनमें संयम ही दृष्टिगोचर होता है।

—मुकुंद

मार्च 1928, भाग-2, अंक-3

विविध विषय

१—सात सयानों का स्वागत—

शाही कमीशन के रूप में जो सात सयाने सायमन साहब के सभापतित्व में भारत पधारे हैं, उनका कैसा स्वागत हुआ, यह पाठकों से छिपा नहीं है। तीन फरवरी को उन्होंने भारत-भूमि पर पदार्पण किया। उस दिन सारे भारत में—शहरों ही में नहीं छोटे छोटे ग्रामों तक में—हड़ताल रही। विद्यार्थियों ने परिणाम की चिन्ता न कर देश के स्वाभिमान की रक्षा की। इसके लिए लाहौर, कलकत्ता और मद्रास में उनके ऊपर जो अन्याय किए गए वे देश के इतिहास में रक्ताक्षरों में लिखे जायंगे। हज़ारों वकीलों ने भी बहिष्कार में भाग लिया यही नहीं प्रकृति देवी ने भी देश का साथ दिया। सारे भारत से यह समाचार आया कि सब जगह उस दिन सूर्यदेवता ने दर्शन नहीं दिए और बादलों ने दुःख के आंसू बहाए। यहीं तक बस न हुआ। एसेम्बली और कौंसिलों में भी बहिष्कार की दुंदुभी बजी। मद्रास, मध्य प्रान्त और संयुक्त प्रान्त में बहिष्कार का प्रस्ताव सरकार की पूरी कोशिश करने पर भी पास हुआ। एसेम्बली में भी लोकपक्ष की विजय हुई। अब भी जहाँ जहाँ कमीशन जाता है, वहीं वहीं हड़ताल से उसका स्वागत होता है। मद्रास सरकार ने १४४ दफ़ा लगाई और पूरी कोशिश की कि बहिष्कार न हो पर वहाँ भी उसे मुँह की खानी पड़ी।

इतना होने पर भी सरकार और सायमन साहब यह कह रहे हैं कि हमारा खूब स्वागत हो रहा है। उनका कहना है कि उन्हें स्वागत के तीन सौ तार मिले। पर उन तारों ने सारी क़लई खोल दी। जिन लोगों के तार भेजे हुए बताए जाते हैं, उनमें एक को मरे पंद्रह वर्ष हो गए, एक संस्था का नाम झूठमूठ लिख दिया, एक महाशय कहते हैं कि मैंने तार भेजा ही नहीं, एक तार था बहिष्कार का और समझा गया स्वागत का। खूब! इसी प्रकार से कमीशन का स्वागत हुआ।

भारतमन्त्री, वायसराय और अनेक छोटे बड़े अधिकारियों ने लम्बे चौड़े भाषण देकर देश को डराने, धमकाने और लालच देने का बड़ा उद्योग किया।

साइमन साहब ने चिड़ियों को जाल में फँसाने के लिए दाने डाले, पर उनका वह सब प्रयत्न निष्फल हुआ। भारतवासियों ने पूर्ण मनोयोग से, एक भाव से, एकमत से कमीशन से असहयोग ही नहीं किया, प्रत्युत उसका बहिष्कार किया है। सरकार को चाहिए कि वह आँखें रहते हुए अन्धी न बने और दिखावटी बातों से हाथ खींच कर कमीशन को वापिस बुला ले।

२—माननीय पटेल की पटुता—

भारतीय एसेम्बली के प्रधान श्रीमान् पटेल की पटुता की प्रशंसा हम पहले एक बार कर चुके हैं। गत मास एक और काम आपने ऐसा किया है जिससे आपकी प्रशंसा मुक्त कंठ से करनी पड़ेगी। रिजर्व बैंक बनाने के लिए एक बिल सरकार ने पेश किया था। बहुत कुछ विचार हो जाने पर जब उसका रूप कुछ कुछ भारत हित के अनुकूल हुआ तो सरकार ने बिल स्थगित कर दिया। और फिर उसी बिल को नए रूप में पेश करना चाहा। माननीय पटेल ने नियम के विरुद्ध कह कर इस बिल को फिर पेश न होने दिया। इस प्रकार सरकारी पक्ष का विरोध करके आपने अपनी स्वाभाविक निर्भयता का परिचय दिया। एतदर्थ आपको बधाई है।

३—नेहरू जी का प्रत्यागमन—

त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू विलायत से लौट आए। यूरोप के अनेक देशों में आप गए और प्रायः सभी जगह आपका बड़ा स्वागत हुआ। आपने वहाँ अनेक व्याख्यान देकर भारत की यथार्थ स्थिति का दिग्दर्शन कराया। वहाँ से लौटने पर जो सन्देश आपने भारत को दिया है वह विचारणीय है। आपका अनुभव है कि विदेश में भारत की ओर से बड़े बुरे विचार फैले हुए हैं, उन्हें बदलने के लिए यूरोप में प्रचार होना चाहिए और यथार्थ स्थिति पर प्रकाश डालना चाहिए। नेहरू जी ने स्वयं कई मास तक यूरोप रह कर यह कार्य किया—इसके लिए उन्हें बधाई है।

४—भरतपुर का भाग्य—

भरतपुर पर कमीशन बैठते बैठते ही रह गया। आनी टल गई। फिर सरकार ने एक दीवान दे दिया। किन्तु अब की दीवान मि० मैकेंजी के रूप में एक अंग्रेज है। देखना है कि नए दीवान आ जाने पर भी राज्य का दीवानापन मिटता है या नहीं! यह तो प्रसन्नता की बात है कि भरतपुर वासियों को जिन तीन आदमियों की सख्त शिकायत थी (राजा किशन, दमोदरलाल, और भगवन्तसिंह) वे भरतपुर से निकाल दिए गए पर उनके साथ अधिकारी जगन्नाथदास का निर्वासन जनता को रुचिकर नहीं हुआ मालूम होता। अधिकारी जी तो लोक सेवक

और प्रजा हितैषी बताए जाते थे फिर उन्हें क्यों यह दंड मिला ? कुछ भी हो, यदि अब भी भरतपुर महाराज चेत जायं तो हम कहेंगे कि उनका भाग्य अच्छा है।

५—पदच्युत नरेश की लीला—

पाठक भूले न होंगे, मुमताज बेगम कांड से इन्दौर के महाराज श्री तुकोजी-राव राज्य-च्युत किए गए थे। तब से वे विदेशों में भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण से लौटते समय आप अमेरिका से मिस मिलर नाम की एक 'मेम' लाए हैं। अब आप उसके साथ विवाह करना चाहते हैं। इस विवाह से महाराज की दोन रानियां, माता, पुत्र और जाति-बन्धु सबही अप्रसन्न हैं, पर आपको उनकी परवाह नहीं है। संभवत आठ मार्च को मिस मिलर की शुद्धि और बारह को यह विवाह हो जायगा। पर इससे यह अवश्य प्रकट हो जायगा कि हमारे नरेशों की कैसी दशा है। एक स्त्री के पीछे आप राज्य-च्युत हुए थे। दूसरी स्त्री के फेरमें क्या होंगे भविष्य बतायेगा।

६—नाभा नरेश का निग्रह—

भूतपूर्व श्री रिपुदमनसिंह वर्तमान श्री गुरुचरणसिंह नाभा नरेश बहुत दिन से सरकार के कोप भाजन बने हुए हैं। बीस वर्ष पहले आप सरकार की ओर से एसेम्बली के मेम्बर बनाए गए थे। उस समय महामना गोखले ने अनिवार्य शिक्षा का एक प्रस्ताव पेश किया था। आपने सरकार के विरोध करने और सरकार की ओर से चुने जाने पर भी प्रस्ताव का समर्थन करके अपनी निर्भयता का परिचय दिया था। और भी ऐसे देशभक्ति पूर्ण कई कार्य आपने किए थे जिससे आप सर-कार की आंख के शूल बने हुए थे कुछ ही वर्ष हुए जब सरकार ने आपको राज्य छीन कर, नाभा से बाहर कर दिया था और पचीस हज़ार रुपया मासिक पेंशन नाभा राज्य से आपको मिलती थी। अब अचानक गत मास इलाहाबाद स्टेशन पर आपको बिना किसी सूचना के पकड़ लिया गया और चुपचाप चोरी से आपको मदरास की ओर भेज दिया गया। साथ ही आपका महाराजा पद छीन कर पेंशन पचीस से घटा कर दस हजार कर दी। इसका कारण सरकार बताती है आपकी राजभक्ति-हीनता। बस और कुछ नहीं। ऐसा कौन काम या अपराध आपने किया, उस अपराध की जाँच कहां और किसने की इसके बताने की सरकार को क्या जरूरत। वह तो यहाँ की निरंकुश शासक है। 'जो जिसके हक में समझा वह उसको बना दिया।' उसमें चीं चपड़ करने का या कारण पूछने का हक किसी को नहीं। तभी तो एसेम्बली में आपके विषय में विचार करने की भी आज्ञा नहीं दी गई। चोर और डाकू के साथ भी ऐसा नृशंसता पूर्ण व्यवहार नहीं किया जाता जैसा आपके साथ किया गया है। जो लोग माई बाप सरकार को दूध की

चुकी समझते हैं वे इस घटना पर विचार करें और सोचें कि एक नरेश के साथ ऐसा व्यवहार करने वाली सरकार की क्या कहा जाय। राजाओं की इतनी मान्यता हो, वहां साधारण प्रजा का क्या मूल्य हो सकता है ?

७—बृटिश माल का बहिष्कार—

आजकल यह प्रश्न ज़ोर पकड़ रहा है कि कमीशन के प्रतिवाद स्वरूप और जनता में जागृति पैदा करने के लिए बृटिश माल का बहिष्कार किया जाय। कलकत्ते में श्री सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में यह आन्दोलन बहुत बढ़ रहा है। वहाँ हज़ारों आदमी स्वदेशी की प्रतिज्ञा ले रहे हैं। वास्तव में परिस्थिति ऐसी है कि उसमें बृटिश माल का बहिष्कार करना आवश्यक हो गया है। यों तो कभी भी किसी स्वाभिमानी व्यक्ति को यथा संभव कोई वस्तु विदेशी न लेनी चाहिए, पर इस समय हमारे प्रभु जैसा बर्ताव हमारे साथ कर रहे हैं उसका वैसाही जवाब देना हमारे लिए आवश्यक हो गया है। यदि इस समय करोड़ों रुपये का कपड़ा और अन्य सामान जो इँगलैंड से आता है रोक दिया जाय तो अङ्गरेज़ों की आँखें खुल जाँय। यह बहिष्कार घृणा या द्वेष के वश नहीं, प्रत्युत राजनीतिक आवश्यकता के लिए करना आवश्यक है। हम समझते हैं कि प्रत्येक भारतवासी यह आवश्यक समझेगा कि हमेशा स्वदेशी वस्तु का व्यवहार किया जाय। न बने तो विदेशी वस्तु ले ले पर बृटिश माल कभी न ले।

८—प्रोफेसर इन्द्र की सजा—

यह प्रसन्नता की बात है कि दूसरी अदालत से अपील करने पर 'अर्जुन' सम्पादक प्रोफेसर इन्द्र और उनके सहायक श्री सत्यकाम की सजा घटा दी गई, इसके लिए आपको बधाई! अब इस मामले की अपील हाईकोर्ट में की गई है। उसके परिणाम से पूर्व हम अधिक कुछ लिखना नहीं चाहते। बृटिश कानून की वर्तमान न्यायालयों में जैसी छीछालेदर होती है वह 'हिन्दू संसार' और 'प्रताप' के मामलों से प्रकट हो चुकी है।

९—सम्मेलन का सभापतित्व—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापतित्व का प्रश्न इस समय विचाराधीन है। आशा हुई है कि इस पद के लिए पांच उपयुक्त सज्जनों के नाम पेश किए जांय। अतएव हम अपनी तुच्छ सम्मति से क्रमशः निम्न नाम उपस्थित करते हैं—स्वतन्त्र सम्पादक पं० अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयी, २ वयोवृद्ध पं० किशोरीलालजी गोस्वामी ३ साहित्याचार्य पं० पद्मसिंहजी शर्म्मा, ४ मेहता लज्जारामजी शर्म्मा और ५ श्री जगन्नाथदासजी रत्नाकर बी० ए०। इन सबके पूर्व हमारा ध्यान आचार्य द्विवेदीजी पर है, पर खेद है कि वे इस पद को स्वीकार ही नहीं करते।

बहादुरी की बातें

एक वीर बालक

मौदहा (हमीरपुर) के विद्यार्थी रामगोपाल के विवाह (बाल विवाह) के लिए माता पिता व्यवस्था कर चुके थे। विद्यार्थी ने माता पिता से प्रार्थना की कि अभी इस आयु में वे उसके विवाह की बात न सोचें, किन्तु उसकी अनिच्छा होने पर भी सब ठीक ठाक हो गया। विद्यार्थी ने विवश होकर मौदहा छोड़ दिया और माता पिता को सूचना दे गया कि जब तक वे उसके विवाह का विचार न छोड़ देंगे, वह उनसे न मिलेगा। अब सुना है कि माता पिता मान गए हैं और चाहते हैं कि अब बालक घर आ जावे।

एक ग्वाले की वीरता

छब्बीस फरवरी को हासिमपुर ज़िला मुजफ्फरनगर में एक राजपूत जंगल में गायें चराने ले गया था। दैवात वहाँ पर शेर आ निकला। वह गायों पर आक्रमण करना ही चाहता था कि वीर राजपूत की दृष्टि सिंह पर जा पड़ी। बस फिर क्या था दोनों का सामना होगया। वीर राजपूत के पास केवल एक लाठी थी। उसी से उसने सिंह के ऊपर वार किया। लाठी की चोट खाते ही सिंह ने लाठी को इतने ज़ोर से मुँह में दबा लिया कि लाठी में दांतों के गढ़हे पड़ गये। राजपूत ने ज़ोर से झटका मार कर लाठी मुँह से निकाल ली; और तुरन्त ही सिंह के सिर में इस प्रकार ज़ोर से मारी कि सिंह का सिर फट गया। सिर फटते ही वीर राजपूत की लाठियों के मारे बलवान सिंह की सँसार यात्रा समाप्त हो गयी।

डाकू पकड़ने की वीरता—

पटियाले का प्रसिद्ध डाकू कपूरा उस दिन अबोहर के पास एक गाँव में बड़ी वीरता पूर्वक पकड़ा गया। एक मकान के चौबारे में कपूरा चौबीस घन्टे बैठा रहा और वहीं से गोलियाँ चलाता रहा। चारों तरफ पुलिस के लगभग दो सौ सिपाही डटे रहे। ऐसी दशा में डिप्टी सुपरिन्टेंडेण्ट ख़ाँ बहादुर अब्दुलहक़ बड़ी वीरता पूर्वक निहत्थे कपूरा के पास गए। कपूरा ने भी वीरता में बट्टा न लगने दिया। निहत्थे आदमी पर गोली न चलाई। उल्टे उनके समझाने पर हथियार डाल दिए और आत्म समर्पण कर दिया। कपूरा और डिप्टी दोनों की वीरता सराहनीय है।

अमृतधारा की सिलवर जुबली की

स्मृति का दूसरा वर्ष

१२ मार्च से लाभ उठाइये।

१२ मार्च सन् १९२६ को सिलवर जुबली बड़ी धूमधाम से स्वर्गीय मसीहुल मुल्क हकीम अजमलखां साहब के सभापतित्व में मनाई गई थी। उस दिन की याद पाठकों के हृदयों में बनाये रखने के लिये यह निश्चय किया गया था कि सिलवर जुबली का वार्षिकोत्सव मनाया जाया करे पहला जलसा १९२७ में आनरेबल रायबहादुर जियालाल, जज हाईकोर्ट पञ्जाब के सभापतित्व में मनाया गया और १२ मार्च के वास्ते औषधियों में वही रियायतें दी गईं जो कि सिलवर जुबली पर दी गई थी। यह दूसरा साल है। इस कोई जलसा तो न मना सकेंगे, परन्तु पबलिक को उक्त रियायत से वंचित नहीं रखना चाहते इस वास्ते।

१२ मार्च को

अमृतधारा व दूसरी औषधियों तथा पुस्तकों के मूल्य में पूर्ववत् सब के लिये रियायत होगी।

अर्थात् अमृतधारा (और उसके मिश्रित) मूल्य पर मिलेंगे और बाकी औषधियां व पुस्तकें आधे मूल्य पर।

एजण्टों को भी इससे अधिक रियायत नहीं है क्योंकि, यह रियायत केवल सर्वसाधारण के वास्ते एक दिन के लिये ही होती है। यह रियायत केवल १२ मार्च के दिन के वास्ते है।

प्रत्येक पत्र के ऊपर "१२ मार्च की रियायत" लिखना चाहिये, और उसको १२ तारीख को ही डाक में डालना चाहिये। पत्र हमारे पास चाहे किसी दिन पहुंचे किन्तु डाकखाना की मुहर १२ मार्च की होनी चाहिये।

लाहौर निवासी अपना पत्र डाक में भी डाल सकते हैं और उनके वास्ते एक बक्स अमृतधारा भवन के बाहर भी रक्खा जायगा, जिसमें अपने २ आर्डर सबको डाल देने चाहियें। दवाई इसके बाद जब चाहें (एक मास के भीतर) आकर ले जायें।

उस दिन कार्यालय की भी छुट्टी होगी और एक दिनमें सबको दवाइयां दे देना भी असम्भव है। पिछले साल लोकल बक्स में ही हज़ार से ऊपर आर्डर डाले गये थे।

पाठक १२ मार्च सोमवार का दिन अभी से नोट करलें।

सूचीपत्र यदि पहले मौजूद हो तो अच्छा है, नहीं तो अभी मंगवा लें और सोच रक्खें कि आपको क्या मंगवाना है। जो महाशय चाहें रुपया भी जमा करा सकते हैं, जब तक वह रुपया समाप्त न होगा वही रियायत मिलती रहेगी।

विज्ञापक—

मैनेजर अमृतधारा, अमृतधारा भवन,

अमृतधारा रोड,

अमृतधारा डाकखाना, लाहौर।

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द्र जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ } वैसाख सं० १९८५, अप्रैल १९२८ { अङ्क ४

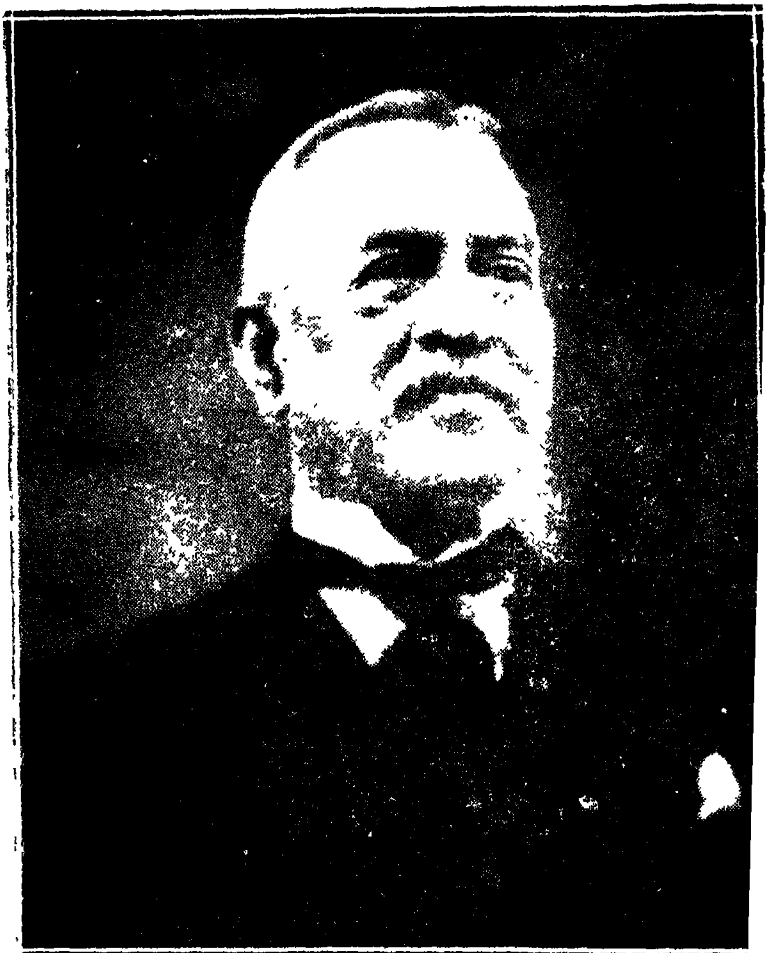
सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २) एक अङ्क का मू० ≈)

विषय-सूची

वीर-सन्देश



स्वर्गीय लार्ड सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह

महावीर प्रेस, आगरा

ॐ

वीर-संदेश

(वीर-रस-प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग २ } आगरा—वैसाख सं० १९८५, अप्रैल १९२८ { अङ्क ४

हमने क्या देखा ?

[लेखक—श्रीयुत दिव्य कवि]

शैय्या पर सड़ कर देखा है मरते कायर क्रूरों को।
विमल वीर-गति पाते देखा समर-भूमि में शूरों को॥
अग्नि में पड़ कर देखा है उज्ज्वल होते कुन्दन को।
और सुवासित होते देखा घोर रगड़ से चन्दन को॥
देखा पर-प्रकाश के कारण दीपक देह जलाते हैं।
बीज वृक्ष, मृदु फल देने को मिट्टी में मिल जाते हैं॥
भाग्य भरोसे रह कर देखा कर्म-हीन नर रोते हैं।
किन्तु स्वावलम्बी जन अपना पलभी व्यर्थ न खोते हैं॥
देखा प्रण पर प्रणवीरों को हँस-हँस कर मर जाते हैं।
बन करके आदर्श जगत में नाम अमर कर जाते हैं॥
सैनिक-शूर सिपाही देखे बाधा अगणित सहते हैं।
मातृ-भूमि के हित में वे नित किन्तु डटे ही रहते हैं॥

समालोचना

[लेखक—एक शास्त्री महोदय]

यह बिलकुल सच है कि, समालोचक-समाज साहित्य-नगर की म्यूनिसपिल-कमेटी है। इसके बिना साहित्य में असीम कूड़ा-कचरा भर जाने की बहुत सम्भावना है और बढ़ते-बढ़ते यह गन्दगी इतनी बढ़ सकती है कि, सहृदय-समाज दूर से ही नाक-भौं चढ़ा कर उसके विमुख हो जाय। आज हमारी राष्ट्र भाषा के साहित्य में कुछ ऐसी ही गड़बड़ मची है। समालोचकों का यद्यपि आज-कल अभाव नहीं—भरे पड़े हैं, परन्तु वास्तव में जिन्हें समालोचक कहा जा सकता है, उनकी संख्या गिनने के लिये आकाश की ओर दृष्टि चली जाती है। यह बात नहीं कि, हमारे यहाँ सच्चे समालोचकों का अत्यन्त अभाव ही हो, नहीं, ईश्वर की कृपा से अब किसी बात की कमी नहीं है। समालोचकों की संख्या पर्याप्त है। यदि ये विशेष अनुभवी विद्यावयोवृद्ध साहित्य महारथी अपनी कलम फिरसे डगमगाते हुए हाथों में पकड़ लें, तो साहित्य के नये पथिकों को बहुत कुछ सहारा मिल सकता है और वर्तमान गन्दगी भी दूर होकर आगे के लिए उसकी रोक हो सकती है। परन्तु, ऐसा नहीं है। हमारे बहुत से पथ-प्रदर्शक इस बर्बरतापूर्ण काल में चुप होकर बैठ गये है। हम इस विषय में कुछ नही कह सकते। हाँ, यह बात चित्त में अवश्य आती है कि—

"नीर-क्षीर-विवेके हंसालस्यं त्वमेव कुरुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुल-व्रतं पालयिष्यति कः॥"

अस्तु! तो सच्चे समालोचकों को मौन धारण कर लेने से इस क्षेत्र में औरभी कुछ अन्धाधुन्ध मच गयी है। अगणित समालोचक पैदा हो कर इधर उधर बरसाती मेंढकों की भांति टर्राने लगे हैं। मानों सूर्य्य के अलग होते ही तमस्वती में नक्षत्रों की भीड़ टिम-टिमा रही हो। नहीं यह बात भी नहीं। नक्षत्र राशि यद्यपि कुछ प्रकाश नहीं कर सकती,

परन्तु वह जनता का कुछ अहित भी तो नहीं करती। परन्तु हमारी इस समालोचक-मण्डली से तो आज साहित्य-जगत् की बड़ी भारी हानि हो रही है, जिसे प्रत्येक आँख वाला मनुष्य नित्य देखता है। इन समालोचक पुङ्गवों के प्रताप से सदा ही साहित्य-क्षेत्र में तू-तू मैं-मैं मची रहती है—अच्छी तरह गाली-गलौज होती है! यह कितनी लज्जा की बात है?

हम यह नहीं कहते कि, सच्ची समालोचना होती ही नहीं, होती है; परन्तु बहुत कम—उतनी ही जितनी कोयले की खानि में हीरे की प्राप्ति। इस सच्ची समालोचना के अतिरिक्त हिन्दी में प्रायः पाँच प्रकार के समालोचक-दल दिखाई देते हैं। इनके नामों का स्मरण कर लेना भी अनुचित या अप्रासंगिक न होगा। सुनिए—

१—अविशेषज्ञ-दल

कई लोग ऐसे-ऐसे विषयों की समालोचना लिखने बैठ जाते हैं जिन विषयों की विशेषज्ञता से वे स्वयं ही बहुत दूर होते हैं। विशेषज्ञता तो दूर की बात है, कोई कोई तो उस विषय से एक दम अपरिचित ही होते हैं। इस श्रेणी के महानुभावों का उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इन्हीं की अधिक भरमार है। पाठक नित्य ही पत्र-पत्रिकाओं में इनका परिचय पाते हैं।

२—द्वेषी दल

इस दल के लोग समालोचना के बहाने अपने दिल का मलाल अच्छी तरह निकालते हैं। समालोच्य विषय के किसी गुण की सत्ता इन्हें अपने समालोच्य ग्रन्थ में दृष्टि-गत नहीं होती। आंखों पर द्वेष की पट्टी चढ़ जाती है। साथ ही अवगुण ढूंढने के लिये महमाख बन जाते हैं और वहीं बैठ कर चोंच मारने की इच्छा करते हैं, जहां इनके काम की चीज हो। आगे बढ़कर व्यक्तिरूप में आ जाते हैं और फिर जो कुछ बन पड़ता है, करते हैं। छोटे ही नहीं, बड़े-बड़े महाजन भी इस दल-दल में आ फँसते हैं।

३—वकील-दल

कुछ ऐसे भी सज्जन होते हैं कि, जो अपने समालोच्य निबन्ध के ऊपर इतने लट्टू हो जाते हैं कि फिर सब और कुछ भूल जाते हैं—

"दये प्रेम-चसमा चखनि औगुनहू गुन जोय।"

सहृदय-हृदय साक्षी हैं कि, ऐसी समालोचना, समालोचना है या वकालत ! ऐसी समालोचनाओं से साहित्य-क्षेत्र में कैसी कुछ गड़-बड़ मचने की सम्भावना है, सो पाठक समझें। समालोचक में हंस का गुण होना चाहिए, उसे दूध का दूध और पानी का पानी अलग-अलग कर दिखाना ही उचित है।

४—असावधान-दल

इस चौथे दल में वे हैं, जो अपने समालोच्य विषय के पण्डित भी हैं, अनावश्यक अन्ध-प्रीति अथवा द्वेष भी जिनमें नहीं और जो सब प्रकार से समालोचना करने के अधिकारी हैं। परन्तु, इनमें एक अवगुण ऐसा आ जाता है, जो इन सब समालोचक-गुणों को ऐसे दबा देता है, कि—"निखिल-रसायन-राजो गन्धेनोग्रेण लशुन इव।" वह दोष है—अनवधानता। उदाहरण लीजिए। "माधुरी" की पिछली किसी संख्या में श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० के "दुर्गावती" नामक रूपक की समालोचना निकली थी। समालोचना बड़ी सुन्दर थी, इससे समालोचक की विशेषज्ञता झलकती थी—केवल "रस" का विषय मुझे साहित्य-शास्त्र के अनुकूल नहीं जँचा। अच्छा, तो देखिए, ऐसे सुन्दर समालोचक में भी असावधानी रानी ने आकर डेरा जमा लिया और सुधाकर में कलङ्क-कालिमा जरा सी लगा ही ना दी। समालोचक महाशय इस रूपक की नायिका "दुर्गावती" और नायक 'अकबर' लिख गये हैं। कथानक से अपरिचित जनों को इस समालोचना से यह भान हो सकता है कि, दुर्गावती अकबर की स्त्री होगी ! कैसा अनर्थ !! कुछ ठिकाना है !!! वस्तुतः इस रूपक की नायिका तो है दुर्गावती और "प्रतिनायक" है अकबर।

५—गपड़चौथ-दल

यह पांचवां दल दिल्ली का पांचवां सवार है। इसकी लीला अपरम्पार है। इस दल के लोगों का ज्ञान तो जो होता है सो होता ही है, किन्तु, ये लोग बड़े बड़े महनीय पुरुषों पर भी कीचड़ उछालते तनिक भी नहीं सकुचते, यह बड़े दुःख की बात है। गीदड़ शेर के कान पकड़ने जाते हैं। पण्डित-राज के शब्दों में:—

"लीला-लुण्ठित-शारदापुर-महासम्पद्भराणां पुरो-
विद्या-सद्म-विनिर्गलत्कणमुषो जल्पन्ति चेत्पामराः।
अद्य श्वः फणिनां शकुन्त शिशवो दन्तावलानां शशाः,
सिंहानां च सुखेन मूर्द्धसु पदं धास्यन्ति शालावृकाः॥"

परन्तु, इस दलका शीघ्र ही शामन होना चाहिए। यदि इन समालोचकों की कड़ी समालोचना होनी न प्रारम्भ हुई, तो समझ लेना चाहिये कि, साहित्य में शीघ्र ही बीभत्स नरक दीख पड़ेगा।

अन्त में हम दो शब्द और कह कर चुप होते हैं। यह बात हम ऊपर कई बार कह चुके हैं कि, इन भद्दी समालोचनाओं की समालोचना होनी बहुत आवश्यक है। दूसरी बात यह कि, समालोचना सम्बन्धी साहित्य के निर्माण होने की बड़ा जरूरत है। संसार का कोई भी कार्य्य बिना सहारे उत्तम और परिमार्जित रूप में नहीं हो सकता। आज कल प्रत्येक बात के लिये नियम और उसका साहित्य बनता दीख पड़ता है। परन्तु, इस आवश्यक विषय की ओर अभी तक ध्यान ही नहीं दिया गया है। हम आशा करते हैं कि राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि की संस्थाएँ तो इधर विशेष झुकेंगी ही, किन्तु उनसे पहले हमारे सहृदय विद्वान् अपनी कलम इस विषय के लिये उठायेंगे। कहने को कुछ पुस्तकें इस विषय की निकली हैं, जैसे—"साहित्यलोचन" और "समालोचना" परन्तु इनसे अभीष्ट-सिद्धि नहीं। इन दोनों पुस्तकों में से अन्तिम को ही हम समालोचना का निबन्ध कह सकते हैं, किन्तु यह निबन्ध तो इस महान् विषय की सूची मात्र भी नहीं। इस पर बड़े-बड़े ग्रन्थ-रत्न निकलने

चाहिए। "साहित्यालोचन" को हम इस विषय का ग्रन्थ नहीं कह सकते। यद्यपि उसमें प्रसंगवश इस विषय का भी उल्लेख अवश्य हुआ है पर प्रधानता से नहीं। इसे हम साहित्य ग्रन्थ-कहेंगे इसकी रचना साहित्य-शास्त्र के आधार पर है। ध्यान देने की बात है कि जिस शास्त्र में काव्य आदि शास्त्र की आलोचना होती है उसे साहित्य शास्त्र कहते हैं। और जिसमें समालोचना के नियम, समालोचक के गुण-दोष तथा समालोचनाओं की समालोचना रहती है, उसे "समालोचना-शास्त्र" कहते हैं। यह परिभाषा बहुत ठीक है और इसके अनुसार 'साहित्यालोचन' साहित्य-ग्रन्थ ही है। आशा है मेरी प्रार्थना पर ध्यान दिया जायगा। और समालोचना शास्त्र पर अधिकारी विद्वान् ग्रन्थ प्रणयन करने की कृपा करेंगे।

प्रताप-पंचक

[लेखक—श्रीयुत कविवर पद्मधर जी अवस्थी]

आगे हुआ धर्म को बचाने को बहादुरी से
दूर अन्देश था दिलावर था दाना था।
बढ़ बढ़ वीरता दिखाई समराङ्गण में
ऐसा था चतुर जो न चूकता निशाना था॥
शान था स्वधर्म की निशान हिन्दू सभ्यता का
जाति की तो जान था महान मर्दाना था।
वंश में शिशोदिया के अंश केश मर्दन का
वीर भाव भूपित प्रताप मर्दाना था॥

\+ \+ \+ \+

लेता मोरचा था, था विजेता वैरियों पे हुआ,
देता दुतकार सदा दास दुखदाई को।
शौर्य शक्ति साहस प्रदान करता ही रहा
सांत्वना स्वरूप हिन्दू जनता सताई को॥

धर्म पर दीवाना बना ठाना वीरता का ठान,
कुछ भी न जाना कभी क्लेश कठिनाई को।
भूला भोग भाव भूला भोजन भजन पर,
भूलकर न भूला कभी जाति की भलाई को॥

\+ + + +

ऐसा धर्म वीर था जो धर्म को बचाता था,
ऐसा कर्मवीर था जो दृढ़ता दिखाता था।
मस्त जाति प्रेम में था व्यस्त था बहादुरी में
पस्त हिम्मतों के वा हौसले बढ़ाता था॥
ध्यान था स्वधर्म का महान हिन्दू भावना का,
जान डालता था जोश जाति में जगाता था।
उसके प्रताप की पताका फहराती आज
बांका वीर क्षत्री सपूत कहलाता था॥

\+ + + +

आगे हुआ शक्ति से अधर्म के विनाशने को,
आगे बढ़ा साहस से धर्म के बचाने को।
आगे बढ़ा अपने बहादुरी के विक्रम के,
वीरता पराक्रम के जौहर दिखाने को॥
आगे बढ़ा हिन्दुओं की सभ्यता के रक्षण को,
विश्व में—वसुंधरा में—वीर कहलाने को।
आगे बढ़ा हिम्मत से आर्य जाति के हितार्थ
शान क्षत्रियों की आन अपनी निभाने को॥

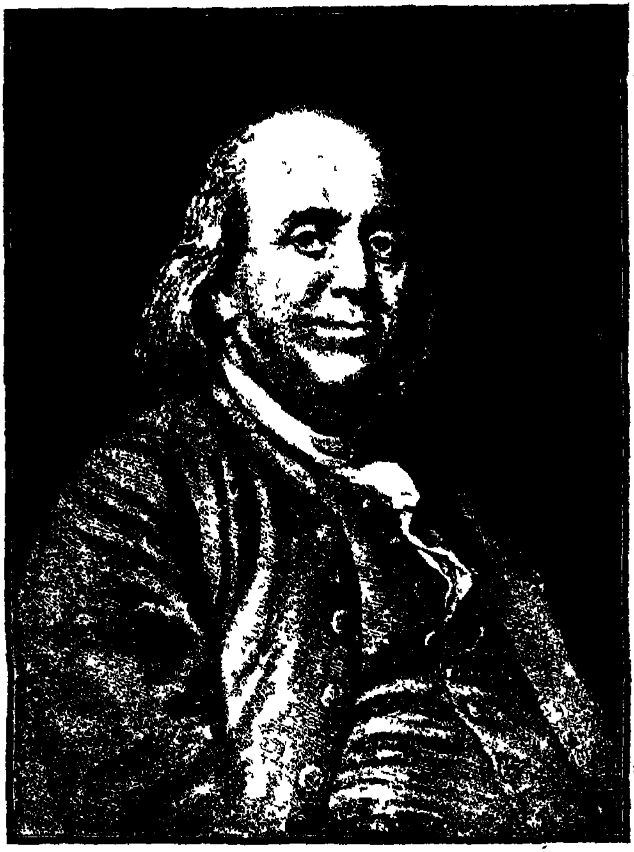
\+ + + +

भारत का गौरव समाज की विभूति भव्य,
हिन्दू धर्म के वो किसी पुन्य ही का फल था।
धारता सदैव रहा उर में अखण्ड ओज,
पौरुष प्रचण्ड था विशाल भुज बल था॥
अकबर शाह सा प्रतापी जिसके समक्ष
आँख था उठाता नहीं पाता नहीं कल था।
ढाल हिन्दुओं की था प्रताप काल वैरियों का,
जाति का था लाल निज धर्म पे अटल था॥

वीरता

वीरता दैवी गुण है। जो मनुष्य बर्बर है वह वीर नहीं। आलसी भी वीर नहीं हो सकता। पर वीर के लिए हिंसक होने की आवश्यकता नहीं। अहिंसक रहते हुए भी मनुष्य वीर हो सकता है और परम हिंसक होकर भी वह वीर नहीं हो सकता। वास्तव में जो वीर होगा वही सच्चा अहिंसक हो सकता है। कायरता और वीरता परस्पर दो विरुद्ध बातें हैं। वीरता जहां मानवी स्वभाव का सर्वोत्तम गुण है, वहां कायरता उसके लिए एक श्राप है। वीर की जहां सर्वत्र पूजा होती है वहां कायर को कोई पूछता भी नहीं। हर जगह उसे अपमानित होना पड़ता है। एक मनुष्य का भूषण है, दूसरा उसके लिए कलंक। एक स्वर्ग की सीढ़ी है, तो दूसरा नर्क का मार्ग। एक से रंक संसार विजयी होता है, तो दूसरे से राजा भिखारी। संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, सब वीर थे। वीरता विहीन पुरुष का नाम लेने वाला भी कोई न मिलेगा। वीर एक तरह के नहीं होते, बीसियों तरह के होते हैं। केवल एक बात से ही एक पुरुष वीर हो सकता है। संसार में ऐसे अनेकों पुरुष हो गए हैं जिनका सारा जीवन सादा ढंग से व्यतीत हो गया, पर उनके एक ही काम से वे संसार में विख्यात हो गए। सच्ची बात तो यह है कि जो मनुष्य वीर नहीं है, वह पृथ्वी का भार है। पैदा होकर जिसने कुछ न कुछ भाव वीरता के न दिखाए, उसका होना न होना बराबर है। दिन रात अखाड़े में दंड कसरत करते हुए भी, अपने सामने किसी स्त्री का सतीत्व हरण होते देखने वाला, पहलवान वीर, नहीं कायर है और दुबला पतला कमजोर पर अन्याय न सहने वाला साधारण आदमी, जो अपने अस्तित्व की परवा नहीं करता, वीर है। वीर की प्रशंसा करना कठिन है। वह दुखियों का सहारा, देशका दुलारा, प्राणीमात्र का हितैषी, महिमंडल का मुकुट है। वीरता पूर्वक ही जीने और मरने में मनुष्य की शोभा है।

वीर-सन्देश —



बेंजामिन फ्रेंकलिन

महावीर प्रेस, आगरा।

बैंजामिन फ्रैंकलिन

[लेखक—श्री लक्ष्मीसहाय जी माथुर, विशारद]

पाठक वीर-सन्देश के प्रस्तुत अङ्क में अन्यत्र प्रकाशित जिस चित्र को देख रहे हैं वह अमेरिका के एक महापुरुष का है, जो बड़ा उद्योगी था। उसका जीवन-वृत्त बड़े महत्त्व का है। हमारे नव-युवक उसके चरित्र को पढ़ें, मनन करें और उसका अनुकरण करके जीवन संग्राम में विजय प्राप्ति के लिये अपना आदर्श स्थापित करें इस हेतु से यहां उस महामना का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

इस नर-रत्न का जन्म उत्तरी अमेरिका में न्यू इंग्लैण्ड प्रदेश के बोस्टन नगर में ६ जनवरी सन् १७०६ ई० को हुआ था। उसके पिता का नाम जोशियस और माता का अबीया था। जोशियस पहिले इंग्लैण्ड में रहता था और आक्सफर्ड परगने में रंगरेज का काम करता था। जब वह इंग्लैण्ड छोड़ कर अमेरिका आ गया और रंगाई के काम में अपना निर्वाह होता न देखा तो उसने साबुन तथा मोमबत्ती बनाना शुरू कर दिया। उसकी पहिली स्त्री से सात बच्चे हुए थे। किन्तु, जब वह इन्हें बाल्यावस्था में ही छोड़ कर मर गई तो जोशियस को दूसरा विवाह करना पड़ा। उसी के दस बच्चों में आठवां और दोनों स्त्रियों के मिलाकर सत्रह बच्चों में से पन्द्रहवां बेंजामिन फ्रैंकलिन था।

'बहु कुटुम्बी सदा दुखी' की कहावत के अनुसार जोशियस को अपने परिवार की प्रायः सदा ही चिन्ता रहा करती थी। किन्तु, वह ऐसा परिश्रमी और कार्य-दक्ष था कि दरिद्रावस्था में भी अपने भारी कुटुम्ब के निर्वाह का कार्य बड़ी योग्यता से चलाता था। मिलनसार और सहनशील होने के कारण लोगों में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। वह यद्यपि निर्धन था, किन्तु, शिक्षा के महत्त्व को भली प्रकार जानता था। फ्रैंकलिन उसको होनहार जान पड़ता था। इस कारण उसने यह निश्चय कर लिया

था कि मुझे चाहे जितने दुःखों का सामना करना पड़े किन्तु, अपनी सन्तति को और विशेष कर फ्रेंकलिन को मैं अवश्य ही उच्च शिक्षा दिलाऊंगा।

सुशिक्षित अथवा सुयोग्य माता पिता की सन्तान उन्नत होती हैं, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु, प्रायः देखा जाता है कि ऐसे होनहार बालकों का भविष्य कभी २ बहुमत में भी परिवर्तित हो जाता है। फ्रेंकलिन का जीवन भी एक समय इसी प्रकार के भविष्य के गर्भ में था। उसके सम्बन्ध में नगर निवासियों के भिन्न २ मत थे। कोई उसे विद्वान् बनाने की सम्मति देता था तो कोई कला विशारद होने की और कोई संगीताचार्य्य बनाये जाने की। बात ठीक भी थी। क्योंकि फ्रेंकलिन को प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी रुचि के अनुसार अपने निश्चित क्षेत्र के अनुकूल समझता था।

सबसे प्रथम जोशियस ने उसको पादरी बनाना चाहा। आठ वर्ष की अवस्था में कुछ आरम्भिक शिक्षा दिला कर उसे व्याकरण पढ़ने को भेजा गया। किन्तु, पूरा एक वर्ष भी न होने पाया था कि आर्थिक-संकट ने उसके पिता को वहां से पृथक कर देने को विवश कर लिया। इसके पश्चात् कुछ समय हाथ की कारीगरी में डाल कर जोशियस ने उसको अपने ही धंधे में डालना चाहा। किन्तु, जब इसमें उसकी रुचि नहीं देखी गई तो फिर उसने पढ़ाने का ही विचार किया।

प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करके उसने भिन्न भिन्न विषयों की पुस्तकें हाथ में लीं। धार्म्मिक-पुस्तकों का उसने विशेष रूप से अध्ययन किया। लगभग पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उसने साधारणतया अच्छा अध्ययन कर लिया था और ग्रन्थावलोकन की ओर उसकी रुचि बहुत बढ़ गई थी। जब इसके भाई ने एक छापाखाना खोला तो उसमें काम सीखने को इसके पिता ने इसे वहां रख दिया। वहां उसे पढ़ने का अच्छा सुयोग मिला। उसका जीवन वैसे तो बचपन में ही अपने पिता और काका के उपदेशों से सुसङ्गठित हो चुका था। लिखने पढ़ने की रुचि भी उसको

बहुत थोड़ी अवस्था से हो गई थी। छापाखाने में उसे जो कुछ मिलता उसमें से युक्ति पूर्वक वह अपना निर्वाह करके कुछ न कुछ बचा लेता और उससे पुस्तकें खरीद कर पढ़ता। उसका कई पुस्तक विक्रेताओं से परिचय हो गया था। उनसे वह पढ़ने को पुस्तकें ले आता था और पढ़ कर लौटा देता था। आत्म-चरित्र में उसने लिखा है कि:-"इस प्रकार ली हुई पुस्तक पूरी पढ़ डालने के लिये मुझे कई बार रातभर का समय अपने बिस्तर पर बैठे बैठे ही बीत जाता था!"

उसने स्वाध्याय से अच्छी योग्यता बढ़ाई। समय पाकर प्रेस तथा सम्पादन-कला का अनुभव प्राप्त किया। इनमें उन्नति तथा सुधार किये। लेख और कविताएं लिखीं—और अच्छे रूप में लिखीं। ग्रन्थ रचना की, पत्र-सम्पादन किया, नये नये अद्भुत आविष्कार किये, नाम कमाया—यश प्राप्त किया और केवल निजी पुरुषार्थ द्वारा अपनी दरिद्रता को धन-सम्पन्नता में परिणत किया। समाज और देश की उत्साह वर्धक और आशा जनक उन्नति की और सार्वजनिक जीवन में जाग्रति डाली। अपनी मातृ-भूमि के लिये उसने एक प्रकार से अपने को न्योछावर कर दिया। स्वार्थ छोड़ा, कौटुम्बिक मोह त्यागा और व्यक्तिगत सुख को सदा के लिये तिलाञ्जलि दे दी! अपने पराधीन देश की स्वतंत्रता का बीज ऐसे अच्छे ढङ्ग से डाला जो प्रबल बन गया। इसके लिये उसको कैसे कैसे दुख उठाने पड़े, कितना परिश्रम करना पड़ा इसका साक्षी उसका उज्ज्वल चरित्र है।

जगद्गुरू भारतवर्ष को भी आज ऐसे ही उद्योगी, पुरुषार्थी, दृढ़ संकल्पी और अध्यवसायी सुपुत्रों की आवश्यकता है—लम्बी लम्बी स्पीचें झाड़ कर—थोथी बातें करते हुए जबानी जमा खर्च करने वाले चापलूसों की नहीं!

प्रिय देश बान्धवो और नवयुवको! अपनी मातृ-भूमि का भविष्य आपके ही अधीन है। भारत माता आपकी ओर आशा पूर्ण दृष्टि से देख रही है क्या आप उसकी आशा पूर्ण न करेंगे? क्या आप अपने

कर्तव्या-कर्तव्य को विचारेंगे ? हमारा प्रबल अनुरोध है कि आप अपनी अभीष्ट सिद्धि का मार्ग ग्रहण करने के लिये इस महापुरुष का आत्म-वृत्तान्त अवश्य पढ़ें ।*

जना जननी ने उसको व्यर्थ

[लेखक—श्रीयुत कर्त्ता कवि जी]

किया जिसने न विजय संसार;
छेड़ कर स्वतन्त्रता की तान।
अनूठी वीरोचित ध्वज धार;
पिया जिसने न मातृ गुण गान ॥ १ ॥
रहा जो जीवन भर परतन्त्र;
मिटाकर अतुल आर्य्य अभिमान।
किया जिसने न स्वदेश स्वतन्त्र;
शेर शिवराज-प्रताप समान ॥ २ ॥
देख कर होते अत्याचार;
न ली जिसने कर में करवाल।
रहा जो भेष जनाना धार;
जनानों की दिखलाता चाल ॥ ३ ॥
न फड़काये जिसने निज अङ्ग;
हृदय में विपुल वीर व्रतधार।
जमा कर देश प्रेम का रङ्ग;
किया जिसने न शक्ति संचार ॥ ४ ॥
धरा धन धाम स्वजन रक्षार्थ;
कभी जो हो पाया न समर्थ।
न निकला जिससे कोई स्वार्थ;
जना जननी ने उसको व्यर्थ ॥ ५ ॥

---

* मेरे ग्रन्थ 'बेंजामिन फ्रेंकलिन का जीवन चरित्र' से संकलित।

हमारी चुनौती

[लेखक—श्रीयुत जगदीशचन्द्र जी आयुर्वेदाचार्य, कविरत्न]

तुम्हारी हठ है कि हम कुछ न देंगे। हमारी चुनौती है कि हम अपना स्वत्वाधिकार लेकर हटेंगे।

तुम्हारा भुलावा छल अब हमारा पथ विचलित न कर सकेगा। हम जानते हैं—तुम प्रभु हो, शक्ति शाली हो, कूटनीतिज्ञ हो, समय समय पर हमें भटकाने को अपनी प्रत्युत्पन्न मतिसे लक्ष्य से भ्रष्ट कर देते हो। पर कब तक? जब तक हमें आत्म ज्ञान तथा वास्तविक स्थिति की आलोचना करने की सुध न थी और तुम्हारी भेद नीति से अपने सम्पन्न घर को रिक्त न कर पाये थे।

अब हम समझ गये तुम्हारी मोहनी माया और तुम्हारा पैशाचिक फोलादी पञ्जा। उसमे अब कुछ सार या रहस्य नहीं रहा। यदि होभी तो विश्व की कोई भी शक्ति कोई भी दमनचक्र हमें अपने लक्ष्य से डिगा न सकेगा।

हम जानते हैं तुम अभी तक हमें वह जो हमें चाहिये, देने के लिये प्रस्तुत नहीं हो। कमीशन का नान्द्यारम्भ करते हुये तुम कितना ही बार इसे संकेत द्वारा स्पष्ट भी कर चुके हो। और हम यह भी जानते हैं जो कुछ तुम्हें अभीष्ट है वह कमीशन की रचना के पहिले ही लिपि-बद्ध हो चुका है। पर हमारे विदीर्ण हृदय के यह उद्गार उसी प्रकार सत्य हो कर रहेंगे जिस प्रकार बीजांकुर का वृक्ष रूप से परिणत होना। इसीसे कमीशन के अभिनय के साथ साथ हम यह कहने का साहस कर रहे हैं, हमारी यह चुनौती है कि हम अपना अधिकार कभी न छोड़ेंगे।

हां, तुम हंसते हो? क्या हमारी इस चुनौती को हंस कर टालना चाहते हो? शायद इस लिये कि सन् २१ में भी हम इसी प्रकार प्रलाप कर रहे थे? तो, क्या उस समय तुम्हारे पैर नहीं डगमगा गये

थे ? क्या तुम्हारी शासन सत्ता कुछ समय के लिये कमल पत्रवत् कांप न उठी थी ? हां यदि वह कार्यक्रम उसी प्रकार कुछ दिनों जारी रहता तो तुम्हें इस प्रकार कमीशन का स्वांग रच कर हमें अपमानित करने का साहस न होता ।

तुम कहते हो हम निष्फल रहे । यदि तुम्हारा यह विश्वास है तो तुम भ्रम में हो । उस समय ने भारतीय जनता में जीवन की रचना की है । उस समय से उनके हृदय में क्रान्ति के लक्षण प्रकट हो गये हैं । उस समय से उन्हें अपने मान अपमान का अपनी स्थिति और अपने प्रभुओं के शासन का तथ्य मालूम हो गया है ।

उस समय से रचनात्मक कार्य्य ने प्रत्येक भारतीय हृदय में अशान्ति की वह चिनगारियां सुलगा दी हैं जो कभी भी सुअवसर पाकर सुसङ्गठित बृहदाग्नि के रूपमे प्रकट होकर संसार की बड़ी से बड़ी शक्तियों को भस्मसात् कर उठेगी ।

इसी से हम कह रहे हैं तुमने हमें अभी कुछ नही समझा है । यदि हमारी आन्तरिक मनोवृत्तियों को अध्ययन करने का जरा भी कष्ट उठाया होता तो कमीशन की इस प्रकार रचना कर इतना असन्तोष इतनी उद्विग्नता कभी पैदा न की होती ।

खैर अभी भी संभलिये । सावधानी से यदि कुछ करना चाहो तो सब कुछ कर सकते हो । पर कहाँ—क्या कोई इस प्रकार कभी संभला है ? साम्राज्य की मदान्ध क्रीडा क्या कभी बिना शोचनीय परिणाम भोगे शान्त हो पायी हैं । पर तुम बुद्धिमान् हो चतुर हो समय के परखने की तुम में पर्याप्त बुद्धि है इसी से हमने यह चुनौती दी है कि हम स्वत्वाधिकार प्राप्त किये बिना कभी पीछे न हटेंगे और हमारा यह प्रण सत्य की तरह निश्चित और अटल है ?

शोणित-प्यास

[लेखक—श्री० चक्रपाणि मिश्र 'विशारद']

—१—

लटें मेरी छूटी हैं तात,
दिखाती तुमको नङ्गा गात।
मिटाओ सत्वर ही अन्देश,
सुनाती रोकर निज सन्देश॥

—२—

करो उस शुभ युग का आह्वान,
न हो जिसमें प्राणों का मान।
प्रलय करती हो ताण्डव नृत्य,
दिखाये रण-चण्डी निज कृत्य॥

—३—

चलादो फिर जौहर की रस्म,
करो भारत से भय दुख भस्म।
पहनलो फिर केसरिया वस्त्र,
करो धारण वीरों के अस्त्र॥

—४—

लगादो आग देश में पुत्र,
निकलती लपटें हों सर्वत्र।
करो पूरी माता की आश,
बुझाओ मम शोणित की प्यास॥

बिचार-तरङ्ग

[लेखक—श्रीयुत सुरेन्द्र शर्मा]

हमारी शक्ति की उपेक्षा

प्रत्येक स्वतन्त्र देश में, सैनिक शिक्षा अनिवार्य्य है। इससे वहां प्रत्येक नागरिक सैनिक शिक्षा पाने के लिए बाध्य है। यदि कोई बाहरी आक्रमण हो, तो, किसी भी स्वतन्त्र देश के प्रत्येक युवक पर, अपने देश की रक्षा की ज़िम्मेदारी आ पड़ती है। युद्ध के समय, चारों ओर से, युवकों के समूह उमड़ पड़ते हैं, और बात की बात में, अपने शत्रु को करारा जवाब दे देते हैं। परन्तु, इस देश में हमारे हाकिमों की विचित्र माया है। वे इस देश की रक्षा के नाम पर, यहीं के खर्च से, समूची ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा तक के लिये गोरी सेना रखते हैं! शासकों ने हमारे हाथ से, हथियार छीन लिये इसलिये कि, हम कहीं बिगड़ कर अपना घर खुद सम्हालने लगे, तो, वे फिर इस देश में नवाबी न कर सकेंगे। परन्तु, हम पर वे इतने मिहरबान हैं कि सागर पार से गोरी पलटन और जहाजी बेड़ा लाकर हमारी रक्षा कर रहे हैं! यूनिवर्सिटियों में पढ़ने वाले, तथा बाहर के करोड़ों युवक पंगु हैं। वे फौजी शिक्षा से बञ्चित हैं। यदि, इस देश के ऊपर, कोई बाहरी आक्रमण हो, तो, यहां के लोग बग़लें झांकेंगे। परन्तु, शासक क्या करेंगे, सो वेही जानें। फिर भी यह तो निश्चय है कि जिस दिन भारत के आस पास कोई बाहरी शक्ति रण-भेरी बजावेगी, उस दिन, कम से कम यहां, तो, करोड़ों आदमियों को, युद्ध का नाम सुनते ही ज्वर आ जायगा। क्यों? इसलिए कि यहां गोली की आवाज़ से लोग कानों में उंगली लगा लेते हैं और तोप का धड़ाका, तो, शायद उन्होंने इस जन्म में कभी सुना ही नहीं। हमारे ही देश में हमारी शक्ति की उपेक्षा की जा रही है। हमें फौजी शिक्षा से बञ्चित करके, शासकों ने अपने और हमारे दोनों के सर्वनाश की योजना कर दी है। इस प्रकार वर्तमान शासकों द्वारा की गई हमारी शक्ति की उपेक्षा, हमें और उन्हें, दोनों को ले डूबेगी।

सरकार की टेढ़ी चाल—

सन् २१ में एसेम्बली में एक प्रस्ताव पास हुआ था कि इस देश में फौजी शिक्षा के लिए सेण्डहर्स्ट ऐसा एक कालिज खोला जाय। तब, सरकार इस प्रस्ताव के ऊपर अमल करने को राज़ी थी। सन् २३ और २५ में फिर यही प्रश्न छिड़ा, और एसेम्बली के जवाब से, एक सरकारी कमेटी का जन्म हुआ इस बात की

जांच करने के लिए कि भारतीय सेना मे सुधार और फौजी शिक्षा के लिए कालिज स्थापित करने के सम्बन्ध में क्या कार्रवाई की जाय। सर एण्ड्र्यू स्कीन इस कमेटी के प्रेसीडेंट बनाये गये। स्कीन कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में भारतीय सेना में अनेक सुधार किये जाने की सिफारिश की। सैनिक शिक्षा की चर्चा करते हुए उसने कहा कि इस शिक्षा में अभी समय लग सकता है, किन्तु, भारतीय सेंडहर्स्ट की स्थापना करके, इसका श्री गणेश तो तुरन्त ही किया जाना चाहिए। हाल ही में एसेम्बली में कमाण्डर-इन-चीफ ने फौजी सुधारों के सम्बन्ध में एक लम्बा चौड़ा भाषण दे डाला। उससे स्पष्ट है कि फौजी कालिज बनाने के सम्बन्ध में स्कीन कमेटी की सिफारिश को सरकार ने बालाए ताक़ रख दिया। इसी पर भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को बहुमत से सरकार की धाधली को रोकने के लिए, एसेम्बली की कार्रवाई स्थगित कर देने का प्रस्ताव पास करना पड़ा! सरकार भी बड़ी टेढ़ी चाल चला करती है। एक ओर तो वह कहती है कि हिन्दुस्तानी स्वराज्य के क़ाबिल नहीं इसलिए कि, वे युद्ध कला में कोरे हैं, इससे वे बाहरी आक्रमणों से अपने देश की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ हैं। दूसरी ओर उसने इस देश के लोगों को सैनिक शिक्षा से वञ्चित रख छोड़ा है, और इस देश में सेना का राष्ट्रीय करण नहीं होने देती। यह सरासर अन्धेर-गर्दी है। समय आ गया है कि इस देश के लोग सरकार की टेढ़ी चाल को समझें, और ज़रूरत के मुताबिक़ उसका करारा जवाब देने का आयोजन करें।

सफ़ेद झूठ

थोड़े दिन हुए, लार्ड बर्कनहेड ने हाउस आफ़ लार्डस में कहा था कि एक भी हिन्दुस्तानी ऐसा नहीं है जो कहे कि अंग्रेज़ी सेना भारत से हटा ली जाय। हमारे शासक इस देश के सम्बन्ध में इसी तरह की बे-सिर-पैर की बातें कहते रहते हैं। आज एसेम्बली में, सरकार के कानों पर लाला लाजपतराय कह रहे हैं कि अंग्रेज़ सेना इस देश मे शान्ति और व्यवस्था के लिए नहीं, किन्तु, देश की गुलामी की ज़ञ्जीर अधिकाधिक मजबूत करने के लिए है। श्रीनिवास आयङ्गर का कहना है कि किसी भी समय, इस देश का शासन, अंग्रेजों की अपेक्षा भारतियों से अधिक अच्छे ढंग से चलाया जा सकता है। इस देश के लोग गोरी पल्टन को यहां रखना नहीं चाहते। वे अपने यहां के फौजी मामलों का प्रबन्ध करने के लिए बिल्कुल उपयुक्त हैं। मि० आयङ्गर का यह भी कहना है कि हम नहीं चाहते कि किसी भी विदेशी पल्टन को भारतीय सेना के नाम से पुकारा जाय, बल्कि हम असली अर्थ में अपनी भारतीय सेना रखना चाहते हैं! हमारे हाकिम अपने मतलब

के लिए झूठी और तोड़-मरोड़ कर बात कहने में ज़रा भी नहीं हिचकते। इस हालत में, जबकि भारतीय जनता के प्रतिनिधि एक स्वर से, गोरी पल्टन हटाकर, भारतीय सेना के राष्ट्रीय करण की बात पर ज़ोर दे रहे हैं, भारत-सचिव लार्ड बर्केनहेड का यह कहना कि एकभी हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी सेना के भारत से हटालिये जाने के पक्ष में नहीं है, सफेद झूठ नहीं तो क्या है? आख़िर हमारे शासक इस प्रकार झूठ बोल कर दुनिया को धोका कब तक देते रहेंगे? वे अपनी ही क्रूर कृतियों से, भारतीय-जनता की आकांक्षाओं को पद-दलित कर, दुनिया के सामने, अपनी राजनीति के दिवालियापन और कूटनीति का भण्डाफोड़ कब तक करते रहेंगे?

शासकों की मनोवृत्ति

एसेम्बली की बहस में युद्ध-सचिव ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि अंग्रेज़ सिपाही भारतीय अफसर की मातहती में, पलटन में काम न करेंगे। क्यों? इस लिए कि अंग्रेज़ सिपाही गोरे हैं, और भारतीय अफसर काले? काले आदमी में, गोरों पर शासन करने की भला क्षमता ही कहां हो सकती है, क्यों? यही मनोवृत्ति है जो भारतीयों को सेना में ऊँचे ओहदों पर काम करने देने में बाधा डालती है। जिस शासनमें इस प्रकार की काले और गोरेकी वर्ण-भेदी दूषित भावना का राज्य है, वहां भला सेना का राष्ट्रीय करण कौन होने देगा? इस दशा में सरकार ने यदि स्कीन कमेटी की सिफारिशों को बालाए-ताक़ रख दिया, तो ताज्जुब ही क्या है?

कमीशन का ख़र्च

सायमन कमीशन का आना, इस देश के लोगों की इच्छा के विरुद्ध हुआ है। एसेम्बली, यू० पी०, सी० पी० और मद्रास कौन्सिलों में कमीशन के बायकाट के जो प्रस्ताव पास हुए हैं, और कमीशन के आने पर यहां बायकाट का जो आन्दोलन हुआ है उससे भारतीय जनता की विरोध-भावना स्पष्ट प्रकट है। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी हमारे हाकिम ३ लाख ४० हजार का कमीशन-खर्च ग़रीब भारतीय जनता के ऊपर लादना चाहते हैं। जनता के प्रतिनिधियों ने एसेम्बली में इतने भारी खर्च की रक़म को नामञ्जूर कर दिया। यदि इस पर भी कमीशन का खर्च भारतीय ख़ज़ाने से दिया गया तो सरासर अन्याय होगा। कमीशन के चन्द सरकारी और उनके पिठ्ठू लोगों से दावतें उड़ा और केवल सरकारी लोगों के तैयार किए हुए वायुमण्डल में सैर-सपाटा करने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उसने साधारण भारतीय जनता से मिल भेंट कर, उसके दुःख-दर्द की बातें सुनीं

समझें। हम पूछते हैं कि जिस समय सायमन कमीशन विलायत से रवाना हुआ था, क्या उसने इस देश के लोगों से पूछ लिया था ? यदि नहीं, तो उसका ख़र्च इस देश के मत्थे ज़बरदस्ती क्यों मढ़ा जाता है ? ख़र्च की इतनी भारी रक़म विलायती ख़ज़ाने से क्यों नहीं अदा कर दी जाती ?

अधिकार का मद

आख़िर, वही हुआ जिसकी आशङ्का थी। वायसराय ने सायमन कमीशन का १ लाख ४० हज़ार का ख़र्च, जिसे एसेम्बली ने नामंजूर कर दिया था, अपने विशेषाधिकार से ग़रीब हिन्दुस्तानियों के मत्थे मढ़ दिया। फ़ौजी विभाग, भारत मन्त्री के दफ़्तर, और वायसराय की कार्य्य कारिणी के मेम्बरों का भ्रमण-ख़र्च भी एसेम्बली ने ठुकरा दिया था, किन्तु धांधली से वायसराय साहब ने उसे मंजूर कर दिया। यह दशा है जिसमें वर्तमान शासन का चक्र बड़ी निरंकुशता से चल रहा है। सुधारों की जो न्यामत इस दलित देश के भले के नाम पर, हमें दी गई है, उससे दर असल में इस देश को लाभ है या हानि, यह दुनिया जानती है। दुनिया यह भी जानती है कि सुधारों का नाटक खेले जाने के बाद इस दीन देश का रक्त उसी तरह चूसा जाता है, जैसे कि सुधारों के पहले चूसा जाता था। हमारे शासकों को अपने विशेषाधिकार पर गर्व है। उन्हें यह विश्वास है कि प्रजा-पक्ष एसेम्बली में जो चाहे पास कर दे, परन्तु होगा वही जिसे वे करना चाहेंगे, अथवा होने देंगे। जो कुछ हो, पण्डित मोतीलाल नेहरू के शब्दों में, जनता की इच्छा की परवाह न करने के कारण कितने ही साम्राज्य उजड़ गए और आज अङ्गरेज़ शासक भारतीय आकांक्षा को पैरों तले कुचल रहे हैं, इसलिए उनका अन्तिम समय भी दूर नहीं। जब तक शासक विशेषाधिकार के बल पर मन-मानी जुल्म-ज्यादतियाँ और धांधली कर सकते हैं, तब तक, भारत की भलाई के नाम पर महज़ सुधारों के गीत गा कर दुनिया की आंख में धूल नहीं झोंकी जा सकती। जिस दिन इस देश में अगणित युवकों की आत्म-बलि के प्रताप से सर्वत्र पूर्ण स्वाधीनता की सुरभित समीर बहेगी, उसी दिन हमारे शासकों के सर से विशेषाधिकार का भूत उतरेगा उससे पहले नहीं। उस दिनके आगमन की प्रतीक्षा अब देर तक न करनी होगी। क्योंकि हमारे शासक विशेषाधिकार के मद में अपनी कलुषित कृतियों से अपने आप अपनी क़ब्र खोदने का आयोजन कर रहे हैं। अधिकार का मद यदि हमारे शासकों को ले डूबे तो ताज्जुब क्या है ?

कवि-कीर्तन

गोस्वामी तुलसीदास और वीर-रस

[लेखक—श्री० किशोरीदास जी वाजपेयी, शास्त्री]

१—उपक्रम

जग पुनि दूजो जगमग्यो, कोउ कवि तुलसी सो न ।
कायरता-मुख देत जो, कविता-तुलसी-सोन ॥

गोस्वामी जी ने जो कुछ कहा है, अपूर्व और सजीव है। उनका वीर-रस वर्णन भी लोकोत्तर है। पद पद पर ओज टपकता है और भाव तथा रस की भरमार है। हृदय फड़क उठता है।

लोग कहते हैं, स्त्री और ब्राह्मण के ऊपर वीरों को हाथ न छोड़ना चाहिए—ये अवाध्य हैं। परन्तु, मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम ने वध क्रिया स्त्री ताड़का से प्रारम्भ करके ब्राह्मण रावण पर समाप्त की। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी पहले पूतना को ही इस संसार से विदा किया था। बात यह है कि जो धर्म्म के विरुद्ध जाय और दूसरों का धर्म्म बिगाड़े; समझाने पर भी न समझे; तो फिर उसे 'येन केन प्रकारेण' समाप्त कर देने में ही धर्म्म की रक्षा और संसार की भलाई है।

भाई सहित रामचन्द्र विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिए चलते हैं। बीच में ताड़का राक्षसी के प्राण लेकर आश्रम पहुँचते हैं, और गर्व-पूर्वक उत्साह से कहते हैं, मुनिवर! अब:—"निर्भय यज्ञ करहु तुम आई।" आत्मबल पर कैसा विश्वास है! यज्ञ विध्वंस करने के लिए मारीच और सुबाहु धावा करते हैं। मारीच के तो आपने ऐसा 'बिनुफर

* मेरे 'वीर-कवि-विनोद' का एक दोहा है। —लेखक

बान मारा', कि बस, वह 'सत जोजन गा लंका पारा !' सुबाहु रहा, सो- "पावक सर सुबाहु पुनि जारा।" बाकी इनकी सेना बची। उसे लक्ष्मण जी ने चौपट कर दिया—"अनुज निसाचर कटक संहारा।" यज्ञ पूर्ण हुआ। सीता-स्वयंवर देखने जनकपुर पहुँचे।

९—परशुराम और राम

धनुष तोड़ चुकने पर महाक्रोधी परशुराम आते हैं। सब राजा-महाराजा गायब हो जाते हैं—"बाज झपट जनु लवा लुकाने।" जो सामने रह गये, वे थर थर कांपते हुए—"पितु समेत कहि कहि निज नामा, करन लगे सब दण्ड प्रणामा।" परन्तु, "अति डर उतर देत कोउ नाहीं।" इस पर लक्ष्मणजी मैदान में कूदते हैं। अच्छी नोक-झोक होती है। देखने लायक़ है। रामचन्द्र दोनों को समझाते हैं। परशुराम से कहते हैं, जाने दीजिये, महाराज ! यह अभी लड़का है। इसे इतना ज्ञान नहीं है। क्षमा कीजिए। इधर लक्ष्मण को समझाते हैं, भैय्या ! इनसे क्यों ऐसी बातें करते हो ? ये ब्राह्मण हैं, मुनि हैं, पूज्य हैं। ये जो कुछ कहें, हाथ जोड़ कर सुन लो, इसी में कल्याण है। पर, दोनों में से कोई भी नहीं सुनता। अन्तत परशुराम श्रीराम पर ही उलटे बिगड़ते हैं, कहते हैं, बस, तेरे ही इशारे से लक्ष्मण उछल रहा है। तुम दोनों एक जैसे हो। मैं तुम दोनों को ठीक कर दूंगा। अब श्रीराम जी अवसर जान कर कहते हैं:—

"सुनहु लखन कर हम पर रोषू, कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू।"

और:—

"टेढ़ जानि संका सब काहू, बक्र चन्द्रमहिं ग्रसइ न राहू।"

*कैसी सुन्दर अनुभव-पूर्ण सूक्ति है। 'लेश' और 'दृष्टान्त' ने वह सजावट वाक्य की करदी है कि आंखों के साथ दिल काबू से बाहर हो जाता है।

रामजी कहते हैं, सुनिए भृगुपति जी:—

"जौ हम निदरहिं विप्र बदि, सत्य कहहु भृगुनाथ !
तौ अस को जग सुभट जेहि, भय बस नावहिं माथ ?

महाराज, आप ब्राह्मण हैं । अन्यथा, संसार में और कौन ऐसा सुभट है, जिससे डर कर यह सिर उसके आगे झुक सके ? सोचिए तो सही ! क्योंकि, महाराज, हम क्षत्रिय हैं:—

"देव दनुज भूपति भट नाना, सम बल अधिक होउ बलवाना ।
जौ रन हमहिं प्रचारइ कोऊ, लरहिं सुखेन काल किन होऊ ।"

कैसे वीरोचित शब्द हैं ! देवता हो, राक्षस हो, बराबरी के बल का हो, अथवा, अधिक बलशाली हो, यदि वह रण में हमें ललकारेगा, तो आनन्द से लड़ेंगे, फिर भले ही काल ही क्यों न हो ! ये हैं, क्षत्रिय हृदय से निकले हुए शब्द । 'गर्व' सञ्चारी भाव से पुष्ट श्रीराम का 'उत्साह' अभिव्यक्त होकर 'वीर-रस' के रूपमें परिणत हो रहा है । फिर कहते हैं:—

"छत्रिय तनु धरि समर सकाना, कुल कलंक तेहि पामर जाना ।"

अहा ! कहां हैं आज वे क्षत्रिय ? ये शब्द हृदय को चीरते चले जाते हैं ! परन्तु, महाराज,—

"विप्र वंस कै असि प्रभुताई, अभय होइ जो तुम्हहि डराई ।"

वीरता कैसी धर्म्म की चाशनी में पगी है !

३—खर और दूषण आदि

मिसमेयो की बड़ी बहन शूर्पणखा आई । रामके इशारे से लक्ष्मण ने उसके नाक कान उड़ा लिये । चिल्लाती हुई वह अपने भाई महाप्रतापी खर-दूषण के पास गई । दूतिन तो थी ही । वहां और सब कह कर यह भी कहा कि उनके पास एक स्त्री भी बड़ी सुन्दर है । वे लोग सेना लेकर चढ़ आये । फौज के चलने से—"धूरि पूरि नभ-मण्डल रही ।" राम ने लक्ष्मण से कहा:—

"लइ जानकिहि जाहु गिरिकन्दर, आवा निसिचर कटक भयंकर ।"

लक्ष्मणजी ने तुरन्त ऐसा ही किया । इधर रामने 'निसिचर कटक भयंकर' देख कर भी, घबड़ा कर नहीं, परन्तु—"बिहँसि कठिन कोदण्ड

चढ़ावा।" पहले धनुष ठीक करके, तब फिर अपनी और तैय्यारी करते हैं। अहा! क्या ही शोभा है:—

कोदण्ड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बांधत सोह क्यों।
मरकत सैल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥

फिर:—

"कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि, चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु, गजराज घटा निहारि कै।"

अभूत-पूर्व दृश्य 'उत्प्रेक्षा' से कैसा सजाया गया है।

फौज आ पहुँची। श्रीराम को देखकर सलाह बंधी कि भई, इसे मारो मत, जाने दो। हां, इसकी स्त्री ले लो। यह खबर इसके पास भेज दो। दूतों ने खबर पहुंचाई। श्रीराम ललकार कर कहते हैं:—

"हम छत्री मृगया बन करहीं, तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं।
रिपु बलवन्त देखि नहिं डरहीं, एक बार कालहु सन लरहीं।"

क्या अब भी वे क्षत्रिय भारत में हैं? क्या फिर कभी होंगे? परन्तु, हां:—

"जौ न होइ बल घर फिरि जाहु, समर बिमुख मैं हतउं न काहु।"

और, ये तो डरपोकों की चालबाजियां हैं कि राम सुकुमार बचा है, इससे क्या लड़ें? सुनो:—

"रन चढ़ि करिय कपट चतुराई, रिपु पर कृपा परम कदराई।"

दूतों ने यह बात जाकर कही। आग लग गई। छिड़ गई। मचा घमासान! उस समय श्रीराम ने क्या किया—

"प्रभु कीन्ह टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भये बधिर व्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा॥"

आखिर धनुष की टंकोर थी, कुछ मजाक तो था ही नहीं और न आज कल के क्षत्रियों की नरेन्द्र मण्डल में प्रभु वायसराय की छत्र छाया में, विनोद-करतलध्वनि ही थी। फिर तो:—

"सावधान होइ धाये, जानि सबल आराति।
लागे बरसन राम पर, अस्त्र शस्त्र बहु भांति॥"

परन्तुः—

"तिन के आयुध तिल सम, करि काटे रघुवीर।
तानि सरासन स्रवन लगि, पुनि छांड़े निज तीर॥"

और क्या! पहले शत्रु का वार बचाया, तब फिर अपने पैने बाण उन पर छोड़े। बिना कुछ सोचे-विचारे भैंसा-युद्ध थोड़े ही था कि उधर से अस्त्र-शस्त्र आ रहे थे, उन्हें बचाये बिना ही आप भी अन्धा-धुन्ध अपने बाण छोड़ने लगते। आखिर रघुवीर थे।

श्रीराम की बाण-वर्षा ने शत्रु सैन्य में हाहाकार मचा दिया। भगदड़ मच गयी पर वे तीनो भाई अपने सैनिकों को ललकारने लगे। हुक्म कर दिया कि आज जो कोई समर से भाग कर जायगा, उसे हम अपने हाथ से मार देंगे। फिर तो वीर राक्षस सैनिक क्रुद्ध होकर लड़ने लगे। इधर श्रीराम ने जोर से बाण छोड़ना शुरू किया तोः—

"भट कटत तन सत खण्ड, पुनि उठत करि पाखण्ड।
नभ उड़त बहु भुज दण्ड, बिनु मौलि धावत रुण्ड।"

इस प्रकार बेढब छनी है, इस रङ्ग के रसिक जन कहीं पर इसे अच्छी तरह देखें, आनन्द आ जायगा, यहाँ तो बानगी भर है।

श्रीरामजी ने वीरता से और अनेक उपायों से समस्त शत्रुओं को धराशायी बातकी बातमें करदिया—"करि उपाय रिपु मारे छनमें कृपा निधान"

फिरः—

"धुआँ देखि खरदूषण केरा, जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा।"

पूरी जोगिनी थी। रावण भी कहे में आ गया—"विनाशकाले विपरीतबुद्धि।"

४—जटायु प्रेम

रावण सीता को लिये जा रहा था तो जटायु ने देखा, वह उस दुष्ट से खूब लड़ा, पर वृद्ध था, राक्षस राज को अच्छा मजा चखा कर उसके शरीर को चलनी की तरह छेद कर धराशायी हो गया। पड़ा पड़ा अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था कि सीताजी को ढूंढते हुए श्रीरामजी उधर से आ निकले।

आः "कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुबीर ।
निरखि राम छवि-धाम मुख, बिगत भई सब पीर ॥"

क्या कोई अपने वीर सिपाही की इससे अधिक क़दर करेगा ? जटायु ने सब हाल कहा, रामजी ने आँखों मे आँसू भर लिये और कहा:—

"पर हित बस जिनके मन माही, तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।"

आप स्वर्ग जाइये, आपने अपने वीरोचित कर्म से स्वर्ग जीत लिया है—"तात करम निज तें गति पायी ।" परन्तु एक प्रार्थना है। स्वर्ग में जाकर:—

"सीता हरन तात जनि, कहेउ पिता सन जाइ ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहइ दसानन आइ ।"

अहा ! कैसे शब्द हैं ! एक एक मात्रा मे क्या क्या आनन्द भरा है !! सीधे-सादे शब्दों मे कैसा रस है ! वाह उत्साह ! अहा प्रत्यपकार बुद्धि ! धन्य है । अवश्य ही इससे अधिक अच्छा वीर-रस का उदाहरण दुर्लभ है । अधिक की कौन कहे, इसकी टक्कर का ही खोजे नहीं मिलने का । 'जो मैं राम'—अगर मै राम हूँ तो क्या होगा ? रावण स्वयं, अकेले नहीं, कुल सहित आकर कहेगा ! 'राम' मे "अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि" का कैसा आनन्द है ? डर है तो यही कि पिताजी कहीं यह न सुन लें कि रावण सीता को ले गया और राम से कुछ न बना ! हायरे आज के भारत ! आज तेरी उसी छाती पर हज़ारों अबलाओं का अपहरण होता है और पति जनाने नाममात्र के पति—देखते ही रह जाते हैं और फिर भी मूछों पर ताव देते हैं ! कुछ शर्म नहीं ! समय की बलिहारी है !!!

५—सुग्रीव से मैत्री और बालिबध

वीरों को वीरो की जरूरत होती है । वीर मखमल के गद्दों पर नहीं कंकड़ो पर पलते हैं । अर्वाचीन इतिहास में भी गुरु गोविन्दसिंह और शिवाजी को ग़रीब किसानों ने ही अपने सिर देकर स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा करने में सफल किया था। प्रताप को भीलों ने सहारा दिया था ।

रामने, अयोध्या छोड़ते ही, सबसे पहले निषादराज से भेट की—

हृदय से हृदय मिलाया। गृद्धराज जटायु की तो अन्त्येष्टि क्रिया भी अपने हाथ की—पिता के समान! क्या कोई अपने वीरों का सम्मान करेगा? ऐसे ही स्वामी के इशारे पर वीर अपने प्राण न्योछावर करते हैं।

अब श्रीराम को कुछ फौज की जरूरत थी—लंका पर चढ़ाई करनी थी। सबसे पहले तो सीता का पता लगाना था, जो किसी विशिष्ट सहायता के बिना हो नहीं सकता था। रामने राजा बालि को छोड़ कर दुखी सुग्रीव से मित्रता की। आपस में एक दूसरे के दुःख सुख से परिचित हुए। सुग्रीव ने कहा:—"सुनहुँ रघुवीरा।"

"तजहु सोच मन आनहु धीरा।"

क्योंकि:—"सब प्रकार करिहहुं सेवकाई, जेहि विधि मिलिहिं जानकी माई।"

श्रीराम ने भी कहा, सुग्रीव, मैं तेरा कण्टक जरासी देर में दूर कर दूंगा:—

"सुनु सुग्रीव मारिहहुँ, बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गये न उबरहिं प्रान॥"

और क्या! फिर राम-प्रतिज्ञा ठहरी। जो कह दिया, कह दिया—रामोद्विर्नाभिभाषते। उस बालि को यह एक बाण से मारने की प्रतिज्ञा है, जिसने रावण के भी नाक मे दम कर दी थी, उस रावण के, जिसने त्रिलोकी कम्पा दी थी। प्रतिज्ञा के अनुसार बालि को मारा—एक ही बाण से मारा। मरते समय बालि कहता है:—

"मैं बैरी सुग्रीव पियारा, कारन कवन नाथ मोहि मारा।"

क्योंकि:—"धर्म हेतु अवतरेउ गोसाईं।
परन्तु:—मारेउ मोहि ब्याध की नाईं॥"

रामने वृक्ष की ओट मे छिप कर मारा था। बालि उसी बात को कह रहा है। धर्म्मवीर श्रीराम उत्तर देते हैं:—

"अनुज बधू भगिनी सुतनारी, सुनु सठ ये कन्या-समचारी।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई॥"

ठीक है जो ऐसा पापी है, उसे छलसे, बलसे, किसी भी तरह मार दो, परम धर्म्म है। सुन्दर उत्तर है। उत्तर क्या है, धर्म्मशास्त्र का सार है।

आगे क्या होता है। रामने सुग्रीव को राजा बनाया। आप प्रवर्षण पर्वत पर कुटी बनाकर वर्षा बिताने लगे। सुग्रीव राज्य पाकर इन्दौर नरेश सर-तुकोजी की तरह ऐशो-आराम में मस्त हो गये। फिर क्या किसी दुखिया की सुध रहती है। कई महीने बीत गये। सुग्रीव ने खबर ही न ली। तब तो श्रीरामचन्द्र को क्रोध आया। ऐं! इसकी तो यह प्रतिज्ञा थी, कि मैं सीता के ढूंढ़ने में अपना सब कुछ लगा दूंगा, पर राज्य पाकर यह ऐसा मद-मत्त हो गया है कि कुछ खबर ही नहीं रही। तो फिर बसः—"अब सुग्रीव की भलाई नहीं हैः—"

"जेहि सायक मारा मैं बाली, तेहि सर हतउ मूढ़ कहं काली।"

लक्ष्मण जी को तो जरासे इशारे की देरी रहती ही थीः—

"लछिमन क्रोधवन्त प्रभु जाना, धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना।"

रामने समझा कि लक्ष्मण तो जाकर एकदम प्रलय कर देगा। क्रोध इसके संभाले न संभलेगा। उन्होंने तुरन्त साफ करके कहाः—

"भय दिखाइ लै आवहु, तात, सखा सुग्रीव।"

भाई, सुग्रीव मित्र हो चुका है। उसे केवल भय दिखा कर ले आओ—धनुष डराने के लिए चढ़ाये रखो, पर बाण छोड़ न देना।

कैसी नीति है। यहां वीरता सफल होती है। लक्ष्मण गये। सुग्रीव डर गये। होश आया। इधर-उधर ढूंढ़ने के लिए अनुचरों को कड़ी आज्ञा देकर भेजा। सीता जी का पता लगा। फिर शत्रु के भाई विभीषण को फोड़ा—उसे राजा बनाने का वचन दिया, वचन तो वचन, तिलक भी पहले ही कर दिया। दृढ़ प्रतिज्ञ राम पर विश्वास था ही। फिर क्या था? घरका भेदिया लंकादाह हो गया। मित्र सुग्रीव की सेना ने, सेना तो अलग, उसके एक अनुचर हनुमान ने ही, जो जो जौहर दिखाए और जैसा कुछ उसका वर्णन गोस्वामी जी ने किया है, वह सब फिर देखिएगा। अच्छी तरह देखिएगा, ये ही चीजें तो मर्दों के देखने की हैं।

बहादुरी की बातें

बाघ के साथ एक शिकारी की लड़ाई

तिरुवेला में एक बाघ ग्राम की सड़क पर आ गया और एक यात्री पर हमला कर बैठा। यात्री के चिल्लाने पर लोग तुरन्त जमा हो गये। बाघ भुण्ड की ओर झपटा और उसने एक स्त्री एक पुरुष को घायल किया। इतने ही में एक शिकारी बन्दूक लिये हुए आ निकला। उसने बन्दूक छोड़ी परन्तु निशाना चूक गया। क्रुद्ध होकर जानवर ने शिकारी पर हमला किया। दोनों में जीवन मरण के लिये घोर संग्राम होने लगा। सब लोग भाग गये किन्तु एक युवकने पीछे से बाघ के गले में रस्सी डाल दी और उसे खूब जोर से मरोड़ा। इससे बाघ के प्राण निकल गये। शिकारी भी बच गया और सब लोगों का भय भी दूर हुआ।

एक हिन्दू महिला की वीरता

गत २२ फरवरी को रात्रि के लगभग १२॥ बजे हुगली जिला के कुरांडू बाडार स्थान के श्री अमूल्यधन घोष के घर पर १४, १५ डाकुओं ने धावा किया और घर का दरवाजा तोडने की चेष्टा करने लगे। उस समय अमूल्य बाबू अपनी स्त्री पुत्री सहित सो रहे थे। वह डाकुओं का मार्ग रोकने के अभिप्राय से तलवार लेकर खड़े हो गये। इसी समय एक तेज हथियार से वे घायल कर दिए गए। डाकू इसी हथियार से दरवाजा तोडने की चेष्टा कर रहे थे स्वामी को आपत्तिग्रस्त अवस्था में देखकर अमूल्य बाबू की स्त्री अपने लडके को गोद में लेकर छतपर चढ़ गयी और वहां से ईंटें फेंकने लगी। उसकी इस मारसे एक डाकू बहुत सख्त घायल हुआ। इसी बीच में पडौस वाले वहां पर आ गये और डाकू अपने घायल साथी को लेकर भाग गये।

प्राणों की बाजी लगा कर भाई की रक्षा

पटियाला-राज्य के फजले नयीम नामक एक दस वर्ष के बालक ने अद्भुत साहस का कार्य कर दिखाया है। कहा जाता है कि उसका छोटा भाई खेलते-खेलते कुए मे गिर गया। सौभाग्यवश एक रस्सी कुए में लटक रही थी। नयीम अपने जीवन का मोह छोडकर रस्सी पकड़ कर कुए में कूद पड़ा। रस्सी बड़ी कड़ी थी, अतएव उसके हाथ कई जगह कट गए और खून निकलने लगा, परन्तु उसने इसकी तनिक भी चिन्ता न की और अपने भाई को डूबने से बचा लिया। इतने में और लोग भी जमा हो गए और उन्होंने उन्हें बाहर निकाल लिया। सब से अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि नयीम तैरना बिलकुल नहीं जानता था!

हलद्वानी में सती

हलद्वानी (नैनीताल) में पं० हीरावल्लभ कपिलाश्रमी का स्वर्गवास हो गया। ये एक मास से बीमार थे। इनकी पत्नी ने, जिसकी अवस्था २० वर्ष से अधिक नहीं थी, पतिके जीते जी खूब सेवाशुश्रूषा की। पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्री ने सती होने का आग्रह किया, पर लोगों ने अनेक प्रकार से उसे रोक रक्खा। मगर दूसरे दिन १० बजे उसने पति के उपानह तथा उनके हेतु खुद बनाए हुए नए दस्ताने व नई धोती अपने वक्षस्थल से लपेट, कटघरिया नाम की बड़ी नहर में कूदकर अपने प्राण दे दिए। बाद को सती का दाह भी पति की चिता पर किया गया। क़ानून की कड़ाई रहते हुए इस गए-गुजरे ज़माने में भी एक न एक वीराङ्गना अपनी पति-परायणता दिखला ही जाती है। धन्य !!

एक हिन्दू देवी ५०९ मील की दौड़ में प्रथम

हाल ही में पेरिसमें एक लंबी दौड़ हुई। इसमें मिस गायत्री नामक हिन्दू रमणी प्रथम रही। दौड़ ३० मील प्रति दिन के हिसाब से होती थी। विलायती वीरों ने खूब जोर लगाया परन्तु ५०० मील दौड़ कर ही चीं बोल गये। गुलाम देश की गायत्री देवी सब को पीछे छोड़ आगे बढ़ गई। ५०६ मील तक दौड़ कर उसने मिस मेयो के हिमायतियों को चकित कर दिया।

महिला का अपूर्व साहस

मिदनापुर का समाचार है कि हाल ही में चन्द्रकोना नामक गांव के अविनाश तेली के मकान पर डाकू चढ़ आये। अविनाश की स्त्री ने देखा कि रक्षा का कोई उपाय नहीं है, तो वह एक नङ्गी तलवार लेकर और नङ्गी होकर डाकुओं के सामने आ गई! इस महिला का ऐसा निर्भीक एव चण्डी-स्वरूप देखकर उनके होश उड़ गए और वे भाग गए। इस प्रकार महिला ने अपने जानो माल की रक्षा कर ली। —चाँद।

गोली खाकर भी सिपाही ने डाकू को पकड़ लिया

कुछ दिनों से मेरठ की पुलिस एक डाकू दल की फिराक में दिल्ली में घूम रही थी। ४ अप्रेल को जमना पुल पर अब्दुल लतीफ नामक एक डाकू दिखायी पड़ा। सिपाही ने टेलीफ़ोन द्वारा पुल के दूसरे दरवाजे ख़बर दी। डाकू यह देख कर भागा। सिपाही किशनलाल ने उसका पीछा किया और डाकू को पकड़ लिया। डाकू फायरें करता रहा और आखरी गोली ने सिपाही को बुरी तरह घायल किया परन्तु उसने डाकू को न छोड़ा और वह गिरफ़ार कर लिया गया। वीर किशनलाल कुछ देर बाद मर गया तब बड़ी धूमधाम के साथ उसका जलूस निकाला गया।

संसार के महापुरुष

जोजी रिजल

[लेखक—श्री० प्रेमचन्दजी बी० ए० 'माधुरी' सम्पादक]

'जोजी रिजल' उन आदमियों में था, जिनके जीवन की सबसे बड़ी हार उनकी सबसे बड़ी जीत होती है।

एशिया में फिलिपाइन-द्वीप समूह तो तुमने देखा ही होगा। पहले यह द्वीप स्पेन वालों के अधिकार में था। अब उस पर संयुक्त-अमेरिका का राज्य है। वहां के लोग अपना असली धर्म, असली भाषा, सब त्याग करके स्पेन का धर्म मानते हैं, और स्पेन की भाषा बोलते तथा लिखते हैं। धर्म, भाषा, रहन-सहन सब-कुछ बदल डालने पर भी स्पेन ने उन लोगों को स्वराज्य नहीं दिया। वहाँ के लोग स्वराज्य के लिए आन्दोलन कर रहे थे और स्पेन-सरकार कभी वादे करके कभी आपस में फूट डालकर—और कभी कठोर नीति से उन लोगों को कुचलती रहती थी। अन्त में वहाँ एक 'गाँधी' का अवतार हुआ। उसी 'गाँधी' का नाम 'जोजी रिजल' था।

'जोजी रिजल' अपने देश की दुर्दशा पर बराबर आँसू बहाता रहता था। विदेशियों के हाथों अपने भाइयों की हत्या, बहनों का अपमान और नीति का खून होते देख कर उसे असीम दुख होता था। उसने सुधार के लिए युवकों की संस्थायें बनाईं, समाचार-पत्र निकाले, और व्याख्यानों द्वारा जनता को जगाने लगा। गाँधी जी की भाँति वह भी प्रजा को शान्त रहने के लिए कहा करता था।

स्पेन सरकार को उसके ये प्रयत्न भयंकर मालूम हुए। उन्होंने उसको पकड़ कर कैद कर देना चाहा। उसको यह खबर मिल गई। वह चुपके से भाग निकला और फ्रांस पहुँच कर कानून पढ़ने लगा। उसकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि उसने २—३ सालों में ही विज्ञान, दर्शन, चिकित्सा आदि कई शास्त्रों की सनद हासिल कर ली।

फ्रान्स ही में उसने एक उपन्यास लिखा । इसमें उसने उस अन्याय का चित्र खींचा, जो स्पेन वाले उसके देश पर कर रहे थे । पुस्तक एक सची घटना के आधार पर लिखी गई थी । पुस्तक की भाषा, शैली और चित्रण इतने सजीव थे कि फिलिपाइन में घर-घर उसकी चर्चा होने लगी । स्पेन सरकार ने तुरन्त ही पुस्तक का फिलिपाइन में आना बन्द कर दिया । मगर लोग उस पुस्तक के लिए इतने उत्सुक हो रहे थे कि चोरी से कपड़े की गाँठों में वह लाई जाती थी । लोग छिप-छिप कर उसे पढ़ते थे और रोते थे ।

इस उपन्यास के प्रचार से 'जोजी' का दिल और बढ़ा । उसने एक दूसरा उपन्यास लिखा, जो पहले से भी सुन्दर था । वह भी फ्रान्स में ही छपा और चोरी से फिलिपाइन पहुँचाया गया । इस पुस्तक ने तो मानों देश में आग लगादी लोग खुले-खजाने सरकार की निन्दा करने लगे । स्पेन के कर्मचारी 'जोजी' पर दाँत पीस-पीस कर रह जाते थे । उसे पा जाते तो कचा ही खा जाते ।

मगर 'जोजी' स्पेन-सरकार से जरा भी न डरा । उसने जो कुछ लिखा था, आँखों-देखी बातें थीं । उसके पास प्रमाण भी मौजूद था; फिर वह क्यों डरता । वह किसी भी अदालत के सामने अपनी सफाई पेश कर सकता था । इस लिए, पढ़ाई पूरी हो जाने के बाद, वह फिलिपाइन आ पहुँचा । यहाँ लाखों स्त्री-पुरुष उसका स्वागत करने के लिए जमा थे । जिस वक्त वह जहाज से उतरा, सारे शहर में हलचल मच गई । वह जनता का मित्र था । लोगों ने इतनी धूमधाम से उसका स्वागत किया, मानो उनका राजा आ गया हो ।

स्पेन सरकार भी दाव-घात देख रही थी । 'जोजी' पर विद्रोह फैलाने वाली पुस्तक लिखने का अपराध तो था ही· आखिर वह पकड़ लिया गया । जनता में बड़ी खलबली मची । जान पड़ता था कि खून-खराबी हुए बिना न रहेगा पर जोजी ने—हथकड़ियाँ पहने और पुलिस के सिपाहियों के बीच में घिरे होने पर भी—उन्हें यही उपदेश दिया कि 'शान्त रहो' ।

जोजी पर मुकदमा चला दिया गया । मुकदमा तो नाम को ही चलाया जा रहा था; सरकार ने तो उसे दण्ड देने का पहले ही निश्चय कर लिया था । कई दिन तक न्याय का नाटक होता रहा । आखिर उसे मौत की सजा दे दी गई । उसे गोली मारे जाने का फैसला सुना दिया गया ।

फौज का एक रिसाला 'जोजी' को सारे शहर में घुमाता हुआ किले के सामने वाले मैदान में ले गया । वहाँ उसकी हथकड़ियाँ खोल दी गईं । उसके चारों

तरफ फौज के सिपाही खड़े थे। कप्तान ने उससे कहा—मुझे हुक्म है कि तुम्हें गोली मार दूं। तुम सामने से गोली खाना पसन्द करते हो या पीछे से ?

जोजी ने कहा—आप सामने से मारें।

यह तो हुक्म के खिलाफ है।

क्या आपको पीछे से गोली चलाने का हुक्म मिला है।

हाँ खेद है कि मुझे यही हुक्म है।

क्या आप इस हुक्म के बदलने के लिए नहीं कह सकते ?

खेद है कि मुझे इसका अधिकार नहीं है।

तो फिर आपको जो हुक्म मिला है, उसे पूरा कीजिए।

कप्तान शरीफ था, पर हुक्म के विरुद्ध क्या कर सकता था ? उसने एक क्षण के बाद कहा—आप किसी को अन्तिम सन्देश भेजना चाहते हों तो वह मैं पहुँचा दूंगा।

'जोजी' ने धन्यवाद देते हुए कहा—मेरे भाइयों से मेरा यही सन्देश कह दीजियेगा कि जरूरतों के गुलाम न बनें। बस अब, आप अपना काम कीजिये।

यह कह कर 'जोजी' ने आँखें बन्द कर लीं। 'धाँय ! धाँय !' की आवाज आई, और उस वीर देशभक्त की लाश जमीन पर गिर पड़ी !

स्पेन-सरकार ने उसकी हत्या करके अपनी पाशविकता का ही परिचय नहीं दिया, उसकी पीठ में गोली मारकर अपने कमीनेपन का परिचय भी देदिया।

'जोजी' तो मर गया ! किन्तु उसका उपदेश आज भी अमर है !

—'बालक'

लार्ड सिंह

लार्ड सिंह की मृत्यु का समाचार पाकर समस्त भारत दुखित हुए बिना न रहेगा। यह सच है कि अन्य प्रसिद्ध नेताओं की तरह लार्ड सिंह का नाम जनता में प्रसिद्ध नहीं हुआ पर इसका कारण योग्यता या देशभक्ति का अभाव नहीं हो सकता। ये दोनों गुण आपमें थे और पूर्ण मात्रा में थे। पर लार्ड सिंह "जनता के आदमी" ही नहीं थे। उनका कार्यक्षेत्र भिन्न था। जनता से अलग रह कर देश के कल्याणार्थ, अपने अपने विचारानुसार, कार्य करने वाले जो अनेक सत्पुरुष हो गये उनमें ही लार्ड सिंह थे। इसके सिवा, यद्यपि आपकी देशभक्ति सच्ची थी पर राजनीतिक विचार ऐसे थे जो जनता का हृदय खींचने में सर्वथा असमर्थ थे। आप देशभक्त थे पर साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य के उदार आशय पर आपका

विश्वास था। आप स्वतन्त्रता चाहते थे पर उस साम्राज्य के भीतर रहकर। आपका अपने देशवासियों पर विश्वास था, पर अङ्गरेजों की न्याय-प्रियता पर, शायद, तत्तोधिक था। जलियानवालाबाग जैसे पैशाचिक अत्याचारों से आपका भी हृदय विदीर्ण हुआ था पर उसे खोलकर आप जनता को दिखाना पसन्द नहीं करते थे, अपना क्रोध शासकों की मण्डली में ही प्रकट कर तथा उनमें रहकर उन्हें सन्मार्ग पर लानेका प्रयत्न किया करते थे, यह नहीं कि आप अपमान सहन करके भी नौकरशाही की भीतरी परिषद् में रहना पसन्द करते थे। कई बड़े बड़े अधिकारों का थोड़े ही दिनों में त्यागकर आपने उनसे अपना पिण्ड छुड़ाया था। तात्पर्य यह है कि तत्वत आप वैसे ही देशभक्त और योग्य थे जैसे अधिकतर प्रसिद्ध नेता हो गए हैं पर आपका दृष्टि कोण अलग था इससे सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र में कभी न आये। इसीसे इतने बड़े विद्वान् और कार्य कर्त्ता होनेपर भी आपने भारतीय नेता का पद कभी ग्रहण नहीं किया और न इसकी आप कभी परवाह ही करते थे। आपने अपने ढङ्गसे पर बड़ी योग्यता के साथ स्वदेश की सेवा कर ६४ वर्ष की उमर में यह लोक त्याग किया।

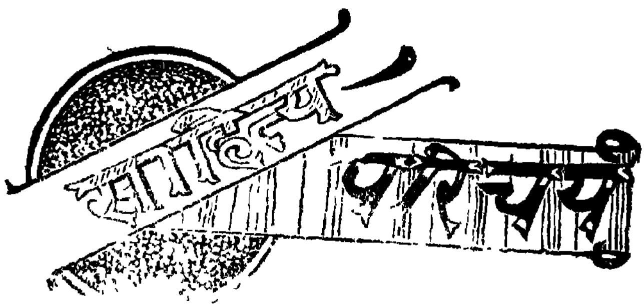
सन् १८६४ ई० के इसी महीने में एक सुप्रसिद्ध और धनी कायस्थ कुल में श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंहका जन्म हुआ था। वीर भूमि जिले के रायपुर ग्राम में आपका जन्म हुआ था। ईसवी १८ वीं सदी के अन्तमें रायपुर के सिंह बड़े भारी जमींदार थे और राजा चित्रसेन के दरबार में बड़े पदपर नियुक्त थे। श्री सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह के पिता श्री शितिकण्ठसिंह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में पहले मुन्सिफ और बाद सदर अमीन थे। सत्येन्द्रप्रसन्न को दो वर्षका ही छोड़कर पिता स्वर्गधाम सिधारे। केवल १३ वर्षकी अवस्था में इण्ट्रेन्स (आज कलकी मैट्रिक) परीक्षा पास कर आप कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालेज में पढने गये और दो वर्ष बाद पहले वर्ग में एफ० ए० (इण्टरमीडियेट) परीक्षा पास की। १६ वें वर्ष पुरानी प्रथाके अनुसार, माताके दुराग्रह से आपकी शादी हो गयी। इस समय आप बी० ए० में पढ़ रहे थे। इसी समय आपके बड़े भाई नरेन्द्रप्रसन्न सिंह जो डाक्टरी सीख रहे थे, बालिग हुए और पिता की सम्पत्ति से १०,००० रु० उन्हें मिला। यह रकम मिलते ही उन्होंने छोटे भाई सत्येन्द्रप्रसन्न के साथ विलायत जाकर शिक्षा ग्रहण करने की ठानी। उन्हें रोकनेका बहुत प्रयत्न किया गया पर ज्ञान के भूखे और उत्साही युवकों के सामने किसी की कुछ न चली और विवाहके एक ही वर्ष बाद सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह अपने बड़े भाई के साथ इङ्गलैंड के लिए रवाना हो गए। बैरिस्टरी सीखते समय ही मधावी सत्येन्द्रप्रसन्न ने अपने शिक्षकों को

अपनी योग्यता से मुग्ध कर लिया और अनेक छात्रवृत्तियाँ प्राप्त कीं। सन् १८८६ ईसवीमें आप ससम्मान बेरिस्टरी परीक्षा उत्तीर्ण हुए। कानूनी ज्ञान के सिवा आप ने लैटिन, फ्रेञ्च, जर्मन, स्पेनिश और इटालियन भाषाओं में भी निपुणता प्राप्त की। तथा यूरोपके अनेक देशोंमें जाकर संसारका प्रकृत ज्ञान तथा नवीन सभ्यता का रहस्य समझ लिया। उसी वर्ष अपनी उम्र के २२वें वर्ष में आप स्वदेश लौट आये और कलकत्ता हाइकोर्ट के एडवोकेटों में अपना नाम दर्ज कराया।

उन दिनों कलकत्ते में एक से एक बढ़कर बैरिस्टर थे उनके रहते सत्येन्द्र-प्रसन्न जैसे सुयोग्य युवकका आगे बढ़ना असम्भवप्राय था। यहां तक कि सुयोगके राह देखते देखते निराश होकर आपने नौकरी के लिये प्रार्थना की थी पर विचार पति सर जार्ज नाक्सने उन्हें नौकरी नहीं दी। सम्भव है कि यही आपके भाग्यो-दयका कारण हुआ हो। यदि नौकरी मिल जाती तो शायद आज आपका नाम भी कोई न जानता। नौकरी नहीं मिली और बेरिस्टरी में नाम करने का अवसर मिला योग्यता तो थी ही, परिश्रमी भी थे और ईमानदारी के साथ काम करना भी जानते थे। अवसर मिलते ही आगे बढ़ने लगे और देखते देखते सफलता मिलने लगी। १९ वीं सदी के अन्त में कलकत्ते के बड़े बड़े बेरिस्टरों में आपकी गणना होने लग गयी थी। सन् १९०३ ई० में आप बंगाल सरकार के स्टैण्डिङ्ग कौंसिल बनाये गये। इस समय तक मद्रास के सुप्रसिद्ध सर भाष्यम् ऐयंगर के सिवा कहीं कोई भारतवासी एडवोकेट जनरल नहीं हुआ था। बंगाल में सब प्रथम, सन् १९०३ ई० में, श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह को यह पद मिला। इसके बाद भारत-सचिव लार्ड मोरले वायसराय लार्ड मिण्टो और स्वर्गवासी श्री गोखले के प्रयत्न से सन् १९०९ ई० में आप ही पहले पहल वायसराय की शासन-परिषद् के व्यवस्था-सदस्य (ला मेम्बर) बनाये गये। डेढ़ साल के बाद वह पद त्यागकर आप फिर बेरिस्टरी करने लगे। सन् १९१५ में आप कांग्रेस के अध्यक्ष बनाये गये। उसके बाद स्वर्गवासी मांटेगू से मिलकर आपने 'सुधार' तयार किये और महा समर के समय भारत सरकार के प्रतिनिधि का भी काम किया। सन् १९१९ ई० में आपको "लार्ड" की उपाधि मिली, जो अब तक किसी भारत सन्तान को नहीं मिली है। उसी वर्ष आप प्रिवी कौंसिल के सदस्य बनाये गये और बाद लार्ड सभा में सहकारी भारतसचिव का काम करने लगे इसके बाद आप ही बिहार के गवर्नर बनाये गये पर इस पदपर अधिक काल तक टिक न सके। इस छोटे से चरित्र से भी मालूम होगा कि ब्रिटिश शासन में कई बड़े बड़े पद भारतसन्तानों में लार्ड सिंह ने ही सब से पहले पाये। बंगाल के आप पहले ऐडवोकेट-जनरल हुए। वायसराय की शासन परिषद् में आप

ही सब से पहले गये। आपके सिवा अब तक कोई भारत सन्तान "लार्ड" नहीं हुआ, सहकारी भारतसचिव नहीं हुआ और प्रान्त का गवर्नर नहीं हुआ। आपकी योग्यता ऐसी थी कि विदेशियों को, अपनी इच्छा के विरुद्ध भी—कहते हैं कि आपके शासन-परिषद् के सदस्य बनाये जाने का विरोध स्वयम् सम्राट एडवर्डने भी किया था!—आपको बड़े बड़े पद देने पड़े पर पराधीन देश की विपरीत परिस्थिति ने इस राज भक्त पर स्वाभिमानी पुरुष को किसी पद पर अधिक काल तक टिकने नहीं दिया!

'आज'



बेंजामिन फ्रेंकलिन—अनुवादक—श्री० लक्ष्मीसहाय जी माथुर विशारद, प्रकाशक—श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य-समिति इन्दौर। पृष्ठ संख्या ५२०, आकार डबल क्राउन १६ पेजी। मूल्य २॥), रेशमी सुनहरी जिल्द का ३) रु०।

यह अमेरिका के एक उद्योगी महा-पुरुष का सचित्र जीवन-चरित्र है। यह केवल उस महानुभाव का चरित्र ही नहीं है, बल्कि अमेरिका की स्वतन्त्रता का इतिहास है। फ्रेंकलिन वास्तव में केवल अपने ही उद्योग से इतना नामी हुआ। उसके चरित्र का एक एक वाक्य मनुष्य के चरित्र संगठन के लिये उपयोगी और पथ-प्रदर्शक है। यदि फ्रेंकलिन जैसा एक भी निःस्वार्थ भाव से देश सेवा करने वाला सेवक भारत वर्ष में पैदा हो जाय तो स्वराज्य पाने में सन्देह नहीं। जो लोग भारतवर्ष को स्वराज्य सम्पन्न करना चाहते हैं, उन्हें अवश्य ही अमेरिका का इतिहास पढ़ना और फ्रेंकलिन जैसे महानुभावों का अनुकरण करना चाहिये। यहां और

वहां की वस्तुस्थिति में पृथ्वी आकाश का सा अन्तर सही। किन्तु फिर भी उनके लिये इसमें ग्रहण करने योग्य अंश अधिक मिलेगा। इसके प्रकाशक सचमुच धन्यवाद के भागी हैं, जो ऐसे पुस्तक रत्नों को जनता के सामने रखते हैं। अनुवादक ने किसी गुजराती भाषा की पुस्तक का भाषान्तर किया है और मूल लेखक के भाव प्रदर्शन में वे कृत कार्य हुए हैं। हां, कहीं कहीं गुजरातीपन की झलक अवश्य आ गई है। पुस्तक हाथों हाथ बिक जानी चाहिये। —मेहता लज्जाराम शर्मा।

वृद्ध नाविक——लेखक-श्री हृषीकेश जी चतुर्वेदी, प्रकाशक-मोहनलाल वासुदेव सहाय, बुकसेलर, आगरा, पृष्ठ ३२, मूल्य लिखा नहीं।

प्रस्तुत पुस्तक अंग्रेजी की प्रसिद्ध कविता The Ancient Mariner का पद्यानुवाद है। अनुवादक महोदय यद्यपि अभी नवयुवक हैं, पर उनका यह अनुवाद बुरा नहीं है। आपकी साहित्यिक रुचि तो वास्तव में प्रशंसनीय है। भविष्य में हम आपसे इससे अच्छी पुस्तकों की आशा करेंगे।

आदर्श जैन——लेखक—श्री बंशी, प्रकाशक—श्री प्रभुदास अ० मेहता, जैन साहित्य कार्यालय, पंचमहाल, गोधरा। पृष्ठ ५८, मू० ।।)

इस गुजराती पुस्तक में आदर्श-जैन कैसा होना चाहिए, अथवा जैनत्व किसे कहते हैं—इसका निरूपण किया गया है। इसे पढ़ने से एक वीर लेखक के नैसर्गिक विचारों की विमलधारा में बहने का आनन्द मिलता है। पुस्तक पठनीय है, भाषा जोरदार है, छपाई सफाई बहुत सुन्दर है।

प्रेम-प्रपञ्च——मूल लेखक-जर्मन महाकवि शिलर, रूपान्तरकर्त्ता-पं० रामलालजी अग्निहोत्री, विशारद, प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई। पृष्ठ १०७, मूल्य ।।≥)

शिलर जर्मनी के सबसे बड़े कवियों में से हैं। उनके नाटक की प्रशंसा क्या करनी। हां, इतना हम कह सकते हैं, कि हिन्दी में उसका रूप विकृत नहीं हुआ है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि पुस्तक को हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज में निकलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हम चाहते हैं कि हमारे पाठक प्रेम प्रपञ्च को एकबार अवश्य पढ़ें।

विविध विषय

१—मासिक पत्र-पत्रिकाओं में चित्र समस्या—

किसी समय साहित्य-जगत् में शृङ्गार की, नहीं, शृङ्गाराभास की जो भीषण बाढ़ आयी थी, उसमें उस समय की जनता बह गयी थी, बड़े-बड़े धनी-मानी और राजा महाराजा उस में पड़ गये थे, उस समय के कवि भी उसी में विलीन हो गये थे। उस बाढ़ के उद्गम का एकमात्र कारण था, अपने आश्रय-दाताओं की मनोवृत्तियों के अनुसार साहित्य को खींच ले जाना। उन्होंने साहित्य का उद्देश्य ही बदल डाला! उलटी ही गंगा बहा दी!!

ठीक उसी प्रकार आज कल सामयिक पत्रों में चित्र विचित्र चित्रों द्वारा कुत्सित वृत्तियों के भड़काने का प्रयत्न किया जाता है! यह किस लिए? सम्भवतः इसी लिए कि जिसमें सब प्रकार के ग्राहक बने रहें। यदि कभी किसी विचारशील ने अपनी आवाज इस के विरुद्ध उठायी भी, तो सम्पादक जन उसे 'कला' का नाम लेकर दबाने का प्रयत्न करने लगते हैं। क्या हम पूछ सकते हैं कि आपको शृङ्गार रस के व्यञ्जक चित्रों में ही कला क्यों सूझती है? क्या और और रसों के व्यञ्जक चित्र बनाये जायँ, तो कला कहीं विलीन हो जायगी? क्या इस कला के उपयुक्त वीर रस नहीं है? क्या कोई बतला सकता है कि शृंगार के मुकाबले में वीर रस के व्यञ्जक चित्रों की कितनी संख्या है, जो उच्च-कोटि के मासिक पत्रों और पत्रिकाओं में निकलते हों? क्या यह हमारी कुत्सित वृत्तियों का स्पष्ट चित्र नहीं है?

इस विषय में 'सुधा' के सम्पादक महोदयों ने अपनी सफ़ाई पेश

को है। आपका कहना है कि कला की दृष्टि से ऐसे चित्र दिये जाते हैं। किन्तु, यदि हम इतने नपुंसक हो गये हैं कि इन चित्रों से हमारी मनोवृत्तियाँ उत्तेजित हो उठती हैं, तो यह मानसिक निर्बलता ही है। धन्य! आपको कला इसी प्रकार के चित्रों में सूझती है? काव्य और चित्र मनोवृत्तियों के उत्तेजक तो होते ही हैं। वे चित्र चित्र नहीं, और वे काव्य काव्य नहीं, जिनसे उस प्रकार की मनोवृत्तियाँ उद्वेलित न हो उठें। सहृदय-हृदय इसके साक्षी हैं और साहित्य प्रमाण है। जब यह बात है, तो हम क्यों न अपने साहित्य और चित्र कला को उधर झुकावें, जिधर कुछ सार है। हम क्यों न वीर रस के व्यञ्जक चित्र तैय्यार करावें और उन्हें सजधज से प्रकाशित करें।

और तो और स्त्री-शिक्षा का प्रचारक सुधारक 'चाँद' भी इस दोष से वञ्चित नहीं। उस में तो 'अभिसारिकाओं' के भी चित्र निकलते हैं! क्या हम आशा करें कि हमारे उदार सहयोगी इधर ध्यान देंगे!

२—समालोचना—

आजकल समालोचना का नाम बड़ा बदनाम हो रहा है। आपस में गाली गलौज करने को ही लोग समालोचना समझ बैठे हैं। किसी रचना की समालोचना करते-करते लोग उसके रचयिता की ही समालोचना करने लगते हैं। "वह क्या जानता है?" "मालूम होता है भांग पीकर यह बात लिखी गयी है" "उसे इस विषय का ज्ञान ही क्या है" "वह विचारा इन बातों को जाने क्या?" इत्यादि कटु वाक्य आज कल की समालोचनाओं में दुर्लभ नहीं है। बड़े-बड़े महारथियों में भी इस प्रकार छिड़ जाती है। संसार तमाशा देखता है। और कहते क्या हैं—

"भले भवन बायन तुम दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥"

इत्यादि। इससे साहित्य का क्या भला होता है, इसे तो वे ही जानें। हमें तो छीछालेदर से साहित्य की दुर्दशा होती दीख रही है। साहित्यिक बन्धुओं में गाली-गलौज से लेकर वीभत्स से वीभत्स नारकीय दृश्य इस

नाट्यशाला में देखने को मिलते हैं। दलबन्दियों के दलदल तैय्यार हो जाते हैं, जिनमें कभी कभी बेचारे निर्दोष-जन भी फंस जाते हैं। इसकी बदौलत बड़े बड़े स्वर्गीय कवियों का भी गालियां खानी पड़ती हैं और अपनी कृतियों की समालोचना के नाम पर, दारुण दशा देखनी पड़ती है।

क्या हम आशा करें कि पुनीत साहित्यक्षेत्र को इस पापपङ्क से बचाने के लिए सामान्यतः सभी साहित्यक बन्धु और विशेषतः हमारे सहयोगी प्रयत्नशील होंगे। कारण इस प्रकार की समालोचनाओं से हानि के सिवाय लाभ कुछ दृष्टि नहीं आता। हां, थोड़ी देर उन लोगों का मनोविनोद भले ही हो जाय, जो इस प्रकार की गन्दगी से प्रसन्न रहते हैं। —किशोरीदास वाजपेयी।

२—हिन्दी साहित्य सम्मेलन—

आज हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सम्बन्ध में हिन्दी पत्रों में बड़ी लिखा-पढ़ी हो रही है। सभापति के निर्वाचन पर लिखा जाना तो युक्ति संगत ही है, कुछ लोगों ने तो मंत्रि-मण्डल को बदल देनेकी भी शिफारिस की है। मंत्रि-मण्डल के बदलने के पक्ष में तो हम भी हैं—पर इस प्रकार 'असभ्यता' पूर्वक नहीं जैसा कि कुछ लोगों ने आन्दोलन उठाया है। हमारी तुच्छ सम्मति में ऐसे बड़े कार्यों का भार किसी व्यक्ति विशेष पर २—३ वर्ष से अधिक नहीं रहना चाहिए। नियमतः ऐसा नहीं होना चाहिए फिर चाहे उसका वह कार्य बहुत ही अच्छा ही क्यों न हो। ऐसी दशा में हम यह उचित समझते हैं कि सम्मेलन का कार्य भार अब की बार ऐसे लोगों के कन्धों पर रक्खा जाय जो अब तक उससे अलग रहे हैं। सुना जाता है कि प्रयाग में कार्यकर्त्ताओं के दो दल हैं। यदि ऐसा है तो बुरी बात है। पर यह तो भारतवर्ष का सनातनधर्म है। अस्तु हमारी सम्मति में सम्मेलन में इस वर्ष ऐसे लोग कार्यकर्त्ता बनाए जाने चाहिए जो किसी भी दल से सम्बन्ध न रखते हों। निष्पक्ष कार्यशील और योग्य नए कार्यकर्त्ता यदि प्रयाग में मिल जायं तो ठीक, अन्यथा सम्मेलन

मुद्रक व प्रकाशक, [illegible] वीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ { ज्येष्ठ सं० १९८५, मई १९२८ } अङ्क ५

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २) एक अङ्क का मू० ≡)

विषय-सूची

वीर-सन्देश



चांग-के-शेक

चीन के नवीन भाग्य-विधाता, राष्ट्रीय चीन के प्रधान सेनापति, जिनकी अध्यक्षता में पुनर्संगठित होकर चीन एक राज्य हो रहा है।

महावीर प्रेस, आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(वीर-रस-प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग २ } आगरा—ज्येष्ठ सं० १९८५, मई १९२८ { अङ्क ५

बालचर-सङ्गीत*

[लेखक—श्री पं० हृषीकेश जी चतुर्वेदी]

वीरवर भारत-मा के लाल !
तज आलस्य, उठो कटि कसकर, हो अभीरु, दे ताल ॥ वीर० ॥
शत्रु शृगाल-यूथ में जाकर करो गर्जना घोर ।
पावन जन्म-भूमि—कानन के, हे हरि-राज किशोर ॥ वीर० ॥
निर्भर है तुम पर भविष्य का निर्मल आशा-पुञ्ज ।
फहरा दो यश-ध्वज नभ में, कर विजय-शंख का गुञ्ज ॥ वीर० ॥
देश, नरेश, महेश सभी का करो उचित सम्मान ।
पर-हित-हेतु शक्तिभर अपना दो तन, मन, धन दान ॥ वीर० ॥
दीन जनों के दुख दलने का यही सरल उपचार ।
सत्य बालचर बन, करिये दृढ़ नियमों का आचार ॥ वीर० ॥

* अप्रकाशित "बालचर-सङ्गीत सौरभ" से।

मिश्र का मसला

[लेखक—एक बैठाठाला ग्रेजूएट]

अफ़रीका महाद्वीप के उत्तर-पूर्वी कोने पर मिस्र नाम का एक मुल्क है जिसका क्षेत्रफल तीन लाख तिरेसठ हज़ार वर्ग मील है और आबादी सवा करोड़ से कुछ ज़्यादा! हिन्दुस्तान की तरह इस मुल्क की सभ्यता भी बहुत पुरानी है। मिस्र का ईसा से पांच हज़ार वर्ष पहले तक का, यानी आज से सात हज़ार वर्ष पहले तक का इतिहास मिलता है। पांच हज़ार बी० सी० से तीन सौ बत्तीस बी० सी० तक इकत्तीस राज-वंशों ने मिस्र पर राज किया। ईसा से तीन हज़ार वर्ष पहले मिस्र के वे आकाश से बातें करने वाले ऊंचे-ऊंचे पिरेमिड बने जिन्हें देख कर आज भी लोग दङ्ग रह जाते हैं। ईसा से तीन सौ बत्तीस वर्ष पहले मिस्र के भाग्य ने पलटा खाया और यूनान के सिकन्दर बादशाह ने उसे फतह कर लिया। उसी के नाम से सिकन्द्रिया नाम का शहर बसा जो आज तक है और बहुत बड़ा तथा मशहूर शहर है। सातवीं शताब्दी में मिस्र पर सारसेनों का कब्ज़ा हो गया और उन्होंने सन् ९६९ में वह कैरो नगर बसाया जो अब भी मिस्र के सब से बड़े और मशहूर शहरों में से है और कैरो में ही आज-कल मिस्र की राजधानी है। सन् १२५० में मामलूक मिस्र के राजा बन बैठे। सन् १५१७ मे टर्कों ने मिस्र को जीत कर उस पर राज किया। सन् १७९८ में नैपोलियन ने मिस्र पर हमला किया लेकिन कामयाब न हुआ। उन्नीसवी शताब्दी मिस्र के दुर्भाग्य की शताब्दी रही। १८०६ में मेहमत अली मिस्र का पाशा हुआ। इसके नाती इस्माइल पाशा ने स्वेज की वह नामी नहर बनाने में मदद दी जो आज मिस्र की मुसीबत का मुख्य कारण बन रही है। इसी इस्माइल पाशा ने स्वेज की नहर बनाने वाली कम्पनी में उसके जो पौने दो लाख शेयर थे वे अंग्रेजों को बेच दिये! सन् १८८० तक गोरों ने मिस्र को अपने पञ्जे में

जकड़ लिया और मिस्र के राजकोष का इन्तिज़ाम यूरोपियन राष्ट्रों को सौंप दिया गया। सन् १८८२ में मिस्रियों ने इस पञ्जे से अपने प्राण छुटाने की कोशिश की। राष्ट्रीय विद्रोह हुआ। सिकन्दरिया में बहुत से गोरे क़त्ल हुए लेकिन अंग्रेजों ने सिकन्दरिया पर गोले बरसाये और तेल-एल-केबीर में राष्ट्रीय सैनिकों का दमन किया। उसी समय से मिस्र में अंग्रेजों का प्रभुत्व बढ़ा। १९०४ में फ्रांस ने मिस्र में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। पिछले जर्मन जङ्ग में अंग्रेजों ने ५ नवम्बर १९१४ को टर्की से जङ्ग छेड़ दी। मिस्र का बादशाह अब्बा सहिल्था पाशा स्वभावतः अपने हमक़ौम और अहलेदीन मुल्क टर्की से हमदर्दी रखता था! इसी 'पाप' से अंग्रेजों ने उसे गद्दी से उतार दिया। और अठारह दिसम्बर १९१४ को ग्रेट-ब्रिटेन की संरक्षकता में उसका चाचा प्रिंसहुसेन मिस्रका सुल्तान क़रार दिया गया। मिस्र के माई के लाल किसी की ग़ुलामी में रहने को तैयार नहीं थे इस लिए उन्होंने मिस्र के जन्म सिद्ध अधिकारों के लिए घन घोर आन्दोलन शुरू कर दिया। जिन दिनों लोकमान्य तिलक यहां स्वाराज्य-संग्राम मचा रहे थे। उन्हीं दिनो मिस्र के लोकमान्य जगलूल पाशा मिस्र में उसकी स्वाधीनता के लिए लड़ रहे थे। इसी पाप से ब्रिटिश सरकार की कृपा से वे अपने प्यारे देश मिस्र से निकाल दिये गये लेकिन स्वाधीनता का संग्राम एक बार प्रारम्भ होकर उस समय तक कदापि समाप्त नहीं होता जब तक सफल नहीं हो जाता। मिस्र में भी यही हुआ। वहां मिल्नर कमीशन की जैसी दुर्गति हुई वैसी हिन्दुस्तान में साइमन कमीशन की भी नहीं हुई। अन्त में ब्रिटिश सरकार को नीचा देखना पड़ा। उसे मिस्र की स्वाधीनता स्वीकार करनी पड़ी। लेकिन उसकी नीति के फलस्वरूप १९२४ में मिस्र में भीषण दङ्गा और भारी खून-खच्चड़ हो गया। १९२४ में मिस्रियों ने ब्रिटिश आधिपत्य के ख़िलाफ़ बग़ावत कर दी। ब्रिटिश अफसर मारे गये, सरकार सर लीस्टैक भी काम आये परन्तु उसी साल यह तय हो गया कि सूडान में अगर अंग्रेजों और मिस्रियों दोनों का

शामिलात स्वाम्य बना रहे तो कोई हानि नहीं है। लेकिन ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ अपनी कुचालों से बाज न आये। मिस्र की सरकार के सामने सुलह का एक मसौदा पेश किया गया जिसमें चौदह धाराएं रक्खी गईं। मिस्रियों को बेवकूफ बनाने और दुनियां की आंखों में धूल झोंकने के लिए इस मसौदे में ऐसी ऐसी बातें रक्खी गईं जिनसे यह मालूम हो कि यह मसौदा तो मिस्रियों के ही फायदे के लिए है। ऐसी कुछ शर्तें ये थीं:— अगर मिस्र पर कोई मुल्क हमला करेगा तो ब्रिटिश सरकार उसको मदद करेगी। लेकिन मिस्र सरकार को मिस्री सेना को ब्रिटिश सेना के ढंग के मुताबिक शिक्षा देनी होगी। ग्रेट ब्रिटेन को यह अख्तियार होगा कि ब्रिटिश साम्राज्य के रास्तों को सुरक्षित रखने के लिए ब्रिटिश सरकार जितनी फौजें जरूरी समझे उतनी मिस्र में रक्खे। मिस्र में ग्रेट ब्रिटेन का राजदूत रहेगा जिसे और तमाम मुल्कों के राजदूतों से ज्यादा मानना होगा। असली मतलब यह कि किसी न किसी बहाने मिस्र में अंग्रेजों की फौजी ताक़त उतनी बनी रहे कि मिस्र अङ्गरेजों की मरजी के ख़िलाफ़ सिर न उठा सके। जगलूल पाशा के नेतृत्व में क़ायम किया गया वफद नाम का राष्ट्रीय दल इस तरह उल्लू बनने के लिए तैयार नहीं है। इस दल ने तो डंके की चोट यह ऐलान कर रक्खा है 'कि जनाब मिस्र से अपनी फौजों को बिलकुल ले जाइये! ब्रिटिश हाई कमिश्नर और ब्रिटिश फाईनेंशियल तथा ज्यूडीशियल एडवाइजर भी अपनी अपनी टिकट कटावें और सूडान पर मिस्र का पूर्ण प्रभुत्व स्वीकार किया जाय। सरवत पाशा नाम के एक नरम-दल के प्रधान-मन्त्री ने ग्रेट-ब्रिटेन के सुलह के इस मसौदे को मंजूर कर लिया था लेकिन मिस्र की एसेम्बली ने उसे नामंजूर कर दिया! लाचार होकर सरवत पाशा को इस्तैफा देना पड़ा और राष्ट्रीय दल के नेता, जगलूल पाशा के पक्के अनुयायी मुस्तफा पाशा नहस मिस्र के प्रधान-मन्त्री चुने गये। उन्होंने प्रधान-मंत्रित्व का चार्ज लेते हुए अपने भाषण में साफ़ २ यह कहा कि, "बहुमत के नेता और सरकार के सरदार की हैसियत से मैं कहता हूं कि ग्रेट-ब्रिटेन और ग्रेट

ब्रिटेन के साथ सुलह करने के भाव के प्रति मिस्र वालों के भाव अबभी अच्छे हैं लेकिन सब कुछ खुद ब्रिटेन के मिजाज पर मुनहसिर है।······ मिस्र ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा होकर कभी नहीं रहा। अगर वह हिन्दुस्तान के रास्ते में पड़ता है तो इसके मानी यह नहीं है कि इस जुर्म में उसकी आज़ादी छीन ली जाय।·····ग्रेट-ब्रिटेन हमें कोई दान नहीं देता।·····हमारी स्वाधीनता तो प्राकृतिक अधिकार से हमारी है, हम ग्रेट ब्रिटेन के साथ उसी तरह बराबरी का बर्त्ताव करना चाहते हैं जिस तरह एक दोस्त अपने दोस्त के साथ करता है। ग्रेट ब्रिटेन के हितों का सबसे अच्छा बचाव इसी में है कि स्वतन्त्र और सबल मिस्र उसका विश्वासी मित्र हो। हमारी सच्ची मैत्री से बढ़ कर ग्रेट ब्रिटेन की गारण्टी और कोई नहीं हो सकती।" लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यवादी अपने स्वार्थ के सामने सत्य बात कब सुनने लगे? वे मौके की ताक में रहे। मिस्र की पार्लियामेंट में एक बिल दर पेश था। इस बिल के द्वारा मिस्री राष्ट्रीय दल यह चाहता था कि पुलिस पब्लिक मीटिंगों में बेजा दस्त-नदाज़ी न करने पावे और ज़रा ज़रा सी बात पर गोलियाँ न चला दिया करे। जो ऐसा करे तो उसे सज़ा मिले। लेकिन ब्रिटिश सरकार को इस क़ानून में भारी खतरा दिखाई दिया। उसने तीस अप्रैल को नहस-पाशा को अल्टीमेटम दिया कि या तो सात दिन के अन्दर यह बिल वापस ले लिया जाय नहीं तो विदेशी हितों की रक्षा के लिये ब्रिटिश सरकार जो मुनासिब समझेगी करेगी और अल्टीमेटम देने के साथ ही साथ उसने कई जङ्गी जहाज़ मिस्र को रवाना कर दिए। बेचारी मिस्र की सरकार को दबना पड़ा। उसने नवम्बर तक के लिये बिल तो मुल्तवी कर दिया। लेकिन मर्दों की तरह यह कह दिया कि मिस्र की सरकार ब्रिटेन या किसी के इस हक़ को मंजूर नहीं करती कि उसे मिस्र के भीतरी भीतरी क़ानूनों में दस्तनदाज़ी करने का हक़ है। फिर ग्रेट ब्रिटेन के प्रति अपना सद्भाव प्रकट करने के लिये हम बिल नवम्बर तक मुल्तवी करते हैं, उम्मीद है कि तब तक ब्रिटेन और मिस्र में समझौता

हो जायगा ! एक ओर मिस्रियों ने मेल के लिये दबना मंजूर किया दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने शेखियों, और गीदड़ भभकियों द्वारा अपना असली रूप प्रकट किया। सर विलियम जानसन हिक्स बोले कि "मिस्र की सरकार ग्रेट ब्रिटेन से खतरानाक खेल खेल रही है।" लार्ड बर्किनहेड ने फ़रमाया कि "नवम्बर की तो बात ही क्या है, पाँच या दस साल के लिये मुल्तवी करने से कुछ हो नहीं सकता क्योंकि कोई भी देश जिस पर साम्राज्य का उत्तरदायित्व हो, जिस पर यूरुप के दूसरे राष्ट्रोंका उत्तरदायित्व हो और जिसे खुद अपने-जाने आने के रास्ते महफूज़ रखने हों, इस तरह का क़ानून कभी भी नहीं बनने देगा !" खैर फ़िलहाल जंगी जहाज़ लौटा लिये गये हैं लेकिन ब्रिटिश वैदेशिक सचिव सर ऑस्टेन चैम्बरलेन ने मिस्र की सरकार को यह लिख दिया है कि अगर यह बिल फिर कभी पेश किया गया तो हमें फिर दस्तन्दाज़ी करनी होगी और हम अपने १९२२ के एलान पर किसी तरह की बहस करने के लिये तैयार नहीं है। संक्षेप मे, यही मिस्र के मसले की कहानी है। इस कहानी से साफ़ ज़ाहिर है कि असली मसला यह है कि मिस्र खुल्लम-खुल्ला जिसकी लाठी उसकी भैंस की नीति से काम लेने वाले ब्रिटिश साम्राज्यवादियो से किस तरह अपने स्वदेश की स्वाधीनता की रक्षा करे ? मिस्र का मसला असल में वही है जो हिन्दुस्तान का मसला है। हाँ, इस मसले को हल करने में मिस्र हिन्दुस्तान से कहीं ज्यादा कामयाबी हासिल कर चुका है। वह इस मसले को बहुत कुछ हल कर चुका है उसकी स्वाधीनता वमे स्वीकार की जा चुकी है। अब उसे उस स्वाधीनता को सच्ची स्वाधीनता बनाना रह गया है। लेकिन तह में दोनो मसले एक ही हैं।

लूसियस जूनियस

[लेखक—श्री० परिपूर्णानन्द जी वर्मा]

"राज्य कौन करेगा ?"

"वही जो सबसे पहले माता का चुम्बन करेगा ।"

प्रश्न कर्त्ताओं में भगदड़ मच गयी । एक दूसरे को ढकेलते हुये वे अपनी माता का चुम्बन करने के लिये भाग खड़े हुये ।

\+ + +

उपर्युक्त घटना रोमन साम्राज्य की पवित्र राजधानी रोमके डेल-फिन-मन्दिर की है । उस समय रोम साम्राज्य को स्थापित हुये कुछ ही वर्ष व्यतीत हुये थे । साम्राज्य का संस्थापक तथा प्रथम शासक रोमुलस (Romulas) मर चुका था । उसके स्थान पर टारकिन (Tarquin) राज्य कर रहा था ।

टारकिन की सन्तान यह जानने के लिये बड़ी उत्सुक थी कि उन में से कौन रोम की गद्दी पर बैठेगा । अतएव डेलफिन देवी के मन्दिर पर एकत्र होकर उन्होंने उपलिखित प्रश्न किया था । भविष्य वाणी सुनते ही उनमें हलचल पड़ गयी । वे अपनी माता का चुम्बन करने के लिये दौड़े ।

इसी भविष्य वाणी को लूसियस जूनियस जिसको लोग मूर्ख तथा बे-वक़ूफ़ समझते थे अतः ब्रूटस (Brutus) नाम से पुकारते थे (ब्रूटस का अर्थ होता है कुन्द दिमागी) वहां खड़ा था । वह अन्य लड़कों की तरह भागा नहीं परन्तु अपने स्थान पर खड़ा रहा । जब वे चले गये, वह झुका और माता पृथ्वी को चूम लिया ।

❀२❀

"मैं तुमसे आग्रह पूर्वक अनुरोध करती हूँ कि तुम स्त्री के सतीत्व को इतनी साधारण वस्तु न समझो । मेरी प्रार्थना है कि तुम मुझे छोड़

दो" बड़े कातर शब्दों में एक रोमन सरदार की स्त्री लयूक्रेटिया (Lucratia, ने कहा।

परन्तु टारकिन नृप का पुत्र सेक्सटस उस समय कामान्ध हो रहा था। वह कुछ भी न सुन सका। झपट कर उसने लयूक्रेटिया का हाथ पकड़ लिया और गाढ़ालिंगन करने लगा—

साध्वी सर्पिनी की भांति फुफकार कर अलग हो गयी। सेक्सटस को एक थप्पड़ मार कर वह दूर हट गयी। एक क्षण वह कुछ सोचती रही। यकायक वह भाग खड़ी हुई।

+ + +

ब्रूटस, पवलियस वेलोरियस (Publius valorius) नामक एक सरदार, लूकेरिया के पिता और पति एक स्थान पर बैठे बात कर रहे थे। आकाश नीला और साफ़ था। सुन्दर हवा बह रही थी। समय बड़ा सुहावना था।

इसी समय, यकायक, बिजली की तरह, क्रुद्धा सर्पिनी की तरह केश खोले सुन्दरी युवती लूकेरिया वहाँ आ पहुँची। सब लोग अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगे।

'प्यारे' पति का सम्बोधन कर, क्रोध से कांपती हुई वह बोली—

"आज, तुम्हारी लूकेरिया तुम्हारे चरणों के योग्य न रही। उसके वे होठ जिनकी रचना केवल तुम्हारे लिए हुई थी, तुम्हारे शासक टारकिन के पुत्र ने झूठी कर दी। अब मैं आपके सामने खड़ी रहने योग्य नहीं हूं।"

उपस्थित मण्डली अपने आचार्य को शान्त भी न कर पायी थी कि एक चमचमाता छुरा निकला और एक सुन्दरी युवती के छाती में घुस गया। वीरांगना साध्वी ने आत्मघात कर लिया। वह पर-पुरुष का स्पर्श सहन न कर सकी।

+ + +

ब्रूटस-अहो मूर्ख लूसियस-वह तो कभी कुछ समझता ही न था, पर यह क्या हुआ! वह तो वीर शेरों की भाँति, सभ्य शिथिल व्यक्तियों की भांति गर्ज पड़ा। उसने झपट कर मृत ल्यूक्रेटिया की छाती से खञ्जर निकाल लिया और सबके सन्मुख प्रतिज्ञा की कि वह तब तक विश्राम न लेगा जब तक रोम से बेरहम टारकिन तथा उसकी सन्तानों को जहन्नुम में न पहुँचा देगा।

❀३❀

उस समय कुछ सेना लेकर टारकिन दूर देश में लड़ने गया था। ब्रूटस के विद्रोह का समाचार बिजलीकी तरह रोममें फैल गया। उत्तेजित ब्रूटस सीधा सेना में चला गया। सिपाहियों से उसने एक हृदय-ग्राही अपील की। रोमन वीर तथा साहसी थे। उनमें वीरता की भावना के साथ स्त्रियों के प्रति सम्मान की मात्रा बहुत अधिक थी। जिनको ब्रूटस ल्यूक्रेटिया के अपमान की कथा सुनाता वही फड़क उठता। उसी के हृदय मे कपकपी उत्पन्न हो जाती। प्रतीकार की प्यास सबमें जाग उठी।

आग साधारण न थी। सती का अपमान साधारण वस्तु न थी। समस्त रोम ब्रूटस के साथ हो गया। टारकिन तथा उसके पुत्रों को भाग कर दूसरे नगर में शरण लेनी पड़ी।

रोम के नागरिक राजशाही से ऊब उठे थे। उन्होंने निश्चय किया कि अब कभी किसी शासक के अन्तर्गत न रहेंगे। उन्होंने राजतंत्र से प्रजातंत्र की स्थापना की। राज्य के ऊपर प्रजा द्वारा नियुक्त दो कौंसल नियुक्त किये गये। इन्हीं के हाथ में शासन की बागडोर रही। इन्हीं कौंसलों में प्रथम ब्रूटस था। माता पृथ्वी के चुम्बन का यह परिणाम था!

❀४❀

एक स्त्री के अपमान का परिणाम एक बड़े कुलको भोगना पड़ा। परन्तु अग्नि पूर्ण तरह शान्त न की गयी थी। अभी दूसरे नगर में टारकिन की सन्तान निश्चिन्त विश्राम ले रही थी।

अवसर आया। ब्रूटस ने रोमको खूब बढ़ाया। उस 'कुन्द-दिमाग़' ने साम्राज्य की खूब उन्नति की। परन्तु वह इतना कट्टर नैतिक शासक था कि अपने कुटुम्बियों को भी बड़े शासन में रखता था। इससे उसकी सन्तान उसी से रुष्ट हो गयी। पिता के विरुद्ध उन्होंने विद्रोह करना निश्चय कर लिया तथा टारकिन की सन्तान से जा मिले।

\+ \+ \+

षड्यन्त्र पकड़ा गया। ब्रूटस की सन्तान-ब्रूटस के प्रिय पुत्र उस के सन्मुख अपराधी के रूप में लाये गये। एकबार उन्हें देखकर पिताको रोमाञ्च हो आया। आंखों मे आंसू छलछला आये परन्तु कर्त्तव्य का पुजारी ब्रूटस अचल रहा। उसने अपने लड़कों को स्वदेश के प्रति विश्वासघात करने के अपराध मे मृत्यु-दण्ड दिया।

समस्त रोम में उसकी प्रशंसा के गायन गाए जाने लगे। ऐसे न्यायप्रिय, विचारी तथा वीरशासक लूसियस जूनियस उर्फ़ ब्रूटस ने इतिहास में अमर नाम प्राप्त कर लिया।

शिवाजी

[लेखक—श्री० पद्मधर जी अवस्थी 'पद्म']

तज के अगारन अँगारन पै सोवे अरि,
ग्रीषम की झारन में वासर रितै रितै।
सूरत की सूरत बिगार डारी पल मांहि,
हाजिनके खोवै, होश हौंसले नितै नितै।
गव्वर गनीमन ये गव्वर रटत सदा,
बव्वर के वंशन के बिरद वितै वितै।
कांप्यो कलकत्ता शिवराज की महत्ता सुन,
सत्ता खींच चकित चकत्ता है चितै चितै।

कर्त्तव्य पालन के समय—

(एक ऐतिहासिक घटना)

[लेखक—श्रीयुत प्रताप महोदय]

आज हिन्दुओं में मतभेद का इतना बोलबाला है कि वे इसके पीछे अपने अस्तित्व-रक्षण को भी भूल बैठे हैं। व्यक्तिगत झगड़ों के कारण समाज और धर्म को और सामाजिक और धार्मिक झगड़ों के कारण देश को आघात पहुंचा रहे हैं। मतभेद का होना स्वाभाविक है परन्तु उसका दुरुपयोग न होना चाहिये। ऐसा कौनसा देश या समाज है जिसमें राजनैतिक और धार्मिक मतभेद न हों, पर वह मतभेद अपने तक ही सीमाबद्ध रहता है। जब मामला किसी दूसरे से पड़ता है तब मतभेद का रूप ही बदल जाता है। ऐसी ही एक घटना का उल्लेख यहां किया जाता है।

बचपन में प्रातःस्मरणीय प्रणवीर प्रताप और उनके भाई शक्तसिंह में खूब चलती रहती थी। यहां तक कि वे एक दूसरे के कट्टर बैरी हो गए थे। प्रताप के सिंहासनारूढ़ होने के बाद एक बार अहेरिया उत्सव हुआ। इस उत्सव में सब लोग जङ्गल में जाकर आखेट द्वारा अपनी २ वीरताका परिचय देते थे। इस उत्सव में प्रताप और शक्तसिंह दोनों सम्मिलित हुए। दोनो पास ही पास शिकार खेलने लगे। इतने में एक जंगली सूअर दिखाई दिया। दोनों वीर उसकी ओर लपके। एक ही समय में दोनों ने उसके तीर मारे और वह मर गया। इसी बात पर दोनों में विवाद बढ़ गया। शक्तसिंह बोले "इस वाराह को मैंने मारा है" और प्रताप ने कहा, "मैंने"। यह विवाद यहां तक बढ़ा कि दोनों एक दूसरे की जान लेने पर उतारू हो गए। जब दोनों में तलवार और भाले चलने लगे तो राजपुरोहित से न देखा गया। उसने दोनों को समझाया। जब वे न माने तो दोनों के बीच में पहुँच कर अपने पेट में कटार घुसेड़ ली। यह देख दोनों भाइयों का क्रोध ठंडा हुआ और वे पछताने लगे। महा-

राणा ने शक्तसिंह को देश निकाला दे दिया। शक्त, भाई की आज्ञा मान मेवाड़ छोड़ कर चल तो दिये पर उनके हृदय से द्वेष न हटा। वे बदला लेने के लिए मेवाड़ के परम शत्रु मुग़ल सम्राट् अकबर से जा मिले।

इसके कुछ अर्से बाद राजा मानसिंह शोलापुर से विजय प्राप्त कर लौटे। वे कुम्हलमेर में महाराणा के अतिथि बनकर ठहरे। कांसे के समय राणा ने स्वयं उपस्थित न हो कर अपने पुत्र अमरसिंह को सेवा के लिए भेज दिया। जब राजा मानसिंह ने महाराणा की उपस्थिति के लिए जोर दिया तो उन्होंने स्वयं आकर अपनी विवशता बताई और कहा कि जिसने अपने कुल गौरव को भूल कर अपनी कन्या एक गौ-भक्षक यवन को सौंप दी है उसके साथ मैं नहीं खा सकता। मानी मान इस अपमान को न सह सका। वह कांसा छोड़ उठ खड़ा हुआ और यों कहता हुआ घोड़े पर बैठकर चल दिया—राणा! याद रखना जो मैंने तेरा गर्व खर्व न किया तो मेरा नाम राजा मान ही नहीं।

राजा मानसिंह ने सारी अपमान गाथा दिल्ली पहुंच कर अकबर को जा सुनाई। मुग़ल सम्राट् इस बात को सुनकर क्रोध से लाल होगया और उसने दूसरी सब लड़ाइयों को स्थगित कर मेवाड़ पर चढ़ाई करदी। शाहज़ादा सलीम, मानसिंह और मुहब्बत खां के साथ एक बहुत बड़ी सेना लेकर हल्दीघाटी के पहाड़ी मैदान में जा डटा। प्रताप भी हाथ में झण्डा ले राजपूतवीरों के साथ जन्मभूमि की रक्षा के लिए आ पहुँचे। घमासान लड़ाई छिड़ गई। वीरों के रुण्ड मुण्ड कट कट के गिरने लगे। राणा भी मानी मान का मान मर्दन करने के लिए अकेले ही मुग़लों की अथाह सेना में घुस पड़े और लगे यवनो को धराशायी करने। जब राजा मानसिंह का कहीं पता न चला तो वे सलीम की ओर बढ़े। इस समय महाराणा के घोड़े चेटक ने जो वीरता दिखाई वह अपूर्व थी। उसने उछल कर वैरी के हाथी के मस्तक पर टाप जमादी। राणा ने भी कसके भाला चलाया। दैवयोग से भाला हौदे में लगा, अन्यथा मुग़ल साम्राज्य अपने भावी सम्राट् को खो

बैठवा। पर महावत मारा गया और निरंकुश हाथी सलीम को लेकर भाग खड़ा हुआ। यह देख मुगल सेना पागलसी होकर चारों तरफ से प्रताप पर टूट पड़ी। इससे प्रताप भयभीत न हुए प्रत्युत उन्होंने सैकड़ों यवनों को मौत के घाट उतारा। परन्तु प्रताप अकेले थे और मुग़ल थे लाखों। वे कहां तक उनसे पार पाते। उनके कई घाव हो गये थे। इतने में महाराणा को जय ध्वनि सुनाई दी और सादड़ी के झाला सरदार मन्ना मुग़लों को बिछाते हुए वहां जा पहुँचे। उन्होंने राणा से राज-छत्र लेकर अपने ऊपर लगा लिया। मुग़ल भी राणा को छोड़ मन्ना पर टूट पड़े। मन्ना अनेक मुग़लों को यमलोक पहुँचाते हुए मारे गये और मेवाड़ के सर्वस्व की रक्षा हुई।

राणा घायल और शिथिल शरीर चेटक पर बैठे चले जा रहे थे। चेटक भी बहुत श्रम थकित हो रहा था। उसके अनेक जख्म लगे थे। तब भी वह राणा को बड़े वेग से ले जा रहा था। उनको अकेला जाते देख खुरासानी और मुलतानी नामक दो यवन उनके पीछे लग गये। वे बड़े वेग से प्रताप को पकड़ने के लिए घोड़े दौड़ाने लगे। आगे एक पहाड़ी नाला पड़ा। चेटक तो उसे पार कर गया परन्तु मुग़लों के घोड़े रह गये। प्रताप को कुछ होश न था। कुछ आगे बढ़ने पर प्रताप ने निजी भाषा में एक आवाज सुनी—हो नीला घोड़ारा अस्वार हो—। प्रताप पीछे की ओर मुड़े तो क्या देखते हैं कि शक्तसिंह दो यवनों की लाश गिरा कर तीर की भांति घोड़ा दौड़ाये आ रहे हैं। प्रताप गम्भीर भाव से खड़े हो गये और मन में कहने लगे, "आओ, शक्त आओ, आज इस रण छोड़ कर भागने वाले कायर को मार कर अपनी क्रोधाग्नि बुझाओ।"

ऊपर बताया जा चुका है कि शक्तसिंह अपने देश और धर्म के विरुद्ध अकबर से जा मिले थे। वे भी मुगल सेना के साथ हल्दीघाटी के युद्ध में आये थे। वहां उन्होंने भाई का पराक्रम देखा और देखा हजारों राजपूत वीरों का स्वदेश के लिए हंसते हंसते मरना। यह सब देख कर उन्हें अपने देश द्रोह पर बड़ी लज्जा आई और उनके हृदय में

जन्म भूमि के पीछे मर मिटने वाले प्रताप के प्रति श्रद्धा और भक्ति पैदा हो गई। जब उन्होंने मुग़ल सेना में से देखा कि चेटक प्रताप को लिये हुए बे लगाम भागा जा रहा है और दो यवन बड़ी तेजी से उसका पीछा कर रहे हैं तो उनसे न देखा गया। वे झटपट घोड़े पर सवार हो लपके और दोनों बैरियों का काम तमाम कर हिन्दू कुल तिलक मेवाड़ के प्राण-प्रतापसिंह की रक्षा की। इसके बाद उन्होंने भाई को ठहराया।

अहा, कैसा आनन्द का समय था, जब बरसों के बिछुड़े दोनों भाई गले पेटे मिले। ऐसे अनुपम दृश्य संसार में अधिक न मिलेंगे। शक्तसिंह ने आते ही भाई के चरणों में शिर रख दिया और कहा, "भय्या, क्षमा, मैंने तुम्हारे साथ भारी अपराध किया है। मैं पापी हूं, नीच हूँ, कायर हूँ, और देश द्रोही हूं। आज पैरों पड़कर क्षमा मांगता हूँ। हा! मैंने अपने कुल को, बापारावल के नाम को लजाया है।"

प्रताप ने सजल नेत्रों से भाई को उठा कर गले से लगा लिया। वे भाई से मिल कर गद्गद हो गये और हल्दीघाटी की हार को भूल गये। उनके हृदय में अद्भुत आनन्द का संचार हुआ। आज उन्होंने उस भाई के हृदय साम्राज्य पर विजय पाई जो सदा उनके प्राण लेने की घात में रहता था। ऐसी ही घटनाएं गुलाम देश के लोगों को सञ्जीवनी का काम देती हैं।

वीरता और नीति

[लेखक—श्रीयुत पं० किशोरीदास जी वाजपेयी]

हिन्दू प्रतीकार बिनु जौन जिमि नेह बिनु,
सम मति बिनु अंगरेजी सरकार है।
सङ्गठन बिनु ज्यों स्वराज की है थोथी धुनि,
सङ्गठन जैसे बे अछूत के उबार है॥
जैसो है अछूत को उबार बिनु साँची प्रीति,
सब जग जैसे बिनु वीरता असार है।
त्यों हीं वीरता है बिनु नीति भदरंग फाकी,
बिनु चतुराई तरवारि कोरो भाद है॥

कर्त्तव्य पालन के पश्चात्—

(एक काल्पनिक कथा)

[लेखक—श्रीयुत रमेश]

"तो तुम अपना विवाह नहीं करोगे"

"नहीं"

क्यों ?

योंही ।

इसका कारण ?

कुछ भी हो ।

क्या मैं पूछ नहीं सकती ?

क्यों नहीं !

तो फिर ?

विवाह एक उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए किया जाता है, किन्तु मेरा उद्देश्य उससे प्रथक् है । अतः मैं विवाह करना नहीं चाहता ।

मैं कुछ न समझी, जरा स्पष्ट कहिए ।

हमारा देश गरीब है ? यह शताब्दियों से पराधीनता की श्रंखला में बद्ध है । इधर विवाह का उद्देश्य सन्तान पैदा करना है । जब हमही गुलाम हैं तो अपनी जैसी गुलाम सन्तान पैदा करने से क्या लाभ ?

'हूँ' युवती ने अन्यमनस्क हो उत्तर दिया "तो आगे करोगे क्या ?

'देश-सेवा' युवक ने साहस पूर्वक कहा ।

उसका मार्ग ?

जो कुछ भी निश्चित हो जाय !

क्या मैं भी उस पथका अवलम्बन कर सकती हूँ ?

हां, क्यों नही ।

इतना कह किसी पूर्व निश्चित कार्य्य को याद कर युवक सहसा चलने को उद्यत हुआ ।

"क्यों कहां जाते हो ?" युवती ने पूछा।

"एक मित्र के यहां निमंत्रण है, समय हो गया मुझे वहां पहुँचना जरूरी है।"

युवती ने सजल नेत्रों से युवक की ओर देखा। युवक ने भी सतृष्ण नेत्रों से उस भाव का अभिवादन किया, युवक चला गया। युवती उसकी ओर देखती रह गई।

\+ \+ \+

युवक कौलेज का विद्यार्थी था और छात्रालय में वास करता था, युवती भी मैडिकल कौलेज में डाक्टरी पढ़ती थी, युवती का एक भाई कौलेज में पढ़ता था। उसी के द्वारा युवती का परिचय युवक के साथ हुआ था। युवक कभी कभी उसके घर पर आता था और दोनों में बहुत देर तक विविध विषयों पर बात होती रहती थीं दोनों के हृदयों में अगाध प्रेम की धारा प्रवाहित थी पर उस धारा में विकार की गन्दी नली का प्रवेश नहीं हुआ था। दोनो स्वच्छन्द प्रकृति के निर्भय तथा उदारमना व्यक्ति थे। उस दिन की बात चीत में युवती को कुछ शैथिल्य हो आया था तथा युवक का भी मन गद्‌गद् हो गया था, पर वह अपने को जिस पथ का पथिक कहता था उससे उसका यह भाव कोसों दूर था और तभी युवती को भी उसने अपने शब्दों में अपना वह भाव बतला दिया था। फिर भी जब उसने देखा कि यहां प्रेम और कर्त्तव्य का द्वन्द्व युद्ध ठना, युवक ने कर्तव्य पथ की ओर देख उसी का अवलम्बन किया और "मित्र के यहां निमन्त्रण है" ऐसे कह कर उस स्थान को छोड़ दिया।

युवती बहुत देर तक बैठी सोचती रही। युवक की कही हुई बात उसके हृदय पटल पर अंकित हो गई थी। अन्तमें उसने अपने भविष्य का निश्चय कर लिया और तब पूर्ववत् अपने कार्य्य में लग गई।

❀ ❀ ❀

कवि-कीर्तन

श्री वियोगी हरि की वीर-सतसई

[लेखक—एक शास्त्री महोदय]

सतसइयों की हिन्दी में कमी नहीं है। देखा-देखी अथवा अन्ध-परम्परा तो हमारे यहां की प्रसिद्ध ही है। इन पुरानी सतसइयों के प्रणयन में भी ऐसा ही हुआ है। उसी शृंगार, नहीं, शृंगाराभास के पचड़े में सब पड़ी हैं। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी की 'तुलसी-सतसई' अवश्य इससे बची है। परन्तु हमारे रत्न-पारखी जौहरियों की दृष्टि में उसका कुछ मूल्य ही नहीं। अस्तु—

अभी हाल ही में हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि श्रीमान् वियोगीहरि जी ने भी 'वीर-सतसई' नाम से एक सतसई लिखी है। प्रयाग के 'गान्धी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार' ने इसे प्रकाशित किया है।

यह सतसई हिन्दी-संसार में एक नयी चीज़ है। बहुत बढ़िया है, विश्व-विद्यालयों, विद्यापीठों और सम्मेलनों की पाठ्य-विधि में स्थान देने योग्य है। परन्तु रचयिता के ही शब्दों में हमें सन्देह है कि ऐसा हो—

मनमोहिनि वै सतसई, हिरनी सी सुकुमारि।
कहा रिझैहै रसिक-मन, यह सिंहिनि भयकारि॥

और फिर हमारे हिन्दीवाले रसिकजनों के अनुकूल यहा विषय भी तो नहीं है.—

काहि सुनावत वीर-रस, वृथा करत चित खेद।
हैं ये रसिक सिंगार के, सुनत नायिका भेद॥
कहा बकत इत मूढ़ तूं, क्यों न रहत गहि मौन।
सुनिहै सरस-समाज में, निरस युद्ध-रस कौन?॥

इस मौके पर मेरा अपना एक निवेदन भी सहृदयों के प्रति है। वह यही कि:—'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' सोच कर ज़रा इधर भी एक दृष्टि दीजियेगा,

फिर वस्तुस्थिति का पता चल जायगा। नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते। सतसई के प्रारम्भ में मंगलाचरण रूप में मुरारी की वन्दना है.—

जयतु कंस-करि-केहरी ! मधुरिपु ! केशी-काल !
कालिय-मद-मर्द्दन ! हरे ! केशव ! कृष्ण ! कृपाल ॥
गिरि-वर जापै धारि कै, राखी ब्रज-जन लाज।
ताही छिगुनी को हमैं, बल मानों यदु-राज ॥
रह्यो उरझि रथ-चक्र जो, धावत भीषम ओर।
कब गहिहौं रण-छोर के, वा पटुका को छोर ॥

कैसे मिठास से प्रारम्भ है। गुण, अलङ्कार और भाव का क्या पूछना है ! हां, 'रह्यो उरझि' पद्य में 'रणछोर' पद का यहां क्या अर्थ है, यह मेरी समझ में नहीं आया। मंगलाचरण के बाद वीर-रस की प्रधानता स्वीकार करते हुए कविवर लिखते हैं:—

आदि मध्य अवसान हूं, जामें उदित उछाह।
सुरस वीर इकरस सदा, सुभग सर्वरस-नाह ॥

आदि, मध्य और अन्त में उत्साह के एकरस, अनवच्छिन्न उदय रहने के कारण वीर सब रसों का राजा है—रस-राज है। एक और हेतु:—

परिनामहुं जो देत है, लोकोत्तर आनन्द।
सुरस वीर रस-राजु सो, सहित उछाह अमन्द ॥
वीर-स्थायी भावसों, सरस सर्व रस आहि।
नीके हूँ फीके सबै, बिनु जाके जग माहि ॥

इस प्रकार वीर को आपने रस-राज करके स्मरण किया है। हम आपके पहले और अन्तिम हेतु से सहमत नहीं हैं। वीर-रस अवश्य रस-राज है। इसका कोई अपलाप नहीं कर सकता। परन्तु इसमें हेतु केवल वही है, जिसका उल्लेख बीच वाले दोहे में कविवर ने किया है। रस सभी, उपभोग—काल में, लोकोत्तर आनन्द देने वाले हैं। इस दशा में सब समान हैं। परन्तु, जो परिणाम में भी सुधा सहोदर हो, वही रस-राज है। निस्सन्देह यह बात केवल वीर-रस में है, अतः वही रस-राज है।

आपका पहला हेतु ठीक नहीं है। कारण, जैसे वीर में उत्साह आदि, मध्य और अन्त में, सदा ही, जगमगाता रहता है, ठीक वैसे ही और-और रसों में

उनके भी स्थायी भाव रहते हैं। इसलिए, वीर को रस-राज सिद्ध करने में यह दलील बिल्कुल कमज़ोर है—स्वरूपासिद्ध है।

अन्तिम दोहे में जो आपने हेतु दिया है कि "चूंकि और-और रस तभी अच्छे लगते हैं, जब उनमें वीर का स्थायीभाव, उत्साह, विद्यमान हो। पर, जहां यह (उत्साह) न हो, वहां वे रस सुन्दर होने पर भी फीके मालूम पड़ते हैं। इसी लिए वीररस-राज है।" यह ठीक नहीं है। सब रसों में वीर का स्थायी भाव नहीं रहता। कई रस तो ऐसे हैं, जहां यदि वीर के स्थायीभाव, उत्साह का ज़रा भी प्रवेश हुआ नहीं कि रस बिगड़ा नहीं, सारा गुड़ गोबर हुआ नहीं। बीभत्स और भयंकर आदि ऐसे ही रस हैं। अतएव यह बात ठीक नहीं कि सब रसों में वीरका स्थायी भाव उत्साह रहता है, और जहां वह न हो, वह रस ही फीका हो जाता है। अस्तु, कुछ भी हो, वीर है रस-राज।

शूरवीर का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं:—

मुँह-मागे (मागो ?) रण-सूरमा देतु दान पर-हेतु।
सीस-दान हूं देतु पै, पीठि दान नहिं देतु ॥
कहत महादानी उन्हैं, चाटुकार मतिकूर।
पीठहुं कहँ नहिं देत जे, कृपण दान रण सूर ॥

कैसी सुन्दर सक्तिया है! चित्त कवि-चातुरी पर न्योछावर होता है; और हृदय हर्ष से बधाई देता है।

विरह-वीर

शृंगार के या शृंगाराभास के नहीं, विशुद्ध प्रेमी के विरह में, विरही में, उत्कट मात्रा में, उत्साह की अभिव्यक्ति होती है। यही अपने अनुभावों—विभावों से पुष्ट होकर 'वीर' रस का नाम पाता है। वियोगी जी की स्वयं यदि इस विरह-वीर या वियोग-वीर पर नजर न जाती, तो फिर जाती किस की ? "सो का जानै पीर पराई, जाके पायं न फटी बिवाई।" पुराने कवियों को इस विरह-वीर की कल्पना सूझती भी क्यों ? वे तो कृष्ण और गोपियों के प्रेम को वह 'रति' समझ बैठे थे, जो दम्पति में होती है, और साहित्य में आकर शृंगार का नाम पाती है, और अनौचित्य-संवलित होने पर जिसे शृंगाराभास कहते हैं। इन विषयी कवियों ने भी कृष्ण और गोपियों के विशुद्ध प्रेम का ऐसी दुर्दशा की, कि उसे रसाभास ही करके छोड़ा। वस्तुतः यह बात ग़लत है। गोपियों का श्री कृष्ण में विशुद्ध प्रेम था, वैषयिक नहीं। अतएव उन के विरह में गोपियों में उत्साह की ही अभि-

व्यक्ति है। इसलिए विरह-मूर्छित गोपियां विरह-वीर या वियोग-वीर की ही नायिकायें हैं, न कि विप्रलम्भ शृंगार की।

वियोगीहरि जो इन पुनीत गोपिकाओं का स्मरण यों करते हैं:—

तजि सरबसु रस-बसु कियौ, गीता-गुरु गोपाल।
भाव-भौन-धुज धन्य वै, बिरह-बीर ब्रज बाल॥

यहां 'गीता-गुरु' पद बड़े मजे का है। और सुनिए:—

साध्यौ सहज सुप्रेम-व्रत, चढ़ि खांड़े की धार।
बिरह-बीर ब्रज-बाल हीं, रसिक-मेंड़ रखवार॥
धन्य बीर ब्रज गोपिका, तजो न रसकी मेंड़।
हेत-खेत में अन्त लौं, दियौ न पाछें पेंड़॥

शूर और कायर

कूकर उदर खलाय कैं, घर घर चाटतु चून।
रंगे रहत सद खून सों, नित नाहर-नाखून॥
कहतु कौन कायर तुम्हैं, बल-सायर! रण-माहिं।
भभरि भाजिबो पीठि दै, सबके बस कौ नाहिं॥
कादर बीरनु संग मिलि, भलैं अलापहि राग।
छिपत न अन्त बसन्त में, कैसेहुँ कोयल काग॥

युद्ध-वीर

युद्ध-वीर का चित्रण बहुत ही अच्छा किया है। देखिए.—

केसरिया बागो पहिरि, कर कंकण, उर माल।
रण-दूलह! बरि लाइयौ, दुलहिनि बिजय-बुवाल॥
औघट घाट कृपाण कौ, समर-धार बिनु पार।
सनमुख जे उतरे, तरे, परे बिमुख मझधार॥

हृदय में आनन्द की हिलोरें उठने लगती हैं और भुजाएं फड़क उठती हैं!

छत्रिय-स्वरूप

'छत्रिय छत्रिय' कहे तें, छत्रिय होय न कोय।
सीसु चढ़ावै खड्ग पै, छत्रिय सोई होय॥

किन्तुः—ओरि नाम सँग 'सिंह'-पदु, कियौ सिंह बदनाम।
ह्वै है क्यों करि सिंह यौं, करि शृगाल के काम॥

इस दोहे में 'शृगाल' की जगह अगर 'सियार' होता, तो कैसा था? शीर्ष दान देखिए:—

कोटिन मधि कोऊ कहूँ, कुल-दीपक इक होतु।
नेह-सहित निज सीसु दै, दस दिसि करतु उदोत।

यहाँ 'कुल-दीपक' के साथ 'नेह' ने सहयोग करके कैसा 'उदोत' कर दिया है? हृदय जगमगा उठता है।

कवि-चर्चा

वीर-सतसई रोकर कहती है:—

अब नख-सिख सिंगार के, पढ़त कवित कमनीय।
आजु लाल-भूषण-सरिस, रहे न कवि जातीय!
सिवा सुजस-सरसिज-सुरस, मधुकर मस्त, अनन्य।
रस-भूषण-भूषण सुकवि-भूषण भूषण धन्य॥
अहा!—कवि भूषण सो सरि कहौ, करि है को मति-अन्ध।
जासु पालकी में दियो, छत्रसालु निज कन्ध॥

अनन्य अन्योक्तियाँ

कमल-केलि करनीन सँग, करत कहा करिराज!
गिरि ते गाजत गाज लौं, रह्यो उतरि मृगराज॥
एक और:—यो मति कीजो रोर अब, मन! केहरि लौं आय।
या गयन्दिनि को अरे, गरभु न कहुँ गिरि जाय॥

वीरता और कामान्धता

जा तनु बारिधि में सदा, खेलति अतनु तरंग।
उमगैगी क्यों करि कहौ, ता मधि युद्ध-तरंग?॥

वीर-बाहु!

खल खण्डन मण्डन सुजन, अरि-विहण्ड बरिबण्ड।
सोहत सिंधुर-सुण्ड से, सुभट-चण्ड-भुज-दण्ड॥

कटि कटि जे रण में गिरे, करि कृपाण व्रत-त्राण।
क्यों न हुलसि कै वारियै, तिन भुजानु पै प्राण॥
बड़े बड़े वर बाहु के, नहिं केते बरि बएड।
दुवन-दर्प पै दलत जे, ते औरै भुज-दण्ड॥

उपर्युक्त दोहे को बिहारी के निम्न से मिलान कीजिए:—

"अनियारे दीरघ दृगनु, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान॥

नेत्र-सौष्ठव

आपने बहुत से जलज-नयन देखे होंगे! आइए, जरा अब रक्त-नयन भी देखिए:—

होति लाख में एक कहुँ, अनल वर्न वह आँख।
देखत हीं दहि करति जो, दुवन-दोह-दलु राख॥
नयन कंज, खंजन, मधुप, मद-मृग, मीन समान।
लोहितु और अँगारु पै, है अनुपम उपमान॥
सुभट नयनु अंगारु पै, अचरजु एकु लखात।
ज्यों ज्यों परतु उमाह-जलु, त्यों त्यों धधकतु जातु॥
जाव फूटि रति-रंग-रली, अलमौंहीं वह आँखि।
सहज-ओज-ज्वाला-ज्वलित, चिरजीवौ जुग लाख॥
सुरत-रंग कहं दृगनि में, कहं रण-ओज-उदोतु?
यातें उज्वल होतु मुखु, वातें कज्जल होतु॥

"सुभट-नयनु" दोहे में उत्साह की उपमा जल से किस सादृश्य के बल पर दी गयी है? 'सुरत-रंग' दोहे में क्रम बिगड़ गया है। नीचे की पंक्ति यदि यों होती:—"वातें कज्जल होतु मुख, याते उज्वल होतु।"
तो ठीक होता। कविवर कह सकते हैं कि 'याते' और 'ताते' शब्द बुद्धिस्थ पदार्थ के परामर्शक हैं; अतः यह ठीक है। यदि ऐसा ही हो, और सहृदय भी ठीक समझें, तो बहुत अच्छा।

संसार के महापुरुष

श्री मगनलाल गांधी

[लेखक—महात्मा गांधी]

जिसे मैंने अपने सर्वस्व का वारिस चुना था, वह अब न रहा। मेरे चचा के पोते मगनलाल खुशालचन्द गांधी मेरे कामों में मेरे साथ सन् १९०४ से ही थे। मगनलाल के पिता ने अपने सभी पुत्रों को देश के काम में दे दिया है। वे इस महीने के शुरू में सेठ जमनालाल जी तथा दूसरे मित्रों के साथ बङ्गाल गये थे। वहां से विहार आये। वहीं पर अपने कर्त्तव्य के पालन में ही उन्हें कठिन ज्वर हो आया। नौ दिन की बीमारी के बाद प्रेम और डाक्टरी इल्म से जितनी सेवा संभव है, सभी कुछ होने पर भी वे ब्रजकिशोरप्रसाद की गोद में से चल बसे। कुछ धन कमा सकने की आशा से मगनलाल गांधी मेरे साथ सन् १९०३ में दक्षिण अफ्रीका गये थे। मगर उन्हें दूकान करते पूरे साल भर भी न हुआ होगा कि स्वेच्छापूर्वक गरीबी की मेरी अचानक पुकार को सुन कर वे फीनिक्स आश्रम में आ शामिल हुए और तब से एक बार भी वे डिगे नहीं, मेरी आशाएँ पूरी करने में असमर्थ न हुए। अगर उन्होंने स्वदेश-सेवा में अपने को होम दिया न होता तो अपनी योग्यताओं और अपने अध्यवसाय के बल पर, जिनके बारे में कोई सन्देह हो ही नहीं सकता, वे आज व्यापारियों के सिरताज होते।······छापेखाने में डाल दिये जाने पर उन्होंने तुरन्त ही मुद्रण-कला के सभी भेदों को जान लिया। अगर्चे कि पहले उन्होंने कभी कोई हथियार हाथ में नहीं लिया था। इंजिन घर में, कलों के बीच तथा कम्पोजीटरों के टेबल पर सभी जगह अत्यन्त कुशलता दिखलायी। 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती भाग का सम्पादन करना भी उनके लिए वैसा ही सहज काम था। फिनिक्स आश्रम में खेती का काम भी शामिल था, और इसलिए वे कुशल किसान भी बन गये। मेरा ख्याल है कि आश्रम में वे सर्वोत्तम बागवान थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अहमदाबाद से 'यङ्गइण्डिया' का जो पहला अङ्क निकला, उसमें भी गाढ़े मौके पर उनके हाथ की कारीगरी थी।

पहले उनका शरीर भीम जैसा था, किन्तु जिस काम में उन्होंने अपने को उत्सर्ग किया, उसकी उन्नति में उस शरीर को गला दिया था। उन्होंने बड़ी सावधानी से मेरे आध्यात्मिक जीवन का अध्ययन किया था। जबकि मैंने विवाहित स्त्री पुरुषों के लिए भी 'ब्रह्मचर्य ही जीवन का नियम है' का सिद्धान्त अपने सहकारियों के सामने पेश किया था, तब उन्होंने पहले पहल उसका सौन्दर्य तथा उसके पालन की आवश्यकता समझी और अगर्चे कि उसके लिए जैसा कि मैं जानता हूँ, उन्हें कठोर प्रयत्न करना पड़ा था, उन्होंने इसे सफल कर दिखलाया। इसमें वे अपने साथ अपनी धर्मपत्नी को भी धीरतापूर्वक समझा बुझा कर ले गये, उन पर अपने विचार जबन डाल कर नहीं। वे मेरे हाथ थे, मेरे पैर थे, मेरी आंखें। दुनिया को क्या पता कि मैं जो इतना बड़ा आदमी कहा जाता हूं, वह बड़प्पन मेरे शान्त, श्रद्धालु, योग्य, और पवित्र स्त्री तथा पुरुष कार्यकर्त्ताओं के अविरत परिश्रम, और गुलामी पर कितना निर्भर है? और उन सब में मेरे लिये मगनलाल सबसे बड़े, सबसे अच्छे और सबसे अधिक पवित्र थे। यह लेख लिखते हुए भी अपने प्यारे पति के लिए विलाप करती हुई उनकी विधवा की सिसक मैं सुन रहा हूं, मगर वह क्या समझेगी कि उससे अधिक विधवा—अनाथ—मैं ही हो गया हूं? अगर ईश्वर में मेरा जीवन्त विश्वास न होता तो आज मैं उसकी मृत्यु के शोक में पागल हो गया होता, जोकि मुझे अपने सगे पुत्रों से भी अधिक प्रिय था, जिसने मुझे कभी धोखा न दिया, मेरी आशाएँ न तोड़ी, जो अध्यवसाय की मूर्ति था, जो आश्रम के भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक—सभी अङ्गों का सच्चा चौकीदार था। उनका जीवन मेरे लिए उत्साह दायक है, नैतिक नियम की अमोघता और उच्चता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन है। उन्होंने अपने ही जीवन में मुझे एक दो दिनों में नहीं कुछ महीनों में नहीं, बल्कि पूरे चौबीस वर्षों तक की बड़ी अवधि में—हाय, जो अब घड़ी भर का समय जान पड़ता है—यह साबित कर दिखलाया कि देश-सेवा, और आत्म-ज्ञान या ब्रह्मज्ञान आदि सभी शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। मगनलाल न रहे, मगर अपने सभी कामों में वे जीवित हैं, जिनकी छाप आश्रम की धूल में से दौड़ कर निकल जाने वाले भी देख सकते हैं। 'हिन्दी नवजीवन'

नोट:— श्री मगनलाल खुशालचन्द गांधी कैसे व्यक्ति थे, यह संसार के सबसे बड़े महापुरुष महात्मा गांधी जी के उपरोक्त लेख से पाठक सहज ही जान सकते हैं। गत मास में अचानक साधारण ज्वर से पीड़ित होकर उनका स्वर्ग वास हो गया। आगामी अंक में संभवतः हम आपका सचित्र जीवन देंगे।

—सम्पादक।

(१८४ पृष्ठ से आगे)

प्रजा-पक्ष और शत्रु पक्ष में युद्ध ठना। शत्रु पक्ष की शक्ति सुव्यवस्थित और सुसंगठित थी। बहुत से नमक हराम, देश-द्रोहियों ने शत्रु-पक्ष को सबल कर अपने सिर मातृ-विरोध कलंक का टीका लगाया, इसी कारण प्रजा-पक्ष की घटती कला नजर आने लगी। शत्रु को बलवान देख कर देशके त्यागी वीर नेताओं ने देश प्रेम के नाम पर सहायता की अपील की। धनी, निर्धन, व्यवसायी, अध्यापक, वकील, विद्यार्थी आदि सबको उनके कर्तव्य का ज्ञान कराकर जिस रूपमें जैसी सहायता स्वराष्ट्र के निमित्त दे सकते थे, उसे देने की अपील हुई। उस अपील पर देश के कितने ही मतवाले प्रेमियों ने अपने त्याग का परिचय दिया, धनवानों ने रुपए से, निर्धनों ने शरीर से, भिन्न भिन्न व्यवसाइयों ने भिन्न प्रकार से सहायता की। अध्यापक और वकील लोग अपनी आमदनी का ख्याल छोड़ देशभर में धन एकत्रित करने और लोगों में स्वदेश प्रेम की भावना जाग्रत करने के लिए घूमने निकल पड़े। वीर नव युवकों ने—विद्यार्थियों ने अपने प्राणों का मोह छोड़ प्रजापक्ष की सेनामें भर्ती हो राष्ट्रीय पताका फहराई। घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर के सहस्रों वीर खेत रहे। सहस्रों घायल हुए, पर अन्त में सत्य की विजय हुई। भाग्य-लक्ष्मी ने अपनी विजय वैजयंती प्रजापक्ष के योद्धाओं के गले में पहना दी। विजय श्री प्राप्त करने की उन्मत्तता में देशके कितने ही होनहार लाल अपने प्राणों पर खेल गए, इस नश्वर शरीर की यत्किञ्चित परवा न करके उस अक्षय-अनन्त सुख लालसा में अपने प्राणों की आहुति दे दी।

घायलों की संख्या भी कम न थी। उनकी समुचित चिकित्सा के लिए स्थान स्थान पर नए नए अस्पतालों की व्यवस्था की गई और उनमें योग्य डाक्टर व नर्सें नियुक्त की गईं। युद्ध भूमि के निकट ही एक खास वार्ड उन घायलों के लिए बनाया गया जिनकी दशा शोचनीय थी। कई सुयोग्य डाक्टर और नर्सें उसका बारी बारी से निरीक्षण करते थे।

शाम के वक्त एक घायल अस्पताल में लाया गया। नवीन उसका

रेख उठान जवान था। घावों से उसका तमाम शरीर छलनी हो रहा था। केवल मुख के भाग को छोड़ कर उसके सारे शरीर में हथियारों के निशान और लोहू के धब्बे थे, इस पर भी नवयुवक के चेहरे पर एक अनिर्वचनीय आनंद रेखा की झलक देख पड़ती थी। वह दृढ़ता के साथ अपने दुखों को सहन कर रहा था साथ ही डाक्टर और दूसरे लोगों को जो उसे देखने आते थे उचित आदेश करता जाता था। डाक्टरों ने बड़ी होशियारी से उसकी मरहम पट्टी की और उसे चुप रहने का आदेश कर पूरा आराम करने को कहा।

रातको जब सब लोग अपने २ स्थान पर चले गये अस्पताल में उस समय एक नर्स की ड्यूटी थी, यह नर्स बड़ी संलग्नता और तत्परता से अपना कार्य कर रही थी। जैसे ही वह शामको अपने काम पर आई, रोजकी तरह एक एक घायल को देखने लगी। प्यासों को अपने हाथ से पानी पिलाया किसी को दवाई दी। घबड़ाए हुओं को सान्त्वना दी। इसी प्रकार देखते २ वह उस घायल के पास पहुँची जो शाम को आया था। बड़े डाक्टर ने उसके लिए विशेष प्रकार से निरीक्षण करने को कहा था। नर्स ने धीरे से उसका वस्त्र हटाया। हाथ पैर और शरीर के घावों को देख कर उसके दिलको मर्मान्तक पीड़ा हुई। साथ ही उसकी अमरकरणी की याद कर सहसा उसके मुख से निकल पड़ा।

"शाबाश वीर, तुम्हीं जैसे पुत्रों से माता सौभाग्यवती हैं।" ये शब्द थे या असाध्य रोगी को संजीवनी बूटी! युवक ने आंखें खोलीं और युवती के चेहरे पर एक दृष्टि डाली। युवती ने भी युवक की ओर देखा। बहुत काल का विस्मृत प्रेम-श्रोतका बांध पुनर्मिलन के एकाएक धक्के से टूट गया। युवक ने कहा—प्रिय'' ''''''''''।

प्रतिध्वनि सुनपड़ी—हां, प्रा ''''''ण, ना''''''थ।

थोड़ी देर बाद देखा, युवक का युद्धभूमि का थकामांदा शरीर युवती की गोद में अनंत सुख का अनुभव कर रहा था। दोनों के पार्थिव शरीर वहां मौजूद थे पर वे दोनों वहां नहीं थे।

वीरोचित सूक्तियां

सुभट-शिरोमणि नहीं उठाते कापुरुषों पर अपना हाथ।
कभी नहीं मृगराज ठानते अपना युद्ध अजा के साथ॥

+ + +

यद्यपि टुकड़े टुकड़े होकर कट जाता है सकल शरीर।
किन्तु नहीं पीछे हटते हैं रण-बांकुरे लड़ाके वीर॥

+ + +

निर्भय निडर डटे रहते हैं करने को सैनिक संग्राम।
आत्म-समर्पण करके करते नहीं कलंकित कुल का नाम॥

+ + +

कोटि कोटि सेना लखि अरि की शूर न होते हैं भयभीत।
जय पाना अथवा मरजाना ही होती है उनकी नीत॥

सैनिक-धर्म

मैं हूं सैनिक सुभट समर की रहती है मुझ को नित चाह।
रण-भेरी सुन कर बढ़ता है क्षण क्षण में मेरा उत्साह॥
अस्त्र शस्त्र की झनकारों में आता है मुझ को आनन्द।
पीकर के रिपु-रक्त चाव से निर्भय फिरता हूं सानन्द॥
रहता है सूने शमशानों पर निश दिन मेरा आवास।
होकर बद्ध खड़ा रहता है कुटिल काल भी मेरे पास॥
बनके भीषण हिन्सक पशु सब छिप जाते हैं मुझे विलोक।
मेरी सिंह गर्जना सुन कर दहलाते हैं तीनों लोक॥
भला कहो फिर क्यों भय खाकर छोड़ूँ अपना सैनिक धर्म।
कैसे विमुख युद्ध से होकर करूं कायरों का सा कर्म॥

—दिव्य कवि।

विचार-तरङ्ग

[लेखक—श्रीयुत सुरेन्द्रजी शर्म्मा]

भावी युद्ध की आशङ्का ?

यूरोपीय राष्ट्र दुनियाँ के सामने यह दिखाने का ढोंग रचते हैं कि वे विश्व व्यापी शान्ति के पक्ष में हैं। वाशिङ्गटन और जिनेवा की कांग्रेसों में निःशस्त्रीकरण की समस्या को सुधारने के लिए बड़ा सर मगज़न किया गया किन्तु सब व्यर्थ हुआ। सभी बड़े-बड़े राष्ट्र यह कहते हैं कि गोली, बारूद, वायुयान, लड़ाकू जहाज आदि युद्ध के सामान पर नियन्त्रण होना चाहिये। परन्तु वे युद्ध के लिए भीतर ही भीतर तैय्यारियाँ कर रहे हैं। इङ्गलैण्ड, अमेरिका, फ्रान्स आदि देश तो अपनी फौज़ी ताक़त बढाने के लिए बेहद कोशिश कर रहे हैं। कहते हैं कि भावी युद्ध में रूस का मुख्य हाथ होगा। जिस अग्नि के प्रज्वलित करने के लिए इस प्रकार आयोजन किया जा रहा है, वह क्या दबी रहेगी ? स्वार्थ-पङ्क में सने हुवे यूरुपीय राष्ट्रों की कलुषित कृतियों से स्पष्ट प्रकट है कि भावी महायुद्ध की आग भड़केगी और ज़ोर के साथ भड़केगी !

विश्व व्यापी महासमर में उन पराधीन देशों का भाग्योदय हो सकता है जो तत्कालीन परिस्थिति से लाभ उठाना जानते हैं। विगत यूरुपीय समर में कितने ही छोटे छोटे राष्ट्र स्वतन्त्र हो गए। किन्तु विश्व के समस्त देशों से विशाल देश भारत टस से मस नहीं हुआ। उसकी गुलामी की जञ्जीर तनिक भी ढीली न हो सकी। क्यों ? इसलिए कि, इस देश के लोगों ने उस स्वर्ण अवसर का लाभ नहीं उठाया। आज का क्रान्तिकारी युग प्रवर्त्तक गान्धी तक उस समय यही कहता था कि "इस युद्ध में बिना किसी शर्त के अङ्गरेजों की सहायता करो, सिपाही भर्ती करो, लड़ाई लड़ो, यही स्वराज्य का सरल मार्ग है !" दुनियाँ ने अच्छी तरह देख लिया कि विगत-युद्ध में भारतवर्ष ने धन-जन से अङ्गरेजों का कितना साथ दिया और उसी के बल पर ब्रिटेन को कितनी सस्ती विजय हाथ लगी। उस सहायता के पुरस्कार में इस देश को रौलट ऐक्ट, जलियाँ वाला हत्याकाण्ड और मार्शल-ला की न्यामत दी गई ! यदि भविष्य में महायुद्ध हो तो यह देश क्या करेगा ? इस गम्भीर प्रश्न पर इस देश के दूरदर्शी राजनीतिज्ञ अभी से विचार करने का कष्ट गवारा करें तो अप्रासङ्गिक न होगा क्योंकि, स्वार्थ-लोलुप यूरुपीय राष्ट्रों की रफ्तार से भावी महायुद्ध की पूर्ण आशङ्का है।

गान्धी के बल पर ?

हमारे देश में बहुत से आदमी यह सोचा करते हैं कि केवल महात्मा गान्धी के बल पर इस गुलाम देश को आजाद किया जा सकता है। गान्धी यदि फिरसे अपनी आँधी चला दे तो इस देश की काया पलट जाय। और गान्धी यदि फिर से कार्य-क्षेत्र में आ जाय तो न जानें क्या क्या हो जाय। सदियों से हम व्यक्ति-पूजा को महत्व देते आ रहे हैं। हम व्यक्ति की आराधना करने पर जितना अधिक ज़ोर देते हैं उतना सिद्धान्त की पूजा पर नहीं। हम महात्मा गान्धी को अपना आराध्य देव बनाकर उनकी पूजा करने को उत्सुक हैं। किन्तु, जब उनके सिद्धान्तों पर अमल करने की ज़रूरत होती है, तब हम घबड़ाकर मैदान से भाग जाते हैं। यदि गान्धी जेल चला जाता है, तो हमारे सारे कामों और प्रोग्रामों पर पानी फिर जाता है, और यदि वह सेनापति हमारे सामने से ज़रा भी हट जाता है तो हम हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाते हैं और कहने लगते हैं कि गान्धी ज़रा अपनी आँधी चला दे तो कुछ काम बने ! यह हमारी कायरता है। हम स्वयं तो कुछ करना धरना नहीं चाहते किन्तु गान्धी के त्याग और तपस्या के गीत गाकर उसकी आँधी की बाट जोहते हैं। यह कोई जादू तो है नहीं, जो एक व्यक्ति अपना बलिदान करके ३३ करोड़ प्राणियों का भाग्य पलट दे। इतने बड़े देश की आज़ादी के लिये करोड़ों प्राणियों को आत्मोत्सर्ग करना पड़ेगा। ज़रूरत है इस बात की कि हम हर तरह किसी एक व्यक्ति की पूजा के गीत गाने के बदले अधिक से अधिक उपयोगी सिद्धान्तों के प्रचार और उनको काम में लाने की बात पर ज़ोर दें। गान्धी जेल चला जाय तो हमारा काम न रुके, हमारे सारे प्रोग्राम पर पाला न पड़ जाय, हम अपने और देश के लिये उपयोगी सिद्धान्तों पर प्राण रहने तक अमल करते चले जाँय। हम व्यक्ति की अपेक्षा सिद्धान्त की पूजा का महत्व अधिक समझें और उसी के लिए मर मिटें।

प्रजा-सत्ता का स्वप्न

आज हम इस बात को डंके की चोट पर घोषित करने लगे हैं कि इस देश में प्रजा-सत्तात्मक शासन की स्थापना होनी चाहिए। बिना इसके इस देश का कल्याण नहीं। कांग्रेस ने भी इस बात की घोषणा कर दी है कि हमारा ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता है। इससे कम, पर हम किसी तरह संतुष्ट नहीं हो सकते। यह युग जन-सत्ता का युग है। संसार के अधिकांश भाग में लोग पूर्ण स्वतन्त्रता की सुरभित समीर का आनन्द लूट रहे हैं। ऐसी दशा में भारत ही पराधीन बन कर क्यों रहे ? प्रजा-सत्ता के सुखद सूर्य्य की रश्मियां यहाँ क्यों न फैलें ? बात बिलकुल ठीक है। दुनिया के और देशों की तरह, इस देश में भी, प्रजा सत्तात्मक शासन-प्रणाली का स्थापित होना बिलकुल स्वाभाविक है। परन्तु, प्रश्न यह है कि क्या

प्रजा-सत्ता के ठीक अर्थ को हमने हृदयङ्गम कर लिया है, और क्या उसके अनुसार हम अपने देश में काम भी कर रहे हैं? जन-सत्ता का अर्थ है, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक आदि जीवन के हर क्षेत्र में जनता का नियन्त्रण हो। इस लोक की हर दिशा में जनता की धाक हो। अपने कल्याण और त्राण के लिये उपयोगी काम करने के लिये जनता को पूर्ण आज़ादी हो। जहां ऊँच, नीच, काले, गोरे, बड़े, छोटे और स्वामी और सेवक की दूषित भावना छू तक न गई हो। जहां किसी दल और सम्प्रदाय विशेष का प्रभुत्व स्थापित करने की भावना का लेश भी न हो। दुर्भाग्य से इस देश के पराधीन वायुमण्डल में, जन-सत्ता के भावों का विकाश उचित दिशा में, यथार्थ रूप से नहीं हो रहा है। विदेशी शासन, इस भावना के विकास के मार्ग में एक सुदृढ चट्टान का काम कर रहा है। इधर हमारे सम्मुख आदर्श तो प्रजा-सत्ता का जरूर है, किन्तु, हमारे काम सर्वथा हमारे आदर्श के प्रतिकूल होते हैं। हमारी सार्वजनिक संस्थायें, महन्तों की गद्दियों का सा रूप धारण करती जाती हैं। जहां किसी संस्था की बागडोर, मन्त्री या प्रेसिडेंट की हैसियत से हमारे हाथ में आती है, वहां हम उसे अपनी एक जायदाद या ज़मींदारी समझ कर, आजीवन अपने पेट से चिपटाये रखना चाहते हैं। चुनाव के समय, हम संस्थाओं के पदों के लिये स्वर्ग गुट्ट बनाते हैं और अनेक प्रकार के षडयन्त्र रचते हैं। संस्थाओं के पदों पर काम करते हुए हमारा हिसाब उतना साफ़ नहीं रहता, जितना रहना चाहिये। सार्वजनिक संस्थाओं के पदाधिकारी के रूप में, हम अपने कामों के लिये जनता के सम्मुख उत्तरदायी हैं। किन्तु, हम, यथोचित रूप से अपना कर्त्तव्य पालन करके तथा अपने कामों का ब्योरा जनता के सामने पेश करते हुए घबड़ाते हैं। क्यों? इसलिये कि सार्वजनिक जिम्मेदारी को यथोचित रूप से पूरा करने, और अपने सार्वजनिक कामों की खरी आलोचना कराने का नैतिक साहस हम में नहीं है। समय समय पर अपने स्वार्थ के लिये, लोक-मत की अवहेलना करते हुए हमें तनिक भी सकोच नहीं होता। अपने मातहतों पर निरंकुशता से धांधली करने में हम विदेशी नौकरशाही से कहीं आगे बढ़े हुए हैं। अपने से कम योग्य तथा छोटे दर्जे के आदमी से काम लेने में हम स्वेच्छाचरिता दिखा कर नादिरशाह को भी मात करते हैं। सहनशीलता और उदार भावना हम में छू तक नहीं गई। हम चाहते हैं कि लोग आँखें मीच कर हमारे हुक्म की तामील करें। हम दिन रात प्रजा-सत्ता, समता और न्याय का राग अलापते हैं, लेख लिख कर अखबारों का कलेवर काला करते हैं, किन्तु, जब व्यवहार की बात आती है, तो हमारे ऊँचे २ सिद्धान्त हमसे उतने ही दूर हो जाते हैं, जितना जमीन से आसमान! हमें अपने पाप और दूसरों के प्रति किया

गया अन्याय दिखाई नहीं देता। इस दशा में यह सच नहीं है कि प्रजा-सत्ताके नाम पर हम जो कुछ लिखते और बोलते हैं, वह सब स्वप्न है और जब तक, प्रजा-सत्ता, समता, न्याय और स्वातन्त्र्य के ऊँचे सिद्धान्त हमारे व्यवहार से परे की चीज़ रहेंगे, तब तक इस अभागे देश की दशा नहीं सुधरेगी। हमें चाहिये कि उन ऊँचे और उपयोगी सिद्धान्तों को व्यवहार की चीज़ बनावें, केवल स्वप्न या कल्पना की चीज़ नहीं।

गुलामी की भावना

हमारा देश गुलाम है। हम उसे आज़ाद करना चाहते हैं। इसलिये कि पराधीनता इस देश के लिए हलाहल है और स्वाधीनता अमृत। विश्व का वायु-मण्डल दिन पर दिन बदल रहा है। अब छोटे से छोटा देश भी स्वतन्त्रता की वायु में स्वतन्त्र रूप से साँस लेगा। जो ऐसा करने में असमर्थ रहेगा, दुनियाँ में उसका अस्तित्व असम्भव हो जायगा। इसलिए हम स्वयं मनुष्य की तरह जीवित रहने और अपने प्यारे देश को दूसरे आज़ाद मुल्कों की तरह ज़िन्दा रखने के लिए स्वतन्त्र बनाना चाहते हैं। ऐसा करने के लिए हमें अपनी सदियों की पुरानी गुलामी की भावना बदलनी पड़ेगी। हमारे नेता और कार्यकर्त्ता, दोनों ही की मनोवृत्ति दूषित है। हम अपनी कमजोरी को अनुभव नहीं करते, और सदा आसमान के सातवें तबके पर चढ़ जाने का स्वप्न देखते हैं। कहते हैं कि कुछही दिनों में इस देश के नेता बम्बई में बैठकर सब दलों की सम्मति से एक शासन-विधान बनाने की योजना करेंगे जो गुलाम हैं, जिनमें शक्ति नहीं, बल नहीं, संगठन नहीं, उनके शासन-विधान का वर्तमान शासकों के आगे क्या मूल्य है, सो तो इस देश के राजनीति-विशारद नेता ही जानें। किन्तु इतना स्पष्ट है कि जिस जाति में अपने बनाये हुए शासन विधान को व्यवहार में लाने की शक्ति नहीं, उस जाति को केवल कागजी घोड़े दौड़ाने से कोई लाभ नहीं, संसार हमारी इस बेबसी और गुलामी की भावना पर हँसता है। पहिले शक्ति संचय की ज़रूरत है। पूर्ण स्वतन्त्रता हमारा आदर्श है। बस हम अपनी गुलामी की भावना (Slave mentality) को दूर करके शक्ति-सञ्चय और राष्ट्रीय शक्तियों को संगठन करने के राज-मार्ग पर आगे बढ़े चले जायँ। बिना शक्ति और सामर्थ्य के हमारे विधान का कोई मूल्य नहीं।

हमारी गतिमति

राष्ट्रीय महासभा के मञ्च से हम विधयात्मक कार्य्य-क्रम को पूरा करने की बात अनेक बार पास कर चुके हैं। इस प्रोग्राम में ग्राम-संगठन का मुख्य स्थान है। परन्तु हमारे नेता और कार्यकर्त्ता दोनों ही देहात और देहातियों को भूले हुये हैं। यह ठीक है कि नेता हर जगह गाँवों में नहीं पहुँच सकते, किन्तु

कार्यकर्त्ता पहुँच सकते हैं। यह तब हो सकता है, जब नेता कार्यकर्त्ताओं को संगठित कर लें और उनपर नियन्त्रण रक्खें। यह नियन्त्रण हर जगह प्रान्तीय, जिला तहसील और तालुका कांग्रेस कमेटियों के द्वारा हो सकता है। किन्तु, आज इन कमेटियों का कहीं पता है? जहाँ तहाँ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को छोड़कर ज़िला और तहसील कमेटियों का कहीं अस्तित्व है? जब चुनाव होता है, तब हम गांव वालों से वोट-भिक्षा माँगने जाते हैं, और फिर गाँव वालों को ऐसे भूल जाते हैं मानो उनसे अब कोई काम ही नहीं। असल में बात यह है कि देहात में न तो बिजली के पङ्खे और रोशनी है, और न वहां मोटर की सवारी और खाने को सेव और अंगूर। इस दशा में राष्ट्रीय महासभा में पास किये हुए ग्राम संगठन का काम करने देहात में कौन जाय? वहां तो कोसों पैदल चलना, और रूखा-सूखा भोजन करना पड़ेगा और देहातियों में घुल मिल कर रहना पड़ेगा। इस दशा में हमें देहात में जाना और वहां काम करना भार मालूम देता है! दुनिया के सामने ग्राम-संगठन का प्रस्ताव तो कर ही देते हैं और उनपर मार्मिक भाषण देकर देहातियों की दशा पर चार आंसू भी बहा देते हैं! और क्या चाहिये? यह पराधीन भारत के पराधीन लोगों की गति-मति है। इसमें आश्चर्य ही क्या है?

सब से बड़ी कमजोरी

हमारे चरित्र में यह बड़ी कमजोरी है कि जो जुल्म हमारे साथ किये जाते हैं, उन्हें हम भूल जाते हैं। संसार की और क़ौमों में यह बात नहीं है। यदि किसी एक देश के किसी आदमी पर, किसी दूसरे देश में कोई अत्याचार किया जाय, तो, उस संत्रस्त आदमीके समस्त देश में खलबली मच जाती है। उस देश के लोगों के हृदयों में आग सी लग जाती है, और उनमें अपने देश-वासी के अपमान का बदला लेने की भावना बलवती हो उठती है। किन्तु, दुर्भाग्य से इस विशाल भारत के लोगों की अजब हालत है। ग़दर के बाद, जो हृदय हिला देने वाले जुल्म और ज़्यादतियाँ, इस देश के निरपराध लोगों को सहने पड़े, उन्हें हम भूल गये! जलियाँ वाला बाग़ के हत्याकाण्ड की अब शायद ही हमें कभी याद आती होगी! काकोरी के चार शहीद फाँसी पर लटका दिये गये, किन्तु दो-एक स्थान को छोड़ कर, अन्य कहीं भी सार्वजनिक सभा करके हमने, उन अभागे शहीदों की अमर स्मृति में चार आंसू भी न बहाये! उनके शोक-सन्तप्त परिवार के साथ समवेदना प्रकट न की! यह हमारे भारतीय चरित्र में सबसे बड़ी कमज़ोरी है। सैकड़ों वर्ष की गुलामी के कारण हमारे अन्दर को स्वाभिमान की भावना नष्ट हो गई और अब, धीरे धीरे मनुष्यत्व भी नष्ट होता जा रहा है। क्या हम अपनी सबसे बड़ी कमज़ोरी को अनुभव कर, उसे दूर करने का प्रयत्न करेंगे?

चीन—जापान युद्ध

[लेखक—श्री० परिपूर्णानन्दजी वर्म्मा]

मई का प्रारम्भिक सप्ताह राष्ट्रीय-चीन के लिये बड़ा भीषण सप्ताह रहा है। भीषणता यद्यपि लुप्त नहीं हो गयी है पर परिणामतः वह अच्छी निकलेगी यह निश्चित है। यह एक भीषण किन्तु रोचक, शौर्य्यपूर्ण किन्तु नीच, अन्तर्राष्ट्रीय किन्तु घृणास्पद कहानी है जो रक्त के सुन्दर अक्षरों में चीन के विदीर्ण वक्षस्थल पर, लज्जा तथा तिरस्कार के इङ्गलैण्ड-मान्य जापान के अपवित्र कलेवर पर तथा अदूरदर्शी, कृतघ्नी, अनुदार तनाका (प्रधान मंत्री, जापान) के मस्तक पर, लिखी आ रही है।

राष्ट्रीय-चीन के प्रधान सेनापति चांग-के-शेक ने इङ्गलैण्ड आदि अनभीष्ट पड़ोसियों का मिलाकर, राष्ट्रीय चीन की विकसित शक्ति को केन्द्रीभूत कर, बड़े वेग से उत्तर चीन के जयचन्द—विद्रोही सेनापति चांग-सो-लिन के ऊपर आक्रमण कर दिया। उत्तरीय विश्वासघाती हारते गये। राष्ट्रीय सेना बढ़ती गयी। वह समय बहुत निकट मालूम पड़ा जब सदियों का अभागा चीन एक सूत्र में बंधकर उठ खड़ा हो। मञ्चूरिया चीन का एक अर्ध-सभ्य भाग है। यह अपने कच्चे माल के लिये, रूसी जापानी विशाल रेलवे के लिये, बेकार जापानियों को सैकड़ों नौकरी दिलाने के लिये, बड़ा महत्वपूर्ण है। जापान के हाथ से मञ्चूरिया निकल जाय, तो, अपनी बढ़ती आबादी को अभी से न सम्हाल सकने वाला यह राष्ट्र कभी का नष्ट हो जाय। जापान यह जानता है कि शक्ति सम्पन्न चीन मञ्चूरिया को जापान की बपौती न मानेगा तथा उसके जापानी-स्वार्थ में साझा कर लेगा। इसी कारण, लगभग एक वर्ष पूर्व तनाका-सरकार ने राष्ट्रीय चीन से यह समझौता कर लिया कि मञ्चूरिया में जापान के अधिकारों में हस्तक्षेप न किया जायगा। परन्तु उस समय जापानी मंत्रिमण्डल की बड़ी विकट अवस्था थी। वह जानता था कि यदि राष्ट्रीय चीन के विरुद्ध कुछ किया तो विरोधी दल—मिन्सेकी (उदार)—मंत्रिमण्डल का पतन करा देगा और फिर टाँय टाँय फिस्स हो जायगी। अधिकार लोलुप तनाका इसी कारण चीन के प्रति सहानुभूति दिखलाने लगा। १९२७ के होनोलुलू सम्मेलन में तो वह

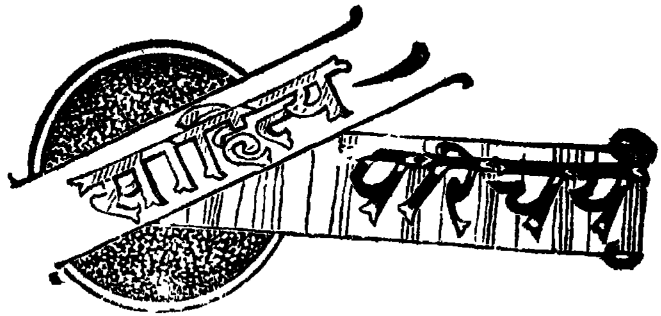
चीन का सगा भाई बन गया-इस डर से कि कहीं चीन संयुक्त राज्य अमेरिका से न मिल जाय। परन्तु जापान की वास्तविक इच्छा यह थी कि चीन को दबाकर मञ्चूरिया रखने में अधिक लाभ है न कि इसे रियायती तौर से पाकर।

इसी कारण जापान आनन्द पूर्वक चीन का गृह-युद्ध देख रहा था। यकायक राष्ट्रीय चीन का अभ्युदय देख कर वह चौंक पड़ा। चट खिनानफू में जापानी जान-मालकी रक्षा के बहाने एक जहाजी बेड़ा कप्तान फुकाडो के सेनापतित्व में भेजा गया। उसी समय लोगों के कान खड़े हो गये। जापानी नीयत पर सभी को शुबहा हो गया। हुआ भी यही। जापानियों ने वहां जाते ही शरारत शुरू कर दी। उन्होंने एक चीनी अफसर को गोली मार दी। चीनी सिपाहियों के हथियार खाने लगे। इसी छेड़छाड़ से चिढ़कर चीनी सेना लड़ बैठी। यह नहीं कि जापानी अपनी शरारत से वहीं तक बाज आये। वे चीनी हाईकमिश्नर के दफ्तर में घुस गये। उसकी नाक कान काट ली। बिचारे को बुरी तरह मारा—साथ ही निरपराध दफ्तर के कर्मचारियों को स्वाहा कर डाला। इस निर्लज्ज बर्ताव का क्या अन्त हो सकता है—युद्ध छिड़ गया। दीर्घसूत्री चीन अपमान न सह सका—जागृत राष्ट्रीय सेना कप्तान फेङ्ग-हू-स्यांग की आधीनता में भिड़ पड़ा और जापान से भी दनादन हवाई जहाज, जङ्गी जहाज-सेना-कप्तान आदि आकर तबाही मचाने लगे।

पूरी घटना पाठक समाचार पत्रों में पढ़ चुके होंगे। सारांश यह है कि दोनों ओर 'जान-माल' की काफ़ी हानि हुई। जापान ने यह घोषित किया कि जब तक अवस्था काबू में न आयेगा जापान प्रसिद्ध चीनी बन्दर 'शांतुङ्ग' अपने अधिकार में रक्खेगा। साम्राज्यवाद तथा कुटिलता का इससे ज्यादा भीषण प्रदर्शन क्या होगा। राष्ट्र-परिषद् का सदस्य जापान परिषद् की १९-२० वीं धारा का उलङ्घन कर दूसरे सदस्य चीन के राज्य में अनधिकार पूर्वक प्रवेश कर गया, पर परिषद् के मुख्य अन्य सदस्य चुप रहे, इङ्गलैण्ड के एक कोने का सौवां टुकड़ा भी आज जापान छीनता तो आज प्रलय मच जाता। पर जर्जर चीन की बात दूसरी है। इसी अवसर पर चांग-के-शेक ने गृह-युद्ध स्थगित करने की घोषणा की। चीन की उत्तरी सेना इस समय नष्ट-प्राय हो रही थी। कप्तान चांग-सो-लिन की लाज सम्हलते-सम्हलते बची। जापानी हस्तक्षेप को उन्होंने

अपनी शक्ति बटोरने का अच्छा अवसर समझा। उसने भी युद्ध स्थगित करने की घोषणा कर दी। जापान के बलाबल को देखकर राष्ट्रीय चीन ने राष्ट्र परिषद् के पास यह नालिश भेजी कि जापान ने परिषद् की धारा का उलंघन कर उसकी सीमा में अनधिकार प्रवेश किया। दूसरी ओर अमरीका से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की। विलायती पत्र में अधिकांश साम्राज्यवादी जापान की पीठ ठोक रहे थे। यह तो वे जानते थे कि 'जान-माल'की रक्षा का पाखण्ड जापान यूरोपियन देशों से सीखा है, पर चोर चोर को बदनाम क्यों करे। अमरीका ने उस समय हस्तक्षेप करना स्वीकार किया जब जापान भी उसे पंच माने।

परन्तु राष्ट्रीय चीन पूर्ण दुर्बल न था। वह उत्तरी सेना की शक्ति जानता था। अत: एक ओर वह तींस्तीन और सिनानफूमें जापानी सेना का सामना करता रहा, दूसरी ओर उत्तर वालों को खदेड़ने लगा। पेकिंग पर राष्ट्रीय सेना का अधिकार भी होगया। चांग-सो-लिन पेकिंग छोड़ने वाले हैं। इधर जापान को व्यापारिक धक्के के साथ राजनीतिक लानत मलामत यहांतक सहनी पड़ी—रूस अलग नाराज़, एशियाई सभी सेना नाखुश। चीनके कैण्टन ऐसे नगरों ने जापानी माल का बहिष्कार निश्चय किया। उधर मिन्सकी दल अलग ज़ोर पकड़ रहा है। परिणाम यह हुआ कि जापान ने चीन से समझौता कर चीनी सेना से सिनानफू खाली करा लिया। इस समय जापानी सेना द्वारा चीन का व्यापारिक मण्डल वहां का शासन कर रहा है। दूसरी ओर शांतुङ्ग में जापानी अधिकार के कारण भीषण अकाल पड़ा है, आबाल वृद्ध भूखों मर रहे हैं। जापान था तो सेना का खर्च सम्हाले या अकाल का। परन्तु फिर भी अकड़ न गई। यद्यपि अमरीका का पंचनामा उसने मंजूर कर लिया पर फिर भी चीन से उसकी यह मांग है कि वह सिनानफू में जापानी नुकसान का हर्जाना दे, चीनी सेनापति को दण्ड दे, प्रधान सेनापति चांग-के-शेक क्षमा याचना करें इत्यादि। 'इसे कहते हैं उलटा चोर कोतवाल को डांटे।' स्वयं चीन के राष्ट्रीय अपमान तथा हानि की क्षति पूर्ति न कर, क्षमा न मांग कर, चीन से क्षमा मंगाना बेहयाई है। पर साम्राज्यवादी हयादार कब होते हैं। अस्तु चीन की राष्ट्रीय सरकार ने इन शर्तों को अस्वीकार कर उचित ही किया। देखें आगे क्या गुल खिलता है!



आर्द्रा—लेखक—श्री सियारामशरण जी गुप्त, पृष्ठ १४२, मूल्य १) सजिल्द ।

श्री सियारामशरण जी हिन्दी के उच्च कोटि के भावुक कवि हैं। आपकी कविताओं में काव्य के अनेक गुणोंका अस्तित्व रहता है। यही कारण है कि सहृदय समाज में उनका बहुत आदर है। प्रस्तुत पुस्तक में आपकी तेरह कविताओं का संग्रह है। सब कविताएं एक से एक बढ़कर हैं। हूक, प्रयाणोन्मुखी, डाकू, नृशंस, एक फूल की चाह, बन्दी आदि कविताएं पढ़ते ही बनता है।

शक्ति—लेखक—श्री मैथिलीशरणजी गुप्त, पृष्ठ ३६, मूल्य ।)

'शक्ति' से गुप्तजी की गुप्त शक्तियों पर तो प्रकाश पड़ ही रहा है साथ ही यदि उसका पारायण शक्तिहीन हिन्दू समाज करे तो उसमें शक्ति-सञ्चार हुए बिना न रहे। यह खण्ड-काव्य क्या है, म्रियमाण हिन्दू समाज के लिए संजीवनी बूटी है। प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को पढ़ना चाहिए।

बकसंहार—लेखक—उपर्युक्त पृष्ठ ५५ मूल्य ।=)

महाभारत में भीम द्वारा बक राक्षस के वध की कथा बहुत प्रसिद्ध है। इसी कथा को हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ कविराज श्री मैथिली-शरणजी ने काव्य रूप में लिखा है। कुछ लोगों का अनुमान है कि काव्य की दृष्टि से यह पुस्तक बहुत उच्च कोटि की है। हमें भी यह सम्मति सोलह आने सत्य मालूम होती है।

वनवैभव—इसके लेखक, पृष्ठ संख्या और मूल्य तथा रंगरूप 'बक संहार' जैसा ही है। इसमें पाण्डवों के वनवास का वर्णन है, बड़ा अजीब वर्णन है, पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। प्राकृतिक छटा खूब छिटकी है। वीरता के भावों का भी अभाव नहीं है। पुस्तक पठनीय और आदरणीय है।

सैरन्ध्री—इसके लेखक भी उपर्युक्त गुप्तजी ही हैं और पृष्ठ मूल्यादि भी वही है, कथानक भी महाभारत ही का है। द्रौपदी जब विराट राजा के यहां दासी बनकर रहती थी, कीचक ने उसे अपनी कुदृष्टि का लक्ष्य बनाया था। इस पुस्तक में कीचक की कामचेष्टा और द्रौपदी का प्रतीकार एवं उनके उत्तर प्रत्युत्तर बड़े अच्छे ढंग से वर्णित हैं।

उपर्युक्त तीनों पुस्तकें एक जिल्द में 'त्रिपथगा' नाम से सजिल्द प्रकाशित हुई हैं। मूल्य १।।) । सभी पुस्तकों के मिलने का स्थान साहित्य-सदन, चिरगांव (झांसी) है।

बहादुरी की बातें

बंगलोर से एक दश वर्षीय बालचर के एक पंचदश वर्षीया बालिका को जल समाधि से बचाने का समाचार आया है। मंगलवार को प्रातःकाल एक देवांग जाति की बालिका घाट पर कपड़ा धो रही थी। अचानक उसका पैर फिसला और वह गहरे पानी में जा पड़ी। वह छटपटाने लगी और डूबने ही को थी कि १५ वीं बगलोर बालचर सेना के दश वर्षीय बालक रामराव ने उसे देखा और तालाब में कूद पड़ा। वह शीघ्र बालिका के पास पहुँच गया और उसे पकड़ लिया। पश्चात् गुरुतर बोझ तथा तालाब की सेवार के कारण पड़ने वाली कठिनाइयों का धीरता से सामना कर वह बालक बालिका को घाट पर जीवित ले आया। इस प्रकार इस छोटे से बालक ने उस लड़की के प्राण बचाए और अपने अदम्य साहस का परिचय दिया।

हैदराबाद (सिन्ध) का समाचार है कि रोहरी स्थान में गत २७ मार्च को एक हिन्दू बालिका की बहादुरी से एक बदमाश गिरफ्तार हो गया। उक्त दिन दोपहर के समय एक हिंदू बालिका एक बुढ़िया के साथ ससुराल आ रही थी। मार्ग में जब वे पुल पार कर रही थीं एक सुनसान स्थानपर एक इक्कीस वर्ष के हट्टे कट्टे मुसलमान युवक ने पीछे से आकर बालिका को पकड़ लिया और हाथ से उसका मुंह बन्द कर उसके जेवर उतारने लगा। बालिका इसपर जरा भी न घबड़ाई और छूटने का प्रयत्न करने लगी। मौका पाकर उसने युवक का हाथ दांतों से धर दबाया और इस जोर से काटने लगी कि युवक को अपनी जान बचाने के लिये चिल्लाना पड़ा। उसका रोना सुनकर पुलका सैनिक रक्षक और राह चलते आदमी वहां आ पहुँचे और बदमाश गिरफ्तार करके पुलिस के हवाले किया गया। स्त्री ने बुद्धिमानी और साहस से काम लेकर अपनी रक्षा कर ली और बदमाश को पकड़वा दिया। शाबाश !!!

❀ ❀ ❀

बङ्गलोर सिटी का समाचार है कि दोदवल्लापुर कस्बे मे वहां के पंचम लोगों के मुहल्ले में एक अकेली झोंपड़ी में आग लग गयी। वनु नाम की एक ६ वर्ष की बालिका पास ही खेल रही थी, झोपड़ी में आग लगते देख वह तुरन्त झोपड़ी में घुस गयी, पहले अपने तीन वर्ष के भाई को निकाल कर सड़क पर रख गयी इसके बाद फिर जलती झोपड़ी में घुस कर ६ मास के बच्चे को निकाल लायी इसमें वह इतनी झुलस गयी थी कि सड़क पर पहुंचते ही गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद उसके माता पिता काम से लौटे और बीर बालिका को अस्पताल भेजा, जहां वह अच्छी हो रही है। डिप्टी कमिश्नर ने अपनी आंखों इस घटना को देखा था। उन्होंने बालिका को पांच एकड़ जमीन पुरस्कार में दी है साथ ही उसे और भी उपयुक्त पुरस्कार देने की सिफारिश की है। वास्तव में इस बालिका का साहस और बीरता सराहनीय और पुरस्करणीय ही है।

विविध विषय

१—महाराणा प्रताप जयन्ती—

आगामी ज्येष्ठ शुक्ला ३ ता० २२ मई को हिन्दू-कुल-तिलक राजस्थान-केशरी महाराणा प्रतापसिंह का जन्म दिन है। कई महानुभावों ने सार्वजनिक विज्ञप्तियों द्वारा सर्व साधारण का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है और यह प्रार्थना की है कि इस जयन्ती पर सब लोग मिलकर आनन्दोत्सव मनावें और जिस प्रकार अपने जीवन में महाराणा ने अपने देश को गुलामी से बचाने का प्रयत्न किया था, सब कुछ आपत्तियां सहकर भी जो प्रण किया था उसे अन्त तक निबाहा था और जैसे भी हो सका था शक्ति संचय कर के, देश की कीर्तिलता को मुरझाने से बचाने का प्रयत्न किया था, वैसे ही हम भी करें। हम समझते हैं कि ऐसा करने की आवश्यकता बताने का समय अब नहीं रहा। अब तो समय इस बात के सोचने का है कि यह उत्सव किस प्रकार मनाया जाय। इसका उत्तर केवल यह है कि जहां जिस प्रकार से यह उत्सव मनाने में सुविधा हो और सफलता की आशा हो, वैसे ही यह उत्सव मनाया जाय। हम चाहते हैं कि राजस्थान ही नहीं, उत्तरी भारत ही नहीं, सारे भारत में यह उत्सव मनाया जाय। एक वीर के जन्म दिन पर उत्सव मनाकर हम भी वीर और महावीर बनने का प्रयत्न करें।

२—तीन दुःखद वियोग—

पिछले दिनों भारतवासियों और हिन्दी भाषियों पर क्रूर काल के तीन तीक्ष्ण बाण छूटे। पहले बाण के शिकार महात्माजी के शब्दों में, 'सत्याग्रह आश्रम के सर्वस्व' श्रीयुत मगनलालजी गांधी थे। दूसरे बाण से शिक्षणकला विशारद वयोवृद्ध राजा-प्रजा मान्य राय साहब पं० रघुवरप्रसाद जी द्विवेदी और तीसरे बाण से हिंदी के एक होनहार कवि श्री पद्मधर जी अवस्थी हिंदी संसार से उठ गए। श्री मगनलाल जी गांधी

के विषय में हम क्या कहें ! उनके विषय में महात्मा गांधी जी ने जो उद्गार प्रकट किये हैं वे हमने अन्यत्र प्रकाशित कर दिए हैं। पं० रघुवर प्रसाद जी द्विवेदी पिछले अनेक वर्षों से हिंदी की जो एकांत सेवा कर रहे थे वह किसी से छुपी न थी। उनकी हिंदी सेवा इस योग्य थी कि वे हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति बनाए जाते। अवस्थी जी अभी तो जवान थे। हमारा उनका कोई पुराना परिचय नहीं था। इधर ही छः मास के भीतर वे दो बार हमें मिले थे। कविता पढ़ने में उनका सा उत्साह, और कविता बनाने में उनकी सी शीघ्रता बहुत कम लोगों में देखी जाती है। वे अपने को आशु कवि कहते थे और सचमुच वे एक प्रतिभाशाली आशु कवि थे। पिछली बार जब उन्होंने मुझे दर्शन दिए थे तो बड़े प्रेम से वीर सन्देश के लिए एक कविता महाराणा प्रताप और दूसरी शिवाजी पर दे गए थे। पहली कविता 'प्रताप-पंचक' के नाम से गतांक में छप चुकी है। शिवाजी वाला छन्द इसी अङ्क में अन्यत्र छप रहा है। हम उक्त तीनों आत्माओं की शान्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं और उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करते हैं।

३—टट्टी की ओट में शिकार—

कलकत्ते के गोविन्द-भवन काण्ड का हाल अब किस समाचार पत्र पढ़ने वाले व्यक्ति को विदित न होगा। इस पापाचार की चर्चा फिर से करने, उसका खुलासा हाल लिखने की हम आवश्यकता नहीं समझते। यही नहीं हम उसका हाल छापकर वीर-सन्देश के पृष्ठों को कलंकित नहीं करना चाहते। हम समझते हैं कि टट्टी की ओट में ऐसे अनेक शिकार-गाह अभी और छुपे पड़े हैं। उनका भी शीघ्र ही भण्डाफोड़ होना चाहिये, व्यभिचार के इन अड्डों का शीघ्र ही नाश होना चाहिए। धर्म के नाम पर होने वाले इस पापाचार की शीघ्र से शीघ्र पोल खुलनी चाहिए। यही नहीं, ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि फिर ऐसे दुष्कर्म करने की किसी को हिम्मत न हो। मारवाड़ी पंचायत ने इस दुष्कर्म के कर्त्ता हीरालाल, 'भगवान' (या राक्षस ?) को जाति बहिष्कार का दण्ड दिया है। हम इसे बहुत कम समझते हैं (यद्यदि कितने ही धर्म धुरीण इतना दण्ड देना भी आवश्यक न समझते थे।) हमारी अपनी तो यह राय है कि ऐसे पापी पाखण्डियों का अस्तित्व संसार से जितना शीघ्र उठे उतना ही अच्छा।

४—वर्मा जी का स्वागत—

यह बड़े प्रसन्नता की बात है कि स्थानीय सहयोगी सैनिक में सहायक सम्पादक के स्थान पर श्री सम्पूर्णानन्द जी के लघु भ्राता श्री परिपूर्णानन्द जी वर्मा आ गए हैं। वर्माजी आयु में बहुत कम हैं, पर योग्यता, साहस और परिश्रमशीलता में बहुत आगे बढ़े हुए हैं। आप अन्तर्राष्ट्रीय विषय के विद्यार्थी हैं। इस विषय में आपका ज्ञान भी बहुत बढ़ा हुआ है। अब भी आप राजनीति के इस भाग में एक विशेषज्ञ हैं। इस नियुक्ति पर हम 'सैनिक' सम्पादक और वर्मा जी दोनों को बधाई देते हैं।

५—हमारे तीन विशेषांक—

पाठक जानते हैं कि गत वर्ष हमने 'वीर सन्देश' के दो विशेषाङ्क निकाले थे—१-शिवाजी अङ्क और २-महाराणा प्रताप अङ्क। यह दोनों अङ्क बहुत जल्दी में बिना कुछ तैयारी के निकले थे, तब भी लोगों ने उन्हें पसन्द किया था। इस बार हम वीर सन्देश के तीन विशेषांक निकाल रहे हैं। हम समझते हैं कि हमारे यह तीनों विशेषाङ्क हिन्दी में सर्वथा नई चीज होंगे। उनके सम्पादकों के नाम से ही पाठक उनकी महत्ता का अनुमान कर सकेंगे। पहला विशेषाङ्क 'अन्तर्राष्ट्रीय' होगा इसका सम्पादन इस विषय के विशेषज्ञ श्री परिपूर्णानन्द जी वर्मा करेंगे। यह अङ्क संभवतः जुलाई में प्रकाशित होगा। दूसरा "सैनिक विशेषांक" दीपावली पर प्रकाशित होगा और उसका सम्पादन सैनिक सम्पादक साहित्यरत्न श्री पं० श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल एम०ए० करेंगे। तीसरा अङ्क तीसरे वर्ष का प्रथम अङ्क पद्याङ्क के नाम से निकलेगा। उसका संपादन श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न करेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय विशेषांक में संसार भर की समस्याओं पर विचार किया जायगा और इस विषय के धुरन्धर विद्वानो के लेख रहेंगे। 'सैनिकांक' मे भारत और भारत से बाहर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध सैनिकों का वर्णन होगा और सैनिक धर्म पर

गवेषणा पूर्ण लेख होंगे। पद्याङ्क में हिन्दी के सभी लब्ध प्रतिष्ठ कवियों की वीर रस पूर्ण कविताएं दी जावेंगी। इस अङ्क के सभी लेख पद्य में होंगे। इन तीन विशेषांकों के अतिरिक्त 'महिलांक' नाम से भी एक अङ्क निकालने का आयोजन हो रहा है। जिसमें संसार भर की वीर स्त्रियों का परिचय रहेगा। यह सब विशेषाङ्क सचित्र होंगे। हिन्दी के विद्वानों से प्रार्थना है कि इन विशेषाङ्कों को अधिकतम सुन्दर बनाने में हमें सहायता दें।

६--बारडोली सत्याग्रह—

गुजरात के कुछ ताल्लुकों में सरकार ने फिर से लगान लगाया है। जनता का कहना है कि यह लगान ठीक ठीक नहीं लगाया गया है। कहीं कहीं बहुत ज्यादा लगा दिया गया है। जनता की मांग है कि एक स्वतन्त्र कमेटी द्वारा इसकी जांच कराली जाय कि लगान ठीक लगा है या नहीं। जनता यह नहीं चाहती कि लगान लगाया नहीं जाय। वह यह भी नहीं कहती कि हम लगान न देंगे। उसका यह भी कहना नहीं कि लगान को घटा दिया जाय। उसकी मांग इतनी न्याय्य, इतनी छोटी और इतनी अच्छी है कि किसी भी भले आदमी को उसका विरोध न करना चाहिये। वह चाहती है कि केवल इस बात की जांच हो जानी चाहिये कि लगान अनुचित रूप से तो नहीं लगा दिया गया है। पर हमारी न्यायशीला (?) सरकार जनता की इस छोटी सी मांग को भी मानने को तैयार नहीं है। फल यह हुआ है कि गुजरात के इन ताल्लुकों ने सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह करना शुरू कर दिया है। जनता ने कह दिया है कि जब तक हमारी मानवोचित मांग को स्वीकार न किया जायगा तब तक हम लगान का एक पैसा भी न देंगे? इसके पीछे सरकार भलेही हमारी जमीन, मकान, कपड़े लत्ते और सर्वस्व छीनले, भले ही हमें जेल भेजदे और भले ही जितना चाहे तङ्ग करले, पर हम इस स्वत्व को न छोड़ेंगे। जनता अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है। सरकार भी दुराग्रह पर दृढ़ है। जनता को जहां अपने आत्मबल का गर्व है वहां सरकार अपने पशुबल पर अभिमान कर रही

है। नतीजा यह हुआ है कि आज बारडोली ताल्लुके में धड़ाधड़ कुर्कियां हो रही हैं। पर सत्याग्रह संग्राम के जो समाचार वहां से आ रहे हैं वे एक दम बहुत ही आशाप्रद और प्रशंसनीय हैं। यह तमाशा है कि सरकारी आदमी गांव में पहुँचते हैं तो उन्हें गांव के गांव खाली मिलते हैं। उनके पहुँचते ही गांव वाले मकानों में ताले डाल कर बाहर चले जाते हैं। यदि कोई सामान कुर्क करते हैं तो उसके लिए गवाही नहीं मिलता। मजदूर न मिलने से सामान जहां का वहां छोड़ना पड़ता है। सत्याग्रह का सञ्चालन श्री वल्लभ भाई जी पटेल कर रहे हैं। आप की धीरता, गम्भीरता और श्रमशीलता की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। हमें विश्वास है कि इस सत्याग्रह में जनता की विजय होगी और सरकार को हार खानी पड़ेगी।

७--सम्मेलन का सभापतित्व—

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि मुजफ्फरपुर सम्मेलन के लिए सभापति साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह जी शर्मा चुन लिए गए। शर्मा जी की विद्वता, बहुभाषाभिज्ञता और समालोचन-पटुता हिन्दी संसार के लिए गर्व की वस्तु है। आपको सभापति चुनकर वास्तव में हिन्दी संसार ने अपनी गुण ग्राहकता का परिचय दिया है। इसके लिए हम सम्मेलन की स्थायी समिति, स्वागत समिति, हिन्दी संसार और शर्मा जी को हार्दिक बधाई देते हैं!

इसी सम्बन्ध में हम इतना निवेदन और कर देना चाहते हैं कि मुजफ्फरपुर में सम्मेलन का अधिवेशन इतनी धूम से, इतनी शान्ति से और इतने प्रेम से करने का प्रयत्न होना चाहिये कि हिन्दी संसार में उसके सम्बन्ध में जो दूषित वातावरण हो रहा है वह एक दम नष्ट हो जाय। हिन्दी के हितैषियों को अभी से निश्चय कर लेना चाहिये कि सम्मेलन में उपस्थित होकर उसे सफल बनावेंगे।

मासिक साहित्यावलोकन

पिछले महीने की नई पुस्तकों का परिचय

सस्ता साहित्य मंडल की सात पुस्तकें

(१) आत्म-कथा—[म० गाँधी जी के 'सत्य के प्रयोगों' अथवा 'आत्म-कथा' का हिन्दी अनुवाद] अनुवादक पं० हरिभाऊ उपाध्याय। इस ग्रन्थ-रत्न का परिचय देना व्यर्थ है। पृष्ठ ४१६, प्रचार के लिये मूल्य लागत से भी कम केवल ॥=) रखा गया है। अंग्रेजी में इस पुस्तक का मूल्य ५) है।

(२) सामाजिक कुरीतियाँ—(ले० महात्मा टॉलस्टॉय) टॉलस्टॉय के लेखों ने और ग्रन्थों ने रूस और यूरोप के पढ़े-लिखे लोगोंमें महान् क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। भारतीय पाठकों के लिए भी यह बहुत उपयोगी है। पृष्ठ लगभग २५० मू० ॥=)

(३) गोरों का प्रभुत्व—(लेखक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा) संसार में गोरों के प्रभुत्व का अंतिम घंटा बज चुका। अब संसार की अन्य जातियाँ किस तरह राजनैतिक रंगभूमि पर आ रही हैं और उससे गोरी जातियां किस तरह भयभीत हो रही हैं, यही इस पुस्तक का मुख्य विषय है। पृष्ठ २७४, मूल्य ।॥=)

(४) अनोखा—फ्रांस के सर्व श्रेष्ठ उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो के 'The Laughing man' का हिन्दी अनुवाद। सत्ता और वैभव में सद्गुण नहीं पनप सकते। यह तो ग़रीबी की उपज है, यही बात लेखक ने विनोद में एक पागल के मुँह से कहलाई है। अनुवादक हैं ठाकुर लच्मणसिंह बी० ए०, एल० एल० बी०। पृष्ठ ४७४ मू० १।=)

(५) दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह—(प्रथम भाग पहले छप चुका था, दूसरा भाग अब छपा है) महापुरुष कैसे निर्माण होते हैं यह इस पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात होगा। यह पुस्तक पू० महात्मा जी की जीवनी का एक महत्वपूर्ण अंश भी है। स्वयं महात्माजी ने अपनी आत्म कथा में लिखा है कि इस इतिहास के पढ़े बिना उनकी आत्मकथा अधूरी रह जाती है। मूल्य प्रथम भाग १।), द्वितीय भाग ॥)

(६) भारत के स्त्री रत्न—(दूसरा भाग प्रकाशित हो गया) प्राचीन भारत के प्रायः सब धर्मों और सभी जातियों की आदर्श पतिव्रता, वीर, विदुषी और भक्त लगभग ६० महिलाओं के ओजस्विनी भाषा में लिखे गये जीवन चरित्र प्रथम भाग १), द्वितीय भाग ।॥=)

(७) जीवन-साहित्य—(ले० आचार्य काका कालेलकर) इस पुस्तक का भी यह दूसरा भाग है। धर्म, नीति, समाज-सुधार, शिक्षा और राजनीति सम्बन्धी सजीव और मनोहर लेखों का संग्रह। काका साहब के प्रत्येक लेख में पाठक असाधारण प्रतिभा का दर्शन करेंगे। प्राचीनता और नवीनता का समझौता आप जिस कुशलता के साथ करते हैं वह देखते ही बनता है इसकी भूमिका भी राजेन्द्रप्रसाद जी ने लिखी है। मूल्य दोनों भाग का आठ आठ आना।

अन्य पुस्तकें

(८) शिवा बावनी—भूषण महाकवि की सुप्रसिद्ध कविता शिवा बावनी का यह संस्करण बहुत सुन्दर निकला है। इसमें प्रारंभ में भूमिका तथा भूषण और शिवाजी का जीवन चरित्र है टीका टिप्पणी बहुत अच्छी दी गई हैं। शिवा बावनी के समझने के लिए यह संस्करण बहुत उपयोगी हैं। संपादक हैं श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा, कविरत्न (आर्यमित्र सम्पादक) पृष्ठ ८८ मूल्य ।)

(९) आरोग्य मंदिर—आरोग्य रक्षा-सम्बन्धी विविध विषयों पर देशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों के लगभग ८० लेखोंका इसमें संकलन किया गया है। प्रत्येक विषय बहुत ही उपयोगी और आवश्यक है पुस्तक क्या, आरोग्य रक्षा की कुञ्जी है। पृष्ठ ४५० मू० २)

(१०) फादर-इंडिया—मदर-इण्डिया' का मुंहतोड़ जवाब। लेखक बड़ी व्यवस्थापिका सभा के प्रतिभा शाली सदस्य श्रीयुत सी० एस० रङ्गा ऐय्यर। मोटे कागज पर सुन्दरता से छपी है। सजिल्द का मूल्य २॥) है।

(११) वीर सतसई—सुकवि श्री वियोगी हरि की नई और अनुपम पुस्तक। वीरता के भावों से भरे हुए सात सौ दोहे। जिस प्रकार-बिहारी ने शृङ्गार के सात सौ दोहे लिख कर कलम तोड़ दी उसी तरह वियोगी हरि जी ने वीरता के यह सात सौ दोहे लिख कर कमाल किया है। एक एक दोहा पढ़ने योग्य है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस वर्ष १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक इसी पुस्तक पर दिया है। बड़े आकार में बड़ी ही सुन्दरता पूर्वक छपी है। मूल्य १॥)

(१२) कन्याओं की पोथी या कन्या सुबोधनी—लेखक श्री रामदास जी गौड़ (एम० ए०)। कन्याओं के उपयोगी तीस विषयों पर इस पुस्तक में काम की सभी बातें लिखी गई हैं। व्यवहारिक ज्ञान पैदा कराने वाली यह अपने ढङ्ग की पहली पुस्तक है। पृष्ठ २२८ मूल्य १) छपाई कागज बहुत अच्छा।

(१३) अन्योक्ति कल्पद्रुम—कविवर श्री दीनदयालु जी गिरि की यह पुस्तक 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' का यह सुसम्पादित संस्करण है। इसमें कवि की जीवनी, कविता पर आलोचना, और आवश्यक टीका टिप्पणियां दी गई हैं। सम्पादक श्री रामदास जी गौड़ हैं पृष्ठ १७० मू० १)

VEER SANDESH Regd. No. A 1630

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन … किनारी बाजार-आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ | आषाढ़ सं० १९८५, जून १९२८ | अङ्क ६

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २)   एक अङ्क का मू० ≡)

विषय-सूची

अन्तराष्ट्रीय विशेषाङ्क

वीर-सन्देश का आगामी अङ्क अन्तराष्ट्रीय विशेषाङ्क होगा। यह अङ्क कैसा होगा, यह हम नहीं कहना चाहते, जैसा होगा पाठक स्वयं देख लेंगे। पर हम यह चाहते हैं कि यह अङ्क अधिक से अधिक मनुष्यों के हाथ में जाय। अतएव हमारी इच्छा है कि हमारे पाठक इसके प्रचार का जितना उद्योग कर सकें करने का प्रयत्न करें। वीर सन्देश वैसे ही बहुत घाटे से चलाया जा रहा है। तिस पर ऐसे विशेषांकों का निकालना बड़ी जोखम का काम है। यदि हमारे पाठक हमें इस समय थोड़ी भी सहायता दें तो उनकी बड़ी कृपा और हमारा बड़ा लाभ हो। वीर सन्देश का मूल्य हिन्दी के सभी पत्रों से कम है। केवल २) वार्षिक देना साधारण से साधारण व्यक्ति को भी नहीं खल सकता। तब प्रत्येक पुरुष को इसके दो-दो तीन तीन ग्राहक बना देना कोई बड़ी बात नहीं है। आशा है कि सभी महानुभाव हमारी प्रार्थना पर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

—मनेजर।

वीर-सन्देश



अष्टादश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति
श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा

महावीर प्रेस आगरा

ॐ

वीर-संदेश

(वीर-रस-प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग २ } आगरा—आषाढ़ सं० १९८५, जून १९२८ { अङ्क ६

समर में

[लेखक—एक कवि-हृदय, बिहार विद्यापीठ]

वीर शिवराज ! तू तो नरवर-राज रहे,
जिसकी है कहानी कही जाती घर-घर में।
तेरे सम दानी भला मानी भी हुआ है कौन,
है न हुआ शानी तेरा कोई विश्व-भर में॥
तूने ही विधाता की विभूतियों का मान किया,
सिद्धियों को तूने ही तो रक्खा निज कर में।
तूने निज शत्रुओं को नीचा ही दिखाया सदा,
वे न आये आड़े तेरे सामने समर में॥

भारतवर्ष की शक्तियों का ह्रास

[लेखक—श्री देवकीनन्दनजी विभव]

Flowers of thy heart, oh God are they—
Let them not pass like weeds away.

भारतवर्ष की दिन पर दिन गिरती हुई शारीरिक स्थिति का जिन्होंने अध्ययन किया है उनके लिये यह समझना कठिन नहीं है कि तेतीस करोड़ मनुष्यों का राष्ट्र निर्बल, क्षीण, गुलाम और कायर क्यों हैं? आज भारत वासियों के जीवन का मूल्य जितना सस्ता है उतना किसी भी सभ्य देश के लोगों का नहीं है। प्लेग, हैजा, बुखार और दूसरी बीमारियां इस देश में सदैव ही अपना ताण्डव नृत्य करती रहती हैं और लाखों प्राणियों को एक हवा के झोंके में बहा ले जाती हैं। इसका कारण यह है कि लोगों में जीवन शक्ति (Vitality) दिन पर दिन कम होती जाती है। श्री विलियम डिग्बी कहते हैं 'He is born in sickness and dies almost like a beast of the field, with only such rude care as his neighbour's rude ignorance can afford' अर्थात् भारतवासी रोगी ही पैदा होते हैं रोग मे ही पशुओं की भांति मर जाते हैं और उन्हें उतनी ही चिकित्सा प्राप्त होती है जितने कि उनके अज्ञानी पड़ोसी कर सकते हैं। करोड़ों मनुष्यों को देखो वे कैसा जीवन हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके जीवन की नौका में रोग रूपी जन्तुओं ने सहस्रों छिद्र कर दिये हैं और उन्हें सदैव यह भय रहता है कि अब डूबे कि अब डूबे। ऐसे लोगों में initiative power नहीं होती अर्थात् इनसे कोई महान कार्य करने की आशा नहीं की जा सकती। यह तो आप भी दुखी हैं और दूसरों को भी दुखी बना रहे हैं। इसके बाद उन करोड़ों भारतीय स्त्रियोंको देखो, यदि आपका हृदय है, आपमें मनुषत्व है तो उनकी मूक वेदनाको अनुभव करके आपका दिल हिल जायगा। मेक्समूलर कहते हैं "If I had to be born again and might choose my sex

and my birth place I would shout to the Almighty at the top of my voice 'O please make me an Indian woman'" मेक्समूलर ईश्वर से दूसरे जन्म में अपने भारतीय स्त्री बनाने की प्रार्थना करते हैं परन्तु यदि कोई मुझसे पूछे तो भारतीय स्त्री के जीवन से अधिक दुख पूर्ण बात मुझे नहीं दिखलाई पड़ती। Census Report for 1911 सूचित करती है कि "it appears that mortality is always highest among females" स्त्रियां भारतवर्ष में सब से अधिक मरती हैं। उनका जीवन इतना अप्राकृतिक बना दिया गया है कि स्त्रियां अधिक क्यों मरती हैं, यह आश्चर्य की बात नहीं है, आश्चर्य तो यह है कि वे जिन्दा कैसे रहती हैं। फिर इसके बाद उन लाखों मनुष्यों को देखो जो प्रति वर्ष प्लेग, हैजा, क्षय, संग्रहणी और बुखार के शिकार होते हैं। आज यदि अमरीका या इङ्गलैंड में इतनी अकाल मृत्यु होती तो लोग पार्लियामेण्ट और white hall पर चढ़ जाते और प्रधान मन्त्री और प्रेसीडेन्ट के नाक में दम कर देते। जितनी संख्या में लोग यहां प्लेग से मरते हैं यदि उसका चौथाई भी अब इङ्गलैंड में मरने लगे तो बाल्डविन की वर्त्तमान सरकार क्या एक दिन भी कायम रह सकती है या हैजे से अगर जितने लोग भारतवर्ष में मरते हैं, अमरीका में मरने लगें तो प्रेसीडेन्ट इसी शान बान से कायम रह सकता है, जैसा कि भारतवर्ष के वर्तमान वायसराय? बात यह है कि एक भारतवासी के प्राणों का मूल्य एक अमरीकन या अंग्रेज के प्राणों के मूल्य का शतांश भी नहीं है।

भारतवर्ष की कुल आबादी ३१८,९४२,४८०, है जिनमें ७१, ९३९,१८७ देशी राज्यों में और २२१,९५८,९२५ ब्रिटिश राज्य में रहते हैं। ब्रिटिश राज्य में २२१, ९५८, ९२५ में १२६, ८७२, ११६ पुरुष हैं और १२०,१२१,१७७ स्त्रियां हैं और देशी राज्यों में ३७, १२३, ४३८ पुरुष और ३४,८१५,७४९ स्त्री हैं अर्थात् देशी राज्यों में पुरुषों से स्त्रियां २३,७६८,९ कम हैं और ब्रिटिश राज्य में ६७४,०९३,९ स्त्रियां कम हैं अर्थात् अगर पुरुष थैली के जोर से चार चार विवाह न करें और एक

पुरुष एक स्त्री से ही विवाह करे तो भी ९०४८६२८ या नव्वे लाख से भी ऊपर पुरुष रंडुवे ही रह जांय। स्त्रियों की संख्या कम होने का कारण उनकी अधिक मृत्यु ही है।

भारतवासियों की औसत आयु २३ वर्ष है जब कि अंग्रेजों की औसत आयु ४० वर्ष है। निम्न लिखित तालिका से आपको मालूम होगा कि भारतवासियों की मृत्यु संख्या सब ही देशों से अधिक है।

नाम देश		मृत्यु संख्या प्रति हजार
न्यूजी लैण्ड	...	१०५
आस्ट्रेलिया	...	११.३
स्वीडन	...	१४.१
इंगलैण्ड	...	१४.९
अमरीका	...	१३.५
कीन्सलैण्ड	...	८१५
तसमानिया	...	१०७२
विक्टोरिया	...	१२.६
डेन्मार्क	...	१३.५
नार्वे	...	१४.८
कुलभारत	...	२८.४९

सन् १९२४ में ब्रिटिश भारत में ४,३२०,९६९ लड़के और ३,९९६,४३४ लड़कियां अर्थात कुल ८,३१७,४०३ पैदा हुए। प्रायः औसतन अस्सी लाख नई पैदायश प्रति वर्ष होती हैं जिनमें सन् १९२४ के हिसाब के अनुसार १ वर्ष के अन्दर ही ८५०,००६ लड़के और ७१९,१२२ लड़कियां अर्थात् कुल १५६९,१२८ अर्थात् १००००० में ३७६६८ कराल काल के गाल में समा जाते हैं इसके बाद जो बचते हैं उनमें से ५९४,४५३ बालक और ५६२,०२५ बालिकायें पांच वर्ष तक की उम्र में ही अपनी माताओं को बिलखते छोड़ आते हैं यानी कुल पैदायश की आधी संख्या पांच साल के

पहुँचते न पहुँचते सदा के लिये आंखें बन्द कर लेती है और हमारी आंखों में उंगली कोंच कर बतलाते हैं कि 'Weaklings have no place in the world. It is a sin to be weak. It is a sin to beget weak children' किसी भी अन्य देश में बच्चों की मृत्यु संख्या इतनी अधिक नहीं है। इंगलैण्ड में प्रथम वर्ष की आयु में प्राय: १५० बच्चे प्रति हजार ही मरते हैं। जब कि इस देश में उससे दुगने से भी अधिक। माता की शक्तियों का दुरुपयोग इतना किसी भी देश में नहीं होता।

आधे बचे हुए बच्चों में से २५'६ प्रति हजार दस वर्ष की आयु तक २१'४४ प्रति हजार १५ वर्ष की आयु तक और २८'८८ प्रति हजार बीस वर्ष की आयु तक घर वालों को रुला कर मृत्यु की घटा में छिप जाते हैं। हम कह सकते हैं कि हजार में केवल सवा चार सौ ही ऐसे लोग होते हैं जो संसार प्रवेश करते हैं या जिनमें समझने की कुछ बुद्धि आ सकती है। बाकी पौने छ: सौ से तो न देश को ही लाभ पहुँचता है, न घर वालों को और न स्वयं वे ही संसार की वस्तु स्थिति का अनुभव कर पाते हैं। इन सवा चार सौ लोगों में से भी ३०'०५ प्रति हजार ३० वर्ष की आयु तक और ३३'२८ प्रति हजार ४० वर्ष तक मर जाते हैं। निसन्देह आप इस बात को स्वीकार करेंगे कि ४० वर्ष से पहले मरना अकाल मृत्यु है और इस तरह इस देश में १००० में क़रीब ६५० लोगों की अकाल मृत्यु होती है। केवल १५० प्रति हजार ही ऐसे लोग हैं, जिन्हें ६० वर्ष से ऊपर मौत प्राप्त होती है।

मैं कह चुका हूं कि भारत वासियों के जीवन का मूल्य बहुत सस्ता है। वह चूहों की तरह मरते हैं। सन् १९२४ मे ब्रिटिश भारत में हैजे से २९३,७०७, चेचक से ५५,३८०, प्लेग से ३६१,८४३, बुखारों से ४,००७,६६२, पेचिश और डायरिया से ३२०,२२२, सांस सम्बन्धी रोगों से ३३३,६३६, चोट से ९१,१५५, अन्य कारणों से १,५०५,६८१ अर्थात् कुल ६,८७९,२८६ मरे। इस देश में सन् १९०८ में विभिन्न बुखारों से ही

११,१३४,४४१ मर गये, जितने गत महायुद्ध के ६ वर्षों में भी न मर सके। सारे संसार के इतिहासों में गत महायुद्ध की चर्चा भरी पड़ी है पर इससे भी भयानक नर संहार जो भारतवर्ष में प्रतिवर्ष हो रहा है उसकी कोई चर्चा भी नहीं करता।

प्लेग पहली बार भारतवर्ष में सन् १८९६ में बम्बई में प्रारम्भ हुआ और सन् १८९६ से १९१४ तक ब्रिटिश भारत में ७,१७६,८१२ और देशी राज्यों मे १,३७१,६७८ मनुष्यों को हड़प कर गया। इसके बाद सन् १९१५ में ४३३ ८६६ सन् १९१६ में २७६,१९५, सन १९१७ में ५८७,४०४, सन १९१८ में ६७१,२७७, सन् १९१९ में ९८,५८२, सन १९२० में १४०,२५९, सन १९२१ में ८१ ५७९, सन् १९२२ में १०७,१२६ सन् १९२३ में २९२,९८२ और सन १९२४ में ३९८ ७५७ यानी सन् १९२४ तक कुल ११,५८१,४५४ प्लेग के शिकार हुए और यदि इन में ३ साल का औसत ३५०,००० प्रति वर्ष और जोड़ दिया जाय तो यह संख्या १२६३१, ४५९ हो जायगी। अब तक प्लेग ने भारतवर्ष में १२,६३१,४५९ लोगों की सफाई कर दी है। इसका मतलब यह होता है यदि इन लोगों को खेती में लगाया जाय और उनमें से प्रत्येक यदि १०) रु० महीना भी कमाते तो वार्षिक आय १५,१६७,६७०८ रु० बढ़ जाती और यदि इस रुपये को शिक्षा प्रचार मे लगाया जाता और यदि प्रत्येक विद्यालय का खर्च १५००) रु० वार्षिक होता तो एक लाख नये विद्यालय खुल सकते थे, और यदि प्रति विद्यालय में १०० बच्चे पढ़ाये जाते तो एक करोड़ बालकों को शिक्षा प्राप्त हो सकती है। या अगर सोवियट रूस और इङ्गलैण्ड का युद्ध छिड़े और उसमे गत महायुद्ध की तरह ५ लाख आदमी प्रतिवर्ष मरें तो यह युद्ध २४ साल तक जारी रहे तब कहीं इतने आदमियों का खातमा हो।

जब भारतवर्ष की शक्तियों का इस प्रकार ह्रास हो रहा है तब यहां वीर शिवाजी और प्रणवीर प्रताप जैसी सन्तान पैदा होना असंभव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है। यदि भारतवासी फिर से इसे वीरप्रसू बनाना चाहते हैं तो ह्रास के कारणों को दूर करें।

'तारा'

[लेखक—श्रीयुत चक्खनलालजी गर्ग, बी० ए०, एल टी०]

राजा शिवरत्न को अपनी प्यारी मातृ-भूमि को छोड़े हुये १० वर्ष व्यतीत हो चुके थे। यों तो प्रत्येक मनुष्य, चाहे कहीं भी हो, कैसे ही सुख में हो अपने बाल्यकाल के दृश्यों तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाली प्यारी भूमि का चित्र अपने अन्तःस्थल में सदैव अङ्कित किये रहता है मगर जिसको यह भूमि अनिच्छा से छोड़नी पड़ी हो उसको तो उसकी स्मृति सदैव चिन्तित किये रहती है। राजा शिवरत्न ने माता के गर्भ से लेकर राज्य के पाने तक अपना सारा जीवन अपनी राजधानी थूड़ा ही में व्यतीत किया था और अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् कुछ दिनों राज्य भी किया था।

अपने किले की दीवार पर से उसने एक दिन देखा कि दिल्ली की ओर से आंधी सी आरही है; थोड़ी देर में उसकी दृष्टि कुछ स्थिर हुई और उसको घोड़ों के ऊपर असंख्य सवार स्पष्ट दिखलाई देने लगे। झटपट उसने अपनी राजधानी की चहार दीवारी का फाटक बन्द कर दिया और मुसलमानों के विरुद्ध पड़ोसी राज्यों से सहायता मांगी।

पर पड़ोसी राज्यों में न तो इतनी शक्ति थी और न इतना साहस कि मुसलमानों से लड़ सकें और फिर बिना लाभ की आशा के किसको गरज पड़ी थी जो साँप के बिल में हाथ डालता। यहां तक कि जब अपने सब से समीपस्थ राज्य मेवाड़ ने भी किसी प्रकार की सहायता देने में असमर्थता प्रकट की तब तो शिवरत्न को अपने राज्य के हाथ से निकल जाने में कोई सन्देह ही न रहा। उसने अपनी फ़ौज को कटवाना व्यर्थ समझा। बस एक रात्रि चुपके से उठा और अपनी इकलौती पुत्री को ले जो पांच या छह वर्ष की थी क़िले से बाहर निकल गया। पिता और पुत्री दोनों छिपे २ चित्तौड़ के पास बदनूर नामक ग्राम में रहने लगे।

शिवरत्न थूड़ा से भाग तो आया पर उसका अन्तरात्मा उसको काटे खा रहा था। कभी २ वह सोचता था, कि मैंने बैरी से न लड़कर तथा भागकर अपने क्षत्रित्व पर कलङ्क लगाया है। पर जो होना था सो हो गया। उसने कहा मैं जीते जी थूड़ा को मुसलमानों के हाथ से निकाल लूंगा।

उसके जीवन का अब केवल यही ध्येय था। इसी की पूर्ति के लिये उसने अपनी सारी शक्तियां केन्द्रित करली। अपनी छोटी पुत्री को भी तीर कमान चलाना, तलवार का वार करना तथा घोड़े की सवारी इत्यादि का अभ्यास कराने लगा। यही नहीं बल्कि उसने यह भी प्रण किया "कि मैं अपनी पुत्री को उसी राज कुवांर के साथ विवाह करूंगा जो मेरी रियासत को मुसलमानों के अधिकार से छुड़ाने का प्रयत्न करेगा।"

❀ ❀ ❀ ❀

तारा अब पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो चुकी थी। उसके सौन्दर्य के बनाने में प्रकृति और मनुष्य दोनों का हाथ था इसलिये उसमें अङ्गों की स्वाभाविक सुन्दरता के साथ २ लज्जा थी, विनय थी और प्रेम था। अपने सैनिक वेष में तो वह और भी भली मालूम होती थी।

इतने गुण रखते हुए यह कब सम्भव था कि भ्रमरों को उसके सौन्दर्य की गन्ध न लगे। परन्तु इस गुलाब में कांटे थे। इसलिये किसी राजकुमार का साहस न होता था कि उसके पास आवे। उसके पिता का प्रण सुनकर सब लोग बगलें झांकने लगते। प्रेम का दम सब भरते थे, पर यह कोई नहीं जानता था कि प्रेम बलिदान से प्राप्त होता है।

और सब राजकुमारों ने तो प्रेम के मैदान को पीठ दिखादी पर एक उनमें से बहुत ही ढीठ निकला। यह मेवाड़ का तीसरा राजकुमार जयमल था जो पुष्प को तोड़ना चाहता था परन्तु कांटों से डरता था।

उसे एक अभिमान और भी था। उसको यही घमण्ड न था कि मेरा वंश सब से श्रेष्ठ है बल्कि वह यह भी जानता था कि शिव-

रत्न हमारे राज्य में रहता है। इसलिये उस पर मेरा अधिकार है और वह मेरा कहना मानने के लिये बाध्य है।"

तारा के हाथ के लिये उसने तारा के पिता के पास सन्देशा भेजा। शिवरत्न को हर्ष भी हुआ और खेद भी। हर्ष इस लिये था कि उसका सम्बन्ध राजपूताने के सब से श्रेष्ठ घराने से हो रहा था। और रंज इस लिये कि राजकुमार दुष्ट और दुराचारी था और तारा के लिये सर्वथा अयोग्य था। वह इसी उधेड़ बुन में पड़ा हुआ था कि उसकी दृष्टि अपनी पुत्री पर पड़ी। पुत्री सब बात समझ गई और अपने पिता से कहने लगी। "क्या आप अपना प्रण भूल गये" दूत शिवरत्न का उत्तर लेकर वापिस गया।

जयमल इस उत्तर को पाकर बड़े क्रोध में भर गया। उसमें इतना साहस तो था नहीं जो वह तारा के पिता को थूड़ा की रियासत मुसलमानों से वापिस दिला सके। पर तारा का प्राप्त करना ही चाहता था। इस कार्य के लिये सिवाय धूर्तता और छल के अब उसके पास और कोई उपाय नहीं था।

❀ ❀ ❀ ❀

तारा का नियम था कि प्रति दिन प्रातःकाल तड़के ही कपड़े पहिन घोड़े पर सवार हो शस्त्र इत्यादि से सुसज्जित होकर जंगल में आखेट के लिये निकल जाया करती थी। प्रति दिन की तरह एक दिन वह आखेट के लिये निकली। उस दिन उसने एक हिरन के पीछे घोड़ा डाला। उसके पीछे वह बहुत दूर निकल गई। जब लौटी तो देखा कि वृक्ष के नीचे एक मनुष्य पड़ा कराह रहा है। उस दुखिया को देखकर स्त्री जन्य स्वाभाविक दया भाव उमड़ आया। वह यद्यपि थकी थी और भूख और प्यास से बेचैन थी, दूसरे उसे अपने वैरियों का भी डर था, पर एक राजपूतनी युद्ध के समय यदि भैरवी बन सकती है तो दुखिया के लिये साक्षात दया देवी भी हो सकती है। वह झट घोड़े से उतरी और पड़े हुये मनुष्य के पास गई।

तारा ने जब उस मनुष्य का मुंह देखा तो सहसा उसके मुख से से निकल पड़ा 'जयमल'। जयमल को देखकर पहिले तो वह कुछ सट पटाई क्योंकि वह उसके इरादे को जानती थी। जयमल ने उसको प्राप्त करने के लिये न जाने कितने प्रपञ्च रचे थे। इसके अलावा यह निर्जन स्थान था इस लिये उसे और भी भय था। पर तुरन्त ही उसका चित्त स्थिर हुआ और उसने अपने कर्त्तव्य को सोच लिया। उसने कहा "यद्यपि यह दुष्ट है मेरा बैरी, परन्तु इस समय संकट में है इसलिये मुझे इसकी सहायता करनी चाहिये।"

तारा यह देखने के लिये कि उसको क्या कष्ट है झुकना ही चाहती थी कि जयमल एक दम फुर्ती से उठा और बात की बात में तारा का हाथ पकड़ लिया और कहा "प्यारी अब तुम नहीं जा सकती" तारा इसके लिये तय्यार न थी, क्रोध में भर गई और झटके से हाथ छुड़ा कर बोली "दुष्ट, क्या तुझे लज्जा नहीं आती।" पर जो कामातुर होता है उसको लज्जा तथा भय से क्या काम ? तारा ज्योंही घोड़े की ओर लपकी त्योंही उसने उसकी पीछे से कमर पकड़ ली। अब तो तारा का क्रोध पिघले हुये श्वेत लोहे के समान हो गया। उसका लाल चहरा और भी तम-तमा उठा। भला एक आर्य ललना अपना सतीत्व नष्ट होते देख कर क्या करने को उतारू नहीं हो जाती। उसने अपनी कमर से छिपी हुई कटार निकाली और उससे उसके दोनो हाथों को उड़ा दिया। फिर उसकी छाती पर चढ़ बैठी और यह कह कर "ले दुष्ट अपने कर्मों का फल भोग" उसके हृदय में कटार भोकदी।

शिवरत्न ने देखा कि आज बहुत देर होगई और तारा अब तक नहीं आई। अवश्य कुछ दाल में काला है। वह घोड़े पर सवार हुआ और जंगल की ओर निकल पड़ा।

चलते २ वह वहां पहुँचा जहां तारा जयमल को मारकर उसकी ओर घूर रही थी। जब पास पहुँचा तो पुत्री से पूछा, "बेटी, क्या बात है ?" पुत्री ने केवल मृतक की ओर इशारा कर दिया। शिवरत्न सब

समझ गया और कहने लगा । "बेटी तू धन्य है, आज मेरी शिक्षा सफल हुई ।"

दूसरे दिन पिता पुत्री की चित्तौरगढ़ के दर्बार में तलबी हुई। तारा ने सब वृतान्त आदि से अन्त तक सुना दिया। अन्त में उसने कहा, "कि यह दुष्ट मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहता था मैंने उसी को नष्ट कर डाला।"

सारे दर्बारी तारा की इस वीरता की कथा सुनकर हर्ष में भर गये वृद्ध राजा ने तारा को बड़े प्यार से अपने पास बुलाया और सिर पर हाथ फेर कर कहा, "कि पुत्री तैने ठीक किया एक आर्य ललना को ऐसी परिस्थिति में ऐसा ही करना चाहिये।" राजा के द्वितीय पुत्र पृथ्वी-राज ने तो उसको अपना हृदय ही दे डाला और राजा ने दोनों का वहीं पाणिग्रहण भी करा दिया।

अब शिवरत्न पृथ्वीराज और तारा तीनों ने मिलकर थूडा पर चढ़ाई की। मुहर्रम के दिन थे। अभी सवेरा ही था कि यह लोग अपनी फौज लेकर शहर में घुस गये और सोते हुए मुसलमानों को काट कर बहुत जल्दी थूडा से भगा दिया।

शिवरत्न की इच्छा पूर्ण हुई। वह थूडा का राजा हुआ। तारा और पृथ्वीराज भी आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

संसार की वैज्ञानिक व्याख्या

[लेखक—श्री० रघुवरदयालु मिश्र, विशारद]

कोई कहता है संसार असार है, मिथ्या है, स्वप्नवत है, तो कोई कहता है कि यह मायाजाल है, भवसागर है, सर्वथा त्याज्य है और कोई कहता है मृगतृष्णावत् दुःखागार है। इस प्रकार मानव समाज अपनी अपनी रुचि के अनुकूल संसार को भिन्न भिन्न दृष्टियों से देखता है। पर इस संसार के संबन्ध में मेरी भिन्न ही धारणा है। चाहे लोग मुझे पागल कहें या उन्मत्त, बावला कहें या अलमस्त। पर मैं तो संसार को समझता हूँ अभिनायक की नाट्यशाला, खिलाड़ी का क्रीड़ा क्षेत्र और वीरका रण क्षेत्र।

हम किसी कार्य का प्रारंभ करते हैं, बाधाओं के आड़े आते ही घबरा जाते हैं, निराशा का भूत हमें घर दबाता है, काम से हाथ खींच लेते हैं। दूसरा कार्य प्रारंभ करते हैं, असफल होते हैं, दिल बैठ जाता है, हताश हो जाते हैं। अचानक कोई दुर्घटना हो गई, कोई अपना मर गया, हम उसके लिये हाय हाय मचाते हैं, रोते धोते और सिर पीटते हैं। किसी काम में सफल होते हैं, बालक पैदा होता है तब खूब खुशियां मनाते हैं। यह सब क्या है ? कभी रोते हैं तो कभी गाते हैं, कभी हताश होते तो कभी भारी आशावादी बन जाते हैं, बात असल यह है कि हमने संसार का वास्तविक रूप पहचाना ही नहीं।

मैं पहले कह आया हूँ कि यह संसार अभिनायक की नाट्यशाला है। हमारा नट हम को जिस अभिनय में हमें जैसा कुशल पाता है वैसा ही पात्र बनाता है। हम रङ्गमञ्च पर आते हैं अपना पार्ट कुशलता पूर्वक दिखला कर चले जाते हैं। किसी अभिनय में राजा बनते तो किसी में रङ्क। किसी में क्रीड़ामय अभिनय दिखाते हैं तो किसी में दुःखमय। पर वास्तव में हम तो पात्र हैं। अभिनय करते है। हमारे चित्त पर तो बस

अभिनय का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार यह संसार हमारी नाट्यशाला है उस परमपिता नट की प्रेरणा से हम अपना अभिनय करके चले जाते हैं। हमें इसमें दुख सुखका क्या आभास करना चाहिये ?

जो लोग इस जगत को दुःखागार समझते हैं वे भूलते हैं। अरे यह तो खिलाड़ियों का क्रीड़ा क्षेत्र है। खिलाड़ी खेल के मैदान में आते हैं, खेल खेलते हैं, कभी हारते और कभी जीतते हैं। हारने पर जीतने की इच्छा और बलवती होती है और जीतने पर लगातार जीतने की। हाकी के खेल को ही लीजिये। जब गेंद मैदान में डाली जाती है, दोनों ही पार्टी जीतने की प्रबल इच्छा रखती हैं। सब खिलाड़ी जी तोड़ जीतने का प्रयत्न करने लगते हैं। कभी जीतते और कभी हार भी जाते हैं। दांव बचाकर खेलते हैं पर कभी चोट भी खा जाते हैं। खेल में यह सब होता है पर हारने पर या चोट खा जाने पर खिलाड़ी सदा के लिये खेल छोड़ बैठता है ? हर्गिज नहीं। जब बात ऐसी है तब फिर हम संसार को अपना क्रीड़ा क्षेत्र क्यों नहीं मानते।

कर्तव्यशील व्यक्ति के लिए संसार सार वस्तु है असार नहीं। बाधाएं ही हमें ऊंचा उठाती हैं। मिट्टी का ढेला जमीन पर पटकने से चूर चूर होकर बिखर जाता है। पर गेंद को लीजिए। इसे जमीन पर जितनी जोर से पटकते हैं यह उतनी ऊंची उछलती है। कर्मवीर के आगे जितनी ही बाधाएं आती हैं वह उतनी ही तत्परता से अपना कार्य करता है। साईकिल को ही लीजिये। इसके पहियों को जमीन से ऊपर उठा कर घुमाओ। देखने में तो पहिये खूब घूमते हैं पर क्या कारण है कि साइकिल अपने स्थान से टस से मस नहीं होती। बात यह है कि उसके मार्ग में रुकावट नहीं है, उसकी गति का बाधक कोई नहीं है। पर जब उसी साईकिल को जमीन पर रख कर और उस पर सवार होकर जब पैरों से पहिया घुमाते हैं, तब पृथ्वी के आकर्षण से उसकी गति में बाधा पड़ने पर और ऊपर से बोझ पड़ने पर भी वह बड़े वेग से हवा

से बातें करती हुई आगे बढ़ती है। इसी प्रकार बाधाएँ हमें आगे बढ़ाती हैं। हमें विघ्न बाधाओं का सदा स्वागत करना चाहिये। वही पत्थर शालिग्राम की मूर्ति बनता है जो सैकड़ों वर्षों तक पानी की रगड़ और सैकड़ों मील मार्ग की टक्करें खाता खाता मैदान तक आ जाता है। इतनी बाधाओं का सामना करने का ही फल है कि वह स्वर्णमय सिंहासन में स्थान पाकर पूजा जाता है। वह पत्थर का टुकड़ा जो उद्गम के पास नदी तट पर पड़ा है, उसे कौन पूछता है ?

क्या वीर और कुशल सैनिक समरभूमि से मुख मोड़ता है, पीठ दिखाता है, हर्गिज नहीं। 'सनमुख मरन वीर की शोभा' है। वीर शत्रु का सामना डट कर करते हैं। एक बार असफल होते हैं तो दो बार मोर्चा लेते हैं। फिर भी असफल होते हैं तो भी हिम्मत नहीं हारते, साहस नहीं छोड़ते। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाच न" उनके जीवन का उद्देश्य होता है। बार बार असफल होते रहने पर भी सैनिक नीति के सहारे दांये, बायें, आगे, पीछे सब ओर से शत्रु पर हमला करते हुए उनमें यह भाव आता ही नहीं कि हम असफल होंगे वह जीत में जीत और हार में भी जीत का अनुभव करते हैं। उनका सिद्धान्त होता है "हतोवा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।" वह अपने दोनों हाथों में लड्डू समझते हैं।

हम अपने नौ जवान युवकों से अपील करते हैं कि वह संसार को अपनी नाट्यशाला, क्रीड़ा क्षेत्र और जीवन जंग का मैदान समझें, बाधाओं के आगे सिर झुका देना, हताश हो, कर्म पथ से डिगना, अकर्मण्य बन कर संसार को दुःखमय समझना घोर पाप है, भयङ्कर अन्याय है, अपने साथ विश्वास घात है। वीरो और खिलाड़ियो ! तुम्हारे सदा यह भाव रहने चाहिये—

"नाट्यशाला है जगत् हम पात्र हैं।
पार्ट लेंगे देंगे जो नटवर हमें ॥
हार हो या जीत कुछ परवा नहीं।
खेल खेलेंगे खिलाड़ी की तरह ॥
आती हैं बाधाएं मेरे आड़े आयें शौकसे।
वीर हूं कर्त्तव्य पथ से मुख न मोडूंगा कभी ॥

——❀——

आर्य सभ्यता का विकाश

[लेखक—श्री० भागीरथप्रसाद जी दीक्षित, 'विशारद']

आर्य सभ्यता कितनी प्राचीन है इसका ऐतिहासिक साधन हम लोगों के पास नहीं है। परन्तु यह निश्चित है कि उससे प्राचीन अन्य कोई सभ्यता जगतीतल पर नहीं है। वेद सृष्टि के पुस्तकालय में प्राचीन तम पुस्तक है। उससे प्राचीन सभ्यता का पता मानव समाज को अभी तक नहीं मिला।

मुसलमान, ईसाई, चीनी, पारसी, यहूदी, मिश्रियन, और बेबोलोनियन आदि सभ्यताओं का मूल स्रोत वेद ही है, फाउण्टेन हेड आफ रिलीजन (Fountain head of Religion) नामक पुस्तक में बाबू गङ्गाप्रसाद जी वर्मा ने इसे भली प्रकार प्रमाणित कर दिया है।

मुसलमानी सभ्यता केवल १३०० वर्ष की है, ईसाई १५०० वर्ष, यहूदी २६०० वर्ष, पारसी ५००० वर्ष और चीनी ८००० वर्ष तक अपनी सभ्यता को ले जाते हैं। मिश्रियन और बेबीलोनियन सभ्यताएं तो मुसलमानों की कृपा से भूमण्डल से कभी की लोप हो चुकी हैं। उनके ध्वंसावशेष तथा पैरामिड उनकी प्राचीनता का पता देते हैं। पारसी और यहूदी सभ्यताओं का भी मुसलमानों ने ही उनके मूल निवासस्थान से तिरोभूत कर दिया। अब वे सभ्यताएँ यत्र-तत्र अपना जीवन निर्वाह कर रही हैं।

चीनी सभ्यता बुद्ध भगवान की कृपा से अब भी एक बहुत बड़े समूह पर अपना प्रभाव जमाये हुए हैं। ईसाई सभ्यता का मार्तण्ड अधोन्मुखी हो रहा है। केवल हिन्दू सभ्यता ही ऐसी है जो वास्तविक दशा में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। उसके लोप करने को भी कई मित्रों ने घोर प्रयत्न किया परन्तु वह अभी तक जीवित है और आशा है अनन्तकाल तक जीवित रहेगी। हिन्दुओं की सभ्यता १ अरब ९७ करोड़

वर्ष की कही जाती है। यदि इन अङ्कों पर विश्वास न भी किया जाय तो भी प्राचीन तम कहने में किसी को निषेध नहीं है और इसके पर्याप्त प्रमाण भी हैं।

इस हिन्दू (आर्य) सभ्यता का प्रादुर्भाव कहां से हुआ इस पर भिन्न भिन्न मत हैं। लोकमान्य पं० बाल गङ्गाधर तिलक अपने आरियन नामक ग्रन्थ में इस सभ्यता का विकाश ध्रुव प्रदेश बतलाते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने आदि सृष्टि का होना तिब्बत में माना है। पाश्चात्य विद्वानों में अधिकांश का मत मध्य एशिया के पक्ष में है, मुख्यतः मैक्स मूलर, वेबर और मेकडानल आदि का यही मत है। विद्वत्प्रवर प० मधुसूदन झा महोदय अपने संस्कृत ग्रन्थ इन्द्र विजय में आर्यों का मूल निवास पामीर प्लेटो में प्रमाणित करते हैं। एक बङ्गाली सज्जन पञ्जाब से ही इसका उद्गम निर्धारित करते हैं। मेरे विचार से पंडित मधुसूदन झा महोदय का कथन अधिक माननीय है। सभ्यता के विकाश का सर्वोत्तम स्थान पामीर प्लेटो ही हो सकता है।

हमारी सभ्यता का प्रारम्भ कृषि कर्म और ईश्वराराधन से होता है। फिर रक्षण और व्यापार का विस्तार पाया जाता है। वेदों में उपर्युक्त बातों का विस्तार से वर्णन मिलता है और इन्हीं आधारों पर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र विभाजित होकर वर्ण व्यवस्था के रूप में प्रस्फुटित हो कर आर्य सभ्यता विकसित हुई। "सर्वोत्तमं कर्षण माहुरार्या:" वाक्य हमारी इसी वृत्ति का सूचक है।

आर्य सभ्यता का यह विशेष गुण रहा है कि समय समय पर सामायिक और उचित संशोधन करने में वह सर्वदा उद्यत रहती है। इस लोच के कारण ही अत्यन्त काल व्यतीत हो जाने पर भी अद्यावधि, पर्यन्त यह जीवित है जब कि अनेकशः उच्च सभ्यताभिमानी जातियां पृथ्वीतल से तिरोहित हो गयीं तथा होती जा रही हैं।

वैदिक काल में आर्यों का जीवन शुद्ध और सरल था परोपकार और सदाचार ही उनका मुख्य ध्येय था। प्रकृति निरीक्षण और उसके

सौंदर्य में ईश्वरीय ज्ञान का विश्लेषण उनकी अप्रतिम प्रतिभा की विशेषता थी। आगे चल कर विचार शृङ्खला में सूक्ष्म दर्शिता और भी अधिक बढ़ गयी। परन्तु ज्ञान कर्म और उपासना के सामञ्जस्य में भिन्नता आने लगी। उपनिषद् काल में ईश्वरीय विचार का विश्लेषण जिस सूक्ष्मता तथा गम्भीरता से किया गया है वही उक्त कथन का पर्याप्त प्रमाण है। और वह आज भी विद्वानों के लिये मनन योग्य वस्तु मानी जाती है। इतना गंभीर विवेचन ईश्वर संबंधी आर्य जाति को छोड़ कर और किसी ने आज तक नहीं किया। पाश्चात्य विद्वान केवल पिष्ट पेषण मात्र से ही संतोष करने पर बाध्य हुए हैं। तत्पश्चात् दार्शनिक काल में विभिन्न विषयों पर और भी गंभीर विवेचन होने लगा जिसके कारण विचारों में यद्यपि जटिलता बढ़ गयी थी परन्तु सूक्ष्मता और भी अधिक आ गयी थी।

लौकिक व्यवहार में वैदिक कालीन वर्ण व्यवस्था अत्यधिक उदार भित्ति पर स्थित थी। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र का विभाग गुण, कर्म और स्वभाव पर निर्धारित होता था। जाति बंधन में कड़ाई का नाम तक न था। शूद्र से ब्राह्मण, और ब्राह्मण से शूद्र बन जाना एक साधारण सी बात मानी जाती थी। यही बात तांत्रिक तथा बौद्ध काल तक में स्थिर रही। शूद्र का विवाह ब्राह्मणों तक में हो जाता था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक ब्राह्मण कन्या से विवाह किया था। उपनिषद् भी इसका समर्थन करते हैं:—

शूद्रो ब्राह्मणता मेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
नकुलं कुल मित्याहुराचारं कुल मुच्यते॥

(वज्र सूची उपनिषद्)

इससे अधिक वर्ण व्यवस्था की सरलता और क्या हो सकती है? परन्तु धीरे धीरे वर्ण व्यवस्था के बंधन कड़े होते गये और अन्ततोगत्वा अधिकांश जनता वर्ण व्यवस्था जन्म परक मानने लगी।

प्राचीन काल में पशुवध की प्रथा प्रायः नहीं के बराबर थी।

परन्तु समय चक्र के कारण पशुवध का विधान यज्ञों तक में होने लगा तांत्रिक काल में यह प्रणाली पराकाष्ठा को प्राप्त हो चुकी थी।

"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" का पाठ रटा जा रहा था महीधर जैसे विद्वानों ने वेद मंत्रों के अर्थ ही हिंसा परक और अश्लीलतापूर्ण कर डाले। अतः बुद्ध भगवान ने अवतरित हो इस प्रथा का मूलोच्छेद कर दिया। उसके पीछे जब बौद्ध धर्म में नास्तिकवाद और देश द्रोहिता व्याप्त हो गयी तो भगवान शंकराचार्य ने आस्तिकवाद और देश प्रेम की धारा ही प्रवाहित करदी। बौद्ध धर्म के प्रचार से शारीरिक बल का ह्रास हो चुका था। उसे पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इसी प्रकार वैदिक भाषा के आधार पर ही भारतीय अधिकांश भाषायें तथा विदेशी अनेकानेक भाषाओं का विकाश हुआ। संसार की अधिकांश भाषाओं का उद्गम भी यही वैदिक भाषा है। वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंस, हिन्दी, बंगला, मरहठी, गुजराती, पजाबी आदि एक ही के विकसित रूप हैं। लेटिन ग्रीक और फ़ारसी भाषाएं भी उसी के विकृत रूप हैं। भारतीय संस्कृति का वर्तमान रूप भी उसी सभ्यता का परिवर्तित रूप मानना पड़ेगा। क्योंकि इस सभ्यता का मूलाधार वही वैदिक सभ्यता है। कालिदास, भवभूति, वराह मिहिर, रामदास, तुकाराम, तुलसीदास, सूरदास, कृत्तिवास और नानक आदि उसी संस्कृति के रत्न थे।

पाश्चात्य विद्वान् इस संस्कृति के इतिहास को बदलने के लिए मनमानी कहानियां गढ़ लेते हैं। बहुत से ऐतिहासिक व्यक्तियों को काल्पनिक तथा आलंकारिक रूप देने का प्रयत्न करते हैं। उनके विश्लेषण के दो एक नमूने ये हैं। वे कहते हैं कि "रामायण की कथा विजयनगर की स्थापना का ही गीत मात्र है। गौतमबुद्ध कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हुआ। उसका चरित्र सूर्योदय का रूपक मात्र है।" इत्यादि। इसी से हम समझ सकते हैं कि पाश्चात्य विचार हमारे कहां तक अनुकूल पड़ सकते हैं।

अब विचारना यह है कि हिन्दू नाम हमारा कब से और क्यों पड़ा और उससे हमें क्या लाभ हो सकता है? इस नाम के बदलने से क्या हानि है? भविष्य पुराण मे एक स्थान पर हिन्दुओं के सम्बन्ध में लिखा है—

जानु स्थाने जैन शब्दः सप्तसिन्धु स्तथैवच।
हप्त हिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुंडिका॥
(भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व अध्याय ५)

इससे विदित होता है कि सप्तसिन्धु का ही हप्तहिन्दु ईरानी रूप है जिसके कारण ईरानी लोग भारतीयों को हिन्दु नाम से सम्बोधन करते थे। तुर्की, अरबी आदि लोग भी हमारा यही नाम प्रयुक्त करते थे। मेरु तंत्र में भी हिन्दू शब्द का प्रयोग भारतीयों के अर्थ में किया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी में भी हमें यही नाम राखा इत्यादि में मिलता है वेन सोमेश्वर को आशीर्वाद देते हुए कहता है।

अटल ठाट महिपाल अटल तारागढ़ थानम्।
अटल नम्र अजमेर अटल हिन्दव अस्थानम्॥
धनि हिन्दू पृथिराज जिने रज वह उजारिये।
धनिहिन्दू पृथिराज बाजि कलि मंझि उजारिये।

अतः—निश्चित है कि हिन्दू शब्द घृणास्पद नहीं है, हमें कदापि इससे घृणा न करनी चाहिये। ह्वेनचाङ्ग ने इन्द्र शब्द चन्द्र के अर्थ में भारतीयों के लिये प्रयुक्त किया है। जापानी भी हिन्दुस्तानियों के लिये "इन्दोजन" शब्द का प्रयोग करते हैं। "सोहाब मोअलक" नामक अरबी ग्रन्थ में आया है कि "हिन्दू बड़े बहादुर और सभ्य होते हैं उनकी तरह हमें भी जबाब देना सीखना चाहिये।"

भारतवर्ष की व्याख्या करते हुए एक स्थान पर आया है— "तंवर्ष भारत नाम भारती पत्र संतति" इससे भारतीयों की विद्याभिरुचि का अनुमान लगाया जा सकता है।

जब हिन्दुओं में व्यापारादि के कारण संपन्नता आयी और धन

परन्तु समय चक्र के कारण पशुवध का विधान यज्ञों तक में होने लगा तांत्रिक काल में यह प्रणाली पराकाष्ठा को प्राप्त हो चुकी थी।

"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" का पाठ रटा जा रहा था महीधर जैसे विद्वानों ने वेद मंत्रों के अर्थ ही हिंसा परक और अश्लीलतापूर्ण कर डाले। अतः बुद्ध भगवान ने अवतरित हो इस प्रथा का मूलोच्छेद कर दिया। उसके पीछे जब बौद्ध धर्म में नास्तिकवाद और देश द्रोहिता व्याप्त हो गयी तो भगवान शंकराचार्य ने आस्तिकवाद और देश प्रेम की धारा ही प्रवाहित करदी। बौद्ध धर्म के प्रचार से शारीरिक बल का ह्रास हो चुका था। उसे पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इसी प्रकार वैदिक भाषा के आधार पर ही भारतीय अधिकांश भाषायें तथा विदेशी अनेकानेक भाषाओं का विकाश हुआ। संसार की अधिकांश भाषाओं का उद्गम भी यही वैदिक भाषा है। वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंस, हिन्दी, बंगला, मरहठी, गुजराती, पंजाबी आदि एक ही के विकसित रूप हैं। लेटिन ग्रीक और फ़ारसी भाषाएं भी उसी के विकृत रूप हैं। भारतीय संस्कृति का वर्तमान रूप भी उसी सभ्यता का परिवर्तित रूप मानना पड़ेगा। क्योंकि इस सभ्यता का मूलाधार वही वैदिक सभ्यता है। कालिदास, भवभूति, वराह मिहिर, रामदास, तुकाराम, तुलसीदास, सूरदास, कृत्तिवास और नानक आदि उसी संस्कृति के रत्न थे।

पाश्चात्य विद्वान् इस संस्कृति के इतिहास को बदलने के लिए मनमानी कहानियां गढ़ लेते हैं। बहुत से ऐतिहासिक व्यक्तियो को काल्पनिक तथा आलंकारिक रूप देने का प्रयत्न करते हैं। उनके विश्लेषण के दो एक नमूने ये हैं। वे कहते हैं कि "रामायण की कथा विजयनगर की स्थापना का ही गीत मात्र है। गौतमबुद्ध कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हुआ। उनका चरित्र सूर्योदय का रूपक मात्र है।" इत्यादि। इसी से हम समझ सकते हैं कि पाश्चात्य विचार हमारे कहां तक अनुकूल पड़ सकते हैं।

अब विचारना यह है कि हिन्दू नाम हमारा कब से और क्यों पड़ा और उससे हमें क्या लाभ हो सकता है ? इस नाम के बदलने से क्या हानि है ? भविष्य पुराण मे एक स्थान पर हिन्दुओं के सम्बन्ध में लिखा है—

जानु स्थाने जैन शब्दः सप्तसिन्धु स्तथैवच ।
हप्त हिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुंडिका ॥
(भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व अध्याय ५)

इससे विदित होता है कि सप्तसिन्धु का ही हप्तहिन्दु ईरानी रूप है जिसके कारण ईरानी लोग भारतीयों को हिन्दु नाम से सम्बोधन करते थे। तुर्की, अरब आदि लोग भी हमारा यही नाम प्रयुक्त करते थे। मेरु तंत्र में भी हिन्दू शब्द का प्रयोग भारतीयों के अर्थ में किया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी में भी हमें यही नाम रासा इत्यादि में मिलता है बेन सोमेश्वर को आशीर्वाद देते हुए कहता है।

अटल ठाट महिपाल अटल तारागढ़ थानम् ।
अटल नग्र अजमेर अटल हिन्दव अस्थानम् ॥
धनि हिन्दू पृथिराज जिने रज वह उजारिये ।
धनिहिन्दू पृथिराज बाजि कलि मंझि उजारिये ।

अत:—निश्चित है कि हिन्दू शब्द घृणास्पद नहीं है, हमें कदापि इससे घृणा न करनी चाहिये। ह्वेनचाङ्ग ने इन्द्र शब्द चन्द्र के अर्थ में भारतीयों के लिये प्रयुक्त किया है। जापानी भी हिन्दुस्तानियों के लिये "इन्दोजन" शब्द का प्रयोग करते हैं। "सोहाब मोअलक" नामक अरबी ग्रन्थ में आया है कि "हिन्दू बड़े बहादुर और सभ्य होते हैं उनकी तरह हमें भी जवाब देना सीखना चाहिये।"

भारतवर्ष की व्याख्या करते हुए एक स्थान पर आया है— "तंवर्ष भारत नाम भारती यत्र संतति" इससे भारतीयों की विद्याभिरुचि का अनुमान लगाया जा सकता है।

जब हिन्दुओं में व्यापारादि के कारण संपन्नता आयी और धन

की प्रचुरता हुई तो विलासी वृत्तियां आर्य जाति में घर करने लगीं, नाटकादि तथा शृंगारिक काव्य रचे जाने लगे। तथा अश्लीलतामय प्रचुर सामिग्री का समावेश हो गया।

नाटक-रचना का प्रारम्भ-काल लगभग २२०० वर्ष से माना जाता है। महाकवि भास उसी समय में हुए, कालिदास को हुए भी १६०० वर्ष हो गए। इसी समय के आस पास शकों और हूणों के आक्रमण हुए जिससे हिन्दू जाति की बड़ी हानि हुई। शृङ्गारिक भावों के कारण क्षात्रभाव क्षीण हो गया था। अतः हिन्दू अपनी रक्षा करने में असमर्थ रहे परन्तु सामाजिक जीवन उनमें कुछ अवशेष था। अतः आचार्यों द्वारा उक्त दोनों जातियां हिन्दू जाति में लीन कर ली गयीं और उन्होंने हिन्दू सभ्यता स्वीकार कर ली। उस समय भी हिन्दुओं की पाचन शक्ति क्षीण हो चुकी थी। अतः भली प्रकार उनका पाचन न कर सके। और वे जातियां कुछ निम्न कोटि में ही जीवन व्यतीत करने पर बाध्य हुईं। समाज उन्हें उचित स्थान न दे सका। मुख्यतः हूणों के सम्बन्ध में यह बात अक्षरशः सत्य है। चंद्रगुप्तमौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त, यशोवर्धन, हर्षवर्धन और भोज आदि राजाओं ने इसी सभ्यता का विकास किया। कालिदास के समय से सत्रहवीं शताब्दी विक्रमी तक शृङ्गारिक भाव क्रमशः बढ़ता ही गया और उसकी रोक थाम का विशेष उद्योग भी नहीं हुआ। अतः मुसलमानी शासन का जुआ बाध्य होकर हमें ग्रहण करना पड़ा। और कई शताब्दियों तक हिन्दू जाति ऐसी बुरी भांति से पद दलित की गई कि यदि अन्य जाति होती तो भूतल से मिट चुकी होती।

औरंगजेबी शासन से हिन्दूजाति त्रस्त हो रही थी। मिर्जा, जयसिंह जैसे वीर राजपूत उसकी गुलामी करने से न हिचकते थे। ऐसे प्रबल शत्रु के सन्मुख लोहा लेना साधारण व्यक्ति का कार्य न था। शिवाजी ने वही असम्भव बात सम्भव कर दिखायी और औरंगजेब के छक्के छुड़ा दिये। मुसलमानी राज्यों का बहुत बड़ा दक्षिणी भाग अधिकृत करके हिन्दू जाति को प्रत्येक प्रकार से उत्थान देने का आयोजन प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि अठारहवीं शताब्दी के अन्त में भारतवर्ष में हिन्दू राज्य स्थापित हो चुके थे परन्तु संगठित न थे। अतः यूरोपियन जातियों ने क्रमशः हिन्दू मुसलमान दोनों पर अपना प्रभाव जमा लिया और भारत के शासक बन बैठे।

यह निश्चित है कि राजनैतिक परिस्थिति को अनुकूल बनाने के लिए वीररस की महान् आवश्यकता है। इसके बिना शासन की बाग डोर हाथ में आ ही नहीं सकती। यदि मिल भी जाय तो रक्षण नहीं हो सकता। साथ में संघ-शक्ति भी उतनी ही आवश्यकीय है।

इस प्रकार भारतीय सभ्यता का विकाश वर्तमान रूप में आ उपस्थित हुआ। बंगाल, मद्रास, बम्बई, पंजाब, संयुक्तप्रदेश तथा राज-पूताना सब में एक ही विकाश क्रम प्रवाहित हो रहा है। उसका मूलाधार एक हो है। तथा एक ही भाव सब में ओत प्रोत है। राष्ट्रीयता के लिए कुछ बाह्य चिन्ह भी सहायक होते हैं। हिन्दुओं में हल, कमल, मयूर, हाथी और गीता ये ही मुख्य चिन्ह माने जाते रहे हैं।

प्रत्येक सभ्यता मे तीन बाते ही मुख्य मानी जाती हैं और इन्हीं आधारों पर सभ्यता का निर्माण होता है। हिन्दुओं में भी इन्हीं बातों के विकाश होने की अत्यन्त आवश्यकता है:—(१) भाषा, (२) संस्कृति, (३) भारतीयता। जब तक हम हिन्दी भाषा, हिंदू संस्कृति और भारतीयत्व से प्रेम करना नहीं सीखते तब तक हिन्दू जाति तथा देश का कल्याण नहीं। और न हम राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं।

आशा है हिन्दू जाति के नेता इन बातों पर गंभीरता पूर्वक विचार करेंगे। इधर इन बातो के लिए कुछ उद्योग हो भी रहा है। परन्तु वह देश व्यापी नहीं है। कुछ प्रान्तों तक ही सीमित हो रहा है। इसको सर्व व्यापी बनाने का उद्योग होना चाहिये।

कवि-कीर्तन

वियोगी हरि की वीर सतसई

[लेखक—श्री० किशोरीदास वाजपेयी]

बच्चों की वीरोक्तियां

कविबर ने बच्चों की वीरोक्तियां क्या लिखी हैं, प्राचीन भारत का दृश्य अङ्कित कर दिया है। अहा:—

दै तो मैया! नेक तूं, मेलो तील कमान।
चन्दै भूमि गिलाऊँगो, मालि अचूक निशान॥
ऊँ ऊँ मैं तो लेऊँगो, ओई तील कमान।
मालूँगो म्लगलाज मैं, घालि अचूक निशान॥
मति दै चकली तूँ हमें, मति दै गेंद अजान।
अम तौ ओई लेइंगे, लखन-लाम-धनु-बान॥

कैसा दृश्य है! आज कल का दृश्य भी देखिए!

चित्र-चर्चा

जियत बाघ की पीठि पै, धनु-धारीनु चढ़ाय।
क्यों न चितेरे! चित्र तूं, उमगि उतारत आय॥

आज कल की मासिक-पत्रिकाओं के सञ्चालक और सम्पादक, ऐसे चित्रों को अनावश्यक और कला-बहिष्कृत समझते है। चित्रकारों की तो लीला ही न्यारी है। कवियों के ही तो छोटे भाई हैं। पहले बड़े भाई ने पापड़ बेले; अब छोटे की बारी है। परन्तु हां—"बड़े मियां तो बड़े मियां, छोटे मियां सुभान अल्ला!" आज कल के वे चित्रकार और आगे बढ़ रहे हैं! छिः!!

सुकुमारता !

बस, काढ़ो मति म्यानतें, यह तीछन तरवार ।
जानत नहिं ठाढ़े यहाँ, रसिक छैल सुकुमार ॥
वादि दिखावत खोलि इत, तुपक तीर तरवार ।
सुरमा मीसी के जहाँ, बसत बिथाहन हार ॥
कवच कहा ये धारि हैं, लचकीले मृदु गात ।
सुमन हार के भार जे, तीन तीन बल खात ॥
के चढ़ि लै असि-धार पै, कै बनि लै सुकुमार ।
द्वै तुरङ्ग पै एक सँग, भयो कौन असवार ॥
किमि कोमल अङ्ग ओढ़ि हैं, असहनीय असि-घाय ?
जिन पै गहव गुलाब की, गड़ि खरोट परि जाय ॥
जहँ गुलाब हू गात पै, गड़ि छाले करि देत ।
बलिहारी ! बखतरनु के, तहाँ नाम तुम लेत ॥
"झझकत हिये गुलाब के, झँवा झँवैयत पाइ ।"
या विध इत सुकुमारता, अब न दई सरसाइ ॥
जाव भले जरि जरति जो, उरध उसाँसनि देह ।
चिरजीवो तनु रमतु जो, प्रलय अनलु के गेह ॥

और देखिए:—

होउ गलित वह अङ्ग जेहि, लागत कुसुम खरोट ।
चिरजीवो तनु सहतु जो, पुलकि पुलकि पवि-चोट ॥

कविवर का तात्पर्य्य विहारी के इस दोहे से है:—

"मैं बरजी कै बार तूँ, इत कित लेति करौंट ।
पँखुरी लगें गुलाब की, परि है गात-खरोट ॥"

बिलासिता !

तिय-पाइल-खट्टो तुम्हें, किय घायल रति-पाल ।
सुनि घुकार धौंसानु की, है है कौन हवाल ॥
कहा भयो एक दुर्ग जो, ढायो रिपु रणधीर ।

तुम तौ मानिनि-मान-गढ़, नित ढावत रति बीर ॥
ऐहैं कहु केहि काम ये, कादर काम-अधीर ।
तिय-मृग-ईछन हीं जिन्हैं, हैं अति तीछन तीर ॥

देखिए बिहारी को:—

"लागत कुटिल कटाच्छ-सर, क्यों न होंहि बेहाल ।
कढ़त जि हियहिं दुखाल करि, तऊ रहत नटसाल ॥"

और भी:—

रहि जैहैं दरपनु लियें, करत साज-सिंगार ।
अन्त न ऐहैं काम ये, रसिक छैल-सरदार ॥
त्यागि सकत नहिं नैक जे, चटक-मटक-अभिमान ।
कहा छाँड़ि हैं युद्ध में, ते अजान प्रिय प्रान ॥
मान छुट्यो, धनजन छुट्यो, छुट्यो राज हू आज ।
पै मद-प्याली नहिं छुटी, बलि! बिलासि-सिरताज ।
नयन-बान हीं बान अब, भ्रुव ही बंक कमान ।
समर केलि विपरीत हा, मानत आजु प्रमान ॥

मिलान कीजिए अक्षर-अक्षर आजकल के राजाओ और बिहारी भक्ति कवियों के साथ! कैसा चित्र खींचा है !! यह है काव्य-छटा ।

इधर कवियों की दशा भी देखिए:—

बरसत विषम अंगार चहुँ भयौ छार बर बाग ।
कवि-कोकिल कुहुकत तऊ, नव-दम्पति-रति-राग ॥
सुख-सम्पति सब लुटि गई, भयौ देस उर घाय ।
कंकन किंकिनि का अजौं, सुनत झनक कविराय ॥
रही जाति जठरागि तें, भभरि भाजि अकुलाय ।
तुम्हैं परी अभिसार की, अजहुँ हाय रस-राय ॥

परन्तु, कविपुङ्गवो !

कमल-हार झीने बसन, मधुर बेनु अब छांड़ि ।
मौलि-मालि, बज्जर-कवच, तुमुल-संख कवि! मांड़ि ॥

पर, हाय ! यह कहा किससे जा रहा है ? क्योंकि: —

मरदाने के कवित्त ये, कहिहैं क्यों मतिमन्द ।
बैठि जनाने पढ़त जे, नित नख-सिख के छन्द ॥

वसे राजाओं की बदौलत कवि और कवियों की बदौलत राजा ऐसे हो गये ! कैसा अन्तर है । देखिये तो:—

जिनकी आंखन ते रहे बरसत ओज अंगार ।
तिनके बंसज झेंपते, दृग झांपत सुकुमार ॥
रहे रंगत रिपु-रुधिर सों, समर केस निरवारि ।
तिनके कुल अब हीजरे, काढ़त मांग संवारि ॥
धारत हे रणभूमि जे, अरि-मुण्डनु को हार ।
तिनके कुल के करत अब, सरस सुमन सिंगार ॥
रह्यो सदा जिन हाथ को, यार एक हथियार ।
लखियतु तिन बंसज करतु, रमन-बाल-हित हार ॥
झूमत हे जहं मत्त ह्वै, सहज सूर दिन रैन ।
लटकि लजीले छैल तहं, मटकि नचावत नैन ॥

आज के राजपूत !

दलित सीस पै बांधि कै, रजपूती की पाग ।
कियो निलज ! नट लौं तऊ, बलि विक्रम को स्वांग ॥
कहा तुम्हैं तरवार सो, है सब सूखो सान ।
मूठ सुनहरी चाहिए, और मखमली म्यान ॥
चाटत जग-पग स्वान ज्यों, फिरत हिलावत पूंछ ।
बनत कहा अब मरद तें, यो मरोरि कै मूंछ ॥

अन्त में प्रार्थना है: —

क्षात्र धर्म-जस कौमुदी, कृष्ण रूप रुचि राग ।
होत हरे संगमु सदा, यहै सुहाग प्रयाग ॥
सहसफनी-फुंकार औ, काली-असि-झंकार ।
बन्दौं हनु-हुङ्कार त्यौं, राघव-धनु-टंकार ॥

बस आनन्द-आनन्द में बहुत आगे बढ़ आये । क्या करें, छोड़ने को जी नहीं चाहता । रसिक जन इस सतसई के दर्शन जरूर करें ।

विचार तरङ्ग

[लेखक—श्री सुरेन्द्र जी शर्मा]

डायर के पिट्ठू ?

मार्शलला के दिनों में कप्तान फोस्टर पञ्जाब में एक अफसर थे। उन्होंने हाल ही में टिकेरेरी (लन्दन) की एक सभा में भाषण देते हुए कहा—

"God knows what would have happened to the white population in India, if Sir Michael O' Dwyer and General Dyer had not dealt with the trouble in the way they did." अर्थात् विद्रोह को दबाने में, सर माइकेल ओडायर और जनरल डायर ने जिस ढंग से काम लिया, उससे न लिया होता, तो, खुदा जानता है, हिन्दुस्तान में गोरों का क्या हाल होता! हाल क्या होता ? क्या उस समय विद्रोहियों की कहीं कोई पल्टनें तैयार थी जिससे गोरों के जानोमाल पर आँच आने की सम्भावना थी ? अथवा क्या कहीं बम के धड़ाके की आवाज़ सुनी गई थी, जिससे गोरों की आबादी को खतरा था ? यदि ऐसी कोई बात नहीं थी, तो, आख़िर फोस्टर साहब की आशङ्का का अर्थ क्या है ?

वर्षों के बाद, आज भी, फोस्टर साहब जनरल डायर और ओडायर के कार्यों की दाद देने बैठे हैं इसलिए कि, मार्शलला के दिनों में, उन दोनों की क्रूर कृतियों के बल पर गोरों के प्राण बच सके ?

डायर और ओडायर ने मार्शलला के दिनों में इस देश के लोगों पर जो ज़ुल्म किया, उसे दुनियां जानती है। उन्हीं की कृपा से सैकड़ों निहत्थे और बेगुनाह हिन्दुस्तानियों का, जानवरों की तरह शिकार किया गया। तभी तो एक बार जनरल डायर ने यह कहने का साहस किया था—"I fired and fired well till my ammunition ended" अर्थात् मैंने गोली चलाई, और ख़ूब अच्छी तरह चलाई तब तक, जब तक कि, मेरी गोली बारूद ख़तम न होगई।

इस ज़ुल्म को दुनियाँ ने देखा और 'ज़ुल्म' के नाम से पुकारा। उस समय देश भर में, कहीं भी, गोरों के जानोमाल पर कोई आफत नहीं थी। किन्तु, इससे क्या, फोस्टर साहब को तो, उन दिनों के विद्रोह के कल्पित बवण्डर का हौआ आज भी परेशान कर रहा है, तभी तो, उन्हें डायर और ओडायर की कलुषित कृतियों की दाद देते हुए, तनिक भी लज्जा नहीं आती।

आसनसोल के मजदूर

पाश्चात्य देशों में मजदूरों का संघटन दिन पर दिन सुदृढ़ होता जा रहा है। उनके हाथों में शक्ति आरही है। वे इस देश के मजदूरों की तरह दलित नहीं हैं। हाल ही में हेरशेरविट नामक एक जर्मन यात्री हिन्दुस्तान में आया है। उसने जो बातें कहीं हैं, उनसे जर्मनी के मजदूरों की शक्ति का पता चलता है। वहाँ मजदूरों ने अपने संघटन के बल पर, जर्मन पार्लामेंट (Reichstag) तक में अपने १५० मेम्बर पहुँचा दिये हैं। यह संख्या कुल मेम्बरों की आधी है।

परन्तु, इस देश के अभागे मजदूरों की हालत की पाश्चात्य देशों के मजदूरों की स्थिति से कोई तुलना नहीं की जा सकती। हाल ही में, अपने ऊपर होने वाले जुल्म और ज्यादतियों के विरोध में बम्बई, कलकत्ता जमशेदपुर आदि स्थानों के मजदूरों ने हड़तालें कीं। हड़ताल की हालत में भी मजदूर खूब सताये गये। आसनसोल के बहुत से मजदूर अब भी हड़ताल पर हैं। २१ जून के 'फारवर्ड' में उन पर होने वाले जुल्मों की दर्दनाक बातें छपी हैं। रेलवे के अहाते में पुलिस की निगरानी में भाड़े के गुण्डों ने निःशस्त्र मजदूरों पर आक्रमण किये। रेलवे पुलिस ने मजदूरों को धमकी दी कि यदि वे काम पर वापस नहीं आयेंगे, तो, उन्हें जेल में डाल दिया जायगा। एक हड़ताली के मकान पर, जो रेलवे की सम्पत्ति नहीं था, धावा किया गया। मकान के किवाड़ तोड़ डालने की धमकी दी गई। कहते हैं कि यह दृश्य रेलवे के कुछ यूरोपियन अधिकारी देख रहे थे। वे टससे मस नहीं हुए। २१ आदमी जो शान्ति से धरना दे रहे थे, बलवा का जुर्म लगा कर गिरफ़ार कर लिये गये। अब मजदूरों में हिन्दू और मुसलिम को जातिगत भावना जाग्रत करके झगड़ा पैदा कराने की कोशिश की जा रही है। परन्तु, वे अपनी माँगों पर अटल हैं। इस देश की शान्ति और व्यवस्था के ठेकेदार चुप हैं। आख़िर वे इस तरह कब तक चुप रहेंगे और उन की छत्र-छाया में इस दलित देश के साधारण लोग जुल्म और ज्यादतियों के कब तक शिकार होते रहेंगे?

अकाल में अराजकता

बङ्गाल के कुछ जिलों में घोर अकाल है। लोग भूखे मर रहे हैं। दाने दाने को तरस रहे हैं। कहीं कहीं तो लोग १०-१० रुपये में अपने बच्चों को बेचने तक पर विवश हुए हैं। बलूरघाट में अकाल का बड़ा भयानक प्रकोप है। सैकड़ों लोग मुह बांध कर अनाज के लिये मारे मारे फिर रहे हैं। भूख के मारे उनका चेहरा सूख गया है। बहुत दौड़-धूप करने पर भी एक एक मुट्ठी चावल मिलना दूभर हो गया है। लोगों की आवाज तक नहीं निकलती। उनके पास पापी पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए इस समय कोई उपाय नहीं। परन्तु, सरकार को

अब भी वहां के अकाल पर सन्देह है। इस मामले में उसका ढंग बहुत ही निन्द-नीय रहा है। सरकार ने अकाल-पीड़ितों के साथ कोई सहानुभूति नहीं दिखाई। इससे लोग बहुत हताश होगये हैं। इसलिये अब अकाल में अराजकता के लक्षण दिखाई पड़ने लगे हैं। पटनीतला की हाट में अकाल पीड़ित लोगों ने कई जगह चावल लूटे। वहां डाकबङ्गले में एक हाकिम भी मौजूद था। थाने में, तथा डाक बङ्गले के अहाते में, हाकिमों की आंखों के सामने फलों की खूब लूट हुई। इस प्रकार अकाल में अराजकता फैलाने की जिम्मेदारी किस पर है? क्या शान्ति और व्यवस्था के खुदायी ठेकेदार इस जिम्मेदारी से बरी हो सकते हैं?

बिना बुलाई मौत

सचमुच बलूरघाट (बंगाल) के अकाल का दृश्य बड़ा भयानक है। बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस के मंत्री डाक्टर जे० एम० दास गुप्त और एसेम्बली के मेम्बर श्री सत्येन्द्रचन्द्र मित्र बलूरघाट की अवस्था देखने गये थे। उन्होंने रिपोर्ट दी है कि भूख से अब तक २६ आदमी मर चुके हैं। यदि यही हालत रही तो न जाने कितने आदमी और मर जायंगे। ४०० आदमी अनशन कर रहे हैं। इसलिये कि सरकार का ध्यान अकाल की इस भीषणता की ओर आकर्षित हो और वह भूख से मरते हुए लोगों को पर्याप्त सहायता पहुँचावे। अनशन करने वालों के मुखिया एक प्लीडर मि० अनिल विस्वास हैं।

'फोरवर्ड' के संवाददाता का कहना है कि बलूरघाट में क़रीब तीन हजार आदमी ऐसे जमा हो गये, जो भूखों मर रहे हैं। उनसे पूछा गया कि आप लोग यहां क्यों जमा हुए हैं? उन्होंने कहा कि मरने के लिये। उनसे फिर कहा गया कि मौत का आना तो ऐसी आसान बात नहीं है, जब तक कि वह खुद न आवे? इस पर लोगों ने कहा—"हां, वह (मौत) अपने आप ही आ रही है। कोई आदमी अपनी इच्छा से नहीं मरना चाहता, इसी तरह हम भी नहीं चाहते। परन्तु इस का कोई चारा नहीं। मौत बिना बुलाई आ रही है। हम धीरे धीरे—इञ्च इञ्च करके—मर रहे हैं। धीरे धीरे मरना अधिक दुखदायी है। हम चाहते हैं कि तुरन्त मर जाय।" क्या इन हृदय-विदारक बातों से बङ्गाल-सरकार का संगदिल तनिक भी पसीजेगा?

दिवालिया शासन

सायमन कमीशन वाले प्रस्ताव के समय, कौंसिल में युक्त प्रान्त के मिनि-स्टर राय राजेश्वर बली, तथा ठाकुर राजेन्द्रसिंह साहब ने जिस साहस और देश भक्ति का परिचय दिया, उससे वे देश भर के श्रद्धा और आदर के पात्र हैं। गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट के अनुसार एक मिनिस्टर अपने प्रान्त की कौंसिल

के सामने उत्तरदायी है, वह कौंसिल का आदेश मानने के लिये बाध्य है। जब कौंसिल ने सायमन कमीशन के बायकाट का प्रस्ताव पास कर दिया, तब, एक जिम्मेदार और ईमानदार मिनिस्टर ऐसा कोई काम नहीं कर सकता, जो कौंसिल के आदेश के विरुद्ध हो, और जिसमें कमीशन के साथ सहयोग करना पड़े। भारत तथा यू०पी० सरकार के आदेशानुसार, कौंसिल के प्रस्ताव के विरुद्ध, राय राजेश्वरी बली तथा ठाकुर राजेन्द्रसिंह साहब ने सायमन कमीशन के सामने मेमोरेण्डा (शासन विधान सम्बन्धी कागज-पत्र) पेश करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। इसी कारण उन्हें गवर्नर ने इस्तीफा देनेको बाध्य किया। उनके सामने केवल दो ही मार्ग थे। एक तो यह कि, वे कौंसिल के आदेश की अवहेलना कर के, सरकार के हुक्म के मुताबिक सायमन कमीशन से सहयोग करते। दूसरा यही था जिसका उन्होंने अनुसरण किया। उन्होंने देश की आवाज का आदर किया, और तीन हज़ार रुपया महीने की नौकरी खुशी से ठुकरा दी।

इस मामले में गवर्नर और भारत सरकार का ढङ्ग बहुत ही निन्दनीय, और शासन विधान के प्रतिकूल है। दुनियाँ में इस प्रकार की अन्धेर नहीं कहीं नहीं होती। जो मिनिस्टर कौंसिल के आदेश का पालन करता है, उसे निकाल देने का सरकार को कोई अधिकार नहीं। मिनिस्टर तो केवल कौंसिल का हुक्म मानने को बाध्य है, न कि सरकार का। परन्तु, इस दीन देश को अधिक समय तक गुलाम बनाये रखने और यहां के लोगों को अनेक तरह के धोखे माया जाल में फँसाये रखने के लिये, सरकार नित्य नये स्वांग रचा करती है। यह शासन दिवालिया है इस लिये कि इसमें जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों का बोल-बाला नहीं है। इसका दिवालियापन इससे अधिक और क्या होगा कि जिस विधान पर अमल करने के लिये सरकार लोगों को मजबूर करती है, उसी को वह अपने स्वार्थ के लिये, जब चाहती है, तब बालाएताक रख देती है।

चांदी के टुकड़ों पर

आख़िर राजा जगन्नाथ बख़्शसिंह चांदी के टुकड़ों पर ललचा पड़े। हमें इस बात पर कोई ताज्जुब नहीं है इस लिये कि, आजकल साधारण आदमी की अपेक्षा बड़े आदमियों का ईमान ज़रा जल्दी बिगड़ता है। हाँ, यह बात तो जरूर ताज्जुब की है कि कल राजा साहब ने पानी पी-पीकर सरकार को कोसा था, और नेशनलिस्ट बन कर सायमन कमीशन का बहिष्कार किया था, और आज उन्हें उसी सरकार की मिनिस्टरी लेकर उसके एक अंग बन जाने में शर्म न आई? सचमुच सरकार के पास चांदी का जूता बड़ा जबर्दस्त है। इसके मारे बड़े बड़े वश में होजाते हैं। संसार की अजब हालत है। एक तो देशभक्ति आत्म-सम्मान के

भावों से प्रेरित हो कर, चांदी के टुकड़ों को दूषित समझ समझ कर फेंकते हैं। और दूसरे आत्म-सम्मान को खोकर तुरन्त ही उठा लेते हैं।

बारदोली में—

देश में कहीं भी कुछ आग भड़के, सरकार उसकी ज़िम्मेदारी असहयोगियों के मत्थे मढ़ती है। बारदोली में जो कुछ हो रहा है, वह सरकार की बेवक़ूफ़ी के कारण। सरकार ने बारदोली के किसानों पर जो बढ़ती हुई माल गुज़ारी का बोझ लादा, वह वहां की जनता की राय में बहुत ज़्यादा और नामुनासिब है। लोगों ने चाहा कि सरकार स्वतन्त्र रूप से जांच करावे। परन्तु सरकार को अपनी शान का बड़ा ख़याल है। वह लोगों की इच्छा पर जांच कराने के लिये तैयार नहीं हुई। नतीजा यह निकला कि लोगों में असन्तोष बढ़ा और उन्होंने बढ़ी हुई मालगुज़ारी देने से इन्कार कर दिया। बारदोली में सत्याग्रह का श्रीगणेश हो गया।

मालगुज़ारी वसूल करने के लिये सरकार बारदोली की शान्त और सङ्कुटित जनता पर जो ज़ुल्म किये हैं, वह अमानुषिक हैं। कोई भी सभ्य सरकार अपनी रिआया पर, महज़ अपनी शान बनाये रखने के लिये इस प्रकार के ज़ुल्म नहीं करेगी। इतनी बड़ी सरकार, मालगुज़ारी वसूल करने के लिये भाड़े के पठान रखती है और उनसे अपनी निगरानी में, मनमाने ज़ुल्म कराती है? इन ज़ुल्मों की कोई शुमार नहीं। गांव के गांव श्मशान हो रहे हैं। लोगों में शान्त रह कर अपने हक़ों के लिये मर मिटने की खूब शक्ति है। सरकार के ज़ुल्म और ज़्यादतियों के फल स्वरूप बम्बई कौंसिल के अनेक मेम्बरों और बारदोली ताल्लुका के पटवारियों ने इस्तीफ़े दे दिये हैं।

आजकल बारदोली का सत्याग्रह संग्राम, देवासुर संग्राम हो रहा है। जिन के आंखें हों, वे देख कि केवल त्याग और तपस्या से तोपों और तमञ्चों के साथ लड़ाई कैसे लड़ी जा रही है और इतनी बड़ी शक्तिशालिनी सरकार की शान और सत्ता कैसे धूल में मिलाई जा रही है। यह लड़ाई केवल इसी सिद्धान्त पर आधारित है कि सरकार जनता के लिये होनी चाहिये, न कि जनता सरकार के लिये। हमें तो वह दिन दूर नहीं दिखाई देता, जब बारदोली के रण-बांकुरे योद्धाओं के सामने सरकार को पराजित होना पड़ेगा। पशु-बल के सामने आत्मबल की, और अन्याय के सामने न्याय की विजय होगी। बारदोली से समूचे भारत को वह अभिनव सन्देश मिलेगा जिससे वह परतन्त्रता की बेड़ी काट कर, दुनिया में फिर से अपना मस्तक ऊंचा कर सके।

साहित्य परिचय

भारतीय इतिहास की बाल पोथी—लेखक—श्री० परिपूर्णानन्द जी वर्म्मा, सम्पादक—आचार्य श्री गिदवाणी जी, प्रकाशक-प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन मूल्य ।।।≈), पृष्ठ संख्या १७०

बाल साहित्य के निर्माण कर्त्ता का कार्य बड़ा उत्तर दायित्व पूर्ण है और कठिन भी है। बालकों की प्रवृत्ति को ठीक मार्ग पर लाने के लिये चाबुक की नहीं, मीठी चुटकी की आवश्यकता होती है। श्रीयुत वर्म्मा जी की यह रचना भी उसी ढंग की है। इतिहास के मधुर सत्य जिस रोचक ढंग में कहे गये हैं वह बच्चों के मानस पटल पर अङ्कित हुए बिना नहीं रह सकते। भाव, भाषा और शैली सभी सीधी हैं। लेखक ने अपनी लेखन चातुरी का प्रदर्शन नहीं किया, वरन् बाल-मस्तिष्क के विकास के लिये जिस सामिग्रा की आवश्यकता है, उसीका प्रयोग किया है।

"कुछ स्थानों को छोड़ कर इतिहास ज्ञान घटना द्वारा न कराकर घटना नायक द्वारा कराया गया है।" और वह बड़े सुन्दर रूप में कराया गया है। बाल साहित्य का मुख्य लक्ष्य बुद्धि विकास और रुचि वर्द्धन के साथ साथ चरित्र निर्माण भी है। इस पुस्तक में यह सभी बातें मिलती है। प्रेम के फल, भाइयों पर स्नेह, भगवान बुद्धदेव, सिकन्दर, बाजीराव, कर्तव्य की शिक्षा, वीर महारानियां आदि पाठ विशेष उल्लेखनीय है। चित्रों की कमी इस पुस्तक में जरूर खटकती है।

यद्यपि भारतीय इतिहास के वीर नायक और 'भारतीय इतिहास के वीर और वीराङ्गना' आदि इतिहास के ऊपर और भी एक आध सरल

पुस्तक बाल-विद्यार्थीयों के लिये लिखी गई है किन्तु वे विद्यार्थियों के लिए उतनी उपयोगी नहीं है। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक की शैली, भाषा की सरलता विषय की रोचकता और घटना के चुनाव के निराले पन के विचार से यह पुस्तक बच्चों के लिये अत्यन्त उपादेय है। —सत्येन्द्र।

सरोज—(सचित्र मासिक पत्र) सम्पादक—श्री नवजादिकलाल श्रीवास्तव और श्री रामप्रसाद पाण्डेय, पता १५१ मछुआ बाजार कलकत्ता। सरस्वती आकार, पृष्ठ ७२, सचित्र मूल्य ४) वार्षिक। सरोज का अभी पहिला ही अङ्क निकला है, जो रूप, रस, गन्ध और वर्ण में सरोज नाम सार्थक करता है। आशा है कि इस सरोज से सज्जनों के मनमधुप अवश्य ही संतुष्ट होंगे। निश्चय ही अभी सरोज अधखिली दशा में है। खिलने पर इससे भी सुन्दर और आकर्षक होने की आशा करना दुराशा नहीं है।

निम्नलिखित पुस्तकें भी मिल गई हैं। प्रेषक महोदयों को धन्यवाद:—

१—उजले पोश बदमाश—लेखक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय, प्रकाशक—मन्त्री, जैन संगठन सभा देहली। मू० ।—)

२—जैनमित्र मण्डल, देहली का इतिहास और कार्य विवरण।

३—देवेन्द्र मिलाप अर्थात् प्रेम का संवाद—लेखक-श्रीछेदालाल।

४—आदर्श जैन चरित माला—सम्पादक—पं० मूलचन्द जैन 'वत्सल'। प्रकाशक-साहित्य रत्नालय, बिजनौर। वार्षिक मू० २)

५—वार्षिक रिपोर्ट-श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला।

६—'संत'—सम्पादक महर्षि शिवव्रतलाल, वार्षिक मूल्य ४॥)

७—सत्य हरिश्चन्द्र नाटक (सटिप्पण)-सम्पादक—श्री धर्मचन्द विशारद, हिन्दी भवन, होस्पीटल रोड, लाहौर। मूल्य ।≈)

८—मल्हारराव बाजाराव उत्सव मण्डल का १९२७ का वृत्त कथन।

९—सर सेठ हुक्मचन्द जी दि० जैन पारमार्थिक संस्थाएं, इन्दौर की बारह वर्षों की सचित्र रिपोर्ट।

१०—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी का विवरण।

विविध विषय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन—

देश की सब से बड़ी साहित्यिक संस्था का सालाना समारोह सफलता पूर्वक सम्पन्न हो गया। मुजफ्फरपुर सम्मेलन को लेकर स्वागत समिति में बहुत मतभेद था—मतभेद ही नहीं आपस में मनोमालिन्य भी मालूम होता था। बाहर समाचार पत्रों में मंत्रि-मण्डल को लेकर बड़ा बवण्डर फैला हुआ था। यहां भी विशुद्ध मतभेद के साथ पारस्परिक प्रतियोगिता और दुर्भावना की झलक दिखाई देती थी। समाचार पत्रों में झूठे और आक्रमणकारी लेख छप रहे थे। जांच कमीशन के विषय में भी लोगों ने जनता में मिथ्या भ्रम फैलाने में कसर न रक्खी थी। यहाँ तक मिथ्या बातें उड़ाई गईं कि जिनका हद्दो-हिसाब नहीं। जांच कमीशन का मंत्री आगरे बैठा था और प्रयाग से जब तार मिला कि श्री मूलचन्दजी प्रयाग आगए हैं तब वह आगरे से रवाना हुआ और यार लोगों ने उड़ादी कि बा० मूलचन्दजी को लेने के लिये मंत्री ने कलकत्ते का धावा मारा। यही नहीं, मंत्री और कमीशन के मेम्बरों पर और आक्षेप करने में भी इन लोगों को संकोच न हुआ। घर और बाहर ऐसे दूषित वातावरण में मुजफ्फरपुर सम्मेलन हुआ था। परन्तु सौभाग्य की बात है कि कुशल कर्णधार के मिल जाने से यह डिगमिगाती नौका सहज ही पार लग गई। सचमुच सम्मेलन के सभापति पं० पद्मसिंह जी शर्मा इसके लिये बधाई के पात्र हैं।

सम्मेलन ने इस वर्ष अपना मंत्रिमण्डल और स्थायी समिति को प्राय: पूर्ण रूप से बदल डाला है। यह अच्छा ही हुआ है। चुनाव कैसा हुआ है इस पर अभी हम कुछ नहीं कहना चाहते। भविष्य बतायेगा कि नया मंत्रिमंडल कैसा काम करता है। परन्तु आशा यही है कि काम उन्नति करेगा क्योंकि प्राय: सभी मंत्री योग्य हैं। स्थायी समिति का चुनाव कैसा हुआ है यह अभी तक विदित नहीं हुआ। कैसा भी हुआ हो, कम से कम अब पुरानी तू-तू मैं-मैं न होगी—यह कम प्रसन्नता की बात नहीं है।

सभापति का भाषण—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व अब की बार हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी आदि भाषाओं के पारंगत विद्वान, प्रसिद्ध समालोचक श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा को दिया गया था। आपकी अलौकिक विद्वत्ता का प्रदर्शन आपके प्रसिद्ध आलोचना ग्रन्थ बिहारी सतसई की भूमिका से होगया था, जिस पर सम्मेलन आपको मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान कर चुका है। सभापति की हैसियत से इस समय आपने जो भाषण दिया है वह भी आपकी विद्वत्ता को स्पष्ट प्रकट करता है। आपका भाषण साहित्यिक भाषण है और ठीक वैसा भाषण है जैसे भाषण की आपसे आशा की जा रही थी। आपने रहस्यवादी कविता, कवि-सम्मेलनों और गन्दे साहित्य के सम्बन्ध में जो उद्गार प्रकट किए हैं, उनसे बहुतों का मतभेद हो सकता है—पर हैं वे सत्य। हम आपके भाषण के अनेक स्थल यहां पाठकों के अवलोकनार्थ देना चाहते थे, पर स्थानाभाव से विवश हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे आपका पूरा भाषण पढ़ने का कष्ट उठावें।

मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक—

हमारे पाठक मंगलाप्रसाद पारितोषिक से अपरिचित न होंगे। चालीस हज़ार के वृहत् दान से प्रति वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन बारह सौ रुपया सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ प्रणेता को भेट करता है। साहित्य, इतिहास, दर्शन और विज्ञान के क्रम से प्रति वर्ष एक-एक विषय के ग्रन्थों की जाच होती है। एक एक बार चारों विषयों के ग्रन्थों पर यह पारितोषिक भेंट किया जा चुका है। यह पांचवा वर्ष था और इस वर्ष साहित्य विषयक ग्रन्थों पर पारितोषक दिया जाने वाला था। चार परीक्षकों में पं० शुकदेव बिहारी मिश्र ने श्री सुमित्रानन्दन पन्त के 'पल्लव' को श्री किशोरीलाल जी गोस्वामी ने सेठ कन्हैयालाल पोद्दार के 'काव्य कल्पद्रुम' ग्रंथ को और श्री रत्नाकर जी एवं पं० पद्मसिंह जी शर्मा ने श्री वियोगी हरि जी के 'वीर सतसई' नामक ग्रंथ को इस पारितोषिक के योग्य बताया था। 'काव्य कल्पद्रुम' के विषय में पहले ही से अनेक विद्वानों की यह सम्मति थी कि यह ग्रंथ मंगलाप्रसाद पारितोषिक के योग्य है। 'पल्लव' के हमने अभी तक दर्शन नहीं किये। रही 'वीर सतसई' जिसकी सर्वोत्कृष्टता पर कुछ लोग सन्देह करते हैं। परन्तु हमारा विश्वास यह है कि यह ग्रन्थ हिन्दी संसार के एक सर्वथा नई वस्तु है। वीररस के ग्रन्थों की हिन्दी में कमी है। उसी रस में इतना अच्छा ग्रंथ लिख कर सचमुच वियोगी हरि जी ने कमाल किया है। गताङ्क और इस अङ्क में वीर सतसई का विस्तृत परिचय वीर सन्देश में दिया जा चुका है। पाठक भी उससे इस पुस्तक की महत्ता देख सकते हैं। भले ही कोई यह समझे कि वीर सन्देश के

सम्पादक को और सफ़ाई अधिक रखनी ही चाहिये थी। परन्तु हम कहते हैं कि यह ग्रन्थ ही ऐसा है और इस ग्रंथ पर सम्मेलन ने यह पारितोषिक देकर कोई अनुचित काम नहीं किया है। कुछ भी हो यह महान पारितोषिक प्राप्त करने के उपलक्ष में हम श्री वियोगी हरि जी को हार्दिक बधाई देते हैं।

अनुकरणीय उदारता —

पाठक सुन कर आश्चर्य करेंगे। जिस मंगलाप्रसाद पारितोषिक का ऊपर वर्णन है, उसके प्राप्त करने वाले श्री वियोगी हरि जी की उदारता का परिचय पाकर हम गद्‌गद हो गये। एक लेखक के लिये यह कितनी उदारता की बात है, यह हमारे पाठक सहज ही समझ सकेंगे। श्री वियोगी हरि जी ने सम्मेलन से प्राप्त इस वृहत् पारितोषिक के बारह सौ रुपए उसी समय सम्मेलन ही को भेंट कर दिये। इस महान उदारता की — इस अपूर्व दान की — तुलना किससे की जाय! वास्तव में यह दान महादान है। अपूर्व दान है। अनुपम दान है। इसके लिए श्री वियोगी हरि जी की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। आपने हिन्दी संसार और सभ्य संसार के सम्मुख जो आदर्श रक्खा है वह वास्तव में श्लाघ्य है। बरबश आपकी इस उदारता को देख कर हृदय से साधु साधु और धन्य धन्य की आवाज़ निकलती है। परमात्मा ऐसे दाता को और भी सम्मान दे।

निर्वासित वीर—

मातृ भूमि की सम्मान रक्षा के लिये अपनी जान की परवाह न करने वाले, मातृ जाति का शील अक्षुण्ण रखने के लिये स्वयं जेल जाने वाले, एक नरपिशाच को दण्ड देने के लिये अपने आपको दण्डपात्र बनाने वाले वीर श्रेष्ठ, युवकवर श्री खड्गबहादुरसिंह को कौन भारतीय भूला होगा। जिस समय राजकुमारी मैया की रक्षा के लिये उक्त वीर ने अपने प्राणों को हथेली पर रख कर नारकीय हीरालाल को यमपुर पहुँचाया था और जिस समय उक्त वीर को आठ साल का कठिन कारावास मिला था, उस समय सारे हिन्दुस्तान में इस निर्णय के विरुद्ध आन्दोलन हुआ था। पर भारतियों के स्वभावानुसार वह आन्दोलन सोडावाटर के जोश की तरह शीघ्र ही ठण्डा हो गया। अब कोई उसकी चर्चा भी नहीं करता। जुलाई के चाद में इस ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया गया है। हम भी समझते हैं कि इस आन्दोलन को पुनः एक बार प्रारंभ करना चाहिये और जब तक उक्त वीर को जेल से मुक्त न कर दिया जाय तब तक आन्दोलन को बन्द न करना चाहिये। हम जानते हैं कि यदि नये ढंग से संगठित आन्दोलन हो तो सरकार को घुटने टेकने पड़ेंगे और उसे लाचार हो कर उक्त वीर को रिहा करना पड़ेगा। वास्तव

में भी सज्जनबहादुरसिंह जैसे युवक परतन्त्र भारतवर्ष में ही जेल भेजे जा सकते हैं। यदि यही काम किसी यूरोपीय देश में हुआ होता तो उसकी प्रशंसा के पुल बंध जाते और निस्सन्देह जेल भेजने के स्थान पर वहां की सरकार उसका सत्कार करती। यहां भी यदि ऐसा साहसी काम किसी गोरे चमड़े वाले ने किया होता तो उसे यह दण्ड कदापि न मिलता। हम इन पंक्तियों द्वारा सर्वसाधारण विशेष कर सार्वजनिक संस्थाओं के कर्णधारों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं और चाहते हैं कि एक तिथि निश्चित करके आन्दोलन को पुनः प्रारंभ किया जाय और एक बार फिर से भारत सरकार ही नहीं 'होम गवर्नमेण्ट' तक को इतना परेशान कर दिया जाय ताकि उन्हें एक वीर युवक के प्रति किये गये अन्याय का प्रतीकार करने को लाचार होना पड़े। हिन्दी पत्रों के सम्पादक महोदय इस ओर ध्यान देने की कृपा करें।

परदे की प्रथा—

अन्य कई हानिकारक कुरीतियों के समान ही परदे की प्रथा भी हमारे देश में एक महान हानिकारक प्रथा है। इससे जितनी हानि हुई है, उसका अनुमान नहीं किया जा सकता है। प्रसन्नता की बात है कि इस प्रथा के विरुद्ध संगठित आन्दोलन करने की आवश्यकता का अनुभव लोग करने लगे हैं और बिहार में यह आन्दोलन ज़ोरों से शुरू भी होगया है। इस आन्दोलन में सफलता भी मिल रही है और हमें विश्वास है कि यदि यही रफ़्तार रही तो शीघ्र ही इस प्रथा का मूलोच्छेदन बिहार से हो जायगा। वहां प्रान्त के अनेक गण्य मान्य प्रतिष्ठित सज्जनों ने एक विज्ञप्ति निकाल कर प्रार्थना की है कि ८ जुलाई रविवार को जगह जगह सभायें करके जनता को इस प्रथा की हानियां बताई जायं और उसी दिन से इस प्रथा को दूर करने का प्रयत्न किया जाय। हृदय तल से हम इस प्रयत्न की सफलता के इच्छुक हैं। साथ ही हम अपने प्रान्त के धनीधोरियों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित करते हैं और चाहते हैं कि इस प्रान्त में भी संगठित आन्दोलन करके इस प्रथा को मिटाने का सफल प्रयत्न किया जाय। देखें कौन माई का लाल इधर क़दम बढ़ाने का साहस करता है?

स्व० श्री रामलालजी वर्म्मन—

इधर कलकत्ते के प्रसिद्ध प्रकाशक श्री रामलालजी वर्म्मन का स्वर्गवास का समाचार पाकर सभी हिन्दी के हितैषी दुखी हुए हैं। वर्म्माजी ने प्रारम्भ में काशी में पुस्तकों की एक छोटी सी दुकान खोली थी। अपने ही उद्योग से आपने इतनी उन्नति की कि आज कलकत्ते में ही नहीं हिन्दुस्तान भर में आपका नाम विख्यात है। आपने समय के अनुकूल साहित्य प्रकाशित करने में वास्तव में बड़ी सफलता

प्राप्त की। पुस्तकों की छपाई सफाई और जिल्दबन्दी में भी आप आगे रहे। पुस्तकें ही नहीं आपने समाचार पत्रों के प्रकाशन में भी अपना कौशल दिखाया। आपके 'हिन्दूपञ्च' का थोड़े ही समय में सर्व साधारण में बहुत अधिक प्रचार हो गया है। और भी कई पत्र आपने निकाले थे। इनमें शायद 'हिन्दी दारोगा दफ़्तर' अब भी निकलता है। सचित्र पौराणिक उपाख्यान प्रकाशित करने का सब से पहला प्रयास आपने ही किया था और शायद इससे सबसे अधिक लाभ भी आपने ही उठाया। अब तो अनेकों प्रकाशकों ने वैसी पुस्तकें प्रकाशित करदी हैं। आपके वियोग से हिन्दी संसार की बडी क्षति हुई इसमें ज़राभी सन्देह नहीं है। अतएव आपके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करते हुए हम हिन्दी संसार के साथ भी सहानुभूति प्रकट करते हैं।

बारदोली सत्याग्रह—

बारदोली सत्याग्रह ज़ोरों से चल रहा है। इसके सम्बन्ध में नए नए समाचार नित्य प्रति समाचार पत्रों में आ रहे हैं। सत्याग्रह को दबाने में सरकार ने अपना कोई प्रयत्न बाकी नहीं छोडा है। भेद नीति से, दबाव से और निरंकुशता से फूट डालने का प्रयत्न कर सत्याग्रह को असफल करने में कोई कसर नहीं रक्खी गई है। परन्तु जहाँ के नेता वल्लभ भाई पटैल जैसे साहसी, धैर्यवान तथा शान्तिप्रिय व्यक्ति हों तथा जिनकी पीठ पर महात्मा गांधी जैसी महान व पवित्र आत्मा प्रोत्साहन देने वाली हो वहां इन चालाकियों और छल छिद्रों से कार्य्य नहीं निकल सकता। आज समस्त भारत की टकटकी बारदोली पर लगी हुई है। देश ने धन से सहायता करने में कोई कमी नहीं रक्खी है। अब तक १॥ लाख रुपया महात्मा जी के पास बारदोली फण्ड में आचुका है। माननीय श्री विट्ठल भाई पटैल (असेम्बली के प्रेसीडेन्ट) ने महात्माजी को बारदोली सत्याग्रह के लिये बधाई भेजते हुए एक हज़ार रुपया मासिक सहायता देने का वचन दिया है। श्रीयुत् एफ० जे० जिन वाला व मि० मुंशी ने बम्बई प्रान्तीय कौंसिल की मैम्बरी से सरकार की बरदोली तालुके निवासियों के साथ बरती गई अनुचित नीति के कारण आपने इस्तीफे दे दिये हैं। इसके अतिरिक्त अब तक ७४ पटैलों के इस्तीफे दिए जा चुके हैं। हाल में व्यापारी मण्डल के प्रतिनिधियों ने गवर्नर से बात चीत करके समझौता करने का प्रयत्न किया था और वल्लभ भाई पटैल को भी इसके लिये बुलाया था। कहते हैं कि गवर्नर इस बात पर राजी हैं कि पिछला लगान अदा कर दिया जाय और अब का लगान भी नई शरह के अनुसार दे दिया जाय। इसके पश्चात् जांच कमेटी बैठायी जायगी। श्रीयुत वल्लभ भाई पटैल ने कहा है कि सरकार को नया लगान उसकी लगाई हुई नई शरह के

अनुसार मांगना नितांत अनुचित है। इसी कारण समझौता न हो सका। जो हो इसमें सन्देह नहीं कि सत्याग्रह संग्राम के इतिहास में बारदोली अपना अमर नाम लिखायेगा। —रमेश।

कृषि कमीशन की रिपोर्ट —

आखिर पहाड़ खोदने पर चूहा ही निकला। इतने दिनों से जिस कृषि कमीशन की रिपोर्ट का हो-हल्ला मच रहा था, वह गत २८ जून को निकल आई। ७०० पृष्ठों की इस सर्व सम्मत रिपोर्ट ने कृषकों को वैज्ञानिक ढंग से खेती करने, नये खाद इस्तैमाल करने और पशु चौकसी करने आदि का हिदायतें की हैं। हम भी उनकी बातोंकी ताईद करते हैं। क्यों न करें? बेचारों ने इतने रुपये खोये चार सा से ऊपर मनुष्यों का गवाहिया ली, भिन्न २ प्रान्तों और शाहरों की सैर करने में भारतीय प्रजा के खजाने का लाखों रुपया उड़ाया—यह भी न लिखते तो क्या लिखते! पर उन्हे एक दृष्टि उन करोड़ों निर्धन भाइयाके जीवन पर भी डालनी चाहिये थी जो गावों में भूख की असह्य वेदना सह रहे हैं। जो वैज्ञानिक ढंग से खेती करना दूर साधारण रीति से कृषि के उपयोगी सामान भी नहीं खरीद सकते। जो जमींदार, साहूकार, पुलिस और शासन के शिकार बने हुए हैं। तब भी हरबार लाखों रुपए का लगान बढ़ा देने की सरकारी भूख बढ़ती ही जाती है। ऐसी दशा में अंग्रेजी में छपी यह बहुमूल्य कृषि कमीशन की रिपोर्ट भारतीय कृषकगण के लिये कुछ भी उपयोगी सिद्ध होगी, इसमें हमें सन्देह है।

कर्मवीर और इन्दौर -

इन्दौर दरबार ने सहयोगी 'कर्मवीर' का इन्दौर प्रवेश बन्द कर दिया है राज्यों में यह प्रथा भी हो गई है कि जब कोई समाचार पत्र किसी राज्य के विषय में या उसके किसी कर्मचारी के विषय में कुछ कड़ी आलोचना करता है तो उस बात की ओर ध्यान न कर—उस त्रुटि को दूर न कर—राज्याधिकारी उस पत्र का बहिष्कार कर देते हैं हमारी तुच्छ सम्मति में यह प्रथा बहुत ही हेय और निन्दनीय है। हमें अपने कार्यों की तीखी से तीखी आलोचना सुनने को तैयार रहना चाहिए और यदि उस आलोचना में ज़रा सा भी तथ्य हो तो उस कार्य को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए न कि आलोचक पर उल्टा प्रहार करना। पत्र बहिष्कार की प्रथा के हम प्रबल विरोधी हैं अतएव हम इन्दौर सरकार के 'कर्मवीर' पर किए गए प्रहार को बहुत ही अनुचित समझते हैं। और इन्दौर के प्रधान मन्त्री बापना साहब से प्रार्थना करते हैं कि वे ऐसे हानिकर अथच भौंड़े शस्त्र का प्रहार करना बन्द करें और अपनी कार्य प्रणाली ऐसी बनावें जिससे फिर ऐसा करने की नौबत न आवे।

करौली में हिन्दी—

यह जानकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है कि करौली राज्य में हिन्दी को राज्य भाषा के सुन्दर सिंहासन पर आसीन कर दिया गया। यह कार्य हो तो जाना चाहिए था बहुत पहले ही, पर अब भी महाराज ने यह आवश्यक और उपयुक्त कार्य करके अपने कर्त्तव्य का तो पालन कर ही दिया, साथ ही हिन्दी भाषियों की श्रद्धा भी प्राप्त कर ली। एतदर्थ हम आपको अनेक धन्यवाद देते हैं। अच्छा हो यदि महाराज अपने राज्य की बलिहिंसा को बन्द करके अपने यहां के दूसरे कलङ्क को भी मिटादें। भगवान आपको इसी प्रकार सुमति दे।

शिवाजी स्मारक—

हिन्दी हिन्दू और हिन्द के रक्षक, सच्चे वीर, महाराष्ट्र केशरी शिवाजी की प्रतिभा का मान अब अंग्रेज भी करने लगे—यह जान कर किसे हर्ष न होगा। कुछ दिन पहले जिसे पहाड़ी चूहा और लुटेरा कहा जाता था उसका अब उचित सम्मान होने लगा। पूना में हाल ही में शिवाजी महाराज के स्मारक का उद्घाटन हुआ है। बम्बई के गवर्नर ने इसका उद्घाटन किया है और १९२१ में प्रिंसआफ वेल्स ने इसकी नींव में शिलारोपण किया था। दोनों अवसर पर शिवाजी महाराज की गुणावली गाई गई। इस स्मारक में शिवाजी की एक प्रस्तर मूर्ति बनाई गई है और शीघ्र ही एक भवन और बनवाया जायगा। एक प्रकृत वीर का इस प्रकार आदर होते देखकर हमें वास्तव में बड़ा हर्ष होता है।

बहादुरी की बातें

हाकी खेल की एक भारतीय टीम अभी विदेशों में अपनी विजय पताका फहरा कर लौटी है। इस टीम ने अनेक देशों में भ्रमण किया और अनेकों मैच खेले। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हर देश में हर मैच में इस टीम की जीत हुई। गामा ने पहलवानी में यूरोप अमेरिका को मात दी थी। आज विदेशी खेल हाकी में भी इस भारतीय टीम ने यूरोप अमेरिका को नीचा दिखाया। इसके लिए यह टीम सारे देश की बधाई की पात्र है।

\+ + +

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

अन्तर राष्ट्रीय विशेषांक —

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ } श्रावण सं० १९८५, जुलाई-अगस्त १९२८ { अङ्क ७-८

इस अङ्क के सम्पादक

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

सम्पादक—महेन्द्र

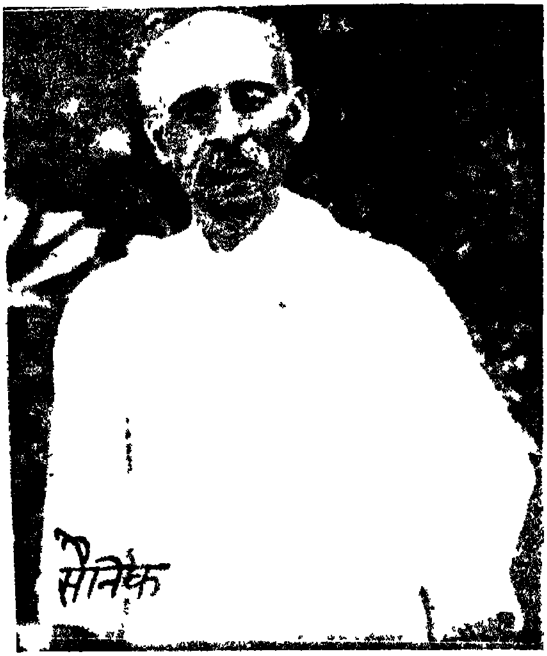
महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २)   इस अङ्क का मू० ॥)

विषय—सूची

चित्र सूची

वीर-सन्देश



वीरवर वल्लभ भाई पटेल

बारदोली ताल्लुके में सरकारी लगान के विरुद्ध अहिंसात्मक कृषक-क्रांति द्वारा सरकार को नीचा दिखाने वाले—आपके आन्दोलन ने संसार में हल-चल उत्पन्न करदी—लेनिन हिंसात्मक कृषक क्रांति के सञ्चालक थे—पटेल अहिंसात्मक क्रांति के !

महावीर प्रेस, आगरा

प्रकाशक का निवेदन

वीर-सन्देश के जीवन में यह पहला अवसर है जब हम पाठकों के सम्मुख एक ऐसे जटिल और गहन विषय पर एक विशेषाङ्क निकाल रहे हैं, जिस विषय की हमारी अधिकतर उच्चकोटि की मासिक पत्रिकाओं मे प्रायः चर्चा तक नहीं होती। इस विशेषाङ्क को इस रूप में निकालने का सारा श्रेय इसके सम्पादक श्री परिपूर्णानन्दजी वर्मा को है। आपने जिस निस्स्वार्थ भाव और परिश्रम पूर्वक इस अङ्क का सम्पादन किया है उसके लिए हम आपके ऋणी हैं और हिन्दी संसार को भी आपका आभार मानना चाहिये। आपने भरसक इस बात की चेष्टा की है कि आधुनिक महत्वपूर्ण सभी विषयों का परिचय पाठकों को मिल जाय। एक बार पुनः वर्मा जी को उनकी परम कृपा के लिए हम सादर धन्यवाद देते हैं। ज्ञान-मण्डल कार्यालय, काशी और सैनिक कार्यालय, आगरा के भी हम आभारी हैं जिनकी उदारता पूर्ण कृपा से हम इस अङ्क में इतने चित्र दे सके।

गत वर्ष वीर-सन्देश के दो विशेषाङ्क निकले थे—पर प्रस्तुत अङ्क के सामने उनकी कोई गणना नहीं। इसके पश्चात् दीपावली पर हम सन्देश का दूसरा विशेषाङ्क निकालेंगे। यह होगा "सैनिकाङ्क"। इसका सम्पादन 'सैनिक' के यशस्वी सम्पादक साहित्य रत्न श्री पं० श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल एम० ए० करेंगे। प्राच्य और पाश्चात्य के सभी स्थलों के प्रमुख सैनिकों, वीरों, सेनापतियों का इसमे परिचय होगा। जननी जन्मभूमि के लिए अपनी जान देने वाले, आजादी के लिए मर-मिटने वाले सैकड़ो महापुरुषों का इसमें पुण्य चरित्र मिलेगा। और सैनिक और सैनानायकों के कर्त्तव्य बताने वाले महत्वपूर्ण लेख होंगे। हमारा विश्वास है

कि हमारा "सैनिकाङ्क" भी हिन्दी संसार में एक नई चीज़ होगी, खास चीज़ होगी, अद्भुत चीज़ होगी। इसके बाद जो 'पद्याङ्क' निकलेगा और जिसका सम्पादन श्री पं० हरिशङ्करजी शर्मा कविरत्न (आर्य्यमित्र सम्पादक) करेंगे, उसका परिचय फिर कभी दिया जायगा।

इस समय हम पाठकों से एक निवेदन करते हैं। वीर-सन्देश जैसे पत्र के लिए जिसके प्रकाशक न तो स्वयं श्रीमान हैं, न जो श्रीमानों का आश्रय प्राप्त करना चाहते हैं—ऐसे विशेषाङ्क निकालना बड़ी जोखिम का काम है। हम समझते हैं कि ऐसे विशेषाङ्क निकालने पर भी जब वीर-सन्देश का मूल्य इतना सुलभ—केवल दो रुपया है—तब यह आशा करना कि हमारे ग्राहक कम से कम दो हजार हो जायँगे कोई दुराशा नहीं है। यदि हमारे पाठक एक एक दो दो ग्राहक भी और बढ़ा दें तो सहज ही यह संख्या पूरी हो सकती है। हम वीर-सन्देश से कोई आर्थिक लाभ नहीं उठाना चाहते साथ ही हम में इतनी सामर्थ्य भी नहीं है कि उसके लिए हजारों रुपया घाटे में दें। ऐसी दशा में हम यह आशा करते हैं कि हमारे प्रेमी पाठक हमें ग्राहक बढ़ाने में सहायता देकर साहित्य के इस पुनीत कार्य में हमारा हाथ बटायेंगे।

निवेदक—

प्रकाशक

ॐ

वीर-संदेश

(वीर-रस-प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश" ॥

भाग २ { आगरा—श्रावण सं० १९८५, जुलाई-अगस्त १९२८ } अङ्क ७-८

यूरोप की कुटिल राजनीति

[लेखक—"भारतीय"]

जिसके जीवन की गाथायें, दम्भ मान में भरी हुई।
कूट कूट कर भरी हुई—कटुता ममता विष सनी हुई ॥
हा उदारता सहज सरल, जिसकी वाणी पर धरी हुई।
पर उदारता के साधन में, सेना-सरिता बनी हुई ॥
बहुमत का भयसे हो आदर, होवे भाषा का नित द्वन्द।
लघुमत को नित पीसा करते, पूँजीपति होकर स्वच्छन्द ॥
ताप श्राप में विकल जगत हो, कलह नीति जिसकी भगवान।
भारत में मत आने देना, यूरोप की कटु-नीति महान ॥

विविध विषय

१—अपनी बात—

विशेषांक निकालना पत्र-प्रकाशक के लिये साहस का काम है—विशेष कर वीर-सन्देश जैसे घाटे में चलने वाले पत्र के लिये। फिर भी पत्र के प्रकाशक तथा सम्पादक श्री महेन्द्रजी ने घाटे में ही इसे चला कर समाज की, साहित्य की तथा देश की सेवा करने का पवित्र किन्तु आर्थिक दृष्टि से घातक निर्णय कर रक्खा है। पर इस निर्णय के साथ ही महेन्द्र जी ने आलस्यवश इस अन्तर्राष्ट्रीय विशेषांक का भार हमारे ऊपर छोड़ दिया। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ऐसे विशाल तथा गम्भीर विषय का हमें किञ्चित भी ज्ञान नहीं। ज्ञान-सम्पादन का साधन तथा समय भी नहीं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के वयोवृद्ध विद्वानों से मिलने का अवसर भी बहुत कम मिलता है, फिर भी दुस्साहस कहिये, अथवा जो कहिये हमने इस भार को उठा लिया।

पाठकों की आजकल जैसी रुचि है, उन्हें विशेषांकों के लिये खूब चित्र चाहिये, बड़े बड़े नाम वालों के लेख चाहिये, अच्छा आकार और चमक दमक चाहिये। पर हमारे पास यह सब कुछ नहीं है। हमारे पाठकों ने हमारी इतनी सहायता नहीं की है कि हम खूब रुपया लगा कर नये नये चित्र तथा ब्लॉक बनवाये। जो कुछ इधर उधर से अपनी थोड़ी पूंजी से हम संग्रह कर सके, हमने इसमें दिया है। अवश्य सामयिक तथा आकर्षक चित्र इस विशेषांक में न मिलेंगे। कुछ हम बनवा न सके। कुछ समयाभाव से बन न सके। केवल विशेषांक के लिए आकार बढ़ाना एक वेश्यासा क्षणिक शृङ्गार करना है। रह गया अच्छे

नाम वालों का लेख—इसके लिए सर्व प्रथम अच्छे नाम वाला सम्पादक चाहिये।

हमारी इच्छा थी कि वीर-सन्देश के इस विशेषाङ्क में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रधान प्रधान पुरुषों के सन्देश भी रहते। इसके लिए हमने उद्योग भी किया। परन्तु समयाभाव से हमारा यह प्रयत्न निष्फल रहा। यूरोप और अमेरिका के जिन विद्वानों से हमने इसके लिए प्रार्थना की, उनके उत्तर भी हम प्राप्त न कर सके। इसका हमे खेद अवश्य है, पर क्या करें लाचारी थी।

* * *

अस्तु, जैसा हो सका अपने भरसक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर लेख संग्रह किया गया। हमें एक नया प्रयास करना था। 'सरस्वती' तथा 'त्यागभूमि' को छोड़कर किसी भी पत्रिका को इस महत्वपूर्ण विषय के लिए स्थान नहीं। भारत को संकुचित राजनीतिक दायरे में रखना वे श्रेयस्कर समझते हैं। स्वराज्य के बाद हमें भी बाहर की दशा के साथ अपनी दशा मिलानी पड़ेगी—यह कम लोग समझते हैं। इस समय यदि भारत अपनी राष्ट्रीयता प्राप्त करना चाहता है, तो उसे विदेशों से भी सहारा लेना होगा। विदेशों में उसके प्रति जो गलत फहमी फैली हुई है, दूर करनी होगी। इससे भी बड़ी बात तो यह है कि यदि भारत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिका अध्ययन कर निशस्त्रीकरण तथा महासमर आदि के विषय में अपना दृढ़ तथा एकमत प्रकाशित कर दे तो साम्राज्यवादी राष्ट्रों को आपस में लड़ने का साहस न होगा !!!

* * *

चित्रों के विषय में भी परिचय आवश्यक है। प्रायः चित्र सामयिक है। रूस ने राज्यक्रान्ति के बाद कैसी कायापलट करदी—जहाँ शाही भवन था वहाँ अब किसानों का अस्पताल है—यह चित्र एक विशेष राजनीतिक परिस्थिति का परिचायक है। चीनी राज्यक्रान्ति के चित्र से यह पता चल जायगा कि स्वाधीनता का कितना बड़ा मूल्य है। राज-

सत्ता से लड़ते समय प्रजापक्ष वालों को क्या पुरस्कार मिलता था, वह चित्र बतावेगा। अमेरिका ने सन १७८७ की १७ वीं सितम्बर को अँग्रेजी सत्ता को नष्टकर जो स्वाधीनता की घोषणा की थी, उसका चित्र तथा उस स्वाधीनता की घोषणा के एकमात्र कारण, अमरीका को स्वतन्त्र कराने वाले जार्ज वाशिंगटन का चित्र देकर हमने केवल इस अङ्क को पवित्र किया है। एक विशेष लेख इस पर देने का विचार था, पर स्थानाभाव से न हो सका। काबुल के शाह अमानुल्लाह, ईरान के शाह फ़ैजुल जर्मनी के हिण्डनवर्ग ये अपने २ देश को गड्ढे से निकालने वाली त्रिमूर्त्तियां हैं। हादीजी सैल्या एक्रेम का चित्र केवल उन मुसलमानो के लिये है जो पर्दे की प्रथा को मुस्लिम धर्म का अङ्ग समझते हैं। हादीजी ने मुस्लिम महिला जाति के उद्धार के लिये जो किया है वह स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाना चाहिये। कौन कहता है कि अवलायें मूर्खा होती हैं। हमारे इस अङ्क में दो रूसी महिलाओं के चित्र देखिये, आज रूस मे इनका शासन है। ग्राम पञ्चायतों की ये मुखिया होती है। शहर की म्युनिस्पैलटी की कोषाध्यक्षा होती हैं, इनकी कांग्रेस है, रूसी पञ्चायती राज्य में इनका बड़ा हाथ है। जज ये हैं, जिलाधीश ये है—और शिक्षण संस्थाओं की अध्यक्षा भी यही हैं।

* * *

२—हूवर-स्मिथ द्वन्द—

संयुक्त राज्य अमरीका की राजनीतिक परिस्थिति इस समय बड़ी रोचक हो रही है। १९२९ की फरवरी में वर्त्तमान राष्ट्रपति कूलिज का कार्यकाल समाप्त हो जायगा। इस पद के लिये चार वर्षों के लिये अब दूसरा व्यक्ति चुना जायगा और इस चुनाव के लिये अभी से द्वन्द आरंभ हो गया है। इसमे भाग लेने वाले दो दल हैं। एक प्रजातन्त्रवादी दूसरे गणतन्त्रवादी। इनमें मूलतः कोई अन्तर नहीं। व्यवहारिक राजनीतिक जगत में इनमें दो अन्तर बतलाया जाता है—प्रजातन्त्रवादी दल साम्राज्यवाद तथा अमरीकन साम्राज्य विस्तार का विरोधी कहा जाता है और गणतन्त्रदल समर्थक।

इससे भी बढ़कर भेद मद्य-निषेध के प्रश्न पर है। प्रजातन्त्र दल मद्यनिषेध को क़ानूनन जारी रखना श्रेयस्कर नहीं समझता और पुसिफुट जॉनसन की आत्मा द्वारा फूंकी पार्टी—गणतन्त्र दल इसको राष्ट्रीय हित के लिये एक आवश्यक विधान मानता है। अस्तु, इन दलों में भिन्न २ व्यक्ति राष्ट्रपति पद के लिये उम्मीदवार होना चाहते थे। परन्तु अमरीका में यह निश्चित प्रणाली है कि निर्वाचन के पूर्व प्रत्येक दल अपना अलग २ सम्मेलन करता है और वे अपने दल के भिन्न उम्मीदवारों में से सर्वमान्य व्यक्ति को निर्वाचित कर लेते हैं। इस उप-चुनाव में सफलीभूत व्यक्ति की सफलता के लिये सारा दल जान लड़ा देता है। बड़ी चेष्टा के उपरांत महाशय अलफ्रेड स्मिथ, न्यू-यार्क के गवर्नर प्रजातंत्र (Democratic) दल की ओर से उम्मीदवार चुने गये है, इसी प्रकार सिनेटर हूवर गणतंत्र दल की ओर से। अब रीड (Reed) इत्यादि उम्मीदवार बैठ गये और वे जीजान से अपने दल के व्यक्ति के निर्वाचन में सहायता देंगे। तीसरा दल जिसने पहले तो इतना प्रचार किया था कि हमें भी ऐसा अनुमान हो गया था कि इस दल की पर्य्याप्त शक्ति है, पर समाचार पत्रों में कुछ भी चर्चा न होने से ऐसा अनुमान होता है कि शक्ति न होने से यह बैठ गया—सोशलिस्ट दल है। अस्तु, यहां पर हमें इस द्वन्द में किस पक्ष की सफलता की अधिक संभावना है, यह देखना है।

राष्ट्रपति पद के लिये उम्मीदवार चुनने के लिये गणतन्त्र दल का जो सम्मेलन हुआ था उसमें हूवर के लिये ८३७ तथा अन्य उम्मीदवारों के लिये २४९ मत मिले थे। इसीसे इस हूवर महाशय की बहुप्रियता का अन्दाज़ लगाया जा सकता है। इण्डियाना का 'जर्नल' पत्र लिखता है कि ये राष्ट्र के एकमात्र विश्वास भाजन हैं, केंसस नगर का 'स्टार' पत्र लिखता है कि हूवर इसी कारण चुने गये क्यों कि इनकी योग्यता विश्व-प्रसिद्ध है—प्रजातंत्र दल के 'टाइम्स', 'इगिल', 'सन' सभी हूवर के व्यक्तित्व की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा कर रहे हैं। फ़िलाडेल्फ़िया का 'बुलेटिन' कहता है कि राष्ट्रपति कूलिज के प्राकृतिक उत्तराधिकारी हूवर ही हो सकते हैं!

कई पत्रों का विचार है कि गणतन्त्र दल का हूवर को अपना उम्मीदवार बनाना कूलिज का प्रयत्न है—और यह मानना पड़ेगा कि मेक्सिको, निकारागुआ आदि के लिये चाहे वे कितने ही पीड़क राष्ट्रपति हों, अमरीका में सब से अधिक श्रद्धा इस समय कूलिज में है। कूलिज हूवर का समर्थन करेंगे, इसमें सन्देह ही नहीं। अभी आपने एक मित्रसे कहा है कि मैं राष्ट्रपति होते हुये भी हूवर के लिये चेष्टा करूँगा और मेरा दृढ़ निश्चय है कि हूवर चुने जायँगे।

अमरीका के कृषकों को कर्ज द्वारा सहायता देने के लिये एक फार्म रिलीफ बिल (Farm Relief Bill) कांग्रेस ने स्वीकार किया था। महाशय कूलिज ने विशेषाधिकार से इसे रद्द कर दिया। इससे कृषक बड़े नाराज़ हुये थे। उनका कहना था कि यह दल किसानों का शत्रु है। इस मैकनरीहॉगेन (Macneray Hanger) बिल का पूरा समर्थन कर हूवर ने किसानों को भी मिला लिया। दूसरी बात मद्य-निषेध का प्रश्न है। अस्तु हूवर के चुनाव की वास्तव में बहुत कुछ आशा है।

परन्तु यह न समझना चाहिये कि हूवर के लिये चांदी ही चांदी है। अलफ्रेड स्मिथ प्रजातन्त्र की ओर से प्रतिद्वन्द्वी है। ये साधारण उम्मीदवार नहीं। आपने अपने एक व्याख्यान में कहा है कि मैं विजयी हूँगा। प्रजातन्त्रीय पत्र तो स्मिथ की विजय को अवश्यम्भावी समझते ही हैं, 'ट्रिब्यून' ऐसे गणतन्त्रीय दलके पत्र भी स्मिथ के निर्वाचन को अवश्यम्भावी समझते हैं। यह अवश्य है कि स्मिथ का पक्ष तीन कारणों से दुर्बल है—कूलिज इतना बड़ा व्यक्ति उनका विरोधी है। मद्य-निषेध के वे विपक्ष में हैं। स्वयं न्यू-यार्क के उनके शासन में करोड़ों रुपये की गड़बड़ी का भण्डाफोड़ हुआ है। इण्डियाना, पश्चिमी अमरीका, सभी हूवर के समर्थक हैं। अस्तु, जो हो, एक बात विशेष रोचक है। निकारागुआ में अमरीका जो अत्याचार कर रहा है तथा तेल के लिये मेक्सिको में जो नीचता कर रहा है उसका विरोध न स्मिथ ने किया—न हूवर ने! अस्तु जो हो, नवम्बर में परिणाम ज्ञात हो जायगा।

३-मेक्सिको की अवस्था—

मेक्सिको के नव-निर्वाचित सैनिक राष्ट्रपति ओब्रेगौन की मृत्यु से मेक्सिकन राजनीतिक परिस्थिति विचलित हो रही है। सैनिक-शक्ति के बल पर वहां राष्ट्रपति निर्वाचन होता है। कैले राष्ट्रपति का स्थान श्री ओब्रेगौन ग्रहण करने वाले ही थे कि किसी कैथोलिक ने उनकी हत्या कर डाली! अब वहां का राष्ट्रपति कौन होगा! पद उसे ही मिल सकता है जिसे श्री कैले चाहें! उनका कोई साथी ही नहीं! अतः यह पूर्ण आशा है कि आगामी छः वर्षों के लिये वही राष्ट्रपति रहेंगे! पर इनका इस पद पर रहना प्रजा को स्वीकार नहीं, यह हमें ज्ञात है। आज के तीन वर्ष पहले मेक्सिकन पार्लामेण्ट ने स्पष्ट कहा था— "इतिहास जानता है कि मेक्सिको की इस समय कैसी दुरवस्था है।" उसके बाद ही हमने समाचारपत्रों मे मेक्सिको में कैथोलिक-समूह की क्रान्ति का समाचार पढ़ा! उसके नेता ने कहा था—'इतिहास इस वेइ-मान सरकार के अभ्युदय का कारण जानता है। वही इसका पतन भी देखेगा।' आज इस देश मे वही अवस्था-वहां कैथोलिक क्रान्ति पुनः होना चाहती है। विशेषज्ञों का कहना है कि इन सब अशान्ति का श्रेय अमरीका को है। मेक्सिको मे अमरीकन पूंजीपतियों के तेल के कारखानें को बचाने के लिये उसने निरंकुश राष्ट्रपति से समझौता कर लिया है। उसे भय है कि प्रजा का शासन होने पर वह अपनी सम्पत्ति पर अमरीकन प्रभुत्व न स्वीकार करे। अतः अमरीकन प्रभुता मेक्सिकन राष्ट्रीयता का नाश कर रही है।

४-स्थिरता की खोज—

इस समय यूरोपियन राज्यों मे एक विचित्र हलचलसी उत्पन्न हो गयी है। बालकन प्रायद्वीप के छोटे राज्यों मे स्थिति बड़ी खराब है। पारस्परिक विरोध तथा स्वार्थों का ऐसा संघर्ष होता है कि इन छोटे प्रजातन्त्रों में किसी मंत्रि-मण्डल का शासन स्थिर नहीं रह पाता। आये दिन चुनाव का संग्राम लड़ना पड़ता है। जहां चुनाव का संग्राम नित्यका काम नही रह गया है, वहाँ साम्यवाद, सोशलिज्म, रैडिकलिज्म

का भीषण संघर्ष हो रहा है। यूनान, रूमानिया ऐसे देशों में चुनाव का झगड़ा है। रूमानिया में यद्यपि गणतन्त्र शासन प्रणाली है, किन्तु वास्तव में निरंकुश प्रधान मन्त्री ब्रैटियानू के हाथ शासन की बागडोर है। जिस नाबालिग राजाकी ओर से ये शासन कर रहे हैं उसके चचा प्रिंस कैरोल शासनाधिकार प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। दूसरी ओर रूमानिया में कई जातियों का विकट सवाल है। ट्रान्सिलवानिया के किसान ब्रैटियानू की इटालियन क्रूरता से ऊब गये हैं। अपनी हाल की महासभा में भीषण क्रान्ति की चेष्टा भी उन्होंने की थी। पोलैण्ड मे प्रजातन्त्र है, बहुमत से शासन होता है, परन्तु प्रत्येक सदस्य इतना स्वच्छन्द है कि अन्त मे पोलैण्ड को नयी जान देने वाले पिलुडस्की को भी उसे सूअरों की जमात कह कर त्यागपत्र देना पड़ा। यूनान मे कई मंत्रिमण्डल स्थिर रह ही नहीं पाता। चुनाव के समय कितनी गड़बड़ होती है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि अभी हाल में कैण्डेरिस्ट दल के तीन प्रमुख व्यक्तियो को निर्वाचन समय गुण्डा से पकड़वा दिया गया और उनके छोड़े जाने के लिये लाखो हरजाना मांगा जा रहा है। सारांश यह है कि इस समय यूरोपीय राज्य स्थिर मंत्रिमण्डल तथा स्थिर शासन की खोज में है। महासमर के बाद जहां प्रजातन्त्र स्थापित हुआ था—वे भी इससे, आये दिन के झगड़े और चुनाव से ऊब गये हैं। स्थिर शासन की खोज मे स्पेन के प्राइमो डि रिवेरा, इटली के फासिज्म-प्राण मुसोलिनी अथवा लेनिन के रूस के शासन की ओर दृष्टि जाती है। इस सम्बन्ध में हम पाठको का ध्यान इस अङ्क मे प्रकाशित श्री सम्पूर्णानन्द जी के 'इटली के शासन विधान' लेख की ओर आकर्षित करते हैं। हम नहीं जानते अथवा कहना अनधिकार चेष्टा समझते हैं कि यूरोप में किस प्रकार का शासन स्थान पावेगा। साम्राज्यवाद अथवा वालशेविज्म किसी से भी उद्धार नहीं दीखता! किन्तु फिर भी, यह तो स्पष्ट दीखता है कि प्रजातन्त्र से जनता ऊबकर एकतंत्र को विशेष कल्याणकर समझ रही है। देखिये, इस विचलित अवस्था में यूरोप क्या नवीनता निकालता है।

वीर-सन्देश



इस अङ्क के सम्पादक
श्री परिपूर्णानन्द जी वर्मा

महावीर प्रेस, आगरा

त्रिगुण-विरोधकी औषधि

[लेखक—प्रो० श्री अर्नेस्ट पी० हॉरविज़]

[हमारे अनुरोध पर विद्वद्वर प्रो० अर्नेस्ट पी० हॉरविज़ (Prof. Earnest P. Horvitz) ने संसार के लिये सन्देश के रूप में यह सुन्दर लेख भेजा है। आप न्यू-यार्क नगर के हण्टर कालिज के प्रोफेसर हैं और इस वर्ष बम्बई की सरकार द्वारा बम्बई विश्वविद्यालय में इण्डो-इरानियन एंटिक्विटी (Indo Iranian Antiquity)पर रिसर्च लेकचरर बनाकर बुलाये गये हैं। वर्ष के अन्त में आप भारत से चले जायंगे। आपके अति उच्च विचार पाठक इस लेख से जान सकते हैं।] —सम्पादक

विवेकानन्द ने विश्ववाद की शिक्षा दी थी जो राष्ट्रीयता से उत्पन्न होती है। उन्होंने एक भू-मिश्रित शिक्षा तथा विश्व-धर्म का प्रचार किया था। राष्ट्रीय इतिहास और राष्ट्रीय साहित्य नहीं परन्तु संसार का इतिहास (मिश्र से चीन तक और आगे रूस तक) और संसार-साहित्य की प्रधान कृतियां इस विचलित समय में जब कि आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से हर प्रकार से एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध हो रहा है, युवकों को पढ़ाना चाहिये। ऐसे विश्व-व्यापक विषयों को स्कूल के छोटे कार्यक्रम में कैसे पूरी तरह पढ़ाया जा सकता है! विवेकानन्द का विचार था कि थकाने वाले तथा बोझ लादने वाले विस्तार को (जैसे सैनिक घटनायें तथा धूल की तरह सूखी साहित्यिक विशेषतायें) छोड़ कर यह सरलता पूर्वक हो सकता है। वर्त्तमान सामाजिक तथा कला जन्य प्रश्नों को उनके साथ जोड़ते हुये केवल मूल सिद्धांत पढ़ने से ही यह हो सकता है। शिवाजी, राष्ट्रपति लिंकन, प्लेटो और कालिदास, हाफिज़ और गोथे, लेनिन और गांधी ऐसी महान आत्माओं की जीवन-कथा यदि स्वयं शिक्षक को उत्साहित तथा प्रभावित करती है तो शिष्यों को भी, युवकों को भी सदैव प्रभावित करेगी। विश्व-शिक्षा देने के लिये हमें विश्व-अध्यापक तय्यार करने होंगे। रामकृष्ण मिशन, यदि वह विवेकानन्द

का अनुकरण करे, तो उसका यही अधिकार और कर्त्तव्य है। अन्यथा वे केवल गीता-शालायें तथा दानी संस्थायें मात्र ही रह जांयगे। विवेकानन्द के सन्देश का पूर्णतया पालन न तो राष्ट्रीय भारत मे न पूंजीपति अमेरिका में परन्तु मौन और पीड़ित सोवियेट (पञ्चायती) रूस में हो रहा है जो राजनीतिक आत्मनिर्णय के साथ ही विश्व-व्यापी सांस्कृत्य का प्रधान प्रचारक है। यह बात विशेष ध्यान रखने की है कि एक बार परमहंस ने भविष्यवाणी की थी कि वे भारत के उत्तर पश्चिम मे पुनः जन्म लेंगे। क्या उनका तात्पर्य रूस से था ? यदि विवेकानन्द अभी जीवित होते तो विश्ववाद लन्दन या न्यू-यार्क में न सिखला कर आज 'मास्को' मे सिखलाते। गांधीजी ने भी यूरोप जाने का अपना विचार कम से कम अभी के लिये छोड़ दिया है। उनके कुछ अन्तरङ्ग मित्रों का क़यास है कि वे शायद रूस जांय। परन्तु राजनीतिक अखाड़े में भावी प्रश्न (युद्ध) उपनिवेशवाद तथा आत्म-निर्णय के, विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय और उदार (लिबरल) शिक्षा के, आत्मिक-भूमि मे विशेष धार्मिक साम्प्रदायिकता तथा विश्वधर्म के बीच युद्ध होगा। पुराने रिवाज की वस्तुओं के नवीन क्रम के लिये अब स्थान देना होगा! हमें आशा करना चाहिये कि सांसारिक-समझौता इतना पर्य्याप्त हो जायगा कि त्रिगुण विरोध (आर्थिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक) को मिटा दे।

प्रेमिका

कहाँ जा रही हो हे सरिते, करती हो क्यों कलरव गान।
बड़ा मधुर गायन गा गा कर करती विकल प्रकृति सुनसान॥
क्या जानो भावुकता जीवन-कविता का कर डाला नास।
विदित नहीं क्या बड़े वेग मे मै जाती निज प्रीतम पास॥
अन्तर्हित हो उनके अङ्गों मे, मै भव तर जाऊँगी।
तन्मय होऊँगी प्रीतम में, इस आशा में गाऊँगी॥
मूक प्रकृति को गान सुनाकर, प्रेम मन्त्र बतलाती हूं।
विषय-शून्य इन अचल निरस पर, प्रेम वारि सरसाती हूँ!!!

'अज्ञात'

राष्ट्रकी जीवनी-शक्ति

[लेखक—साधु टी॰ एल॰ वस्वानी]

[साधु टी॰ एल॰ वस्वानी का नाम भारत के सभी पढ़े लिखे लोग जानते हैं। आप एक आदर्श-वादी, गीता-उपासक, कृष्ण को गुरु मानने वाले महात्मा हैं। अंग्रेजी में राष्ट्र-निर्माण की आपकी अनेक महत्वपूर्ण रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस समय आप घोर परिश्रम कर भारतीय नवयुवकों में जागृति की चेष्टा कर रहे हैं। वीर-सन्देश के लिये आपने यह सुन्दर लेख लिखा है।—सम्पादक]

सादगी ही जीवनी-शक्ति है। वर्तमान भारत एक नक़ल के वायु-मण्डल में घूमता है और युवकों पर भोग की एक संस्कृति अपना प्रभाव डाल रही है जिसे हम व्यर्थ ही 'आत्म-ज्ञान' कहते हैं। सादगी, पवित्रता और जीवनी शक्ति एक साथ चलती है। ब्रह्मचर्य के प्राचीन सिद्धांत में तीनों ही बतलायी गयी हैं। शक्ति के मंत्र में यह एक अनिवार्य पदार्थ है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ साधुता (योगीपन) नहीं है। अंग्रेजी में जिसे 'सेलिबसी' (Celibacy) कहते हैं उसमें भी इस शब्द का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। गृहस्थाश्रम में जीवन-यापी स्त्री-पुरुष भी अवश्य ब्रह्मचर्य का पालन करें। वास्तव में, मूलतः ब्रह्मचर्य का अर्थ जनक या उत्पादक शक्ति के लिये प्रतिष्ठा है। आत्म-नियमन, आत्म-प्रतिष्ठा और अहिंसा ब्रह्मचर्य के मूल पदार्थ हैं। यह कभी न भूलो कि जो व्यक्ति अपनी उत्पादक शक्ति का दुरुपयोग करता है हिंसा का दोषी होता है। वह अपने तथा अपने समाज के प्रति हिंसा करता है।

ब्रह्मचर्य को सादे जीवन का मंत्र मानने पर, मेरा विचार है कि यह व्यक्तियों के लिये ही नहीं पर राष्ट्रों की उन्नति के लिये भी आवश्यक हो जाता है। इतिहास विकाशका एक चस्मा है और उस प्रवाह में केन्द्रीय लहर ब्रह्मचर्य का विधान है। पवित्र ऋषियों ने इस विधान को ढूँढ

निकाला था, उसी प्रकार जिस प्रकार उन्होंने बहुत पूर्व ही दूसरे विधान निकाले थे और इस प्रकार का एक मनुष्य-विज्ञान बना लिया था जो विकाश के भावी नवीन युग के लिये विशेष सन्देश रखता है।

जब मैं प्राचीन संसार के भिन्न भिन्न बड़े समाजों की ओर दृष्टि करता हूँ—मिश्र, बैबिलोन, फारस, यूनान, कार्थेज, रोम—मुझे यह पता चलता है कि उनका अभ्युत्थान आत्म-नियमन तथा सादगी की शक्ति से हुआ था। उनका पतन भोग-विलास तथा आराम तलबी से हुआ था। इतिहास की विशाल निर्माणक शक्ति आत्म-श्रद्धा है और विशाल विच्छेदक आत्म-विलास उत्पन्न करने वाले धन तथा सम्पत्ति-जिनसे राष्ट्रों का नाश होता है। रुपया स्वयं कोई बुरी वस्तु नहीं है और सम्पत्ति के प्रति किसी राष्ट्र को घृणा नहीं होनी चाहिये। दरिद्रता का बड़ा क्षीण-करण प्रभाव होता है। अपने भूत-जीवन के एक युग में भारत धनी और शक्ति सम्पन्न दोनों था परन्तु यह उसके आश्चर्यजनक सांस्कृतिक उन्नति का परिणाम था कि उसने विलास से मुंह मोड़ कर अपने धन का उपयोग कला, शिक्षा, धर्म और मनुष्य की सेवा में लगा दिया। यह भी नहीं भूलना चाहिये कि उसका धन इङ्गलैण्ड की तरह दूसरों के लूट का धन नहीं था। भारत कभी महासमर नहीं करता था। सैनिक सम्मान नहीं पर संस्कृतिक सम्मान की ही उसको खोज रहती थी। भारत ने अपने को साम्राज्यवाद या पूंजीवाद से अलग रक्खा। विलास-प्रिय तथा साम्राज्य-प्रिय होने के कारण मुगल शिवाजी तथा उसके मरहठा साथियों की सादगी की शक्ति के सामने आसानी से गिर गये। कार्थेज के प्रतिनिधि-जब रोम आये तो उन्होंने वहाँ के सिनेटरों को बड़ा सादा पाया तथा केवल चाँदी के पात्रों में चाँदी सा ही (सोने सा नहीं) भोजन करने वाला कहकर उनके प्रति घृणा प्रगट की। विलास-प्रिय कार्थेज को सम्पूर्ण रोमनों की बड़ी शक्ति के सामने शीघ्र ही नष्ट हो जाना पड़ा। रोम स्वयं जब अपने सादे जीवन के सिद्धान्त से हट कर विलास-प्रियता की ओर मुड़ा उसे गौथ (Goths) द्वारा नष्ट होना पड़ा। जिस समय रोम महान था, उस

के सब से बड़े नेताओं में से एक सिवियो अफ्रिकानस (Scivio Africanus) के पास जो सम्पत्ति थी वह दो हज़ार रुपये से अधिक की न थी। सौ वर्ष बाद, जब उसके पतन का दिन आया, जनता के ट्रिब्यून-सर्वोच्च अधिकारी के पास छः लाख रुपये की सम्पत्ति थी। इसका नाम मार्कस ड्रूसस (Marcus Druses) था। रोम ज्यों ज्यों धनी होता गया उसके नगर दुराचारी होते गये। बहुत बड़े धनाढ्य तथा शासक समूह विलास-प्रिय हो गये। मध्य श्रेणी तथा कृषक दरिद्र हो गये। पॉम्पियाई (Pompeii) की कम से कम बारह लाख रुपये से अधिक की सम्पत्ति थी। सौ वर्ष बाद बादशाह क्लॉडियस (Claudius) का पिट्ठू नार्किसस (Narcisus) के पास सात करोड़ रुपये की सम्पत्ति थी। विशाल सम्पत्ति तथा दारिद्र्य साथ साथ चलता है। कुछ के हाथों में धन के एकत्रीकरण का अर्थ बहुतों की दरिद्रता होती है। पूंजीपतियों का समूह विलास में नैतिकता खो बैठता है। मध्य श्रेणी के तथा कृषक दरिद्रता में नष्ट हो जाते हैं—और वही तो राष्ट्र की असली शक्ति होते हैं।

नवीन भारत के बहुत से युवकों की शक्ति को नकलबाज़ी, विलास तथा विदेशी फ़ैशन चूसे जा रहा है। मैं ब्रह्मचर्य, आत्म-नियमन, आत्म-श्रद्धा, आत्म-ज्ञान, पवित्रता तथा साधुता का उचित मान, उत्पादक शक्ति के लिये सम्मान सादे जीवन, शुद्ध विचार तथा शक्ति के एक नवीन मन्त्र के लिये आपसे प्रार्थना और विनय करता हूं। इसी में राष्ट्र की आशा है। ब्रह्मचर्य ही शक्ति है जो निर्माण करती है और जीवन को बनाती है। अन्त मे—

वस्त्रपूतं न्यसेत्पादं, सत्यपूतं वदेद्वाचम्, मनः पूतं आचरेत्।

आत्म-बल सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

इटली का नया निर्वाचन विधान

[लेखक—श्रद्धेय सम्पूर्णानन्दजी बी० एस-सी०, एल० टी०, एम० एल० सी०]

[श्रद्धेय सम्पूर्णानन्दजी का नाम आज सारा भारत जानता है। असहयोग आन्दोलन के समय बीकानेर स्टेट की बड़ी अच्छी नौकरी छोड़ कर आपने देश-हित के हवन में अपनी आहुति दी थी। 'मर्यादा' का सम्पादन करते समय आपको जेल जाना पड़ा था और उसके बादसे आप काशी विद्यापीठ में दर्शन शास्त्र के प्रधान अध्यापक, संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान मन्त्री, तथा युक्त प्रान्तीय कौंसिल के मेम्बर हैं। अधिक कार्य के कारण गत डेढ़ वर्ष से आप बीमार रहते हैं।

—सम्पादक]

इधर थोड़े ही दिन हुए यूरोप में एक ऐसी बात हुई है जिसकी ओर यहाँ हमारे देश में कम ही लोगों का ध्यान गया है। मैंने जहाँ तक देखा समाचार पत्रों में से ऐसे बहुत ही थोड़े हैं जिन्होंने इस सम्बन्ध में अग्रलेख लिखने की आवश्यकता समझी, मेरा संकेत इटली के नये निर्वाचन विधान की ओर है।

वस्तुतः यह नया विधान बड़े महत्त्व की वस्तु है। यह उन लक्षणों में से है जो देखने वालों को, या यों कहिये कि समझदार देखने वालों को यह बतलाता है कि 'डेमाक्रेसी' का अन्त अब बहुत दूर नहीं है। मैं 'डेमाक्रेसी' का ठीक हिन्दी पर्य्याय नहीं जानता पर यह नाम उस प्रकार की शासन पद्धति का है जिसमें जनता के सीधे चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में शासन का नियन्त्रण होता है। इङ्गलैण्ड, फ्रांस, अमेरिका, जापान, इन सब में ही डेमाक्रेसी है। यद्यपि इङ्गलैण्ड और जापान में नरेश हैं और शेष दो में नहीं। डेमाक्रेसी को स्यात् लोकायत्त शासन कहना ठीक हो।

बहरहाल, नाम कुछ हो आज से कुछ दिनों पहिले इसकी धूम थी। प्रत्येक देश इसके लिये लालायित था। समस्त आर्थिक और राज-

नीतिक कष्टों की यही एक मात्र रामवाण औषधि थी। इस व्यामोह का—मेरे ऐसे लोग जो डिमाक्रेसी को नापसन्द करते हैं इस अवस्था को व्यामोह ही कहेंगे, मुख्य कारण यह था कि इस समय वह देश जिनमें डेमाक्रेसी थी औरों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न और बलवान् थे। अतः उनका अनुकरण सबको ही श्रेयस्कर प्रतीत होने लगा। अब भी मोह-निद्रा सर्वथा टूटी नहीं है पर हां, यह रोग धीरे धीरे पाश्चात्य देशों को छोड़ कर पूर्वीय देशों में फैल गया है। आज हम भारतवासी भी अपने देश मे लोकायत्त शासन ही स्थापित करना चाहते हैं।

परन्तु अनुभव ने यूरोप वालों को धीरे धीरे यह सुझाना आरम्भ कर दिया है कि यह पद्धति निर्दोष होना तो दूर रहा अनेक दोषों की खानि है। एक समय नरेशों के हाथ मे अनियन्त्रित अधिकार था। उसके उत्तर मे इस पद्धति की सृष्टि हुई पर वस्तुतः यह मूल रोग से भी भयावह वस्तु है। देश कई निर्वाचन क्षेत्रो मे बाँट दिया जाता है और एक क्षेत्र मे एक प्रतिनिधि चुना जाता है। इन प्रतिनिधियो के हाथ मे शासन का सारा सूत्र होता है। निर्वाचन का ढङ्ग ऐसा है कि वही व्यक्ति चुना जा सकता है जो अच्छा वक्ता है या जिसके पक्ष मे अच्छे सुवक्ता है और जो स्वयं धनवान और प्रभावशाली है या वह किसी धनी और प्रभावशाली दल का सदस्य है। अधिकांश उम्मीदवार उन विषयो से अनभिज्ञ होते हैं जिनका ज्ञान शासकों और उनके निरीक्षकों को होना चाहिये। साधारण वोटर तो इन बातो को नहीं समझ सकता। किसी आकस्मिक बात का तूफ़ान खड़ा करके उससे वोट मांगा जाता है। अभी हमारी कौंसिलों के पिछले चुनाव मे हिन्दू-हित का जोर था, यद्यपि कौंसिलों में प्रायः सम्प्रदाय विशेष के हिताहित का प्रश्न कम ही उठता है वरन् राजनीति, अर्थशास्त्र, कृषि-विज्ञान, शिक्षा-विज्ञान, क़ानून की जानकारी की ही अधिक आवश्यकता होती है। फिर लोकायत्त शासन बिना दल बन्दी के चल नहीं सकता और दलबन्दी मे फँस कर शुद्ध देशहित का सम्पादन नहीं हो सकता।

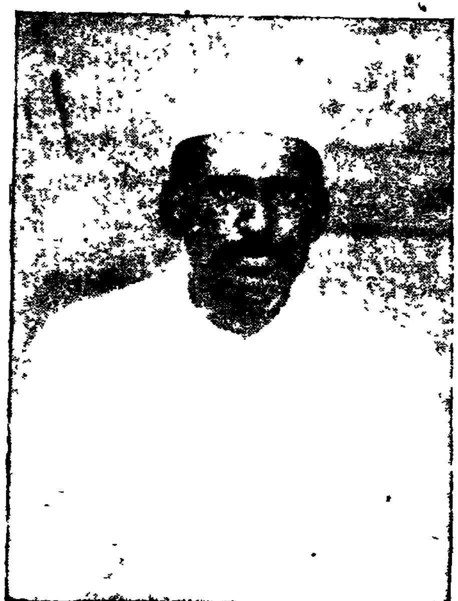
इन्हीं सब बातो को देख कर धीरे धीरे यूरोप का लोकमत डेमाक्रेसी से खिन्न हो उठा है। सामान्य मनुष्य शासन करना नहीं चाहता, वह यह चाहता है कि उसको भर पेट भोजन मिले, उसके बच्चो की शिक्षा की सुव्यवस्था हो, उसे मनोरञ्जन के लिये पर्य्याप्त अवकाश मिले और उसके शासक या कोई अन्य व्यक्ति उसे व्यर्थ तङ्ग न करें। डेमाक्रेसी को इस काम मे विशेष सफलता नहीं हुई है। वह शान्ति स्थापित न कर सकी। मजदूर और पूंजीपतियो तथा विभिन्न राजनीतिक दलो का संग्राम बेचारे नागरिकों को चैन नहीं लेने देता। इससे ऊब कर लोग किसी दूसरे मार्ग का अनुशीलन कर रहे है। अब तक दो मार्ग निकले हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि यह निर्दोष है। इनमे अवश्य दोष होंगे परन्तु अनुभव से ही दोषो का पता चलता है। एक बात तो प्रत्यक्ष है। जिन देशो मे यह दोनो प्रयोग हो रहे है उनमे अब हड़तालों का नाम भी नहीं सुना जाता, भिन्न भिन्न राजनीतिक दलो के झगड़े नहीं देख पड़ते, आये दिन के चुनावो का करोड़ो रुपये का व्यय बन्द हो गया। और दोनों देश समृद्ध और बलवान है। इन प्रयोगो को अन्य देश गौर से देख रहे है और यदि यह सफल हुए तो इनका अनुकरण अन्यत्र अवश्य होगा।

पहिला प्रयोग वह है जो रूस मे हो रहा है, जिसे बोल्शेविज्म कहते है। इसके सम्बन्ध में हमारे देश मे काफ़ी चर्चा हो चुकी है अतः यहाँ कुछ अधिक कहना अनावश्यक है। इस पद्धति मे बहुत लोगो को यह आपत्ति है कि इसने निजी सम्पत्ति की प्रथा ही गायब कर दी है।

दूसरे प्रयोग मे यह दोष नहीं है। इसका नाम फ़ासिज्म है। इस की परख इटली मे हो रही है। फ़ासिज्म के आचार्य्य मुसोलिनीने नया निर्वाचन विधान बना कर अपनी पद्धति पर कलश चढ़ा दिया है।

इस विधान द्वारा स्वीकृत निर्वाचन-विधि थोड़े मे इस प्रकार है। बहुत सी संस्थाओं को, जिनमे मजदूर, कारखानेदार, शिक्षालय आदि सभी वर्गों की मुख्य समितियां शामिल हैं, नियत संख्याओं मे इटली की

वीर संदेश





महावीर प्रेस, आगरा

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दो धुरन्धर भारतीय विद्वान

श्री सम्पूर्णानन्द जी बी.एस सी., एल.टी., एम.एल सी.
प्रधान मंत्री, संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी

श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू, प्रधान मंत्री
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

वीर-सन्देश



स्वाधीनता की घोषणा

महावीर प्रेस, आगरा

पार्लिमेण्ट के लिये उम्मेदवार खड़े करने का अधिकार दिया गया है। पार्लिमेण्ट के सदस्यो की पूरी संख्या ४०० है पर उम्मीदवारों की संख्या ४०० से कहीं अधिक होगी। कुल उम्मीदवारों की सूची फ़ासिस्ट दल की अन्तरङ्ग समिति के सामने पेश होगी। वह उसमें से ४०० नाम चुन लेगी। उसे अधिकार होगा कि ऐसे लोगों को भी चुने जिनका नाम कहीं मे न आया हो। अन्तरङ्ग समिति ऐसे ४०० व्यक्तियों को चुनेगी जो उसकी सम्मति में अनुभवी और कार्य्यकुशल होंगे और भिन्न भिन्न आवश्यक विषयों के ज्ञाता होंगे और साथ ही जिनके राजनीतिक विचार फ़ासिज्म के अनुकूल होंगे। अब यह ४०० की सूची मतदाताओं (वोटरो) के सामने पेश होगी। इन व्यक्तियों की ओर से किसी प्रकार की कोशिश पैरवी नहीं हो सकती। सारा देश एक निर्वाचन क्षेत्र होगा अर्थात् प्रत्येक मतदाता को केवल अपने नगर या ज़िले के लिये एक नाम चुनने के स्थान मे सारे देश के लिये ४०० नाम चुनना होगा। उससे यही प्रश्न होगा कि तुमको यह ४०० नामो की सूची स्वीकार है या नहीं ? किसी मतदाता को यह अधिकार नहीं है कि वह यह कहे कि मै तटस्थ रहूंगा। सब वोटो के गिनने पर 'हां' पक्ष में यदि एक भी वोट अधिक आ जायगा तो यह मान लिया जायगा कि देश इस सूची के पक्ष मे है और फिर यह ४०० व्यक्ति पार्लिमेण्ट के सदस्य हो जायँगे।

इस संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट है कि इस विधान ने इटली में 'डेमाक्रेसी' की तो जड़ काट दी है। नयी इटालियन पार्लिमेण्ट में सब सदस्य एक ही राजनीतिक विचार के होंगे। उनका आपस मे मतभेद हो सकता है पर केवल ब्योरे की बातों में, सिद्धान्तो पर नहीं। इन सदस्यों में अन्य प्रकारों से चुने गये सदस्यो की अपेक्षा भिन्न भिन्न विषयो के विशेषज्ञ अधिक होंगे जो संभवतः अपने अपने विषय में ही सरकार को परामर्श देने की इच्छा रक्खेंगे। अतः पार्लिमेण्ट में लम्बे और अनर्गल तथा बहुसंख्यक भाषण भी न होंगे।

पर ऐसा हो सकता है कि एक दिन देश फासिस्ट दल के मूल सिद्धान्तो से ही ऊब जाय। उस समय क्या होगा? यही अवस्था रूस मे हो सकती है। जिन देशो मे साधारण लोकतंत्रात्मक शासन है वहां तो नित्य ही नये मंत्रिमण्डल की योजना होती रहती है क्यो कि एक पार्लिमेण्ट मे एक राजनीतिक दल का बहुमत रहता है, दूसरे मे दूसरे का। बाल्शेविक विधान मे इस बात के लिय कोई विशेष प्रबन्ध नही है कि यदि देश बोल्शेवी शासन न चाहे तब क्या किया जाय। वहा सिवाय क्रान्ति और विद्रोह के कोई दूसरा मार्ग नही प्रतीत होता। फासिस्ट विधान ने इसकी कुछ रियायत की है। यदि फासिस्ट अन्तरङ्ग समिति द्वारा चुनी हुई सूची को बहुमत न मिला तो फिर मतदाताओं के सामने एक से अधिक सूचिया रक्खी जायगी, जिसको वह चुनेगे उसी में के लोग पार्लिमेण्ट के सदस्य होगे। परन्तु इन अनेक सूचियो के तय्यार करने की विधि ब्योरे के साथ नही बतायी गयी है। सम्भवतः इटली मे भी क्रान्ति और विद्रोह के बिना काम न चलेगा। यही इन पद्धतियो का स्यात् दोष है पर इनके पक्ष मे एक बात कही जा सकती है। आज कल रुपये और वाचालता के बल से देश की शासनधारा का रुख जो नित्य प्रति बदल दिया जाता है वह बन्द हो जायगा। जब शासक दल की नीति देश को नितान्त अप्रिय हो जायगी और कोई ऐसा दल उत्पन्न होगा जो अपने सिद्धान्तो के लिये क्रान्ति और तत्सहवर्ती कष्टो के लिये तय्यार होगा तभी शासन मे परिवर्तन होगा।

अस्तु, इस प्रकार की पद्धति मे दोष चाहे जो हो, एक प्रमुख देश में इसका स्थापित होना और सफलता पूर्वक काम करना यह सिद्ध करता है कि कम से कम वहा की जनता इससे सन्तुष्ट है। यह वही इटली है जिसने स्वाधीन होने पर अपने यहां ब्रिटिश ढङ्ग की पद्धति स्थापित की थी क्यो कि उस समय इङ्गलैण्ड लोकतंत्र का आचार्य्य था। आज उसी इटली ने लोकतंत्रात्मक पद्धति को ठुकरा दिया है। इतना ही नही स्वयं इङ्गलैण्ड मे एक छोटा सा फासिस्ट दल बन गया है। फ्रांस

और जर्मनी में तो सम्भवतः बहुत जल्द इस प्रकार की कोई योजना होगी क्योंकि उन देशों में पार्लिमेण्ट में चार पाँच दल होते हैं और किसी एक का भी इतना बहुमत नहीं होता कि वह शासन का काम अकेले चला सके, अतः नित्य ही कठिनाई पड़ती है।

इसीलिये यह घटना अन्ताराष्ट्रीय महत्त्व रखती है। इस समय हम अपनी शासन योजना के सम्बन्ध में सोच रहे हैं। सम्भवतः ब्रिटिश या अमेरिकन ढँग की कोई लोकतंत्रात्मक पद्धति बन जायगी। पर हमारे यहाँ भी वही प्रश्न उत्पन्न होंगे जो पाश्चात्य देशों के सामने आज हैं। इसका कारण यह है कि इन प्रश्नों को मानव-प्रकृति उत्पन्न करती है। मेरा निजी विश्वास यह है कि लोकतंत्रात्मक शासन हितकर नहीं होता। कम से कम यह तो प्रत्यक्ष है कि नरेशतंत्रात्मक पद्धति पृथ्वी पर सहस्रों वर्ष तक रही और अब भी है पर लोकतंत्र से लोग १००, १५० वर्ष में ही ऊब गये।

डॉये प्लॉन (DAWES PLAN)

[लेखक—मि० ई० फ्रेनर]

लेखक महाशय यूरोपीय राजनीति के एक विशेषज्ञ हैं। आपकी आज्ञा है कि हम आपका परिचय न दें। अतः यूरोपीय 'सागर' की तरह आपका परिचय देना असम्भव है।

—सम्पादक

सन १९१४ के पहले महासमर की तबाही के कारण पिछे, सभी विजेता यूरोपीय राष्ट्र इस फिराक में थे कि जिस प्रकार हो लूट खसोट कर जर्मनी की सारी आर्थिक क्षमता चूस कर अपने यहाँ की आर्थिक समस्या का निबटारा किया जाय। सन १९२० से २४ तक यही धींगा-धींगी, लूट खसोट चली तथा फ्रान्स ने रुर की घाटी आदि सभी धनी जर्मन प्रदेश पर अधिकार कर नेपोलियनिक फ्रान्स की यूरोपीय शक्ति द्वारा पराजय के बाद जो दशा थी उससे भी गयी बीती दशा उसने जर्मनी की करना चाहा। परन्तु जर्मनी बिचारे की इस तबाही और बरबादी में कोई उसकी सुनने वाला न था। वह तो आततायी—नर—मांस-लोलुप

कुक्कुर के नाम से प्रसिद्ध था ! ऐसी अवस्था में भाग्य ने तथा यूरोप के पुराने विप, पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा ने जर्मनी का साथ दिया।

जब तक महासमर था तब तक तो इङ्गलैण्ड अपनी जी तोड़ चेष्टा से जर्मनी का सत्यानाश चाहता था। पर जब जर्मनी को नपुंसक बना दिया गया और फ्रान्स एक प्रकार से जर्मनी और मध्य यूरोप का स्वामी बन बैठा उस समय इङ्गलैण्ड की नीति पलट गयी। बृटेन यह कभी न चाहता था कि फ्रान्स यूरोप की सर्व-श्रेष्ठ शक्ति बन जाय। और इसी लिये उसने जर्मनी के प्रति मित्रता दिखलाकर अपने दो उद्देश साधने चाहे। एक तो पीड़ित राष्ट्र पर अपनी नैतिकता की छाप दिखलाना तथा दूसरे फ्रान्स को दबा कर उसका प्रभाव घटाना। जर्मनी पर से फ्रान्स का पञ्जा हटाने का केवल एक उपाय हो सकता था। वह यह कि लड़ाई के बाद यूरोपीय शक्ति उससे जो हर्जाना वसूल करना चाहती थीं, उनमें सब से बड़ी रक़म फ्रान्स माँगता था। अतः कोई ऐसा उपाय निकालना ज़रूरी था जिसमें फ्रान्स के हर्जाना वसूल करने का ढङ्ग नियमित हो—और उसी समय—सन् १९२४ में डॉवे प्लान (Dawes Plan) नाम से एक मसविदा तय्यार किया गया जिसे उन सभी राष्ट्रों ने स्वीकार किया जिन्हें जर्मनी से हरजाना वसूल करना था। इस प्लॉन के अनुसार रक़म तय करदी गयी कि जर्मनी कितना २ प्रतिवर्ष किस राष्ट्र को अदा करता रहे ताकि अन्त में जिसको जितना देना है, पूरा हो जाय। एक एजेन्ट-जेनरल यानी प्रधान दलाल मुकर्रर किया गया जो सब रुपया वसूल कर राष्ट्रों को भिजवाता जाय। इस प्रकार यद्यपि रूर घाटी पर फ्रांसीसी कब्जा ढीला होगया पर जर्मनी को एक प्रकार से 'आजमाइश' की श्रेणी में रक्खा गया कि देखें यह वादे के मुताबिक अपना रुपया अदा कर सकता है या नहीं। उसे पूरी तरह आज़ाद न कर मित्र-राष्ट्रों की छाप उस पर लग गयी।

वार्सेले (Varsailles) की सन्धि यद्यपि वह कितनी ही दोष पूर्ण है पर तीन बात स्पष्ट कर देती है। एक तो यह कि यह महासमर की अदायगी की गुञ्जायश करती है, दूसरी बात यह कि जर्मनी एक

इम्तहानी श्रेणी में रक्खा जाता तथा अपने घर–अपनी आमदनी का पूरा मालिक नहीं बनने दिया जाता। अन्तिम बात यह है कि यह राष्ट्र परिषद् की सृष्टि करता है जो मित्र–भाव–युक्त राष्ट्रों का गुट है जिसके सदस्य सभी बराबर तथा पद में एक हैं।

अब इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए यह सोचिये कि जर्मनी जितना रुपया प्रति वर्ष दे रहा है वह उचित है या अनुचित ! सभी राष्ट्र उससे जो वसूली कर रहे हैं वह जायज़ है या नाजायज़ ? इस प्रश्न पर विचार करने का कारण यह है कि गत दस वर्ष से यूरोप का निर्माण इसी वार्सेल्ज़ सन्धि से हो रहा है। यूरोप के निर्माण का अर्थ यदि जर्मनी को पीस डालना नहीं है तो उसकी यह मांग जायज़ है कि डॉवें प्लान पर पुनः विचार कर जितनी रक़म ली जा रही है, कम की जाय और हर्जाने की बहुत सी रक़म छोड़ दी जाय। इसी प्रश्न का निबटारा न होने के कारण संसार में एक और अशान्ति फैल रही है और इसीलिये 'वीर–सन्देश' के विशेषाङ्क में इस पर लिखने की जरूरत पड़ी।

प्रसिद्ध जर्मन राजनीतिज्ञ महाशय स्ट्रेसमॉन (M Stresmann) ऐसे विचार वालों के ही प्रयत्न का यह परिणाम है। एक दिन भूखों मरने वाला जर्मनी आज पुनः चमत्कारमय व्यापारिक तथा औद्योगिक उन्नति कर रहा है। जो फ्रान्स जर्मनी को चूस लेना चाहता था आज उसके साथ साझेदारी में कितने ही उद्योग चला रहा है। रीशबैंक (Reichbank) का महत्व दिन ब दिन बढ़ता जा रहा है तथा विदेशियों ने कम से कम भीतरी मार्क (जर्मन सिक्का) ४४० लाख के लगभग खरीद लिया है। जर्मनी निर्भय होकर करोड़ों रुपये विदेशी बाज़ार में लेन देन करता रहता है। महाशय गिलबर्ट (Mr Gilbert) जो हर्जाने की रक़म वसूल करने के प्रधान दलाल हैं कई बार जर्मनी को इस निर्भय प्रयत्न के लिये आगाह कर चुके हैं—पर जर्मनी कभी फिसला नहीं। विदेशी बाजार में उसकी इतनी साख है। अभी तक कोई भी वर्ष ऐसा नहीं गया है जब जर्मनी ने ठीक वक्त से अपना रुपया न चुका दिया हो।

गत अगस्त में उसका वर्ष पूरा हुआ—और उसने हर्जाने की सब रक़म चुका दी। यह है उसकी विद्युत की भांति निर्माण-शक्ति—

जर्मनी की इसी ईमान्दारी, इसी दृढ़ता तथा निश्चित कार्य प्रणाली को देखकर जर्मनी को अब भी चंगुल से न छोड़ने का स्वप्न देखने वाले फ्रान्स वगैरः भी सराहना करने को बाध्य होते हैं। महाशय पार्कर गिलबर्ट, एजेण्ट जैनरल ने भी अपनी सालाना रिपोर्ट में सिफ़ारिश की है कि जर्मनी की तीन साल के भीतर बढ़े हुए कर से प्राप्त आय इसका प्रमाण है कि वह हर्जाने की रक़म दे सकेगा। उसकी गत कार्यवाही देखकर यह सिफ़ारिश करना पड़ता है कि यह रक़म निश्चित कर देना चाहिये कि प्रत्येक राष्ट्र को कितना देकर जर्मनी उसके कर्ज़ से मुक्त हो जायगा। यूरोप में गर्म अफ़वाह है कि डॉये प्लॉन दुहराया जायगा। यदि यह अफ़वाह सत्य निकली तो इसका अर्थ यह होगा कि यूरोप का पुनर्निर्माण होगा—जो राष्ट्र एक दूसरे राष्ट्र की आमद पर काम चला रहे हैं उनकी मिट्टी भूल जायगी—और शायद इसी स्वार्थ के कारण प्रणाली दुहरायी नहीं जा रही है।

फ़ॉर्टनाइटली रिव्यू' (Fortnightly Review) नामक प्रसिद्ध ब्रूटिश पत्र में 'ऑगर' (Augur) नाम से कोई बड़ा विद्वान राजनीतिज्ञ राजनीतिक भविष्यवाणियां किया करता है। उसकी बातें अधिकांश सत्य निकलती हैं। इस व्यक्ति का कथन है कि जर्मनी अभी तक हर्जाने की रक़म बराबर देता गया है यह इस बात का सबूत है कि 'डाये प्लान' का वह पालन कर सकता है और अपनी अदायगी करने की उसमें क्षमता है। अतएव क्षमता के लिहाज़ से इस प्रश्न पर विचार नहीं हो सकता। इस पर विचार दूसरी गहराई मे पैठने से होगा। वार्सेल्ज़ की सन्धि के अनुसार राष्ट्र परिषद् का सदस्य मित्र के समान बराबर का हुआ। अतएव परिषद् का सदस्य होते ही जर्मनी किसी प्रकार के छुटपन के बन्धन से छूट गया और सिद्धान्तत: वह उन सभी बन्धनों से मुक्त होगया जो विजित राष्ट्र मान कर उस पर लगाया गया था आगे चलकर 'ऑगर'

साहब कहते हैं कि 'चाहे हम मानें या न मानें हमको इस पर निश्चय विचार करना होगा।'

दूसरी दलील जो इस प्रणाली को दुहराने के लिये दी जाती है वह यह है कि आज कल जर्मनी के क़र्ज़, एहसान पाबन्दी तथा तमस्सुक का पूंजी करण यूरोप के पुनर्निर्माण मे अधिक सहायक होगा। बैंकर और साहूकार जानते हैं कि स्थायी वार्षिक रक़में या बहुत वर्षों के लिये रक़में वर्तमान पूँजी की क़ीमत का उतना ही महत्त्व रखती हैं जो थोड़े ही समय में प्राप्त उस पावनेदारी से कोई विशेष ज्यादा नहीं होती। उदाहरणार्थ यदि पाँच हज़ार डॉलर की वार्षिक रक़म सदा के लिये ५ प्रतिशत् के हिसाब से रक्खी जाय तो वह दस हजार डालर होगी, वही रक़म ६२ वर्ष मे सालाना अदायगी पर साढ़े नव हज़ार डालर होगी तथा सैंतीस वर्ष मे साढ़े आठ हज़ार डालर होगी। इसी लिये जब ऐसी अदायगी का सवाल आता है जो अनिश्चित समय के लिये जारी रहने वाली है, या बहुत वर्षों के लिये जारी रहने वाली है, वे उसके स्थान पर कम संख्या वाली वार्षिक रक़मे रखने के लिये तैयार हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि इस जल्दी अदायगी मे कोई विशेष हानि न होगी।

पर यह सब होते हुए भी अड़चनें कम नहीं हैं। बेल्जियम, फ्रांस, इङ्गलैण्ड सभी महा-समर के कारण संयुक्त-राज्य अमेरिका के बड़े भारी कर्ज़दार हैं। संयुक्त-राज्य की मनोवृत्ति देखने से पता चलता है कि वह अब जबर्दस्ती ज़िद करके रुपया वसूल करना चाहता है। जब अमेरिका ने अपना नवीन महान् नौ-सैनिक कार्यक्रम प्रगट किया था तो उसके समर्थन में एक दलील यह भी दी गई थी कि वह यूरोप में अपना क़र्ज़ा वसूल करना चाहता है। अस्तु सभी यूरोपीय क़र्ज़दार राष्ट्र इस कारण चौकन्ने हैं और अमरीका के क़र्ज़ की रक़म अदा करने के साधन को सुरक्षित रखना चाहते है। इसमें सबसे बड़ा साधन जर्मनी का हर्जाना है। उधर से रक़म आयी और उसमे से राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिये, जर्मनी द्वारा किये गये नुक्सान को ठीक करने के लिये कुछ

रक़म रखके बाक़ी अमरीका के हवाले किया जाता है। बेल्जियम को हर्जाने का जितना मिलता है उसका एक छोटासा भाग वह अमरीका को देता है और बाक़ी अपने उद्योग-व्यवसाय में लगाता है जो उसके लिये नितान्त आवश्यक है, यदि वह वर्तमान युग में खड़ा रहना चाहता है। हर्जाने का ५० प्रति शत अकेले फ्रान्स को मिलता है और वह भी अपने देश के पुनः निर्माण के लिये बहुत बड़ी रक़म चाहता है! इङ्गलैण्ड को २५ प्रतिशत् प्राप्ति होती है। इन सभी राष्ट्रों में यह दम तो है नहीं कि अपनी आमदनी से अमरीका का क़र्जा पाटें! अतः जर्मनी के भरोसे खड़े होते हैं। यदि हर्जाने की रक़म कम होगी तो क़र्जा कैसे पटेगा !!!

यही सबसे बड़ी बाधा है। डॉये-प्लान यूरोपीय राजनीतिका एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। रूस तो हर्जाना एक दम माफ़ कर देना चाहता है। पर उसकी सुनता कौन है! रूस की इस आदर्शवादिता पर ही मुग्ध होकर जर्मनी उसकी ओर आकृष्ट है और रूस और जर्मनी का एका एक भयङ्कर पदार्थ है। इसे रोकने का यदि कोई साधन है। तो डॉये-प्लान की पुनरावृत्ति है यही डॉये-प्लान का महत्त्व है।

विश्व-व्यापी क्रान्ति

मोशिये मुसोलिनी की इटली में धाक जमी,
देश की दशा सुधार फासिटी चलाई है।
कीन्हीं है कमाल टरकी में जो कमाल पाशा,
मूढ़ता पिशाचिनी सुदूर टरकाई है॥
राख्यो है ईरान को ईमान शाह फैजुल ने,
चीन में चुगुल चंग आगी सुलगाई है।
रूस ने किया है मनहूस मार बैरियों को,
चूस चूस द्रव्य दीनी दीन की दुहाई है॥

—श्री सुवर्णसिंह वर्म्मा, "आनन्द"



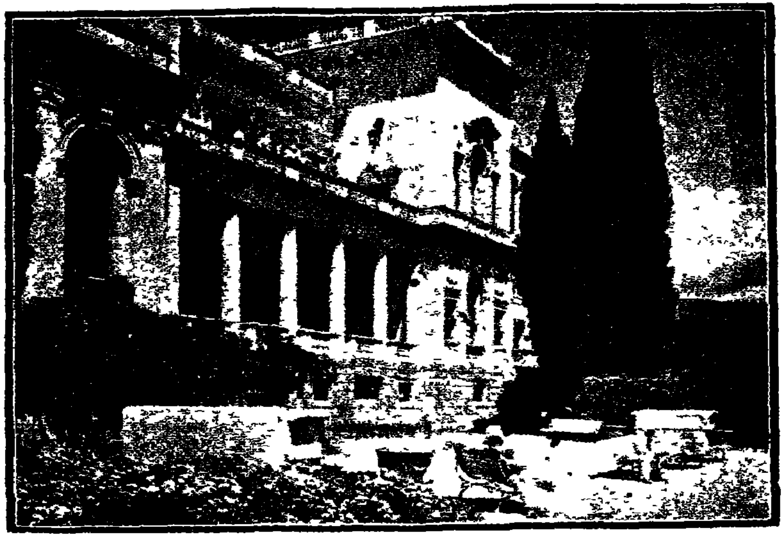
शाह फ़ैज़ुल

ईरान के विख्यात सुधारक—जिन्हें बीसवीं सदी के सबसे बड़े आदमियों में से एक कहा जाता है



हिंडबर्ग

जर्मन प्रजातन्त्र के भूतपूर्व सभापति



रूस का एक शाही महल
बोल्शेवी शासन के बाद यहां किसानों का अस्पताल है

महावीर प्रेस, आगरा

साम्राज्यवाद विरोधिनी परिषद्

[प्रेषक—श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू]

—⁂—

[प्रेषक महोदय को कौन भारतीय नहीं जानता। पं० जवाहरलाल नेहरू अपनी गत दो वर्षों की विदेश यात्रा में संसार के महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों का अध्ययन कर आये हैं। अपने व्याख्यानों द्वारा आपने इस बात का समुचित प्रचार किया है कि भारत को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से अलग रखना घातक है। अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री की हैसियत से सभी समाचार पत्रों को आपने जो महत्वपूर्ण वस्तु भेजी है उसे हम यहाँ प्रकाशित करते हैं। —सम्पादक]

श्री जेम्स मेक्सटन (Mr. James Maxton M. P.) मेम्बर पार्लियामेंट के सभापतित्व मे ब्रसेल्स (Brussels) में साम्राज्यवाद के विरुद्ध परिषद् (League Against Imperialism) की कार्य कारिणी समिति की बैठक हुई थी। उसने निम्न लिखित प्रस्ताव पास किये हैं:—

परिषद् के ब्रिटिश विभाग पर प्रस्ताव

साम्राज्यवाद के विरुद्ध परिषद् की कार्य कारिणी समिति समस्त संसार मे साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रभावशाली आन्दोलन करने के लिये पूंजीवादी देशों मे परिषद् का दृढ़ जन-सामूहिक संगठन आवश्यक समझती है।

समिति श्री मैक्सटन की अध्यक्षता में परिषद् की ब्रुटिश शाखा का यह निर्णय सुनकर सन्तोष प्रगट करती है कि वहाँ भी परिषद् हजारों श्रमिकों को सदस्य बनावेगी।

भारत सम्बन्धी प्रस्ताव—समिति भारतीय राष्ट्रीय महासभा को भारत का लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता घोषित करने पर बधाई देती है क्योकि 'साम्राज्य के अन्तर्गत स्वाधीनता' कहलाने वाला सिद्धान्त एक प्रकार से विदेशी आधीनता ही है।

कार्यकारिणी समिति इस बातका स्वागत करती है कि भारत ने, उपर्युक्त घोषणा के तार्किक परिणाम के स्वरूप, सायमन कमिशन का पूर्ण बहिष्कार सर्व सम्मति से निश्चय कर बृटिश पार्लिमेण्ट के इस अनुचित हक़ को अस्वीकार किया है कि वह भारत का शासन विधान बनाये या निश्चय करे।

समिति को आशा है कि भारतीय राष्ट्रीय महासभा पूरी शक्ति से श्रमिकों तथा कृषको के संगठन का कार्य करेगी। आर्थिक तथा सामाजिक स्वाधीनता प्राप्त किये बिना भारतीय स्वाधीनता कभी प्राप्त नहीं की जा सकती !

समिति बृटिश श्रमिकों से प्रार्थना करती है कि पूर्वीय देशों में जो साम्राजवादी लूट हो रही है उसको जारी रहने मे जो घातक प्रभाव उनके जीवन की मर्यादा तथा व्यवसाय-संघों के अधिकार पर होगा उसे महसूस करें और ग्रेट ब्रिटेन के संगठित श्रमिकों से अनुरोध करती है कि वे अपने प्रतिनिधियों को अपनी शक्ति लगा कर भारतीय जनता की सर्व सम्मति द्वारा प्रगट इच्छा का समर्थन करने के लिये तय्यार करें, न कि बृटिश पूंजीवादी सरकार के साम्राज्यवादी चालों का समर्थन करे।

मिश्र पर प्रस्ताव—समिति बृटिश सरकार की उस नीति का तीव्र विरोध करती है, जिसके द्वारा वह हिंसा तथा भय का प्रदर्शन कर अपने लाभ के लिये, उन क़ानूनों को जिसमें संस्था–सञ्चालन की तथा सभा की स्वाधीनता देने वाला क़ानून भी है बनाने के जायज़ हक़को रोकती है।

समिति तहे दिल से मिश्र की पूर्ण स्वाधीनता की, सूडान और मिश्र से बृटिश सेना को पूर्णतया हटाने की, मिश्र को अन्तर्राष्ट्रीय प्रकार से स्व–प्रभू संस्था स्वीकार करने की माँग का समर्थन करती है।

इस अवसर पर समिति मिश्री जनता को आगाह कर देती है कि उनकी ये मांगे तब तक नहीं पूरी हो सकती जब तक वे अपने कामों का सञ्चालन ऐसे राजनीतिज्ञों के हाथ मे छोड़ देंगे जिनका सामाजिक तथा आर्थिक स्वार्थ जनता के विस्तृत समूह से सम्बन्ध नहीं रखता।

समिति उनसे आग्रह करती है कि अन्य पीड़ित राष्ट्रों के समान वे भी मिलकर एक सम्मिलित संघटन करें जो पूरी तरह से संसार से साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंके।

अरब पर प्रस्ताव—दक्षिण अरब में अदन की सीमा पर, उत्तर में ईराक़ की सीमा पर बृटिश सरकार ने जो सैनिक आक्रमण किये थे उनकी समिति तीव्र निन्दा करती है। फ़ारस की खाड़ी, ट्रान्सजोर्डिनिया और ईराक़ पर बृटिश साम्राज्यवाद की जड़ दृढ़ करने के लिये बिना भड़काये, आपसे आप ये आक्रमण किये गये थे।

भारत के राष्ट्रीय और मजदूर संगठनों से यह प्रार्थना की जाती है कि अपनी पूरी शक्ति लगा कर शासक ग्रेट ब्रिटेन द्वारा भारतीय सेना भेज कर अरब की स्वाधीनता नष्ट न होने दें।

ग्रेट ब्रिटेन के श्रमिकों से समिति आग्रह करती है कि वे बृटिश साम्राज्यवादी लुटेरी नीति को त्यागने के लिये बृटेन को बाध्य करने के सभी उपाय अवलम्बन कर अरब प्रदेश की जनता का साथ दे अपना ऐक्य प्रगट करें। यह नीति एशिया तथा अफ्रिका में लाखों प्राणियों को अकथनीय पीड़ा दे चुकी है तथा यूरोपियन श्रमिक जनता के जीवन की पद-मर्य्यादा को गिराने के प्रति एक बढ़ती हुई आपदा है।

चीन पर प्रस्ताव—साम्राज्यवाद विरोधिनी परिषद् की कार्यकारिणी समिति ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका तथा जापान के मजदूरों का ध्यान उनकी सरकार द्वारा चीन में निश्चित साम्राज्यवादिनी नीति के पालन की ओर आकृष्ट करती है, जहाँ कि स्वाधीनता के लिये लड़ने वाले चीन पर प्रत्यक्ष सैनिक आक्रमण करके, या हाल में ही कुओमिंतांग (राष्ट्रीय दल) के जयचन्द्री सेनापतियों को उत्साहित कर तथा सहायता देकर उनके साथ मिल कर हत्या तथा लूट में साथ देने की नीति तथा मंचूरिया में सोवियट रूस के विरुद्ध हमले या आक्रमण या छेड़ छाड़ की नीति अख़्तयार की गई है। इसी साम्राज्यवादी नीति के परिणाम स्वरूप संगठित चीनी कृषकों और मजदूरों के नेतागण जिन्होंने विदेशी चीनी

भूमि में शरण ली थी, बेरहमी के साथ निर्भय कुओमिन्तांग सेनापतियों के सुपुर्द कर दिये गये जिन्होंने उन्हें घोर यातना देने के बाद मार डाला। इन्हीं सेनापतियों द्वारा मजदूरों की पूर्ण क़त्ले आम में भी इन राष्ट्रों ने सहायता दी, उदाहरणार्थ, गत दिसम्बर में, कैण्टन (Canton) में छः हजार आदमी तीन दिन में क़त्ल कर डाले गये। हुनान, हुपेह, क्वांगसी और होनान में भी ऐसे ही नीच कुकृत्य हुये थे। इस परिषद् की यह निश्चित राय है कि जब तक ग्रेट ब्रिटेन, अमरिका तथा जापान के मजदूर अपनी सरकारों पर प्रभावशाली दबाव न डालेंगे कि चीन से हाथ खींच लें, निर्दयता तथा पशुता के ये कार्य जारी रहेंगे।

—अनु—श्री महेन्द्रनाथ वर्म्मा

[यद्यपि इन सुन्दर प्रस्तावों का अनुवाद सन्तोषजनक नहीं हुआ है, कि फिर भी अनुवादक ने पूरी चेष्टा की है कि अर्थ का अनर्थ न हो जाय।

—सम्पादक]

विलायती लफङ्गा

[लेखक—श्रीयुत 'व्यग्र']

[श्री 'व्यग्र' महाशय हिन्दी के एक सिद्धहस्त गल्प लेखक हैं। आप कभी एक नाम पर स्थिर नहीं रहते इसी कारण हमारा साहित्य-संसार आपकी साहित्य-सेवा से अनभिज्ञ रहता है। जो महापुरुष अपना नाम ही प्रगट करना नहीं चाहते उनका परिचय किस प्रकार कराया जाय।

—सम्पादक]

वापिंग नगर की हाई-स्ट्रीट नामक सड़क पर जार्ज आर्टन नामक एक कसाई रहता था। उसके कुल मिला कर बारह सन्तान थीं जिनमें, आठ लड़के और चार लड़कियाँ थीं। सब से छोटे लड़के का नाम आर्थर था जो मार्च १८३४ में पैदा हुआ था। अपने सभी भाई बहनों में यही सब में चलता पुर्जा और शैतान था। केवल ऊधम मचाने, साथियों से लड़ने झगड़ने तथा इधर उधर की गप्पें मारने में इसका समय बीतता

था। जब यह कुछ बड़ा हुआ तो पिता ने पाठशाला भेजा। परन्तु पढ़ना लिखना तो दूर, यह औरों को भी न पढ़ने देता। इसी बीच इसके पिता के गृह के पास आग लग गई और इस आग से इसके दिल पर ऐसी दहस बैठी कि यह बीमार रहने लगा। पिता ने स्कूल से हटा कर उसे अपने व्यवसाय की शिक्षा देना शुरू किया।

परन्तु इस काम मे भी उसने दिलचस्पी न ली। सदैव वह बीमार रहा करता था इसलिये उसके पिता ने उसे समुद्र पर भेजना अधिक स्वास्थ्य कर समझा। ओशन नामक जहाज पर कप्तान ब्रूक्स के यहाँ वह उम्मीदवार हो गया। परन्तु आर्थर आर्टन ऐसा जीव न था कि कहीं जम कर काम करता। यहाँ भी उसकी प्रकृति लड़ बैठी और सन् १८४५ में जून मास में वह जहाज से भाग निकला। पुलिस के भय से वह इधर उधर भागा फिरता था। अन्त में उसने डान टामस केस्ट्रो नामक एक पंसारी की दूकान पर नौकरी करली। यहाँ वह दो वर्ष रहा और स्पेनी-भाषा सीखता रहा। सन १८५१ मे वह फिर भाग निकला और इस बार अपने पिता के पास लौट आया।

पिता के यहाँ रहने की उसकी जरा भी इच्छा न थी। वह पूरा आवारा हो गया था। पिता के यहाँ रह कर उसने मेरी ऐनी लोडर नामक एक भद्र महिला कुमारी से प्रेम-जाल फैलाया। कुमारी मेरी उसके प्रेम-पाश में पड़ गयीं और दोनों का विवाह निश्चित हो गया। इसी समय उसके पिता के मित्र महाशय चैपमैन को एक ऐसे आदमी की जरूरत पड़ी जो कुछ खच्चरों को जहाज पर अपने साथ ले जावे और हाबर्ट नगर में पहुँचा आये। समय मिलते ही आर्थर की लफङ्गी प्रवृत्ति जाग उठी और कुमारी मेरी के प्रेम को छोड़ कर नवम्बर सन १८५२ में वह खच्चरों को लेकर चला गया।

अप्रैल १८५३ में वह हाबर्ट पहुँचा। इसके बाद उसका जीवन आवारागर्दी, गुण्डई तथा नीचता का जीवन हो गया। इधर उधर वह नौकरी करता फिरता था और जहाँ जाता अपने मालिक को उलटे अस्तुरे

से मूँडता । सन् १८५८ में इस पर अपने एक मित्र की हत्या करने का सन्देह हुआ पर प्रमाण न मिलने से बच गया। एक बार अपने मालिक का घोड़ा चुरा कर भाग निकला । पर्य्याप्त चक्कर लगाने के बाद जॉन पेसले के फ़र्जी नाम से उस ने घोड़ा बेच दिया। यहाँ से वह वाग्गा वाग्गा चला । यहाँ वह कई वर्ष रहा और अपने पूर्व मालिक टॉम केस्ट्रो के नाम से वहाँ रहने लगा। जनवरी १८६५ में एक मजदूरनी मेरी एनी ब्रियांट से उसने शादी करली। इस समय उसकी अवस्था ३० वर्ष की थी। बस, यहीं से इस लफंगे की जीवनी का रोचक भाग प्रारम्भ होता है।

❀ ❀ ❀

रोगर चार्ल्स टिचबोर्न एक धनी व्यक्ति था। २०,००० पौ० वार्षिक आय वाली एक जायदाद का वह उत्तराधिकारी था। उसने अपने घर को अन्तिम पत्र पहली अप्रैल को लिखा था। २०वीं अप्रैल को बेला नामक जहाज़ पर वह यात्रा को निकला। दुर्भाग्यवश जहाज़ डूब गया। यह दुर्घटना सन १८५४ की है। उसकी मृत्यु प्रमाणित हो गयी। अदालत में उसका वसीयतनामा खोला गया और उसके अनुसार उसके भाई को जायदाद मिली। १८६६ मे वह भी मर गया और उसका छोटा बच्चा सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हुआ।

रोगर की मृत्यु से उसकी माता को बड़ा दुःख हुआ। परन्तु उसी दुःख मे उसे एक सनक सवार हुई कि उसका पुत्र अभी मरा नहीं है। ज्यो ज्यो समय बीतता जाता उस वृद्धा की यह धारणा दृढ़ होती जाती कि उसका पुत्र अभी जीवित है। प्रत्येक प्रभावशाली तथा बड़े समाचार पत्र में वह रोगर के नाम गृह लौट आने की मर्मस्पर्शी प्रार्थनायें छपवाती। उसकी हुलिया छपाती तथा उसकी उस सम्पत्ति का पूरा ब्यौरा छपाती जिसका वह उत्तराधिकारी था। उसकी खोज करने वाले के लिये गहरा पुरस्कार भी रक्खा गया।

❀ ❀ ❀

लफंगा टाम कैस्ट्रो (अर्थात् आर्थर ओर्टन) अपनी दरिद्र कुटिया मे बैठा हुआ था। यकायक उसका एक मित्र डिक स्लेड दौड़ता हुआ आया

और 'आस्ट्रेलियन टाइम्स' की एक प्रति उसके हाथ में देकर कहा— 'इस मजेदार विज्ञापन को तो देखो।' केवल मजाक के लिये ही टॉम कैस्ट्रो ने उसे पढ़ते ही ऐसा गम्भीर चेहरा बना लिया मानो वह उससे बड़ा प्रभावित हुआ हो। उसकी इस गम्भीरता को देखते ही डिक स्लेड को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उत्सुकता पूर्वक पूछा—

'क्यों, तुम इस विषय मे कुछ जानते हो।' कैस्ट्रो कुछ न बोला। केवल उसने सर हिला दिया। स्लेड पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। इसका एक कारण था। कैस्ट्रो यद्यपि न तो रोगर टिचबोर्न के विषय में कुछ जानता था और न उसे उस विषय का कुछ पता ही था। परन्तु जिस तरह सभी कर्जदार कहा करते हैं वह भी अपने कर्जदाताओं से कहा करता था कि शीघ्र ही मुझे बहुत सा रुपया मिलने वाला है। इस समय वह सब मे बड़ा कर्जदार गिब्ज नामी एक वकील का था। उससे उसने अपने भावी समृद्धि की डींग हांकी थी। इसी कारण स्लेड प्रभावित हुआ और गिब्ज से जाकर उसने सब बात कह दी। वह भी बड़ा उत्तेजित हो गया।

इस समय टाम कैस्ट्रो की अवस्था इकतीस या बत्तीस वर्ष की रही होगी। यदि रोगर जिन्दा होता तो वह भी मैंतीस वर्ष का होता। टाम इस समय वाग्गा वाग्गा में क़माई का काम करता था। उसने सोचा कि 'मेरा व्यवसाय यहां मन्दा पड़ गया है, कर्ज भी बहुत है, इसलिये क्या ही अच्छा हो यदि मैं रोगर टिचबोर्न बन जाऊँ और इसी नाम से रुपये कर्ज लेकर अमेरिका होता हुआ इङ्गलैण्ड चला जाऊँ। इस प्रकार कर्जदारों की चपेट मे बच जाऊँगा। अभी तक उसके हृदय मे यह भावना नहीं उठी थी कि इङ्गलैण्ड मे भी मै रोगर टिचबोर्न बन कर उस की सम्पत्ति पर अपना हक़ व्यक्त करूँ।

परन्तु किसी भी अवस्था में उसके लिये तब तक नक़ली टिचबोर्न बनना असम्भव था जब तक वह यह न जानले कि इङ्गलैण्ड में उसका पिता मर गया है। अतएव १२ अप्रैल १८६५ को उसने वापिंग

के महाशय रिचार्डसन के नाम कैस्ट्रो के हस्ताक्षर से एक पत्र लिखा। उसमें उसने 'आर्टन वंश' के विषय में बहुत सी बातें पूछीं। इसी समय उसने अपने सिगरेट-पाइप पर रोगर चार्लस टिचबोर्न नाम का संक्षिप्त आर० सी० टी० खोद लिया तथा रोगर के हस्ताक्षर लिखने का अभ्यास करना शुरू किया। परन्तु अ-पढ़ होने से 'रोगर' को भी वह अँग्रेजी में ठीक नहीं लिखता था। (Roger के स्थान पर Rodger लिखता था)

कैस्ट्रो ने स्वप्न में भी इस बात की आशा न की थी कि वह कभी रोगर टिचबोर्न बनेगा, जब उसके मन में यह भावना उदय हुई उस समय भी वह इङ्गलैण्ड जाकर उस जायदाद पर अधिकार करना नहीं चाहता था। परन्तु उसकी इच्छा केवल यह थी कि वह ड्यूक बन जाय, उसी नाम पर रुपया वसूल करे और चुपके से अमेरिका भाग जाय। परन्तु जब एक बार ऊखलो मे सर पड़ गया, बिना पूरी तरह कुटे उसका निकलना असम्भव हो जाता है। कैस्ट्रो ने कई बार चेष्टा की कि वह इस पाषण्ड मे हाथ खींच ले परन्तु दैव ऐसा प्रबल था कि ज्यों ज्यों वह उस व्यवसाय से अलग होना चाहता था, उसी में और भी फंसता जाता था। एक के बाद एक उसके ऐसे समर्थक मिलते जाते थे जो दृढ़ विश्वास से उसी को रोगर टिचबोर्न समझते थे तथा उसे सम्पत्ति दिलाना चाहते थे। अपनी असलियत प्रमाणित करने के लिये उसे माता के पास पहुँचना, उससे पहचाना जाना, तदुपरान्त अदालत द्वारा अपने 'भाई' की नाबालिग सन्तान से सम्पत्ति हड़पना था। इसके लिये रुपये की सख्त जरूरत थी, परन्तु इतिहास मे सब से रोचक और आश्चर्य-जनक बात यह है कि सभी बङ्क, साहूकार या सरकारें मक्कारी या चाल-बाजी के षड्यन्त्रो के लिये लाखों रुपया व्यय करने के लिये तय्यार हो जायँगी, परन्तु सच्चे और ईमानदार के लिये, जो रुपया अदा करने के लिये तय्यार है, उनकी थैलियाँ बन्द रहती हैं।

यह कथन आर्थर आर्टन के जीवन मे बिलकुल लागू हो सकता है। ऊपर हम गिब्ज और स्लेड का वर्णन कर आये हैं। गिब्ज का

स्वार्थ कैस्ट्रो की सम्पत्ति-प्राप्ति में केवल इतना ही था कि उसका रुपया अदा हो जाय और रोगर की माता कुछ पुरस्कार दे। दूसरा स्वार्थ स्लेड का था। इन्हीं दोनों के साथ एक व्यक्ति और मिल गया। वह था क्यूबिट। यह सिडनी का निवासी था। खोये मित्रों के खोज की दलाली करता था। जब रोगर टिचबोर्न की तलाश शुरू हुई तो इसने भी रोगर की माता से पत्र व्यवहार शुरू किया। उसे भी स्लेड द्वारा कैस्ट्रो का पता चला। इसी समय एक ऐसी घटना हो गयी जिसने तीनों का विश्वास दृढ़ कर दिया।

एक दिन कैस्ट्रो बरामदे में बैठा अपने 'पाइप' पर तम्बाकू पी रहा था। पाठक पहले ही पढ़ चुके हैं कि उसने उस पर अपने फ़र्ज़ी नाम का अक्षर खोद लिया था। इसके अलावे वह प्रायः ऐसी बातें किया करता मानो वह समुद्र-यात्रा कर चुका हो, जहाज़ की दुर्घटना से दुःख उठा चुका हो। इन्हीं सब बातों से उसके साथी यह विश्वास करते जाते थे कि वही रोगर टिचबोर्न है। अस्तु, उस दिन गिब्ज़ उससे मिलने आया। ज्योंही उसने कैस्ट्रो के पाइप पर आर० सी० टी० लिखा देखा, वह आश्चर्य से पागल हो गया। वह चिल्ला उठा—"ईश्वर मेरी आत्मा को वर दे! मैंने तुम्हारा पता लगा लिया। तुम रोगर टिचबोर्न हो।" टाम कैस्ट्रो ने मित्र से प्रार्थना की कि वह इस विषय में किसी से कुछ न कहे। उसने पाइप को जेब में रख लिया। पर इस कथन तथा चेष्टा से गिब्ज़ का जोश बढ़ गया। उसने उत्तेजित होकर कहा—"तब तुम्हीं वह आदमी हो। देखो, मैं साफ़ कहता हूँ कि यदि तुम एक मास के भीतर अपनी माता को पत्र न लिखोगे तो मैं लिख दूंगा।"

* * *

कैस्ट्रो ने अपनी (रोगर की) माता को एक पत्र लिखा। वह पत्र ही इतना मूर्खता पूर्ण था कि यदि साध्वी भोली वृद्धा अपने मृत पुत्र को पुनः प्राप्त करने के लिये अत्यन्त उत्सुक न होती तो उस पर कदापि विश्वास न करती। परन्तु वह अपनी आशा को प्रत्यक्ष सफलीभूत होती

देख पागल हो उठी। उधर गिब्ज़ तथा क्यूबिट ने भी कैस्ट्रो के विषय में अपना बयान लिख भेजा। बस फिर क्या था, माँ ने फौरन रुपया भेजा कि 'उसका पुत्र पहले ही जहाज़' से रवाना हो जाय। साथही उसने यह भी सलाह दी कि रोगर अपने चचा के पुराने नौकर बोगले को जो कि एक निग्रो था तथा सिडनी में उस समय रहता था अपने यहाँ नौकर रखले। यह बात कैस्ट्रो के लिये बड़ी ही हितकारक सिद्ध हुई। सीधे निग्रो बोगले को प्रवाभित करना, दृढ़ता पूर्वक उसके हृदय में यह विश्वास उत्पन्न करा देना कि वही रोगर है तथा धीरे धीरे उससे टिचबोर्न वंश की तमाम बातें, नाम आदि जान लेना चालाक कैस्ट्रो के लिये बड़ा सरल था। उसने बोगले को नौकर रखकर जितना हो सका लाभ उठाया।

५० पौ० गिब्ज़ तथा बङ्क से उधार लेकर तथा उदारता पूर्वक उसके नाम ५०० पौ० की बिल लिखकर 'रोगर टिचबोर्न' वाग्गा वाग्गा से रवाना हुये। सिडनी में बोगले को नौकर रक्खा और सामयिक आवश्यकता के लिये उस विचारे की गाढ़ी कमाई के २०० पौ० उधार लिये। इसके अलावा उसने तीन साहूकारों से ६०० पौ०, २०० पौ० ३०० पौ० करके तीन मुश्त रक़म उधार ली तथा गिब्ज़ के रुपये अदा करके, मौज उड़ाता हुआ, दूसरी सितम्बर १८६६ को जहाज़ पर ६०० पौ० क़ीमत के सोने लेकर पनामा के लिये रवाना हो गया। उसके साथ उसकी स्त्री, पुत्र, नौकरानी, बोगले तथा एक होटल वाले का लड़का बटूस था जो उसका मंत्री था तथा आस्ट्रेलियन सरकार के रोगर की रियासत प्राप्ति में आर्थिक स्वार्थ का प्रदर्शक था।

पनामा में उसका रुपया चुक गया। परन्तु बड़ी सरलता से उसने २०० पौ० उगाह लिये। यहीं उसका विचार था कि बोगले तथा बटूस को चकमा देकर कैलफ़ोरनिया भाग जाय परन्तु उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसकी 'पुनर्प्राप्ति' ने ऐसी हलचल मचा दी थी, लोगों ने उसके विषय में इतनी रोचकता लेना प्रारम्भ कर दिया था कि उसका भागना असम्भव हो गया। तब विवश होकर उसे इङ्गलैण्ड जाकर ही सारी

समस्या का सामना करने का निश्चय करना पड़ा। १८६६ में २५ दिसम्बर की रात्रि को वह इङ्गलैण्ड पहुँच गया।

❀ ❀ ❀

इङ्गलैण्ड पहुँच कर आर्टन उसी होटल में ठहरा जहाँ बोगले के कथनानुसार टिचबोर्न वंश के लोग टिका करते थे। परन्तु यहाँ पहुँच कर सब से बड़ी बेवकूफी उसने यह की कि सीधे मोटर से अपनी जन्म भूमि वापिंग गया। वहाँ जाकर एक सराय में उसने आर्टन परिवार के विषय में पूछ ताछ की। जब उसे यह पता चला कि वृद्ध आर्टन मर गया, उसकी लड़कियाँ विवाह कर इधर उधर चली गयीं, आर्थर आर्टन लफङ्गा होकर भाग गया, छोटा भाई चार्लस अवश्य पास में क़स्साई का काम करता है तो उसे कुछ ढाढ़स हुई। पर बेवकूफी से वापिंग के विषय में उसने इतनी बातें सराय-मालकिन से पूछीं जिस से उसे अन्त में कहना ही पड़ा कि मालूम होता है तुम यहाँ के रहने वाले हो, या शायद वही आर्टन तो नहीं हो जो अपने पिता से झगड़ कर भाग गया था—क्यों कि तुम्हारी शक्ल उससे बहुत कुछ मिलती है। परन्तु आर्टन ने यह बात अस्वीकार कर दी।

इसके उपरान्त वह होटल को लौटा। टिचबोर्न परिवार के प्रत्येक व्यक्ति, नौकर चाकर तक से वह आँख बचाता रहा। अपने निजी दो सलाहकार, एक महाशय लीते तथा दूसरे महाशय होम्ज़ जो वकील भी थे, रक्खे। इन्हीं की सलाह के अनुसार उसने
कार्य करना प्रारम्भ किया।

टिचबोर्न वंश के एक पूर्व क्लर्क का अलरेसफोर्ड में एक होटल था। क्लर्क का नाम महाशय रूस था। ३० दिस० १८६६ को ही 'रोगर' वहाँ गया। पहले तो उसने अपना नाम टेलर बतलाया। रूस ने इसे उसी समय रोगर टिचबोर्न मान लिया। जब महाशय टेलर ने अपनी असलियत बतलायी। बोगले तार देकर लन्दन से बुलाया गया। वहाँ के निवासी सभी बोगले को पहचानते थे। उसके नेतृत्व में हर एक

आदमी को जिसको वह रोगर बतलाता, मानने को तय्यार थे। १ जनवरी १८६७ को 'आर्टन' टिचबोर्न के कैथोलिक चर्च में बोगले के साथ गया। वहाँ से वह टिचबोर्न के प्राचीन घर को भी गया। यहाँ जाने का इसका प्रधान उद्देश्य वंश की प्राचीन तसवीरों को देखकर परिवार के विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त करना था ताकि वह अपनी माता से मिलते समय बुद्धू न बने।

अपनी माता से मिलने के लिये वह पेरिस गया। साथ में उसके मित्र लीते तथा होम्ज़ भी गये। पहले दिन से ही आर्टन के मन में ऐसा भय तथा चोर बैठ गया था कि होटल से बाहर जाने की उसकी हिम्मत न पड़ी और वह बीमारी का बहाना कर सो गया। दूसरे दिन जब उसकी माता उससे मिलने आयी उस समय उसे साहस न हुआ कि उठ कर उससे गले चिपटे। वह दीवाल की ओर मुंह किये खड़ा रहा गया। परंतु स्नेहमयी माता पुत्र से मिलने को इतनी उत्सुक थी कि उसके मुख से निकल पड़ा—'यह अपने पिता के समान दीख पड़ता है।' पर आर्टन भय से उठा नहीं। पापी हृदय सदैव डरा करता है।

अन्त में वह उठा और अपनी "प्यारी माता' के साथ उसने भोजन किया। अब किसका साहस था कि उस व्यक्ति को, जिसे उसकी माता अपना पुत्र कहे, उसका पुत्र मानने से अस्वीकार कर दे। होम्ज़ महोदय ने 'रोगर' के पुनरागमन, माता की पहचान आदि का सारा वृत्तान्त लन्दन के 'टाइम्स' में प्रकाशित करा दिया तथा यह भी सूचित करा दिया कि शीघ्र ही वे इङ्गलैण्ड अपनी सम्पत्ति लेने आवेंगे।

परन्तु टिचबोर्न परिवार ने आर्टन को 'रोगर' मानना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने उसे नकली रोगर कहा तथा सम्पत्ति देने से मना किया। अब 'रोगर' के लिये यही उपाय था कि वह अदालत की शरण ले। परन्तु इसके पूर्व और भी तय्यारी की आवश्यकता थी। अतः वे इङ्गलैंड आये। 'रोगर' के साथ उसकी माता भी आयी। अपनी पेंशन में से १००० पौ० वार्षिक उसने 'पुत्र' को देना स्वीकार किया। एक महल

किराए पर लिया गया। टिचबोर्न परिवार के एक पुराने वकील महाशय हौपकिन्स नौकर रख लिये गये। रोगर टिचबोर्न के दो पुराने सिपाही रख लिये गये। बोगले नौकर था ही। यहाँ पर रह कर आर्टन ने 'रोगर' बनने की पूरी शिक्षा प्राप्त करना प्रारम्भ किया। उधर टिचबोर्न परिवार के अधिकांश व्यक्ति तथा उनके मित्रवर्ग आर्टन को जालिया समझते थे। इधर माता के मित्र तथा समर्थक उसे असली 'रोगर' मानते थे।

यह सब हो रहा था पर आर्टन को अपने परिवार वालों का भय बना ही रहा। वह उनसे कभी मिलता भी था तो केवल इस बहाने से कि उनका एक कुटुम्बी आर्थर आर्टन आस्ट्रेलिया में उससे मिला था और दोनों में मित्रता हो गयी थी। अब जब कि उसे सम्पत्ति मिलने वाली थी वह उनकी आर्थिक सहायता करना चाहता था। अपने भाई चार्ल्स को वह ५ पौ० मासिक पेंशन देता था जिसे बन्द हो जाने पर वही भाई अदालत में यह गवाही देने गया था कि यह 'रोगर' मेरा भाई 'आर्टन' है।

इस बात का पता आर्टन के विपक्षियों को लग चुका था। उसकी हरकतें भी सन्देह दृढ़ कराती जाती थीं। मेलिपिला में कैस्ट्रो गवाहों को गवाही लेने के लिये एक कमीशन नियुक्त कराया गया। कमीशन चाइल गया। आर्टन को भी चाइल जाना पड़ा। पर वह जानता था कि वे गवाह जिनके साथ वह दो वर्ष व्यतीत कर चुका है उसके बुरे जीवन का भण्डा-फोड़ कर देंगे। इसी भय से वह चाइल जाकर भी गवाहों से न मिला और लौट आया। उसकी इसी प्रकार की दो एक और गलतियों से ऊब कर उसके प्रबल सहायक महाशय होम्ज ने उसका साथ छोड़ दिया।

❀ ❀ ❀

सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये 'रोगर' ने अदालत की शरण ले ही ली थी। आर्टन के नक्षत्र बुरे थे। यद्यपि भाग्यवश माता की स्वीकृति के कारण सारी जनता उसके पक्ष मे थी, उसके नाम की हुँडियाँ बड़ी सर-

लना मे बिक जाती थी, यहाँ तक कहा जाता है कि कई पार्लीमेण्ट के सदस्यों ने आपस में चन्दा कर लाखों रुपया उसे दिया। परन्तु भावी बड़ी प्रबल है। धोखे की टट्टी कब तक टिक सकती थी ?

१२ मार्च १८६८ को वह स्नेहमयी माता जिसने अन्त तक 'रोगर' को असली 'रोगर' माना था, हृदय रोग से मर गयी। साल भर ही बाद प्रबल तथा प्रचण्ड वकील हॉपकिन्स भी मर गया। जनवरी १८७१ में बाकायदा मुकदमा प्रारम्भ हुआ। मुद्दई की ओर से प्रसिद्ध वकील सरजेन्ट बेलेंटाइन थे। मि० कोलरिज विपक्षी दल की ओर से लड़ रहे थे। अन्त में कोलरिज ने यह प्रमाणित कर दिया कि यह व्यक्ति 'आर्थर आर्टन है'—वाग्गा वाग्गा का कसाई, षड्यन्त्री, झूठी कसम खाने वाला, जालसाज तथा बदमाश है।

अपराध प्रमाणित हो गया। आर्टन पकड़ा गया। २२ अप्रेल १८७२ को उसे १४ वर्ष को दरोग-हल्फी के अपराध मे कारावास-दण्ड हुआ।

जेल मे उसका व्यवहार अच्छा होने से दस वर्ष आठ महीने तथा दो दिन की सजा भोगने पर ही, वह छोड़ दिया गया।

सन १८९८ मे 'प्यूपुल' पत्र मे उसने अपनी जीवनी स्वयं छपाई। १८९८ की अप्रेल मे वह मर गया। उसके इस बात को स्वीकार करने पर भी कि वह आर्थर आर्टन है, उसके मित्रवर्ग उसे सर रोगर टिचबोर्न समझते थे और अन्त मे उन्होंने उसे उसी नाम से दफनाया।

संसार के बड़े से बड़े पाप घोर से घोर दुष्कर्म केवल अपनी आत्मा को धोखा देने से ही होता है। संसार में मनुष्य के लिये, चाहे वह कितना ही बड़ा पापी न हो, अपनी आत्मा को धोखा देने से बढ़ कर बुरी वस्तु कोई नहीं।

संसार को धोखा देने का अर्थ अपनी अन्तरात्मा को धोखा देना है।

अमेरीकन विश्वविद्यालयों में शिक्षा

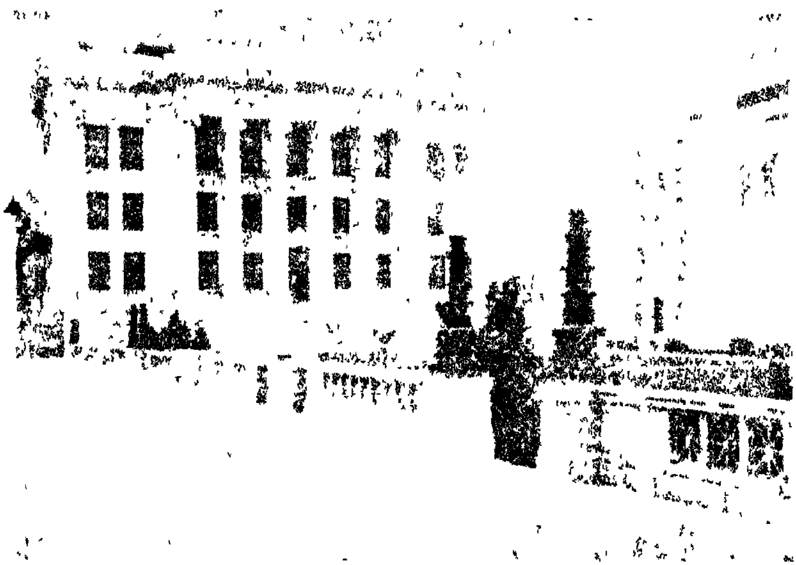
[लेखक—श्री० शिवशरणसिंह जी फाटकवाला, एम० ई० (शिकागो), बी० एस० (लुइस), असोसियेट मेम्बर, मिका० ई० सोसायटी—अमेरिका]

[महाशय फाटकवाला के पिता उदयपुर में फारेस्ट अफ़सर हैं। उन्होंने तेरह वर्ष तक बड़ी निस्स्वार्थ भावना से त्यागी राजर्षि महेन्द्र प्रताप के प्यारे प्रेम महाविद्यालय में प्रधानाध्यापक का कार्य किया था। इनके सुपुत्र श्री शिवशरणसिंह फाटकवाला ने अपनी २४ वर्ष की अल्पायु में ही अधिकांशतः अपने बूते पर अमेरिका से मिकानिकल इञ्जनियरिंग परीक्षा पास किया। उस समय एक महत्वपूर्ण सरकारी अन्वेषण कार्य में भी अमरीकन सरकार की ओर से इन्होंने कार्य किया था। भारत आने पर आपको सीमान्त प्रदेश में सरकारी नौकरी मिल गयी पर पीछे उसे छोड़कर अपने बालकाल्य की क्रीड़ा भूमि प्रेम महाविद्यालय में ही कार्य करना आपने उचित समझा। वहां आप वायस प्रिंसिपल तथा कारख़ाने के सुपरिंटेंडेंट हैं। पर अब आपने विद्यालय के कुप्रबन्ध से उद्विग्न होकर वहां से त्यागपत्र दे दिया है। हमें गर्व है कि फाटकवाला जैसे योग्य तथा त्यागी विद्वान का अभिन्न मित्र होने का हमें सौभाग्य प्राप्त है। —सम्पादक।]

अमेरीका के विश्वविद्यालयों में अधिकतर शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। ये विश्वविद्यालय दो प्रकार के होते हैं—(१) सरकारी (२) जनता की आर्थिक सहायता द्वारा नियन्त्रित। इन विश्वविद्यालयों का कार्य्य भारतवर्षीय विश्वविद्यालयों की भांति केवल परीक्षा ही लेना नहीं होता वरन शिक्षा देना भी होता है। प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् विद्यार्थी कालेज या किसी विश्वविद्यालय में प्रवेश करते हैं। कालेजों का भी यहाँ पर वही स्थान होता है जैसे कि एक विश्वविद्यालय का। विश्वविद्यालयों की भाँति उन्हें भी प्रान्तिक सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती है। कालेज की पढ़ाई ४ वर्ष में समाप्त होती है। प्रथम वर्ष को फ्रेशमैन Freshman, द्वितीय को साफोमोर Sophomore, तृतीय को

Junior और चतुर्थ वर्ष को Senior कक्षा कहते हैं। इन चारों वर्ष की पढ़ाई सफलता से समाप्त करने पर विद्यार्थी को 'स्नातक' (B.Sc. or B. S.) की डिग्री, जिस विषय में उसने अध्ययन किया हो, मिलती है। बी० एस०सी० डिग्री प्राप्त करने के दो वर्ष के अध्ययन के पश्चात् उस विषय में उसे M Sc. या M. S. की डिग्री मिलती है तथा दो वर्ष और अध्ययन तथा गवेषणा पूर्ण कार्य्य करने पर उसे Ph. D. या D. Sc की डिग्री प्राप्त हो सकती है। बहुधा विद्यार्थी बी० एस-सी० में सफल होने के पश्चात् विश्वविद्यालयों में शिक्षक नियुक्त हो जाते हैं, शिक्षण कार्य्य के साथ ही साथ वे ऊँची डिग्री प्राप्त करने के लिये शिक्षा भी ग्रहण करते रहते हैं। बहुधा जूनियर और सीनियर क्लास के विद्यार्थी भी, फ्रेशमैन कक्षा के विद्यार्थियों को क्रियात्मक (Practical) कार्य्य मे अध्यापकों को सहायता देने के निमित्त नियत किये जाते हैं। इससे शिक्षा कार्य्य के साथ ही साथ वे अपनी जीविका के निमित्त धनोपार्जन भी कर लेते हैं। पुस्तकालय में, प्रयोगशाला में तथा अन्य अन्य स्थानों पर जहाँ पर थोड़े समय के लिये सहायता की आवश्यकता होती है, विद्यार्थी ही नियत किये जाते हैं। विश्वविद्यालय के अध्यक्ष तथा अधिकारीगण सदैव इस बात का ध्यान रखते हैं कि किस स्थान पर हम विद्यार्थी से सहायता ले सकते हैं, और अवसर पड़ने पर वे विद्यार्थियों को ही उन स्थानों पर नियत करते हैं।

कालेज की शिक्षा—कार्य्य का वर्ष भी या तो दो खण्ड में विभाजित किया जाता है या चार खण्डों में। प्रत्येक खण्ड की फ़ीस अलग अलग ली जाती है, और वर्ष में एक बार प्रत्येक शुल्क ली जाती है। यदि विद्यार्थी चाहे तो एक खण्ड की पढ़ाई समाप्त होने पर बिना किसी हानि के दूसरे खण्ड में अनध्याय ले सकता है, और दूसरी वर्ष पुनः आगे अध्ययन कर सकता है। इस अवस्था में केवल प्रवेश शुल्क दोबारा उसको जमा करनी पड़ती है। बहुधा विद्यार्थी एक अर्ध-वर्षीय खण्ड में पढ़ते हैं और दूसरे खण्ड में द्रव्योपार्जनार्थ कारखानों या खेतो



[illegible]



वीर-सन्देश



श्री जे० कृष्णमूर्ति

थियोसोफिस्ट संसार आपको मुहम्मद साहब के बाद उत्पन्न जगद्गुरु मानता है। आप संसार में परिभ्रमण कर अपना उपदेश सुनाते हैं।

महावीर प्रेस, आगरा।

में जाकर कार्य्य करते हैं। ये अर्ध खण्ड १८ सप्ताह के होते हैं और पढ़ाई इस प्रकार से विभाजित की जाती है कि एक सम्पूर्ण विषय या उसके विशेष अङ्ग का अध्ययन इस समय में समाप्त हो जाता है। पढ़ाई खण्ड खण्ड द्वारा प्रत्येक विषयों की दी जाती है, इससे विद्यार्थी जिस खण्ड को चाहे योग्यतानुसार ले सकता है। विद्यार्थी गण की संख्या अधिक होने के कारण एक एक कक्षा के १० व १५ खण्ड (Section) होते हैं, जिनको अलग अलग अध्यापक पृथक पृथक समय पर पढ़ाते हैं। यदि एक कक्षा का खण्ड प्रथम घंटे मे एक विषय पढ़ता है, तो दूसरा खण्ड वही विषय द्वितीय या तृतीय घंटे मे पढ़ेगा, इससे विद्यार्थी-गण सुविधानुसार जिस सेक्शन मे चाहे अपना नाम दर्ज करवा कर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, और साथ ही साथ यदि अवकाश मिले तो धनोपार्जन भी कर सकते हैं।

जिन विश्वविद्यालयों ने पढ़ाई के चार खण्ड कर रक्खे है उनका कार्य्य और भी सुविधाजनक है। इन खण्डों को क्वार्टर (Quarter) कहते है और यह १२ सप्ताह के होते है। इनकी विभाजना ऋतु के अनुसार की गई है और इनके नाम हेमन्त (autumn) शीत (Winter) बसन्त (Spring) तथा ग्रीष्म (Summer) खण्ड है। प्रायः विद्यार्थी तीन खण्डो की पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात गर्मी के दिनों में पैदल सैर करने निकल जाते हैं, और स्थान स्थान पर शिविर बनाकर छुट्टियों का वास्तविक आनन्द लेते हैं। बहुत से विश्वविद्यालय के अधिकारी, धनीमानी सज्जन गण अपने व्यय से बहुत से विद्यार्थियों को ऐसे केन्द्रों पर भेजते हैं जहां देश भर की अच्छी अच्छी संस्थाओं के विद्यार्थी, कार्य्य-कर्त्तागण तथा विदेशी विद्वान एकत्रित होते हैं और सामाजिक तथा शिक्षा विषयक गुरु-तर समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करते है। प्रत्येक विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों के सैर के लिये एक नवीन स्थान की खोज प्रति वर्ष करता है और अन्य विद्यालयों और संस्थाओं का सहयोग और सरकार की सहायता से ये स्थान बड़े महत्व के अस्थायी शिक्षालय बन जाते हैं।

अमरीकन विश्वविद्यालयों में प्रायः छात्रालय नहीं होते हैं केवल कन्याओं के रहने के निमित्त छात्रावास (Dormitory) होते हैं। लड़कियाँ और लड़के साथ साथ कक्षाओ मे पढ़ते हैं, पर वे साथ साथ किसी छात्रावास में नही रह सकते। विद्यार्थीगण अपनी सुविधानुसार अपना छात्रावास स्वयं ही बना लेते हैं। यह छात्रावास अमेरीकन विश्वविद्यालय की शिक्षा-नीति की पूर्ण रूप मे पूर्ति करते हैं। ये भारतवर्ष के छात्रालयो की भाँति एक प्रकार के 'जेलखाने' नहीं होते वरन शिक्षायुत आमोद प्रमोद के स्थान होते है और इनका उद्देश्य विद्यार्थियों को सच्चरित्र तथा 'सामाजिक व्यक्ति' बनाना होता है। पुरुषों के छात्रावास को Fraternity तथा स्त्रियो के छात्रावास को Sorority कहते हैं। इन छात्रावासो के नाम ग्रीक भाषा के अक्षरों पर होते हैं, और अधिकतर ये शिक्षा के विभागो से सम्बन्धित होते हैं। जैसे फाई बीटा कप्पा (Phi Beta kappa) आर्ट और साइन्स विभाग के लिये, टॉय बीटा पाई (Tay Beta Pi) इञ्जीनियरिंग विभाग के लिये, एल्फा ज़ीटा (alphazeta) कृषि विभाग के लिये पाई कप्पा लम्बडा (Pi kappa Lambda) संगीत विभाग आदि आदि के लिये सैकड़ो छात्रावास हैं जिनमें केवल विशेष विभागो मे अध्ययन करने वाले विद्यार्थी व अध्यापक सम्मिलित हो सकते हैं। ये छात्रावास अपने सत्संग के प्रत्येक विद्यार्थी की रहन सहन, आचार विचार की ओर ध्यान रखते है, यदि किसी विद्यार्थी में किसी प्रकार की त्रुटि देखी जाती है तो उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय के प्रधान कार्य्यालय में एक विस्तृत सूची उन सब गृहस्थो के घरों की होती है, जो किराये पर विद्यार्थी टिकाते हैं। गृहस्थो के साथ रहने से खर्च भी कम पड़ता है और गृहस्थी जीवन का भी अनुभव होता है।

अमेरिका के समस्त विश्वविद्यालयो में १८ वर्ष से ऊपर की आयु के विद्यार्थियों को सैनिक कार्य्य अनिवार्य्य रूप से सीखना होता है।

इसके लिये विश्वविद्यालय सन्तोषजनक प्रबन्ध क
विद्यार्थियों के लिये सैनिक-शिक्षा अनिवार्य्य
सीख सकते हैं; परन्तु प्रत्येक विद्यार्थी को सप्ताह
में उपस्थित होना आवश्यक है । सप्ताह में त्रि
पृथक दिन नियत होते है जब वे व्यायामशाला उ

अमेरीकन विश्वविद्यालयों में ग्रेट ब्रिटेन
विद्यालयों की भांति केवल वार्षिक परीक्षा द्वारा
निपटारा नहीं होता । वहाँ पर प्रत्येक विद्यार्थी वे
रिपोर्ट रजिस्ट्रार के कार्य्यालय में भेजी जाती
सप्ताह तक असफल पाया जाता है तो उसे विभा
अपने कार्य्यालय में बुलाते हैं और उसके अ
आलोचना उससे करते हैं और उसकी त्रुटि
करते हैं । यदि इस पर भी विद्यार्थी कुछ उन्नति
है तो रजिस्ट्रार उसको अपने कार्य्यालय में बुलाव
कारण की जाँच करता है । यदि विद्यार्थी किसी
असन्तुष्ट है तो उसे दूसरे सेक्शन में भेज देते
सप्ताह के अन्तर्गत अपने कार्य्य को सन्तोषजन
वह छात्र विश्वविद्यालय के उस विभाग से पृथ
वार्षिक परीक्षा के फल पर भी विचार करके
जाती है ।

अमेरीकन विश्वविद्यालय में एक विशेष
विश्वविद्यालयों में नहीं पाई जाती वह प्रतिष्ठा-प्रथा
है । यह प्रथा अभी तक थोड़े ही विश्वविद्यालयों में प्र
में सफल भी हुई है । इस प्रथा में प्रत्येक विद्यार्थी
समझा जाता है । परीक्षाओं में उनको देख रेख
जाते। विद्यालय प्रवेश के समय जो कुछ वह क

र उसके पृष्ठपोषक, सत्ता-
थे । जो लुटेरे थे उन्हीं के
शताब्दी में यह कब तक
फूंका, और किसानों और
तिहास में कुछ नये ही पृष्ठ

है । पूंजीपतियों को भयङ्कर
सोवियट सरकार की दिल्लगी
कुप्रबन्ध पर मनगढ़न्त लेख
गा ? यह तो अब टूटा और
न टूटा । तब लोगो को वर्त-
इच्छा हुई. सैकड़ों पुस्तकें
र लगी । वास्तव में महायुद्ध
जितना सुधार कर लिया है

उच्च श्रेणी की बपौती समझी
प्रारम्भिक शिक्षा देने की रोक
तो प्राप्त हो सकती थी पर
। अगर किसान और मजदूर
ना चाहते थे तो उन्हे निरुत्सा-
रामर्श से शिक्षा मन्त्री ने यह
लाभकर है जब उसका व्यवहार
ा लोगो की आवश्यकता और
जाती है । सर्वसाधारण अथवा
मे लाभ की अपेक्षा हानि ही
क्षा पाये हुये लोगो की संख्य

जाता है। यदि कोई विद्यार्थी किसी प्रकार की जल्दी करता है तो वह एक विद्यार्थियों के संघ द्वारा दण्ड दिया जाता है।

बहुधा देखने में आया है कि विद्यार्थीगण अपने इस गुरुतर उत्तरदायित्व का भली भांति निर्वाह करते हैं। Honour System रखने वाली संस्थाओं में विद्यार्थी अधिक संख्या में प्रवेश होते हैं और बड़ी सज्जनता से कार्य्य करते हैं। साथ ही साथ निरीक्षकों के बहुत से भार हल्के हो जाते हैं और वे विद्यार्थियों को अपना मित्र समझते हैं।

इन्हीं सब कारणों से अमेरीकन विश्वविद्यालयों में शिक्षा का महत्व अन्य विश्वविद्यालयों से अधिक समझा जाता है।

ग़रीबों का देश-सोवियट रूस

[लेखक—श्री० देवकीनन्दन जी 'विभव']

[विभवजी हिन्दी में सब से नवयुवक सम्पादक हैं। १६ वर्ष की अवस्था में ही आप प्रेम महाविद्यालय के साप्ताहिक 'प्रेम' के सम्पादक थे। इसके बाद आपने 'नवयुग' नामक अपना दैनिक पत्र निकाला था जो आर्थिक हानि के कारण बन्द होगया। आप बड़े परिश्रमी तथा होनहार लेखक हैं। रूस-सम्बन्धी आपका यह लेख बड़ा सूचनापूर्ण है।

—सम्पादक]

युग पलट गया! आकाश पाताल का अन्तर हो गया! आज जिस रूस की सोवियट सरकार की तरफ सारे संसार की दृष्टि लगी हुई है, जिसके नाम से ही यूरुप की बड़ी २ शक्तियों को गश आने लगता है वही दस वर्ष पहिले जारशाही, पूंजीपतियों और पुरोहितों के अत्याचार से पिस रहा था। उस समय रूस की वही दशा थी जो आज भारतवर्ष की है, अन्तर केवल इतना ही था कि भारतवर्ष विदेशियों की ग़ुलामी से पिस रहा है पर रूस में रूसी सत्तावादी, पूंजीपति और पुरोहित ही देश को पीस रहे थे। वही रूढ़ियों की भक्ति, वही अज्ञान की तिमिराच्छन्न

लूटा, मजदूर और किसानों का रक्त, ज़ार और उसके पृष्ठपोषक, सत्तावादी और पूंजीपति चूस २ कर मोटे हो रहे थे। जो लुटेरे थे उन्हीं के हाथ में न्याय था। विक्रम की इस बीसवीं शताब्दी में यह कब तक चलता? दीनबन्धु लेनिन ने क्रान्ति का शंख फूंका, और किसानों और मजदूरों की 'लाल सेनाओं' ने संसार के इतिहास में कुछ नये ही पृष्ठ लिख दिये।

यूरुप की सत्तावादी सरकारें काँप गई! पूंजीपतियों को भयङ्कर स्वप्न आने लगे। वर्षों तक तो यह रूस की सोवियट सरकार की दिल्लगी ही उड़ाते रहे, उसकी अराजकता, उसके कुप्रबन्ध पर मनगढ़न्त लेख छपते रहे। भला यह खिलौना कब तक चलेगा? यह तो अब टूटा और टूटा! महीनों गुजरे, वर्षों गुजर गये पर यह न टूटा। तब लोगों को वर्तमान रूस की वास्तविक स्थिति जानने की इच्छा हुई। सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित हुईं और धीरे २ सच्चाई प्रगट होने लगी। वास्तव में महायुद्ध के बाद रूस ने अपनी आन्तरिक स्थिति में जितना सुधार कर लिया है उतना अन्य कोई भी देश नहीं कर सका।

शिक्षा

ज़ारशाही के समय मे शिक्षा केवल उच्च श्रेणी की बपौती समझी जाती थी। समाज के कुछ अङ्ग को तो प्रारम्भिक शिक्षा देने की रोक टोक थी, कुछ श्रेणियों को प्रारम्भिक शिक्षा तो प्राप्त हो सकती थी पर वे उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते थे। अगर किसान और मजदूर जिन्हें नीची श्रेणी का समझा जाता था पढ़ना चाहते थे तो उन्हें निरुत्साहित किया जाता था। एक बार ज़ार के परामर्श से शिक्षा मन्त्री ने यह विज्ञप्ति प्रकाशित की थी ज्ञान केवल तभी लाभकर है जब उसका व्यवहार नमक की तरह किया जाय। इसीलिये शिक्षा लोगों की आवश्यकता और स्थिति के अनुसार थोड़े परिमाण में दी जाती है। सर्वसाधारण अथवा उनमें से अधिकाँश को पढ़ना सिखलाने से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होगी। उस समय स्कूलों में शिक्षा पाये हुये लोगों की संख्या

केवल ३.२ फ़ी सदी ही थी । इन प्रारम्भिक स्कूलों में भी क्या पढ़ाया जाता था ? अधिकतर समय ईसाई-धर्म की शिक्षा में ही चला जाता था, अन्य सार्वजनिक विषयों को तो बहुत कम समय मिलता था। यहाँ विद्यार्थियों के मस्तिष्क को गुलाम बनने की शिक्षा दी जाती थी, सभा सोसायटी में शामिल होना मना था, वे किसी भी आन्दोलन में शरीक नहीं हो सकते थे। सोवियट सरकार की स्थापना होते ही यह घोषणा कर दी गई कि 'बाल, वृद्ध, अमीर, ग़रीब सब ही के लिये शिक्षा प्राप्त करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है।' अब सारे रूस में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है और हर गली कूचे में स्कूल स्थापित हो गये हैं, तनिक इन स्कूलों की संख्या तो देखिये—

	स्कूलों की संख्या	विद्यार्थियों की सं०
प्रारम्भिक स्कूल	८६,७०१	७,०७७,४६०
९ साला स्कूल	७८१	४५०,५४१
७ साला स्कूल	३,८९२	१,३१३,३८२
ऊंचे दर्जे के स्कूल	१,०४७	२७६,७६०
	कुल ९२,८९६	९,१६४,२४५

इनके अतिरिक्त २,३३८ किंडरगार्टन के स्कूल हैं जिनमें २५७,७१५ विद्यार्थी पढ़ते हैं। ११६४ अन्य किन्डरगार्टन की संस्थाएं हैं जिनमें २५७,७१५ विद्यार्थी हैं। २६४ उपनिवेश, ४५,७३५ साधारण बच्चों के लिये और ४५० एसे ३८,८२७ बच्चों के लिये हैं जो किसी तरह रोगी हैं या उनका मस्तिष्क विकृत है। सन १९२५ के जनवरी मास में वहाँ ३,०३० व्यापारिक शिक्षणालय थे जिनमें २८३,५०६ विद्यार्थी थे, ११४ मजूरों के कालेज थे जिनमें ४३,१०९ विद्यार्थी पढ़ते थे। ५०३ विशेष उद्योग धन्धों की संस्थाएं थीं जिनमें १३२,१९७ लड़के पढ़ते थे। १७० कालेज ऊंची शिक्षा के थे जिनमें १७०,८११ लड़के पढ़ते थे*।

इन शिक्षणालयों का प्रबन्ध और पद्धति भी अन्य देशों से बिलकुल भिन्न है। यहाँ स्वतन्त्रता के भाव कूट कूट कर भरे जाते हैं क्योंकि

* From Education in Soviet Russia p. 21

सोवियट नेताओं के विचार हैं कि संसार का भविष्य इन नई सन्तान पर ही निर्भर है। विद्यार्थियो के सम्बन्ध मे जितनी बातें हैं उनका प्रबन्ध लड़कों की समितियाँ ही करती हैं और उनको बड़े २ अधिकार मिले हुए हैं। इन बालकों को क्रियात्मक बातें सिखलाने की ओर ही ज्यादा ध्यान दिया जाता है ताकि वे शिक्षा समाप्त करते ही कार्यक्षेत्र मे आसकें। इसके अतिरिक्त ऊंचे दर्जे के भी शिक्षणालय हैं जहाँ कि कोई विद्यार्थी किसी विशेष विषय में खोज (Research work) का कार्य कर सकते हैं। ऐसी संस्थाएं ९१२ हैं जिनमे करीब १५९,१७६ विद्यार्थी है।

मजदूरों और मजदूरों के लड़को से फ़ीस नहीं ली जाती। अधिकांश को तो भोजन और कपड़े भी मुफ़्त दिये जाते हैं। व्यापारियो के लड़के ही कालेज और स्कूल की फीस देते हैं। किताबे, कॉपियाँ वग़ैरः भी मुफ्त मिलती हैं।

बच्चो की शारीरिक और मानसिक स्थिति की पूरी देख भाल होती है। अधिकांश शिक्षणालय बड़ी २ फ़ेक्टरियों मे हैं जहां मा अपने बच्चो को शिक्षक के पास छोड़कर काम पर बेखटके जा सकती है। पढ़ाने का हर एक कमरा सुन्दर और स्वच्छ होता है जहाँ २० से २५ विद्यार्थी तक पढ़ते है। हर एक लड़के के लिये एक तौलिया खूंटी पर टंगी रहती है। लड़को को तीन बार भोजन मुफ्त विद्यालय की ओर से दिया जाता है। खाने के बाद हर एक लड़के को दो घन्टे विश्राम करने का समय दियाजाता है। हर एकबच्चे के लिये साफ़ बिस्तरो का पलंग होता है। सामाजिक शिक्षा तो हर एक विद्यार्थी के लिये अनिवार्य है और राजनीति जैसे गहन विषय पर भी १४ या १५ साल का बच्चा अन्य देश के बड़े आदमी के समान ही विचार कर सकता है। दस वर्ष के थोड़े से समय मे ही भीषण कठिनाइयो को होते हुये भी सोवियट रूस ने शिक्षा में जितनी उन्नति की है वह अत्यन्त ही प्रशंसनीय है।

आर्थिक अवस्था

भारतवर्ष की तरह रूस में भी ८० प्रतिशत लोग गांवो में रहते

हैं और ७० प्रतिशत कृषि पर निर्भर है। रूस की आर्थिक स्थिति रूस के किसानों पर ही निर्भर हैं और ज़ार के समय में इनकी ऐसी ही स्थिति थी जैसी आज भारतवर्ष में है। जिस समय रूस की बागडोर सोवियट सरकार के हाथ में आई उस समय इन किसानों की हालत बहुत खराब थी, महायुद्ध और गृहयुद्ध ने उनका सर्वनाश कर दिया था, गाँव २ में हाहाकार मचा हुआ था। सोवियट सरकार शान्ति में उनकी स्थिति सुधारने में लग गई। बड़े रूप में मिल कर खेती पैदा करने के भाव पैदा हो गये हैं। आज का किसान छः वर्ष पहिले के किसान से अधिक शिक्षित और समझदार है। उसे अब छः वर्ष पहिले से अधिक अच्छा मकान, भोजन और कपड़े प्राप्त होते हैं। सोवियट सरकार कृषि में पूर्णतः यन्त्रों और बिजली का उपयोग करने का उद्योग कर रही है।

रूस की सरकार अपने कुल वर्ष भर के बजट का सातवां हिस्सा अर्थात् ५ करोड़ से ६ करोड़ पौंड तक मजदूरों के लिये विश्रामगृह और सेनीटोरियम बनाने में खर्च करती है। करीब साढ़े सात लाख मजदूर प्रतिवर्ष अपने पन्द्रह दिन ऐसे किसी विश्रामगृह में व्यतीत करते हैं जहाँ उनको भोजन, स्थान, औषधि सब मुफ्त दी जाती हैं।

सोवियट रूस में महिलाएं

स्त्रियों और पुरुषों के जितने समान अधिकार रूस में हैं उतने किसी देश में नहीं। इस पर भी वहाँ उतनी उच्छृङ्खलता नहीं है जितनी इङ्गलैण्ड, फ्रान्स या अमेरिका में। श्री डब्ल्यू-जे-ब्राउन ने जो कुछ आँखों से देखा है उसके अनुसार उनका मत है—"But the truth is that while sex relations are freer in Russia than in the west, there is less pruriency and much more modesty in Russia than in either Germany, France or England. उक्त सज्जन का मत है कि वहाँ के साहित्य में, वहाँ के समाचारपत्रों में, वहाँ के सिनेमा में, वहाँ के थियेटरों में, कामोत्तेजना पैदा करने वाले समाचार, लेख, तसवीरें और दृश्य नहीं

वीर-सन्देश



रूसी सोवियट कांग्रेस की दो महिला प्रतिनिधियां

सचमुच रूस में स्त्रियां राज कर रही हैं। मास्को की बड़ी महासभा में आठसौ ग्यारह स्त्री प्रतिनिधि हैं जिनमें दो का चित्र यहां दिया जाता है।

महावीर प्रेस, आगरा

वीर-सन्देश



वीर सन्देश के आगामी सैनिक विशेषांक के सम्पादक

साहित्य रत्न पं० श्री कृष्णदत्त जी पालीवाल, एम० ए०

महावीर प्रेस, आगरा

होते । यहाँ के सिनेमा और थियेटर भावपूर्ण होते हैं. पर अन्य पश्चात्य देशों की तरह इनके स्टेज पर बार बार चूमा चाटी नहीं होती । वर्तमान रूस की महिलायें सोवियट शासन में इतना ही भाग लेती हैं जितना पुरुष । रूस भर में १५०० स्त्रियाँ ऐसी हैं जो भिन्न भिन्न उत्तरदायित्व के कामों में भाग ले रही हैं । ग्राम सोवियट पञ्चायत की अधिकतर अधिष्ठात्री भी महिलाऐं ही हैं और उन्होंने देश की शिक्षा और अस्पतालों की उन्नति में बहुत भारी काम किया है । इसके अतिरिक्त प्रान्तीय कार्य-कर्त्ता सभाओं और ऑल-यूनियन कांग्रेस मे भी उनकी पर्याप्त संख्या है, यही नहीं, वे केन्द्रीय एक्जीक्यूटिव कमेटी और सोवियट यूनियन की स्थायी कमेटी की भी सदस्य है ।

सोवियट सरकार और युद्ध

यहाँ युद्ध के बाद संसार मे निःशस्त्रीकरण की आवाज बड़ी जोर से उठ रही है । लीग ऑफ-नेशन्स में यह प्रश्न कई बार आ चुका है पर वास्तव मे बात यह है कि आज महायुद्ध की सामग्री इतनी इकट्ठी हो रही है जितनी पहिले कभी नहीं हुई थी । गुप्त षड्यन्त्रो और सन्धियों का बाजार गर्म है । कोई भी राष्ट्र अपने को तब तक सुरक्षित नहीं समझता, जब तब कि उसकी स्थल जल और हवाई सेना अपने पड़ोसियों से बढ़ी चढ़ी न हो ।

कम्यूनिज्म का सिद्धान्त संसार में स्थायी शान्ति स्थापित करना है । क्योंकि लड़ाई के सबसे अधिक शिकार ग़रीब लोग, किसान और मजदूर ही होते है । जिनेवा की लीग-आफ-नेशन्स मे निःशस्त्रीकरण के प्रस्ताव पर रूस की तरफ से एम० लिटविनोफ़ ने कहा "सोवियट सरकार को आक्रमण के लिये जल या थल सेना की आवश्यकता नही है क्योंकि हम सब देशों के साथ शान्ति से रहना चाहते हैं । जिनेवा की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् में ही उसने इस प्रस्ताव को रक्खा था कि पहिले फौजों के बिलकुल तोड़ देने पर विचार किया जाय' ''''इस साल के समय में सोवियट रूस ने न किसी पड़ौसी पर चढ़ाई की, न

किसी राष्ट्र से युद्ध की घोषणा की और दूसरे राष्ट्रों की तरह युद्ध की तैयारियों मे कोई भाग नहीं लिया है। ... इस लीग-ऑफ नेशन्स द्वारा ३८ अधिवेशनों में इस विषय पर विचार हो चुका है, १४ भिन्न भिन्न कमीशनों ने १२० अधिवेशन इस प्रश्न को तय करने के लिये किये और जनरल ऐसेम्बली और कौंसिल ने ही १११ प्रस्ताव पास किये। इतना करने पर भी हमें विवश होकर कहना पड़ता है कि अब तक कुछ भी क्रियात्मक रूप में नहीं हुआ।... सोवियट सरकार इस बात की घोषणा करती है कि वह सब फौजी जत्थों को तोड़ने को तय्यार है अगर ऐसा प्रस्ताव पास हो जाय और अन्य राष्ट्र भी साथ ही ऐसा करने को तय्यार हो। सोवियट रूस के इस प्रस्ताव का सिवाय टर्की और जर्मनी को छोड़ कर और किसी ने तो विचार भी नहीं करना चाहा।

जब चारों ओर से पूंजीपति सरकारें सोवियट रूस को छिन्न भिन्न कर देने के लिये मुंह बाएँ खड़ी हैं ऐसी हालत मे रूस को भी अपनी सैनिक शक्ति संगठित करने का उद्योग करना पड़ा है। इस समय रूस में फ़ौजों की संख्या ५६२,००० है पर हम इसे अधिक नहीं कह सकते। जब कि हम देखते हैं कि पश्चिमीय पड़ोसियों की फौजों की संख्या भी ५४०,००० से कम नहीं है। इसपर भी योरुप में सेनाओं मे सब से कम खर्च रूस में होता है। यूरुप भर में ग्रेट ब्रिटेन में फ़ौजों पर सब से ज्यादा खर्च होता है यानी आबादी के प्रति मनुष्य के पीछे २६ रूबल (रूसी सिक्का) जब कि रूस में आबादी के प्रति मनुष्य के पीछे ४ रूबल और ४० कोपर ही खर्च होता है। रूस का प्रत्येक मनुष्य युद्ध का विरोधी है और शान्ति चाहता है। परन्तु अगर युद्ध करना ही पड़े तो आत्म रक्षा के लिये प्राण देने को वे तय्यार भी हैं। आवश्यकता पड़ने पर वह संख्या दस गुनी भी हो सकती है। अगर युद्ध हुआ, जैसा कि दिखलाई पड़ता है तो रूस की सेनाएँ संसार को चकित कर देंगी क्योंकि उसके सैनिक भाड़े के सैनिक नहीं हैं बल्कि उसका प्रत्येक सैनिक जी तोड़ कर लड़ेगा क्योंकि यह उनके जीवन मरण का प्रश्न है—वे देश प्रेम में मग्न हैं।

जातियों के अधिकार

[लेखक—श्री० भगवानदासजी केला]

[श्री भगवानदासजी केला भारतीय अर्थशास्त्र तथा राजनीति के विशेष पण्डित हैं। आपकी कितनी ही महत्वपूर्ण उपयोगी रचनाओं से हिन्दी संसार लाभ उठा रहा है। प्रेम महाविद्यालय में सर्वस्व त्याग कर वर्षों तक आपने निःस्वार्थ सेवा की पर अन्त में गत वर्ष विद्यालय की वर्तमान अनस्थिर तथा अनुचित रीति नीति के कारण आपको वहाँ से हटना पड़ा। आज कल आप वृन्दावन में भारतीय ग्रन्थ-माला का कार्य कर रहे हैं। —सम्पादक]

"धन्य है वह जाति जिसने अपने व्यक्तित्व को मानव समाज के मङ्गल के लिये अर्पित कर दिया है। और धन्य है वह मानव समाज जिसका प्रत्येक व्यक्ति भगवानमय है।"

संसार व्यापी महान समस्या

हमने व्यक्तियों तथा श्रेणियों के अधिकारों की बातें बहुत पढ़ सुन लीं। संसार के इतिहास मे अनेक युद्ध और क्रान्तियाँ हुई जिनका उद्देश्य समाज के व्यक्तियों तथा भिन्न भिन्न श्रेणियों के साथ न्याय करना और उन्हें उनके यथोचित अधिकार देना था। इन युद्धों और क्रान्तियों का अभी अन्त नहीं हुआ। हो भी कैसे. जहाँ तहाँ जमींदार किसानों को दबा रहे है, पूंजीपति मजदूरों को मन चाहे नियमों मे जकड़े रखना चाहते है। प्रत्येक देश में अपनी अपनी दलित श्रेणियाँ हैं। भारतवर्ष में अछूत हैं तो अमरीकन और यूरोपियन राज्यो में गैर यूरोपियन अनगोरे या हबशी आदि का प्रश्न है। कहीं मेज़िनी. टाल्स्टाय और गान्धी के लिये पुकार है, तो कहीं लेनिन, कार्ल मार्क्स रूसो और पेन का स्वागत होता है। यह सब तो हुआ और हो रहा है। परन्तु क्या हम कभी यह भी विचार करेंगे कि नागरिक या व्यक्ति का जो स्थान जाति में है,

जाति का वही स्थान मानव समाज में है। यदि व्यक्तियों या व्यक्ति-समूहों (श्रेणियों) के जाति में कुछ अधिकार हैं तो क्या जातियों के कुछ निर्धारित अधिकार मानव समाज में नहीं होने चाहियें ? यदि किसी देश के समाज की सुख शान्ति के लिये उसके अङ्गों को उनके उचित अधिकार देना आवश्यक है, तो संसार के वृहन् मानव-समाज की सुख शान्ति भी उस समय तक प्रायः असम्भव है, जब तक कि भिन्न भिन्न जातियाँ अपने कई यथोचित अधिकारों का उपभोग न करें !

अधिकार क्या होने चाहिये ?

अच्छा, जातियों के अधिकार क्या होने चाहियें ? अच्छे मस्तिष्क और उदार हृदय इस बात का ठीक निर्णय करेंगे। हां, कुछ स्थूल रूप, शायद यह हो सके:—

१—मानव समाज के पूर्ण विकास तथा उसके यथेष्ट हित के लिये आवश्यक है कि विविध जातियों की विशेषताओं तथा सभ्यताओं की समुचित रक्षा हो, अतः प्रत्येक जाति का अधिकार है कि अपने जीवन और स्वतन्त्रता की यथेष्ट उपायों से रक्षा करे, और यदि वह पराधीन हो गयी हो तो जल्दी से जल्दी स्वाधीन होने का यत्न करे, उसे स्वाधीन होने के लिये दूसरी जातियों की सहानुभूति और सहायता से लाभ उठाने का अधिकार है।

२—प्रत्येक जाति को अपनी भाषा और साहित्य की रक्षा और वृद्धि का अधिकार है. यदि राज्य या कोई अन्य जाति इसमें बाधा उपस्थित करे तो उसका समुचित रूप से सामना किया जाना चाहिये।

३—प्रत्येक जाति, अपने बीच में अपनी रीति रस्मों के अनुसार कार्य करने तथा जातीय खेलों का प्रचार करने की अधिकारिणी है। जब तक वे दूसरों के लिये हानि कर या बुरा प्रभाव डालने वाले न हों, किसी को उनमे हस्तक्षेप न करना चाहिये।

४—प्रत्येक जाति को अधिकार है कि वह अपने क्षेत्र मे छोटे बड़े सब की मानसिक नैतिक, औद्योगिक, शारीरिक आदि सब प्रकार

की शिक्षा की ऐसी व्यवस्था करे कि उसके विविध अङ्ग स्वावलम्बी हों अर्थात् उन्हें जीवन के किसी भी पहलू में दूसरी जाति के आश्रित न होना पड़े।

५—प्रत्येक जाति को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में दूसरी जातियों से समानता तथा न्याय प्राप्त करने का अधिकार है। यदि कोई जाति उसे नीचा समझती है, पराधीन बनाना चाहती है, या उससे अनुचित लाभ उठाती है, तो उसे अन्य जातियों के सम्मिलित (यथाशक्य नैतिक) प्रभाव से अन्याचारी जाति को उचित शिक्षा देने का अधिकार है।

६—प्रत्येक जाति को अधिकार है कि वह चाहे जिससे मित्रता या उदासीनता की संधि करे, परन्तु उसे किसी से शत्रुता करने का अधिकार नहीं है। यदि कोई जाति किसी से शत्रुता का भाव प्रकट करती है तो वह अन्य सब जातियों की शत्रु समझी जानी चाहिये।

इन अधिकारों की प्राप्ति—इन अधिकारों की प्राप्ति कौन करायेगा? क्या संसार में भगवान श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध या ईसामसीह आदि के रूप में परमात्मा की शक्ति समय समय पर प्रकट नहीं हुई है? मनुष्य मात्र का परमपिता अपनी प्यारी सन्तान की फिर भी सुध लेगा, परन्तु उसकी शक्ति इस कार्य के लिये किस प्रकार का अवतार लेगी, यह अल्पज्ञ मनुष्य से कुछ कहते नहीं बनता। सम्भव है जब संसार में मशीन गनें, हवाई जहाज़ आदि संहारक यंत्रों की इतनी वृद्धि हो जाय कि इनके हत्या काण्ड से, इनके बनाने वाले ही इस लोक से कूच कर जांय, तो स्वयमेव ही शान्ति का भाव प्रचारित हो और प्रत्येक जाति दूसरों के लिये सेवा व्रत धारण करले। उस नवीन युग के लेखक फिर यह कहने लगेंगे कि इस वार परमात्मा का अवतार मनुष्य रूप में न हो कर यंत्र रूप में हुआ था और उसने सब जातियों के अधिकार दिलाये।

स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

तुर्किस्तान का महिला जीवन

[लेखक—श्री० सूर्यनारायणजी व्यास, विद्यारत्न]

[उज्जैन निवासी श्री व्यास जी हिन्दी के होनहार लेखक हैं। आपने कृपा कर हमारे लिये यह सूचना पूर्ण लेख लिखा है अतएव हम आपके आभारी हैं। —सम्पादक]

इस बीसवीं सदी का 'तुर्किस्तान' सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में किस प्रकार प्रगति करता जा रहा है, यह बात वर्तमान पत्र पढ़ने वाली जनता को विदित है।

भारतवर्ष के समान संकुचित विचार वाले और मौलवी मुल्लाओं के भड़काने पर छोटी २ बातों के लिये अपने देश वासियों का रक्त बहाने में वीरता दिखलाने वाले मुसलमान तुर्किस्तान में नहीं रहते, वे धर्मांध होने के बजाय राष्ट्र के पीछे पागल बनना अधिक पसंद करते हैं! उनमें न केवल पुरुष ही बल्कि स्त्रियाँ भी व्यर्थ के बन्धनों से मुक्त होकर कार्य क्षेत्र में पुरुषों का साथ देने जारही हैं। जिन लोगों ने तुर्कस्तान की यात्रा की है, उन लोगों का कहना है कि—भारतीय मुस्लिम महिलाओं की अपेक्षा तुर्किस्तानी महिलायें विशेष स्वतन्त्र हैं।

हमारे देश की मुस्लिम-महिलाये जिस प्रकार सर्वदा जनानखानों मे मूंदी जाकर बाह्य जगत के आनन्द और सौंदर्य से वंचित रखी जाती हैं यह कुप्रथा तुर्किस्तान में नहीं सी है, वहाँ अन्य देशों की अपेक्षा उन्हें स्वभावतः अनेक अधिकार प्राप्त हैं। जहां 'तलाक' प्रथा प्रचलित है वहाँ स्त्रियों को पति की जायदाद का कोई हक़ नहीं रहता, पर तुर्किस्तान में यह नहीं है। वहां विवाहित पत्नि अपने पति की जायदाद की पूर्ण रूपेण स्वामिनी मानी जाती है। तुर्किस्तान में एकपत्नीत्व की ही प्रथा विशेष है, कानूनन् एक व्यक्ति एक ही स्त्री से विवाह कर सकता है। इस नियम के भी अपवाद हैं, पर वे क्वचित् ही और खासकर श्रीमान लोग। श्रीमान् के बिना इस प्रथा के विरुद्ध स्यात् ही कोई साहस करे, सर्व साधारण के लिये यह

साध्य नहीं। तुर्की लोगों की दृष्टि में यह कोई नैतिक बन्धन नहीं है, वे इसे अर्थ-साध्य समझते हैं, वैसे स्त्री पुरुष 'तलाक' प्रथा को भी हेय नहीं समझते, परन्तु तुर्किस्तान में यह प्रथा नाम मात्र शेष रही है।

तुर्क देश वासियों के घरों में दो विभाग रहते हैं, एक 'सेल-मलिक' अर्थात्—दीवान-खाना, और दूसरा 'हेरमलिक' अर्थात् जनाना। इस दूसरे विभाग को वे लोग बहुत ही साफ़-सुथरा और सुविधा युक्त रखते हैं, भीतर शुद्ध वायु, और सूर्य-प्रकाश की खास तौर पर व्यवस्था की जाती है। वे अपनी महिलाओं को 'असूर्यम्पश्या' नही बनाना चाहते, तुर्क रमणी पर्दे के कठोर बंधन में भी नहीं बाँधी जाती, सिर्फ उनकी नव-युवतियाँ बराये नाम पर्दा रखती हैं, वह भी घर पर नहीं, कहीं बाहर जाना हो उस समय सिर्फ एक साधारण रेशमी (अत्यन्त महीन) मुंह पर ढाँका जा सके ऐसा बुर्का (रूमाल) डाल लेती हैं।

तुर्की महिलायें अपने बच्चों के साथ बहुत मधुर व्यवहार करती है, तुर्की-पुरुष भी अपनी माताओं के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते हैं। वे हज़रत मुहम्मद पैग़म्बर साहब के कथनानुसार—"स्वर्ग माता के पैरों में है" इस सिद्धान्त को आदर्श मानते हैं।

पुत्र का विवाह होजाने पर उसकी पत्नि को कोई अधिकार नहीं मिलता। घरका सारा कार्य माता की आज्ञा से ही चलाता है, अपने हिंदू कुटुम्बों की संयुक्त-वास प्रथा के अनुसार माता का प्रधानत्व और पत्नि का गौणत्व माना जाता है। इस अवसर में मातृशासन में रह कर पत्नि को कुछ (सुसाध्य) कष्ट भी उठाना पड़ते है, जो कि स्वाभाविक ही हैं। परन्तु उसके पुत्रवती होने पर यह बातें दूर हो जाती हैं, वही मातृत्व का अधिकार उसे मिल जाता है। इसी भविष्य की सुखद कल्पना से वे वर्तमान कष्टों को शान्ति पूर्वक सहलेती हैं।

तुर्क में गुलाम रखने की रीति अब भी हैं, जो बड़े कलंक की बात है। इस समय स्त्रियों को गुलाम के रूप में रखा जाना क़ानून द्वारा रोक दिया गया है, जो लोग युद्ध में पकड़े गये हों उन्हें ही अब 'गुलाम'

बनाया जा सकता है। 'कान्स्टन्टिनोपुल' में जो एक गुलामों का बाजार लगता था वह भी अब बंद कर दिया गया है। तिस पर भी—गुलामों का 'गुप्त' व्यापार बढ़ा हुआ है, इस काम में धनिक महिलायें अधिक भाग लेती हैं, वे ६ से ११ साल की वय के लड़कियों को ख़रीद कर लेती हैं। इन ख़रीद की हुई बालिकाओं में जो विशेष बुद्धिमान् दिखाई पड़ता है उसे शिक्षण भी दिया जाता है, जिससे कि वह सांसारिक उच्च पदों को प्राप्त कर सके। कुछ कलाओं का ज्ञान भी दिलवाया जाता है, और उसे उपयोगी बना लिया जाता है। इस प्रकार सीखी हुई लड़कियाँ बहुमूल्य होती हैं। इन शिक्षित कन्याओं में से कुछ तो शाही महल में भी इज्जत के साथ रखी जाती हैं। यदि इन लड़कियों में कोई सुन्दर हुई तो वह 'सुल्तान' की भेंट (नजर) की जाती है। 'सुल्तान' के पास ऐसी अनेक महिलायें होती हैं। किसी अधिकारी पर प्रसन्न होकर कभी २ वे एकाध 'पुण्य' (पुरस्कार) भी कर देते हैं। अभी आपने पत्रों में पढ़ा होगा कि तुर्की के भूतपूर्व (निर्वासित) सुल्तान के जनाने में ५०० स्त्रियाँ (पत्नीत्व में) थीं, और इस बुढ़ौती में फिर किसी एक फ्रेंच युवती से परिणय करना चाहते थे।

जिन लोगों को अपने पुत्र के लिये धनहीनता के कारण 'वधू' प्राप्त करना कठिन हो जाता है, वह एकाध सुन्दर गुलाम कन्या को ख़रीद लेते हैं, और विवाह भी कर लेते हैं। इस कन्या से उत्पन्न संतान को भी वही अधिकार दिया जाता है, जो अन्य विवाहिता पत्नी के संतान को रहता है। इस कन्या का वही आदर किया जाता है जितना एक कुल-वधू का किया जाना उचित है।

कई जगह 'गुलाम'-रूप से ख़रीदी हुई स्त्री, ख़रीददार से शादी कर लेती है। फिर उसे एक स्वतन्त्र-तुर्क रमणी के समान अधिकार भी मिल जाते हैं। आगे चलकर वह गुलामी का कष्ट मय जीवन नहीं किन्तु गृह-स्वामिनी का सुखमय जीवन व्यतीत करती है। परंतु अब ये बातें सिर्फ कहानी-सी हैं, क्योंकि क़ानून ने इसे रोक ही दिया है।



शाह अमानुल्लाह

...स्तान में क्रान्तिकारक सुधार करने वाले



हादी जी मैत्सा मकामे

सबसे पहली टर्की महिला जिन्होंने पर्दे को तोड़ कर
... किया



रूस के शाही क़िले का एक हिस्सा

यहां बैठ कर रूस के शाहंशाह ज़ार निकोलस ने गद्दी से इस्तीफ़ा लिखा था और रूस बोल्शेविकों का हो गया

इस विशेषता-रहित, और अनित्य जीवन में, तुर्क स्त्रियों को यदि कहीं विनोद करने, और अनेक प्रकार की स्त्रियों से मिल जुलकर आनंद मनाने का अवसर मिलता है, तो वह 'हम्माम-घर' (स्नानागार) है, यहाँ कई स्त्रियों से मिलना होता है, इधर उधर के समाचार भी मिल जाते हैं, और विनोद की यथेष्ट सामग्री भी प्राप्त हो जाती है। तुर्की लोगों की कितनी ही शास्त्रोक्त विधियों में से 'स्नान' भी एक है, यह विधि सिर्फ 'हम्माम' में की जा सकती है, घर पर नहीं। कई स्त्रियाँ तो इस विधि के लिए 'हम्माम' जाती हैं, और सारा दिन वहीं बिता देती हैं।

तुर्क-रमणी को बाहर कहीं जाने के लिए पति से आज्ञा लेना पड़ती है। इस 'आज्ञा' के लिए उन्हें कोई झगड़ा नहीं करना पड़ता, यह केवल कर्तव्य-मात्र रहता है, पूँछ लिया, और चली गई। वे बाजार में वस्तु खरीद कर सकती हैं मेलों में शरीक हो सकती है, और वायु सेवन के लिए किसी 'आराम' में भी जा सकती है, इस्तम्बल (कान्स्टिन्टिनोपुल) शहर के आस पास ही 'बास फरस' की खाड़ी के ऊपर का दृश्य अत्यन्त ही रमणीय, और चित्ता-कर्षक है। इसके पास कितने ही हरे भरे, सृष्टि सौंदर्य से परिपूर्ण शांत-स्थल लगे हुए हैं। यहाँ भी प्रति दिन सैकड़ों महिलाएँ अपना अधिकांश समय विनोद-विहार में बिताया करती हैं। धनवान और अधिकारियों की रमणियाँ अपने अनुचरों के साथ यहाँ आती हैं। इतना ही नहीं बल्कि स्वयं सम्राट् के अन्तःपुर की ललनाएँ भी अपने सुसज्जित चोबदारों के साथ इन स्थलों पर आ पहुँचती हैं और घण्टों तक मनोरञ्जन किया करती हैं। इन विहार स्थलों पर आने वाली भद्र महिलाएँ रास्ते में एक रेशमी महीन-वस्त्र मुंह पर ढँक लेती हैं। अब तो एक नवीन दो पल्लों वाला छोटा सा रूमाल-नुमा वस्त्र जिसे 'चिट्-चफ्' कहते हैं, काम में ले लिया जाता है। वह खूब सूरत भी है, पर्दा भी है, और महीन इतना है कि सारा मुंह साफ दिखाई पड़ता है, पर 'रीति' के लिए यह तमाशा करना जरूरी है!

लड़के विवाह योग्य वय हो जाने पर उसके लिए वधु चुनने

का काम उसकी माता करती है, अपने निकट सम्बन्धियों अथवा परिचितों में कन्या मिल जाय तो कोई कठिनाई नहीं पड़ती, अन्यथा उन्हें अनेक उपाय करने पड़ते हैं। अपने पुत्र की परिस्थिति के अनुकूल कन्या प्राप्त करने के लिए अपने लोगों की, जिनके घर लड़की हो, एक सूची तैयार कर लेती है। इसके बाद अपने साथ एक-'विवाह-दलाल' को लेकर सूची के अनुसार क्रमशः एक २ घर घूमती है। जिस कुटुम्ब में वह जाती हैं, वहाँ उनका खूब स्वागत-सत्कार किया जाता है। स्वयं वह कन्या जिसे देखने के लिए वर-माता आई है, वस्त्रा भरण से सुसज्जित हो हाथ में कॉफी लिए बाहर आती है, और नियमानुसार नम्रता से वंदन कर 'कॉफी' अर्पण कर देती है, इस समय वह कन्या अपने से बन पड़े वैसी सभ्यता कर आकर्षित करने का उपाय करती है। आगन्तुक-महिला कन्या की प्रशंसा कर फिर अन्यत्र जाती है। इस प्रकार सूची के अनुसार प्रत्येक कन्या के घर पर जाकर अपना अनुभव कर लेने के पश्चात् गुण-दोष विवेचन कर किसी सर्व श्रेष्ठ एक कन्या की प्राप्ति के लिए यत्न करती है। और यदि वह सम्भव हुआ तो यत्न के बाद 'लग्न' हो जाता है।

बादशाही जनाने में सैकड़ों स्त्रियाँ होती है। गद्दी नशीन सुल्तान की माता वालिदी-सुल्ताना' कही जाती है, इन वालिदी-सुल्ताना का सारे जनाने पर पूरा अधिकार रहता है। सुल्तान की मुख्य बेगम को 'वालिदी-सुलताना' के अनुशासन का पालन करना पड़ता है। इनके भृत्य अलग अलग ही रहते है। जब नया सुल्तान सिंहासनारूढ़ होता है तो पूर्व वालिदो-सुल्ताना अपने अधिकारों से स्वयं हट जाती है और इस अधिकार की अधिकारिणी वही पूर्वोक्त 'मुख्य बेगम' हो जाती है। पूर्व 'वालिदी-सुल्ताना' की दासियाँ भी बदल दी जाती हैं, उनके स्थान पर नव-नियुक्त होती हैं।

यह हम ऊपर कह आए हैं कि 'वालिदी-सुल्ताना' को जनाने का कुल अधिकार रहता है। यह बड़ा कठिन काम है। इसमें सहायता के लिए उन्हें और १२ स्त्रियाँ दी जाती हैं। इन सहायिकाओं का नाम तुर्की-भाषा

में 'कालफा' कहा जाता है, इन 'कालफाओं' को जनाने की व्यवस्था में सहायता देने के अतिरिक्त इतर दासियाँ एवं सहायिकाओं को छोटी छोटी बातों की शिक्षा भी देनी पड़ती है। प्राय: ये स्त्रियाँ 'गुलाम' के रूप में खरीद की हुई होती हैं।

'कालफे' की स्त्रियों को कहीं बाहर जाना हो तो सामान के साथ भेजा जाता है। कभी कभी वे मस्जिद में जाया करती है, कहीं मिलने जुलने भी जाती हैं; परन्तु बाहर जाना उनका कम ही होता है। वे यद्यपि सुशिक्षित होती हैं, पर जनाने मे 'कालफा' रूप में प्रवेश करने के पश्चात् परतन्त्र विशेष रहने के कारण अपने लिये बौद्धिक विकास का साधन नहीं बना सकती है। उन्हे अपने लिये समय ही नहीं मिल पाता। जनाने की सहायता का काम समाप्त होते ही उन्हे दास दासियों की ओर दृष्टि देनी पड़ती है, यदि इधर से समय बचा तो सरकारी कपड़ों की पसन्दगी खरीदी और आभूषणों की सार सम्हाल करनी पड़ती है। इन निर्जीव कार्यों मे सारा समय बीत जाता है।

यद्यपि तुर्किस्तान में कन्याशालाओं की वृद्धि होती जा रही है, तथापि स्त्री शिक्षा के लिहाज से तुर्क बहुत पीछे है, उसमे कहने योग्य परिवर्तन नहीं हो सका है।

तुर्की महिला भूत-प्रेत बाधा मे विशेष तंग रहती हैं, उनका इनके अस्तित्व पर और मन्त्र-तन्त्रो कृति पर पूरा विश्वास है। यूरोप के लोग इसी कारण अपना यह मत बना बैठे हैं कि—"इस्लामी स्त्रियो मे भूत-प्रेत की आस्था है और वे इस मर्ज की मरीज भी हैं"।

तुर्किस्तान की अधिकांश महिलाएं बाहर घूमने फिरने वाली हैं, अतएव बड़े घरो की स्त्रियों से अधिक स्वतन्त्र और निरोग रहती हैं। वहां की प्रान्तीय स्त्रियां घोड़े की सवारी करती हैं। वे अपने पति के साथ यात्रा करती रहती हैं, वे साहसी और श्रमशील होती हैं। अतएव राजकीय एवं सामाजिक प्रश्नो मे भी भाग लेती हैं। उनमे पर्दा नहीं होता। कभी बाहर जाने के समय एक छोटा सा जालीदार कपड़ा मुँह पर ढक

लेती हैं। किन्तु उनमें अन्य स्त्रियों की अपेक्षा बाह्य जगत का अनुभव विशेष रहता है। उनमें इस 'स्वतन्त्र जीवन' के कारण और भी आत्म-गौरव की मात्रा बढ़ गई है। वे अपने इस स्वातन्त्र्य का सदुपयोग ही नहीं करती, बल्कि, सर्वसाधारण के साथ वे अपना वर्ताव भी विवेक और शील युक्त करती हैं।

अपनी सहधर्मी प्रजाओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने वाले, इस मुस्लिम देश के इतिहास से विदित होता है कि जितने सुधार आज तक उनकी महिलाओं में हो पाये है वे पर्याप्त नहीं हैं, बहुत कुछ होना बाकी है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वे भारतवर्ष में गिरी हुई अवस्था में हैं ? भारतीय मुसलमान स्त्रियों से उनका जीवन सर्वथा उन्नत और सुधरा हुआ है।

तुर्क वासी "स्वर्ग माता के पैरों में है" यदि इस सिद्धान्त को 'मूल मन्त्र' मानते हैं तो उन्हें चाहिये कि वे अपनी माताओं को नीरोग, उत्साही, समर्थ, बुद्धिमान, कार्यदक्ष और गृह व्यवस्था में विवेकी एवं विचारशील बनावे। पर यह तभी सम्भव है जब कि वे अपने 'जनानखानों' को शीघ्र ही तोड़ देवें। आज 'तरुण-तुर्क' इन बन्धनों को तोड़ने और सांसारिक रूढ़ियों को 'तलाक़' देने के लिये भगीरथ प्रयत्न कर रहा है। हम परतन्त्र देशवासी उस 'तरुण-तुर्क' को क्या कहें ? ईश्वर उन्हें इस सदुद्योग में सफलता प्रदान करे और साथ ही यह प्रार्थना करते हैं कि— भारतनिवासी मुस्लिम समाज में भी उन सद्भावनाओं की प्रेरणा करे।

गान्धी, लैनिन और मुसोलिनी

(A study of the tendencies in international situation)

(लेखक—साहित्य-रत्न श्री पं० श्रीकृष्णदत्त जी पालीवाल एम० ए०)

[श्रीमान पालीवाल जी युक्त-प्रान्त के प्रमुख साप्ताहिक 'सैनिक' के सम्पादक और प्रान्त के प्रमुख कार्यकर्त्ता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के आप प्रसिद्ध विद्वान हैं। युक्त-प्रान्तीय कौंसिल के आप प्रभावशाली मेम्बर भी रह चुके हैं। हिन्दी संसार आपसे भली भांति परिचित है। आपका यह लेख बहुत विलम्ब से मिलने के कारण इतना पीछे छापा जा रहा है। —सम्पादक।]

तीन प्रगतियों की तीन प्रतिमाएं

बीसवीं शताब्दी में. गान्धी. लैनिन और मुसोलिनी ये तीन महा-पुरुष ऐसे हुए हैं जो अर्वाचीन संसार की तीन सबसे बड़ी प्रगतियों की मूर्तिमान प्रतिमा कहे जा सकते हैं। ये तीन प्रगतियां क्या हैं, मानव-जाति पर ये अपना क्या प्रभाव छोड़ जायेंगी, मानवीय उन्नति के इतिहास में उनका स्थान क्या होगा इन्हीं प्रश्नों पर आज इस लेख में विचार करना है। परन्तु इन जटिल प्रश्नों को अच्छी तरह समझने के लिये यह आवश्यक है कि पहले इन प्रगतियों की

उत्पत्ति का इतिहास

जान लिया जाय। मानव-समाज ने अपनी उन्नति के लिये जिन संस्थाओं का आविष्कार करके उनका उपयोग किया उनमें शासन-संस्था सर्व प्रधान संस्थाओं में से है। अर्वाचीन राजनीति के आचार्य शासन-संस्था के कार्य-क्षेत्र (Scope of Government) को सर्वव्यापी समझते हैं और संसार के अधिकतर सभ्य राष्ट्र उनके इस मत पर अमल कर रहे हैं। यह निर्विवाद है कि मानव चरित्र पर प्रभाव डालने के लिये शासन-संस्था सबसे अधिक शक्तिशाली एजेंसी है। इस दृष्टि से देखने पर तो यह कहना भी अनुचित न होगा कि शासन-संस्था इस समय मनुष्य समाज

की सर्व प्रधान संस्थाओं में से ही नहीं है बल्कि वह सर्व प्रधान संस्था है। प्रोफेसर हक्सले के कथनानुसार "The motive of the drama of human life is the necessity, laid upon every man who comes in to the world, of discovering the mean between self assertion and self restraint suited to his character and circumstances" अर्थात् मनुष्य जीवन का यह सब नाटक अपनी अपनी परिस्थिति और अपने अपने चरित्र के अनुसार आत्म-प्रसार और आत्म-संयम के बीच का मार्ग ढूंढने की अनिवार्य आवश्यकता के कारण रेन लगा रहा है। आत्म-प्रसार की आवश्यकता से संसार में वह भयङ्कर मारकाट मची हुई है जिसे विकास-वादी जीवन-संग्राम (Struggle of existence) के नाम से पुकारते हैं और आत्म-संयम की आवश्यकता से मनुष्य-समाज में वह दैवी विभूति काम करती हुई देखी जाती है जिसे प्रिंस क्रोपटकिन ने पारस्परिक सहायता (Mutual aid) कहा है। इन्हीं दोनों के सामञ्जस्य की अनिवार्य आवश्यकता से विवश हो कर इस द्विपद जन्तु को अरिस्टोटल का राजनैनिक जन्तु (Political animal) बनना पड़ा—समाज के शासन-सूत्र में बंधना पड़ा। उपयुक्त शासन-विधान की इन दोनों उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव को तरह दूर की चीजों को मिलाने के उपाय की निरन्तर खोज में मानव बुद्धि ने यह पता लगा लिया कि स्वराज्य (Self Government) में ही इन परस्पर विरोधी प्राकृतिक प्रेरणाओं में सामञ्जस्य स्थापित हो सकता है। परन्तु जैसे किसी विकट रोग का जड़ से खोने वाली औषधि केवल जिन चीजों के मिलाने से वह औषधि बनती है उनके नाम जान लेने मात्र से नहीं बनाई जा सकती, जब तक कि यह न जान लिया जाय कि कौनसी औषधि किस मात्रा में और किस रूप में मिलानी चाहिये, वैसे ही जब तक मनुष्य-समाज स्वराज्य के सच्चे स्वरूप को न जानले तब तक वह उसके जरिये में इन दोनों प्रचण्ड प्रेरणाओं में सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर सकता। और अभी तक मनुष्य समाज स्वराज्य के सच्चे स्वरूप

को नहीं जान सका है। उन्नीसवीं शताब्दी में जब लगभग सर्वत्र संसार में लोक-तन्त्र का सिक्का जम गया तब लोगों ने समझा था कि लोक-तन्त्र ही स्वराज्य का सच्चा स्वरूप है। परन्तु आज

लोक-तन्त्र कसौटी पर

है। यूरूप के बहुत से विद्वान विचारक लोक तन्त्र के स्वराज्य होने में सन्देह करने लगे हैं। एच० जी० वैल ने तो 'Democracy in revision' लोक तन्त्र का संशोधन शीर्षक लेख में स्पष्ट रूप से लोक तन्त्र को बिल्कुल बेकार बताया है। बर्नार्डशा ने भी मुसोलिनी की प्रशंसा करते हुए लोक तन्त्र के वर्तमान प्रचलन पर प्रबल प्रहार किये हैं। पार्लियामेंट की पद्धति की सदोषता तो उसके परिणामों से प्रकट है—यह प्रत्यक्ष है कि जिन देशों में वह प्रचलित है उसमें उसने जीवन संग्राम को कम न करके उलटा बढ़ा दिया है। लोकतन्त्र की इस विफलता की जो प्रतिक्रिया हुई है वही तीन विभिन्न सरिताओं—प्रगतियों—के रूप में प्रकट हुई है। और गान्धी लैलिन और मुसोलिनी इन्हीं तीन प्रगतियों की प्रतिमाएं हैं।

मुसोलिनी

इन तीन प्रगतियों में से हम पहले उस प्रगति पर विचार करेंगे जो मुसोलिनी के रूप में प्रकट हुई है क्योंकि यह प्रगति यद्यपि इस समय अपने वर्षा काल में क्षुद्र नदी की तरह बहुत जोरों पर है तथापि वह थोड़े ही दिनों में सूख जायगी। बोल्शेविज्म या लैनिन वाद के कच्चे अनुयायी इटली में बोल्शेविज्म फैलाने में बुरी तरह असफल हुए। उसी असफलता ने मुसोलिनी को जन्म दिया। यूरोपीय पूंजीपति बोल्शेविज्म से प्राणान्त भयभीत थे इस लिये उन्होंने मुसोलिनी को अपने त्राता के रूप में देखा। यही मुसोलिनी की चमत्कारिणी परन्तु क्षणस्थायी लोकप्रियता का रहस्य है। समाज को शासन की आवश्यकता है, इटली के साम्यवादी इस आवश्यकता को पूरी न कर सके, मुसोलिनी ने उनकी इस निर्बलता को अच्छी तरह समझ लिया और उसने काली कुर्ती वाले स्वयं-सेवकों की सुदृढ़ सेना सुसङ्गठित करके उन्हें धर दबोचा और समाज की

शासन की आवश्यकता पूरी कर दी। फिर क्या था उसकी तूती बोलने लगी। मुसोलिनी का मत यह मालूम होता है कि पार्लियामेण्टी पद्धति व्यर्थ है। यदि सुदृढ़ शासन-संस्था द्वारा लोक-संग्रह किया जाय तो वह पार्लियामेण्टी पद्धति से कहीं अच्छा है। फिर चाहे वह लोक-मत के विरुद्ध ही क्यों न हो। वह लोक-मत को किसी शासन के विरुद्ध उस समय तक मानने को तैयार नहीं है जब तक वह लोक-मत शासन को उलट न दे। इस लिये बीच के लोक-मत के विरोध को घृणा की दृष्टि से देख कर उसे पैरों तले रौंदता है। प्रेस की स्वाधीनता, नागरिकों की स्वाधीनता आदि वाक्यों को वह सर्वथा अर्थहीन समझता है। और अपने मत के अनुसार जबरदस्ती लोक हित करने को ही सच्चा लोक-तन्त्र समझता है। अपने इस कार्य-क्रम की पूर्ति में वह पूंजीपतियों और सत्तावादियों की भी ऐसी परवा नहीं करता। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी, यह स्पष्ट है कि मुसोलिनी का यह मत भ्रम पूर्ण है। उसकी सफलता टिकाऊ नहीं है। हाँ, स्वयं-सेवकों की शक्ति और क्षमता का उसने मनुष्य-जाति को जो ज्ञान कराया है वह ऐसा अवश्य है जो स्वराज्य के सच्चे स्वरूप की खोज में, आत्म प्रसार और आत्म संयम का सामञ्जस्य स्थापन करने में भारी मदद दे सकेगा।

लैनिन

लैनिन लोक-तन्त्र की पार्लियामेण्टरी पद्धति की विफलता की प्रति क्रिया की जिस प्रगति की प्रतिमा है वह स्वराज्य के सच्चे स्वरूप की खोज में मानव-समाज के प्रयोगों में बहुत बड़ा, बहुत बड़ा क्या, प्रयोगों में तो सबसे बड़ा प्रयोग है। लैनिन वाद कहिये या बोल्शेविज्म अथवा कलियार्क्स-वाद, यह कहता है कि सच्चा लोक तो गरीबों का है। श्रमजीवी अथवा मजदूरों की संख्या लोक में नब्बे फीसदी है और वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में इसी लोक का अहित हो रहा है। दस फीसदी अमीरों और नब्बे फीसदी गरीबों में भयङ्कर सङ्घर्ष हो रहा है। यह श्रेणी युद्ध (Class war) आत्म-प्रसार का प्राकृतिक परिणाम है और आत्म-

संयम से उसका मेल तब तक नहीं हो सकता जब तक समाज का वर्तमान, आर्थिक और राजनैतिक सङ्गठन बिलकुल उलट न दिया जाय। उनका कहना है कि समाज में वैयक्तिक सम्पत्ति को कोई स्थान नहीं मिलना चाहिये। 'सबै भूमि गोपाला की है'। फिर कैसे जमींदार और कैसी सरकार! जितनी ज़मीन है वह सबकी मानी जानी चाहिये। ज़मीन से जो चीज़ें मिलें या पैदा हों वे भी सब पञ्चों की मानी जांय। जो कमावे वह खावे। बैठा-बैठा कोई मौज़ न उड़ाने पावे। शासन में सब की सम्मति सीधी ली जावे। पार्लियामेण्टरी पद्धति में प्रतिनिधित्व उतना सीधा नहीं होता जितना होना चाहिए और समाज के वर्तमान आर्थिक संगठन में मिहनत करते हैं मज़दूर और मौज़ उड़ाते हैं पूंजीपति हुज़ूर। इसलिए बोल्शेविक शासन होना चाहिये। और देश की समस्त सम्पत्ति सब लोगों की मानी जानी चाहिये। आज दस वर्ष से इस मत का प्रयोग रूस जैसे विशाल देश में हो रहा है और इस समय यूरोपीय समाज कार्लमार्क्स के ग्रन्थ पर लोगों की जितनी श्रद्धा है उतनी बाइबिल पर भी नहीं है।

गान्धी

पार्लियामेण्टरी पद्धति कहिये अथवा पाश्चात्य आर्थिक और सामाजिक सङ्गठन कहिये गान्धीवाद एक शब्द में पाश्चात्य लोकतन्त्रकी विफलता ही नहीं पाश्चात्य सभ्यता की विफलता की प्रतिक्रिया की प्रगति है। यद्यपि गान्धीवाद ने स्वराज्य के स्वरूप की कोई निश्चित योजना संसार के सामने नहीं रक्खी परन्तु लोकतन्त्र के स्वरूप के सम्बन्ध में उसका मत महात्मा गांधी के लेखों, व्याख्यानों और 'हिन्द-स्वराज्य' में भली भांति जाना जा सकता है। गाँधीवाद स्वराज्य का अर्थ 'स्व' का राज्य समझता है। वह आत्म-बल और चरित्रबल से आत्म-संयम की भावना को बलवान बना कर आत्म-प्रचार से उसका सामञ्जस्य स्थापित कर देना चाहता है। वह ग़रीबों का उद्धार चाहता है, लोक का कल्याण चाहता है पर अमीरों का विनाश नहीं चाहता। श्रेणी युद्ध नहीं चाहता। जो लोग महात्मा जी

की विचार धारा का ध्यान पूर्वक अध्ययन करते रहे हैं उन्हें यह जान लेने में कोई कठिनाई न होगी कि यदि महात्मा गांधी कभी स्वराज्य के स्वरूप की योजना उपस्थित करेंगे तो वह तपोनिष्ट लोक-सेवकों, गीता के 'समबुद्धि कर्म योगियों,' का शासन होगा। वे देशबन्धु दास की स्वराज्य योजना के अनुसार यूरोपीय चुनाव-पद्धति को उसके वर्त्तमान रूप में पसन्द नहीं करेंगे। स्वयं-सेवकों के उपयोग में गान्धी-वाद और फैसिज्म में समता है—यद्यपि गान्धी-वाद के स्वयं-सेवकों में और फैसिस्टो में वही अन्तर हो सकता है जो देव-दूतों में और यम-दूतों में। लैनिन-वाद आत्म-प्रसार, जीवन-सङ्क्रम, श्रेणी-युद्ध द्वारा आत्म-संयम से सामञ्जस्य स्थापित करना चाहता है, गाँधीवाद आत्म-संयम द्वारा, त्याग, सेवा और बलिदान द्वारा आत्म-प्रसार से सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है। दोनों का उद्देश एक होते हुए भी, दोनों की पद्धति एक दूसरे के बिल्कुल प्रतिकूल है। वर्तमान आर्थिक और राजनैतिक सङ्घटन के लिये दोनो संहारक हैं परन्तु गान्धी वाद शिव-स्वरूप है, लैनिन-वाद रौद्र-रूपा, देव एक है, स्वरूप दो है। अपनी अपनी रुचि और प्रकृति के अनुसार कोई गांधी वाद को श्रेष्ठ समझता है, कोई, लैनिन-वाद को। फिर भी इतना स्पष्ट है कि भारतीय परिस्थिति, भारतीय परम्परा, भारतीय प्रकृति और भारतीय चरित्र के लिये गांधीवाद भारत के लिए अधिक उपयुक्त है और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि उन्नति के शिखर पर चढ़ने में मनुष्य समाज को जितनी सिढ़ियाँ पार करनी है उनमें गांधीवाद, लैनिन-वाद से कहीं ऊपर की सिढ़ी है।

स्वराज्य सङ्क्रम

परन्तु मानव समाज का कल्याण इन में से किसी एक प्रगति से नहीं हो सकता। मनुष्य-जाति तो अपने आँखों से तभी तर सकेगी जब वह स्वराज्य की इन तीनो सरिताओं की त्रिवेणी में स्वराज्य-सङ्क्रम मे गोता मारे। फैसिज्म इस त्रिवेणी की सरस्वती है क्योंकि वह सङ्क्रम

होने पर लुप्त हो जायगी। लैनिन-वाद यमुना है क्योंकि वह गांधी-वाद की गङ्गा की छोटी बहन है। लैनिन-वाद और गांधी-वाद दोनों को फैसिस्ट से स्वयं-सेवकों की शक्ति और समता की शिक्षा ग्रहण करनी है। फिर गांधीवाद की गङ्गा को लैनिन वाद की जमुना (Mass action) लोक क्रिया मे मिलना है तभी इन तीनो प्रगतियों की त्रिवेणी बन सकेगी। गांधी वाद का झुकाव अभी व्यक्ति-वाद, वैयक्तिक मोक्ष पर है, उसे लोक-संग्रह और लोक-कल्याण के लिए, लोकोद्धार द्वारा आत्मोद्धार करने के लिए, बड़े पैमाने पर लोक-हित-कर काम करने, प्रोफेसर पीगू के शब्दों मे धन द्वारा लोकहित करने, लोक सम्पत्ति और लोक-हित का सम्बन्ध जानने, लोक-हित का अर्थशास्त्र समझने की आवश्यकता है।

इटालिया

(कलकी एक इतिहास प्रसिद्ध घटना का सनसनीदार विवरण)

(लेखक—श्री वक्रतुण्ड'।)

१७ अप्रेल सन १९२८ को मनुष्य जाति के ज्ञान की अनुपम वृद्धि के लिये विशाल बलिदान तथा आत्म-बल का ज्वलन्त उदाहरण संसार के सन्मुख रखते हुए, उत्तरी ध्रुव के विषय में अधिक अन्वेषण करने की कामना से 'इटालिया' (Italia) नामक हवाई जहाज कप्तान अम्बर्टो नोबाइल (Capt Umberto Nobile) के नेतृत्व में मिलन (Milan) नगर से रवाना हुआ। मिलन से यह जर्मनी के अन्तर्गत एक नगर स्टाल्प (Stolp) पहुँचा और तूफान तथा आंधी के कारण कुछ मरम्मत कर आकाश स्वच्छ होने पर ३ मई को स्पिट्ज़बर्गन के लिये रवाना हुआ। दूसरे ही दिन नार्वे (Norway) के वादसो (Vadsoe) नगर पहुंच कर तूफान के कारण इसे पुनः अपनी यात्रा रोकनी पड़ी। कई दिन बाद यह किंग की खाड़ी (Kings bays के अड्डे पर उतरा। १६ मई को अपनी प्रथम आर्कटिक (Arctic) उड़ान प्रारम्भ की और

दूसरे ही दिन लेनिन ग्रेड पहुँचा। १८ ता० को वह स्वालबर्ड-स्पिट्ज़बर्गेन (Sua bard, Spitzbergan) पहुँचा और वहाँ से यह रिपोर्ट भेजी कि अभी तक कोई नवीन भूमि नहीं मिली है। २४ मई को प्रातःकाल जेन० नोबाइल (Gen Nobile) उत्तरी ध्रुव के लिये रवाना हुए और उसी दिन वहाँ अर्द्धरात्रि के बाद पहुंच गये। इस प्रकार लेनिन लैण्ड को किंग की खाड़ी से २००० मील की सफल यात्रा करके और कुशल पूर्वक लौट कर यह जहाज़ २४ मई की अर्द्धरात्रि को उत्तरी ध्रुव पहुंच गया। दो घण्टे तक वहाँ वह चक्कर लगाता रहा। कुछ झण्डे तथा 'क्रास' (इसाइयोंका चिन्ह) गिरा कर लौट पड़ा। उस समय हवा बड़ी तेज़ बह रही थी पर वीर-उड़ाकों ने इसकी चिन्ता न की। किंग की खाडी से २२८ मील की दूरी पर जब तक जहाज़ था—तब तक तो पता था कि सब कुशल पूर्वक बीता—परन्तु उसके बाद रेडियो से खबरें आना बन्द होगया।

इटालिया हवा के प्रवाह के कारण दिशा तथा परिस्थिति का ठीक अन्दाज़ न लगा सका। वह एक ऊंचे बर्फ के टीले से टकरा गया और केबिन फट कर अलग होगया। 'बड़ा थैला'—हवा के प्रवाह के संग सात आदमियों को लेकर न जाने किस अज्ञात भविष्य की ओर उड़ गया। कप्तान तथा उनके आठ आदमी पृथ्वी पर फिंक गये। सौभाग्य से इनके पास थोड़ासी रसद तथा एक रेडियो-यन्त्र भी गिर गया था। बस यहीं से इस दर्दनाक घटना का रोमाञ्चकारी नाटक प्रारम्भ होता है।

प्रकृति एक निर्दय देवी है। उसने इनके साथ घोर से घोर अकृपा की। अपने को एकदम अज्ञात लाचार अवस्था में बर्फ के टुकड़े पर देख कर, बाहरी सहायता बुलाने की क्षीण आशा से, इस दल में सबसे दृढ़ तथा साहसी तीन वीर समुद्र के छोर की ओर चल पड़े—सम्भव है, कोई मछुये की नाव ही सहायता के लिये मिल जाय! परमात्मा जाने उन बिचारों का भविष्य क्या हुआ। भगवान जाने वे बर्फ में गल गये या प्रकृति ने उनको किस प्रकार पीस डाला!—और सम्भवतः इसी प्रकार वे सात वीर—जो हवा में उड़ते चले गये उनका क्या हुआ?

जहाँ कहीं प्रकृति मनुष्य की यन्त्रीय शक्ति से संघर्ष करती है—ऐसी ही निर्दयता पिशाचिनी त्रास देती है !

पाठक, क्षण भर के लिये इस भयंकर घटना का और भी भीषण दृश्य सुनिये ! कप्तान नोबाइल एक बर्फ़ के तैरते टुकड़े पर गिरे थे और उनके साथ पांच प्राणी थे। दिन प्रतिदिन वह टुकड़ा इधर उधर तैरता चक्कर लगाता जाता था और पानी में धीरे धीरे गलता जा रहा था। दो दिन बाद—२६ मई को दुर्बल रेडियो समाचार संसार को मिला कि कप्तान नोबाइल का जहाज़ टूट कर बर्फ़ पर गिरा पड़ा हुआ है। दुर्घटना सुनते ही सारा संसार कांप उठा। संसार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बेचैनी छा गई। चारों ओर शोर मच गया। फ़ौरन सबसे पहले नारवे ने, फिर इटली, फ्रांस, रूस, स्वीडन तथा फ़िनलैण्ड ने अच्छे से अच्छे हवाई जहाज़ तथा उड़ाके उनकी तलाश में रवाना किये। उस समय, विपत्ति के अवसर पर रूस ने इटली के प्रति अपने बैर को भुला दिया और बड़े उत्साह से खोज जारी की। यह बीसवीं शताब्दी है। इस युग में शैकल्टन (Shackleton) और स्टिफ़ानसन (Stefansson) का युग नहीं है। वे बिचारे प्रसिद्ध उड़ाके थे पर रेडियो या बेतार का यन्त्र उनके पास न था। पहले संसार का उड़ाका अन्वेषक महीनों तक संसार से छिपा रहता था पर पता न चलता था कि वह अभागा कहां है। पर अब तो उड़ाके प्रातःकाल यदि उत्तरी ध्रुव पहुँचते हैं तो दोपहर तक सारा संसार उनका भविष्य तथा कार्य जान जाता है। बर्फ़ के टुकड़े पर पड़े नोबाइल साहब सौभाग्य से बचे उस रेडियो यन्त्र द्वारा संसार को अपना समाचार भेजते रहे।

इन्हीं कमज़ोर खबरों के आधार पर कप्तान की तलाश शुरू हुई। प्रकृति भी कैसी कठोर है। हवा पानी का ज़ोर बढ़ गया। अधिकांश समय घना कुहरा छाया रहता। प्राकृतिक आपदाओं का कोई अन्त नहीं। ऐसे समय भी हवाई जहाज़ इनके पास पहुँच जाते थे। इनको ये देख भी पाते थे पर ऐसी भूमि पर हवाई जहाज़ का उतरना

असम्भव था। वे नीचे तक आते, खाने पीने का सामान गिरा कर फिर चले जाते थे। कभी कभी तो ऐसा हुआ है कि हवाई जहाज़ इनके ऊपर से उड़ गये हैं। इन विपत्ति के मारे पुरुषों ने उन्हे देखा भी है—पर चेष्टा करने पर भी वे उनका ध्यान नहीं आकृष्ट कर सके हैं।

पाठक कहने के लिये तो यह सरल बात है पर आप क्षण भर के लिये उनकी विपत्ति का अन्दाज़ लगाइये—यह सब किस लिये हो रहा था! केवल संसार के ज्ञान के लिये कुछ महापुरुषों का अपूर्व त्याग था। पर अब हम इससे अधिक महत्वपूर्ण अङ्ग इस घटना का बतलावेंगे।

आज के दो वर्ष पूर्व नोबाइल और प्रसिद्ध उत्तरी-ध्रुव अन्वेषक कप्तान आमुण्डसेन (Amundsen) एक साथ उत्तरी ध्रुव की विकट यात्रा में उड़े थे। परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि दो धुरन्धर विद्वान् अथवा महारथी में कभी पूरी तरह पटरी नहीं बैठती। हमारे भारत में इसके लिये फरांसीसी गवर्नर डूपले (Dupleixe) तथा प्रसिद्ध फरांसीसी नौ-सैनिक कप्तान ला बोर्डनाये (La Bourdanaes) का उदाहरण है। इन दोनों की पारस्परिक फूट के कारणही सन १७४८ में दुर्बल अंग्रेजों ने पोंडिचरी ले लिया था। इसी प्रकार कप्तान आमुण्डसेन तथा नोबाइल की न पटी। पारस्परिक विरोध ने घोर शत्रुता का रूप धारण कर लिया और दोनो एक दूसरे से बड़ी नफ़रत करने लगे। परन्तु वह शत्रुता हम भारतीयो की शत्रुता न थी। वह तो एक बड़ी उदार वस्तु के रूप मे परिणत हो गयी! कप्तान नोबाइल की विपत्ति का पता लगते ही शेर आमुण्डसेन जाग उठा। इसने उनका पता लगाना निश्चित कर लिया। फ्रान्स के कप्तान गिलबाड (Gilbaud) द्वारा सञ्चालित मशीन पर कप्तान आमुण्डसेन लेफ्टेनेण्ट डेट्रेशन (Lt. Dietrischen) के साथ, जो नारवे निवासी तथा प्रसिद्ध सेनानी थे, वे नोबाइल का पता लगाने के लिये निकले। आमुण्डसेन का बैरी नोबाइल था—पर वीरवर वीरता का अर्थ व्यापक घृणा नहीं रखते, उनका तो कहना है कि—

ते शतंतु वयं पञ्च परस्परेतु विवादिने ।
परैस्तु विग्रहे प्राप्ते वयं पञ्चाधिकं शतं ॥

अस्तु, सारा संसार इनकी उदारता पर मुग्ध हो गया । पर प्रकृति की राक्षसी प्यास न बुझी थी । नॉरवे और किंग की खाड़ी से ६०० मील बीच के फ़ासले से उनका समाचार मिलना बन्द हो गया और यदि बर्फ़ वग़ैरः पर कमान आमुण्डसेन कहीं भूखों मर नहीं रहे हैं तो अवश्य बर्फ़ में गल कर मर गये होंगे । किसी से वैर कर के भी उसके लिये जान देने की यह अनुपम मिसाल है ।

काल-चक्र ने कमान नोबाइल को बचा दिया पर श्री आमुण्डसेन का बलिदान हो गया । ईश्वर ने जिस प्रकार प्राण लेने के अनेक साधन बना रक्खे हैं उसी प्रकार प्राण-रक्षा के भी अनेक साधन हैं । छोटे से रेडियो यन्त्र ने कमान के प्राण की रक्षा की । उसकी कमज़ोर ख़बरों के सहारे हवाई जहाज़ पता लगाते घूम रहे थे । कभी कभी तो कमान तथा उनके पैदल यात्रियों को देख भी लेते थे पर इतने ऊबड़ खाबड़ स्थान पर वे होते कि वहाँ उतरना असम्भव होता और इसी लिये वे केवल रसद गिरा कर चले जाते थे । अन्त में इटली के मेजर मैड्डेलेना (Major Maddalana) ने नोबाइल तथा उनके दलको बचा लिया—जब पूरे एक महीने तक ये बिचारे तैरते बर्फ़ पर संकटमय जीवन व्यतीत कर चुके इनका उद्धार हो गया । इस यातना की अवधि में कितनी पीड़ा उठानी पड़ी होगी इसकी प्रत्यक्ष मिसाल यह है कि उद्धार होते ही कमान को इन्द्रिय-शून्यता की घोर बीमारी हो गयी और कई दिन तक वे अन्य साथियों का पता लगाने के लिये कोई बात न बतला सके ।

विस्तारभय तथा स्थानाभाव के कारण हम पूरा विवरण तो नहीं देना चाहते, कमान नोबाइल के अन्य साथी दो दलों का तथा कमान आमुण्डसेन का पता लगाने का जो प्रयत्न हो रहा है उसको देने की भी आवश्यकता नहीं । इस खोज में जिन सनसनीदार बातों का पता लग रहा है, उनको शायद हिन्दी पाठकों ने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा—

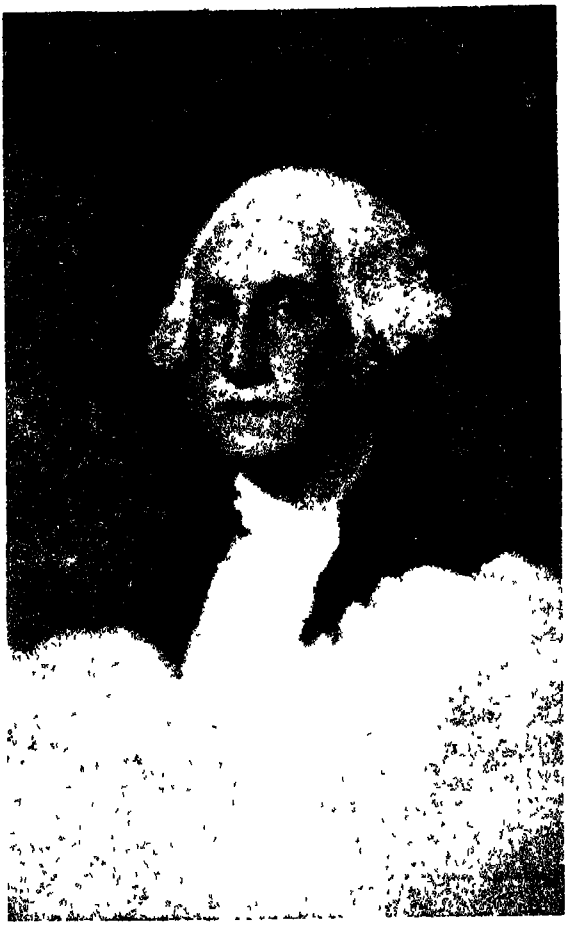
क्योंकि जैसी उनकी रुचि हैं, बिना घटना का अधिक विस्तार बढ़े वे उसे पढ़ते ही नहीं। केवल कप्तान नोबाइल की ही खोज पर सोचिये—बर्फ़ का एक टुकड़ा बहा जा रहा है। उस पर ६ आदमी बह रहे हैं। टुकड़ा दिन ब दिन गल कर छोटा होता जा रहा है। हवाई जहाज़ वह दृश्य देख भी पाते हैं—जिनका उद्धार करना है, उन्हें भी देखते हैं—फिर भी उनके पास ख़राब मौसम तथा कुहरे के बादल या कारण या टुकड़े पर उतरने का स्थान न होने के कारण उतर नहीं पाते—दूसरा सनसनीदार बयान इसी जहाज़ के एक दूसरे खोये दल के यात्री मामग्रेन की मृत्यु का है जिसने स्वयं बर्फ़ में अपनी क़ब्र अपने हाथ से खोदा। वायु जगत में यह सब से प्रधान सनसनीदार घटना है।

मर मिटने की चाह

[लेखक—साहित्यभूषण श्री ब्रजकिशोर जी शर्मा, 'पंकज']

अवनी-तल पर मेघ जिस समय रक्त बुंद बरसाता हो।
क्रूरकाल अङ्गारे बरसा विश्व जलाये जाता हो॥
फिरते हों ले रक्त-सिक्त करबाल चतुर्दिक हत्यारे।
हिला जा रहा हो जगती-तल हाहा-कारों के मारे॥
धारण कर तन पर रक्तांबर उसी समय प्यारे प्रियतम।
रँग भूमि में तीक्ष्ण खँग को जाकर चमकाना चम चम॥
शोणित-सिक्त वीर मुंडों को लेकर गुंथवाना माला।
माँ को पिन्हा शाँत कर देना उसकी विषम कोप ज्वाला॥
रक्त बहा पापी असुरों का भरना प्रियतम सिंधु अथाह।
रण में फिर आगे बढ़ जाना लेकर मर मिटने की चाह॥

वीर-सन्देश



जार्ज वाशिंगटन

महावीर प्रेस, आगरा



चीन की राज्यक्रान्ति

चीन में अकाल

(लेखक—प्रो० श्री नारायणदास जी विद्यालङ्कार)

[लेखक महाशय मासिक 'प्रेम' के सहायक सम्पादक तथा प्रेम महाविद्यालय में गणितशास्त्र के प्रोफेसर हैं। गणितज्ञ होते हुए भी साहित्य तथा राजनीतिक अध्ययन से आपको बड़ा प्रेम है। चीन में इस समय आर्थिक अवस्था कितनी गिर गई है, यह इस लेख से ज्ञात हो सकता है।
—सम्पादक]

कुछ वर्ष हुए चीन में संसार के अन्य देशों की तरह राज्य क्रान्ति हुई। पुरानी राज्य-सत्ता के आवरण को हटा कर चीन ने भी प्रजातन्त्र का पवित्र आवरण ग्रहण किया। इस राज्यक्रान्ति के अवसर पर प्रजा-हित वालों को कितने घोर नारकीय अत्याचार सहने पड़े थे—राजसत्ता के मूलोच्छेदन के पूर्व रक्त की कैसी आहुति देनी पड़ी थी, इसका रोमा-ञ्चकारी हाल हम इसी अङ्क में प्रकाशित राज्यक्रान्ति के एक चित्र से पा सकते हैं। नये युग में नयी राजसत्ता की छत्रछाया में नये सुधार और नई नई उन्नति होनी आरम्भ हो गई। राज्यक्रान्ति के बाद सामा-जिक, आर्थिक, धार्मिक और शिक्षा की क्रान्तियां होने लगीं। अभी चीन में राष्ट्र-निर्माण जोरों से हो रहा था। हर एक क्षेत्र में चीन की जनता दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति कर रही थी। उन्होंने द्विगुणित उत्साह से राष्ट्र निर्माण के कार्य में अपने को तल्लीन कर दिया था परन्तु विदेशियों ने चीन की इस उन्नति में अपनी स्वार्थ-हानि देखी। उन्होंने चीन-निवासियों में फूट के बीज बोने आरम्भ कर दिये। कुछ थोड़े लोग राष्ट्रवादी चीन के विरुद्ध उभारे जाने लगे। उनके इस कार्य से चीन में गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। दक्षिण के राष्ट्रवादी और उत्तर के उनके विपक्षियों में मुठभेड़ होने लग गई। इस गृह-कलह के कारण चीन के राष्ट्र-निर्माण का कार्य स्थगित सा हो गया। अभी राज्यक्रान्ति की अव्यवस्था से पिण्ड छुटा था कि गृह-कलह ने अपना भीषण रूप धारण किया। इसके साथ कई प्रान्तों में प्रकृति भी अपनी भयङ्करता

दिखलाने लगी। अकाल ने अपना भीषण रूप प्रकट किया। एक साथ सभी विपत्ति के आने से किसी देश की क्या दशा होती है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। गृह-युद्ध की विभीषिका के रहते समाजोन्नति का कोई काम होना तो असम्भव है, प्रत्युत उससे और कई प्रकार की—विशेष कर आर्थिक कठिनाई उपस्थित हो जाती हैं। इस तरह की कठिनाई की मात्रा और भी बढ़ जाती हैं, जब प्रकृति भी अपना साहाय्य पूर्ण हाथ हटा लेती है।

चीन में जैसा कि समाचार मिला है, अकाल फैला हुआ है। विशेष कर शांटुङ्ग का प्रान्त तो उजाड़ सा हो गया है। इसका कारण अनावृष्टि, गृह-युद्ध और अत्यधिक कर का लगाया जाना बतलाया जाता है। देश में गृह-युद्ध के रहते ऐसा होना कोई असम्भव नहीं। शांटुङ्ग में इसका फल यह हुआ कि वहां के निवासी प्रति वर्ष १० लाख की संख्या में मनचुरिया जाकर बसने लग गये है। लण्डन इलसट्रेटेड न्यूज के एक संवाददाता ने लिखा है कि चीन के सैनिक संगठन ने वहाँ के निवासियों से ११ वर्ष आगे का कर अभी ले लिया है। इस वजह से वहां के ४० लाख मनुष्य भूखों मर रहे हैं। इस बात में सत्यता की मात्रा कितनी है, ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतना कहा जा सकता है कि—वहाँ के लोगों को अन्न कष्ट अवश्य है। जनवरी मे 'लण्डन टाइम्स' के पेकिंग स्थित संवाददाता ने लिखा था:—

"शांटुङ्ग के दुर्भिक्ष की हालत दिनोंदिन बढ़ रही है। वह प्रान्त उजाड़ सा हो रहा है। लोग भूखों मर रहे है। उनके पास न तो अन्न है और न पहनने को वस्त्र। कहीं कहीं ६० प्रतिशत लोग देश से बाहर विशेष कर मनचुरिया को जा रहे हैं। शेष लोग पेड़ पत्तियां, बकले और भूसा जैसी अखाद्य वस्तु खाकर बीमार हो रहे हैं। वहाँ के निवासी अपने पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिऐ अपने मकानों को तोड़ उनके सामान से खाद्य पदार्थ खरीदते हैं। कोई कोई भूख के मारे अपने बाल बच्चों को भी बेच डालते है। इस तरह वहाँ की हालत हृदय द्रावक

हो रही है। यद्यपि कुछ जगहों में सहायतार्थ दूकानें खोली गई हैं, परन्तु दुर्भिक्ष-पीड़ितों के लिये कुछ संगठित कार्य नहीं हो रहा है।"

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, चीन में गृह-युद्ध जारी था। वे युद्ध के कारण खेती, गृहस्थी पर उतना ध्यान नहीं दे सकते थे जितना देना चाहिये। इस हालत में भी उन्हें युद्ध के लिये द्रव्य देना पड़ता था। अकाल ने इसी समय अपना प्रबल प्रचण्ड रूप दिखलाना आरम्भ कर दिया। अकाल के प्रसार से समाज में नाना प्रकार के अत्याचार होने लगे। इस कारण शांटुङ्ग के निवासी मनचुरिया के लिये जहाँ की हालत कुछ अच्छी थी प्रस्थान करने लगे। पहले मनचुरिया में जाकर बसने में रुकावट थी, पीछे उस रुकावट के हट जाने से और भी लोग इस ओर आकर्षित हुए। इस भीषण स्थिति का कारण लिखते हुए किसी संवाददाता ने लिखा था कि चीन के लोग परिश्रमी और मितव्ययी हैं, परन्तु कर के भार में इतने दबे रहते हैं कि प्रकृति के मामूली प्रकोप से उन पर आर्थिक विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है और लाखों मनुष्य भूखों मरने लगते हैं।

शांटुङ्ग की ऐसी हालत का एक और कारण बतलाया जाता है। कहा जाता है कि कुछ दिन पहले यहां भीषण बाढ़ आई थी, लोग बड़ी विपत्ति में फँस गये थे। उस समय केन्द्रीय सरकार के द्वारा तथा विदेशों से प्राप्त दान से उनकी सहायता की गई। उस समय तो केवल प्रकृति का प्रकोप था। अब की बार शांटुङ्ग मनुष्य और प्रकृति दोनो का क्रोध भाजन बन रहा है। प्रकृति के प्रकोप से जो किसी तरह बच गया था, वह अब मनुष्य के द्वारा नाश किया जा रहा है। क्योंकि उत्तर और दक्षिणी चीन वालों मे यहीं मुठभेड़ होती थी। एक जगह की ऐसी हालत बतलाई जाती है कि वहां की ३० लाख जन संख्या के २० प्रतिशत लोग भूखो मर रहे हैं, संक्षेप मे यो कह सकते हैं कि चीन की विशेषकर शांटुङ्ग की आर्थिक अवस्था खराब हो गई है।

परन्तु सौभाग्य की बात है कि अब चीन में गृह-युद्ध समाप्त हो

गया है। राष्ट्रवादियों की विजय हुई है। जिन स्वार्थियों ने विदेशियों के उकसाने पर प्रजातन्त्रवादियों का विरोध किया था, उनका अब अन्त हो गया है। अब चीन के राष्ट्रवादी अपने राष्ट्र-निर्माण के कार्य और सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और शिक्षा-सुधारों में उसी प्रकार दत्त-चित्त हो रहे हैं जिस प्रकार वे गृह-युद्ध के पहले लगे हुए थे। यदि वे प्रकृति-प्रकोप के शिकार नहीं हों तो वे स्वतन्त्र वायु मण्डल मे अपनी हर प्रकार की हालत को शीघ्र सुधार लेंगे। इनका ऐसा करना अब पूर्व की अपेक्षा अधिक सुलभ हो गया है। पहले विदेशी चीन के कार्य में अनधिकार हस्तक्षेप किया करते थे, परन्तु अब चीन की राष्ट्रीय विजय से उनके दांत खट्टे हो गये हैं। वे अब चीन के साथ समता की सन्धि करने के लिये लालायित हैं। यह है स्वतन्त्रता का फल।

मौन्टेस्सरी शिक्षा प्रणाली

[लेखक—श्री योगेशचन्द्र जी पाल बी० ए०]

[लेखक महाशय बंगला साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक, अनेक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रों के विशेष संवददाता तथा होनहार नवयुवक हैं। प्रेम महाविद्यालय के वर्तमान दूषित वातावरण में अपने को विद्यालय की नीति से अलग रखकर आप उसकी निस्स्वार्थ सेवा कर रहे हैं। आपका यह लेख बड़ा सूचना पूर्ण है। सम्पादक]

शताब्दियों से मनुष्य समुदाय भिन्न प्रकार अपने शिक्षणीय संस्थाओं, गृहों तथा शालाओं में प्राचीन शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षा-दान कर रहा है। प्रत्येक देश की शालाओं में शिक्षा की अन्ध परम्परा चली आ रही है। परन्तु शिक्षा के प्रधान उद्देश्य को दो भिन्न प्रकार से बतलाया जा सकता है—शिक्षा द्वारा एक मनुष्य केवल मनुष्य हो सकता है अथवा शिक्षा उसकी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिये होती है। जो शिक्षा इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करती वह शिक्षा ही

नहीं। क्या हमारी मौजूदा शिक्षा प्रणाली इस उद्देश्य को पूरा करती है? इसमें कितने दूषण हैं? अध्यापक चाहे कितना ही कूढ़मग्ज़, क्रूर, निम्न तथा उपेक्षणीय क्यों न हो विद्यार्थी को उसका अन्ध-परम्परानुसार आज्ञापालन तथा ग्रहण करना ही होगा। वह स्वामी होगा, विद्यार्थी भृत्य।

इस अन्ध-परम्परा का, इस दूषित शिक्षा प्रणाली का, इन सम्पूर्ण दूषणों का दोष हमारे अनादर्श अध्यापकों पर है! और आदर्श अध्यापक कैसे होते हैं? इसका उत्तर प्रसिद्ध शिक्षावादी श्री एडमण्ड होम्ज़ (Edmond Homes) के शब्दों में यह है:— 'दूसरी तरफ़ अध्यापक को प्रिय आदर्शवादी होना चाहिये। उसका कार्य जीवन के श्रोत को ऐसे श्रोत अथवा प्रवाह-प्रणाली में लेजाकर मिला देना है जिससे असली मनुष्यता का जन्म होता है। परन्तु ऐसा करने के पूर्व उसे स्वयं ज्ञान होना चाहिये कि असली मनुष्यता क्या है। उसे यह जानना चाहिये कि मनुष्य में कौनसी भावनायें व्यापक या केन्द्रीय होती हैं तथा किनको वह दूसरों से ग्रहण करता है। कौन प्रधान तथा गौण हैं, कौन स्थायी तथा अस्थिर हैं, कौन उच्च तथा उत्साहित करने योग्य और कौन निम्न और निरुत्साहित करने योग्य हैं।

इन बातों को जानने के लिये अध्यापक के लिये आवश्यक है कि बालक की प्रकृति का अध्ययन करे। बाल-जीवन के प्रत्येक पहलू पर पर्याप्त अध्ययन तथा ज्ञान-सञ्चय के बिना वह कभी अध्यापन की ज़िम्मेदारी न ले। एडमण्ड होम्ज़ साहब का कहना है बिना बालक का पूर्ण अध्ययन किये शिक्षा देना बालू का मकान बनाना है—परन्तु तब तक बाल्य-जीवन का अध्ययन नहीं हो सकता जब तक शिक्षा का यह क्रम रहेगा।

उचित प्रकारेण शिक्षा देने का अर्थ है कि अध्यापक विद्यार्थी का मित्र, माता, पिता, सखा, शिक्षक, नेता—सब एक साथ बन जाय। अपने संरक्षणान्तर्गत बालक के स्वाभाविक झुकाव की ओर वह पूरा ख़याल रक्खे। शिक्षा तभी संभव और प्रभावशालिनी होगी जब विद्यार्थी नित्य

प्रति उसके लक्ष्य की ओर बढ़ता हुआ अपने प्राकृतिक झुकाव को छोड़ने के लिये बाध्य न किया जायगा। अपने बाल्य-स्वभाव का सुख भोगने के लिये उसे पूरी आजादी देनी चाहिये तथा उसकी प्रकृति को पनपने से न रोकना चाहिये। अध्यापक को स्मरण रखना होगा कि बालक उसका दास न होजाय—वह उसके कार्यों में दस्तन्दाजी न कर केवल शिक्षा के असली प्रवाह की ओर उसे लेजाने की चेष्टा करेगा।

मौजूदा शिक्षा प्रणाली के दोष

महाशय होम्ज़ मौजूदा शिक्षा प्रणाली के तीन महान दोष बतलाते हैं। (१) अपनी इच्छा में ही बालक के कार्य और उद्देश्य को बनाकर अध्यापक उसकी आत्मा को गिरा देता है और इस प्रकार उसका जीवन दुर्बल हो जाता है। (२) उन कार्यों का करने से रोककर उसकी क्रियाशीलता में अड़ङ्गा लगाकर उसकी उन्नति को रोक देता है, उसकी आत्मा को संकुचित कर देता है। (३) आत्म-संयम के स्थान पर क़वायद 'ड्रिल' कराकर वह उसकी आत्मा को गन्दला कर देता है। हमारी मौजूदा शिक्षा प्रणाली में यदि क्रान्ति-जनक परिवर्तन हो तो ये दूषण छूट सकते हैं वरना नहीं। बहुत कम आदमी यह विचार करने का भी कष्ट उठाते हैं कि हमारी शिक्षा प्रणाली क्या है? हमारी शिक्षा-संस्थाओं में यह अन्ध परम्परायुक्त जो प्रणाली चली आ रही है इस पर बड़े २ विद्वानों ने विचार किया है। इनमें श्री एडमण्ड होम्ज, श्री बर्ट्रेन्ड रसेल (Mr. Bertrand Russel) और डा० मरिया मौन्टेस्सरी (Dr. Maria Montessari) प्रमुख हैं। डा० मरिया मोण्टेस्सरी एक इटालियन महिला हैं। इनके बाद मध्य श्रेणी के एक वंश में मि० फ़ारबियल नामक (Mr. Forbeal) शिक्षावादी हुए थे। बाल प्रकृति के अध्ययन मे इन्होंने बहुत समय लगाया और इनके अध्ययन के परिणाम स्वरूप ही किण्डरगार्टन (Kindergartan) प्रणाली निकली है। परन्तु बीसवीं शताब्दि के पूर्व यह प्रथा जर्मनी में स्थान न पा सकी। अब यह प्रणाली संसार भर मे फैल गयी है। विशेष कर यूरोप तथा अमरीका में इसका बड़ा प्रचार

है। परन्तु बहुत से शिक्षावादियों का विचार है कि यह प्रणाली भी सदोष है अतएव इससे भी मान्य प्रणाली का हम उल्लेख करेंगे।

मोन्टस्सरी प्रणाली

डा० मेरिया मौन्टस्सरी प्रसिद्ध इटालियन लेडी डाक्टर थीं। पर इन्होंने डाक्टरी न कर बाल्य-मस्तिष्क के अध्ययन में ही अपना समय व्यतीत किया। इसी अध्ययन के परिणाम स्वरूप इन्होंने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली निकाली जो इटली में बहुत सफलीभूत हुई तथा यूरोप और अमरीका में अब विस्तार पा रही है। एक लेखक के शब्दों में इस प्रणाली का सारांश यह है:—

"मोण्टोस्सरी प्रणाली के सिद्धान्त का मूल तत्व बालक के लिये पूरी स्वाधीनता, शारीरिक तथा मानसिक स्वाधीनता है। यदि बालक को अपनी पसन्द के मुताबिक़ काम करने का अवसर नहीं दिया जाता तो वह पनप नहीं सकता। अध्यापक को बालक मे पूर्ण विश्वास होना चाहिये और नब वे बिना स्पष्ट देख रेख के आप से आप पनपते और बढ़ते है। इसी स्वाधीनता को पाकर वह आप से आप बढ़ेगा और उन्नति करेगा। इससे जबरदस्ती करने से उसकी आन्तिरिक उन्नति और विकाश न होगी। प्राचीन शिक्षा पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि शीघ्र परिणाम का बड़ा ध्यान रक्खा जाता है। इस परिणाम की इतनी जल्दी रहती है कि अध्यापक तो बहुत ज्यादा काम करता, बालक बहुत कम, इस प्रकार उसकी आन्तरिक प्रेरणा और व्यक्तित्व तो कुचल गया। बालक के मस्तिष्क का बलिदान उसमें बड़ा सा ज्ञान—अप्राकृतिक—ज्ञान ठूंसने के लिये किया गया। वहाँ तो वही चेष्टा रही कि निरीक्षक पास करे और वह ऊँचे दर्जे को चढ़ा दिया जाय।...... जितना ही मैं इस विषय में सोचता हूं मुझे निश्चय होता जाता है कि यह कितनी मूर्खता की बात है कि एक बच्चे से उम्मीद की जाय कि वह दर्जे में सबके साथ बैठे, एक साथ काम करे, एक हिसाब से काम हो और मास्टर की आज्ञा उसका संयम बनावे—यह कितनी बेमतलब की

बात है। अवश्य एक समय आता है जब बाहरी संयम पालन सीखना बालक के लिये जरूरी है। लेकिन उससे अधिक जरूरी उनका स्वयं अपने को संयमित करना सीखना है। `` सभी मोन्टेस्सरी स्कूल के लड़के, जहां ३ से ६ वर्ष के बच्चे होते हैं इतने संयमित हो जाते है कि आप से आप, बिना किसी अध्यापक की सहायता के ही बहुत समय तक अपना काम कर सकते है।"

मोन्टेस्सरी प्रणाली मे बच्चे को—३ से ६ तक के नन्हे बच्चे को पूर्ण आजादी दे दी जाती है तथा उन्हे काम करने-मनमानी करने को पूर्ण आजादी दी जाती है। इस शिक्षा से वे बच्चे अच्छे नागरिक बनते हैं। उनको इस प्रकार शिक्षा दी जाती है जिसमें आनन्द ही आनन्द दीखता है। इनको सामाजिक शिक्षा तथा संयम सिखलाने के लिये मोन्टे-स्सरी मातायें होती है। किताब, पैंसिल, स्लेट से उनकी शिक्षा नही प्रारम्भ होती। शिक्षा खिलौनो तथा खेलने की चीजो से होती है और विद्यार्थी अन्त में—२ वर्ष के भीतर ही इतनी बातें जान लेता है जो पुरानी प्रणाली से पढ़ने वाला छठे—सातवें का विद्यार्थी भी नही जानता! इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली कोई विचार मात्र नही है, अनुभव मे वह सफल भी हो चुकी है। जीवन की बाधाओं से मुक्त—चञ्चल—प्रसन्न—प्रफु-ल्लित विद्यार्थी खिलौने से खेलता हुआ इञ्जीनियरिंग की शिक्षा से लेकर साहित्य की भी शिक्षा पा जाता है। केवल एक प्रेम भरी अध्यापिका बात बात में सोते उठते सिखलाती जाती है—यह है वास्तविक शिक्षा।

—

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का महत्व

[लेखक—श्री सत्येन्द्र जी, बी० ए०, 'विशारद']

(श्री सत्येन्द्र जी आगरा नागरी प्रचारिणी सभा के उपमन्त्री तथा हिन्दी साहित्य विद्यालय के प्रधान अध्यापक हैं। शान्ति के साथ काम करना आपको इष्ट है। दिखावट आपको पसन्द नहीं। हमारा अनुमान है कि सत्येन्द्रजी से हिन्दी का बड़ा हित साधन होगा। —सम्पादक)

यूरोप के घृणित राजनैतिक जीवन के लिये फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने जादू का सा काम किया। अठारहवीं शताब्दी के यूरोपीय राष्ट्र उदार स्वेच्छातन्त्री थे। प्रसिया के राजा महान् फ्रेडरिक विलियम ने यह घोषित कर दिया था कि "मैं जाति का प्रथम एकान्त सेवक हूं"। प्रजा की भलाई करना वह अपना प्रथम कर्त्तव्य समझता था। उनका शासनाधिकार केवल इसी लिये मान्य समझा जाता था कि वे प्रजा की भलाई के लिये शासन करते थे। किन्तु इन प्रजा की भलाई की दुहाई देने वालो, राजाओं की प्रजा का जीवन इतना सङ्कटमय, इतना भयङ्कर, इतना घृणित होता था कि राष्ट्रों की उदार घोषणा हास्यास्पद प्रतीत होती है। प्रसिया का वातावरण भूखे कृषकों और दीन मजदूरों की करुण कहानी और पूंजीपतियों और भूपतियों के कुत्सित व्यापारों, निष्ठुर अत्याचारों से हाहाकार कर रहा था। दिन दहाड़े प्राचीन राज्य पद्धति के हामियों का कुटिल कठोरता पूर्ण नाट्य भयंकरता को भी दहलाने वाला था। कृषकों और ग्रामीणों का जीवन कुत्तों से भी बदतर, मोल लिये हुए गुलामों से भी घृणित था। वे स्वामी की आज्ञा बिना न गाँव ही छोड़ सकते थे, न विवाह ही कर सकते थे। साइलीसिया और ब्रेण्डन वर्ग की ही यह दशा न थी वरन् यूरोप के प्राय: सभी पूँजीपतियों का अपने आश्रित जनों पर ऐसा ही अत्याचार होता था। यही नहीं, उनके—दीनों के—खी बच्चे राक्षस-स्वामियों की पाशविक प्रवृत्ति की निवृत्ति के साधन समझे जाते थे। उनकी इस स्वेच्छाचारिता और नृशंसता का

भयंकर और वास्तविक चित्र डिकेन्स ने अपने एक उपन्यास 'ए टेल ऑफ़ दी टू सिटीज़' 'दो नगरों की कथा' में चित्रित किया है।

फ्रांस के पूँजीपति और भूपति अपनी शानदार तेज़ घोड़ों की गाड़ी में सैर करने निकलते। गली, कूँचों, बाज़ारों में भी उनकी गाड़ी तड़ित वेग से चलाई जाती, उनका वह प्रमोद ग़रीबों के लिये प्राणघातक हो जाता। हर बार किसी न किसी बच्चे या मनुष्य की बलि उस भूपति की गाड़ी-देवी को चढ़ जाती। अपने चरम औदार्य का नाट्य करते हुए शान्त भाव से वे उपेक्षा की दृष्टि से कहते, बड़ा आश्चर्य है कि तुम लोग अपनी और अपने बच्चों की सावधानी नहीं कर सकते, सदा तुममें से कोई न कोई मार्ग में आही जाता है। यह कैसे जाना जा सकता है कि मेरे घोड़ों को क्या हानि हुई।—उनके घोड़ों का आदर साधारण और ग़रीब प्रजा से अधिक होता था। वह भूपति प्रजा को गाली दे सकते थे। यह दशा थी फ्रांस की और प्रायः सारे यूरप की अठारहवीं शताब्दी में। दीन प्रजा के प्राणों का मूल्य कीड़े मकोड़ों से भी कम था। डिकिंस द्वारा चित्रित इन भूपतियों के एक भयंकर पतन का दृश्य और देखिये। अपने मदान्ध स्वामी अपने ज़मीदार द्वारा सताया हुआ मृत्यु के मुख के निकटस्थ एक ग़रीब कृषक का पुत्र डाक्टर मैनट को अपनी पतिपरायणा, धनी कामुकों की प्यास बुझाने से अस्वीकार करने वाली बहन की करुण कथा सुना रहा है। डाक्टर ने बालक की विकल व्यथा को सुना—एक स्थान पर उसने कहा "डाक्टर ! ये भद्रभूपति बड़े घमण्डी हैं, किन्तु कभी कभी हम नीच कुत्ते भी स्वाभिमानी हो जाते हैं। ये हमें लूटते हैं, हमे पीटते हैं, हमें मार डालते है, फिर भी हम में कभी कभी अभिमानांश शेष रह जाता है"। ऐसी—इससे भी भीषण और भद्दी दशा थी। यह उपन्यासकार की कल्पना नहीं इतिहास सिद्ध है।

सहिष्णु और राजभक्त जैनसनियों (Jansenists) में ही दोमत (Domat) दार्शनिक हुआ। उसने स्पष्टतः यह प्रतिपादन किया कि बुरे राजाओं को राज्यच्युत कर देना प्रजा का एक आवश्यक कर्तव्य है।

जूरयो (Jeureau) ने कहा कि राज्य प्रजा का है, उसी से साम्राज्य का स्वत्व है। जो राजा की प्रजादत्त शक्ति का दुरुपयोग करता है वह अनधिकारी है। जाति अथवा प्रजा का अधिकार सर्वमान्य और सदा मान्य है। वह कभी अमान्य नहीं कहा जा सकता।

फैनलन ने फ्राँस को तीव्र गति से पतन के गहरे गर्त में जाते हुये देखा। वह राजनीतिज्ञ था, वह राज्य के प्रश्नों को भी जीवन के साधारण व्यापारों में घटा कर हल करना चाहता था। वह अपने विरोधी के मन्तव्यों से उसी प्रकार सहानुभूति रखता जैसे कि अपने धर्म में श्रद्धा। उसके समक्ष गिर्जे की मुख्य आवश्यकता, उसके अधिकार क्षेत्र का विस्तार नहीं, वरन उसके आधीनों के हृदयों की विशालता, उनकी स्वतन्त्रता थी। शक्ति विष है—राजाओं के व्यक्तित्व में उसे विश्राम न था। वह स्पष्ट कहता था—राजाओं को शासन नहीं करना चाहिये। केवल नियमों का पालन कराना चाहिये। उन्हें नियम अपने हाथ में नहीं लेने चाहियें। वह अधिकार प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सभाओं को होने चाहिये। व्यापार नितान्त स्वतन्त्र हो और शिक्षा-प्रबन्ध नियम द्वारा हो। फैनलन ने ही साहित्य और जन सम्मति में आग और असहिष्णुता फूंक दी। तभी से प्रजा की दृष्टि अपने स्वामियों के कुकृत्यों को देख, उनके अधिकारों की विवेचना में लगी। वाल्टेयर, मोन्टस्की, जैनसन। टर्ट आदि महान लेखकों और दार्शनिकों ने मनुष्य मात्र की समानता, उनकी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। प्रजातन्त्र ही सच्ची व्यवस्था है। मनुष्य मात्र उन्नतिशील है, अपने स्वार्थ सम्बन्धी प्रत्येक बात को समझने का उसे अधिकार है। उसे समझने की उसमें क्षमता है। इन बातों का सर्वत्र प्रचार किया जा रहा था। किन्तु बड़े संयत प्रयत्न से। रूसो ने तो यह निश्चय रूप से कह दिया कि जनता कभी दोषी नहीं हो सकती; उसका मार्ग सदा सत्य मार्ग है। राजाओं की, शासकों की आवश्यकता केवल इस लिये है कि प्रजा को वैयक्तिक स्वेच्छाचारों से बचाया जावे। इन भिन्न भिन्न विद्वानों ने अपने विचारों द्वारा महान्

क्रान्ति का क्षेत्र तय्यार कर दिया; असंतोष, असहिष्णुता, और घृणा का बीज बो दिया—किन्तु धनी और मानी पुरुषों के निरकुंश व्यवहार में किञ्चित् मात्र भी परिवर्तन न हुआ।

अठारहवीं शताब्दी में केवल वैयक्तिक स्वतन्त्रता का ही अभाव न था वरन् उस समय के यूरुप में जातीयता के भावों की भी अवहेलना की जा रही थी। तभी तो पोलैण्ड को विभाजित कर दिया गया, जभी तो नैपिल्स का शासन स्पेन वाले कर सके, तभी तो अस्ट्रियन वंश बैलजियम पर अधिकार कर सका था। इस प्रकार इस शताब्दी में जातीय जीवन भी कुचला जा रहा था। (Acton) एक्टन ने एक स्थान पर कहा है कि यूरुप की प्राचीन पद्धति में जातीय स्वत्वो का विचार न तो सरकार ही करती थी और न प्रजा द्वारा ही वे स्वत्व मांगे जाते थे। सीमाओं का निर्णय जातीय दृष्टिकोण से नहीं वरन् शासकवंश की हित दृष्टि से होता था; और शासन प्रायः प्रजा के अधिकारों व इच्छाओं की अवहेलना करते हुये होता था—उसी के लिये क्रान्ति हुई। वैयक्तिक स्वतन्त्रता जन मतका आदर, जातीय जीवन की जागृति यही इस क्रान्ति के मुख्य लक्ष्य थे। प्रोटेस्टेण्ट और राष्ट्र में झगड़ा शुरू होगया। जब स्टेटस जनरल में उनकी सम्मति की उपेक्षा की गई तो उन्होंने असहयोग कर दिया और अपना एक दल संगठन कर उसका नाम नेशनल एसेम्बली रख विरोध आरम्भ कर दिया। उधर जनता मे भी असहिष्णुता अब और भी घोर हो गई। उन्होंने १७ जौलाई सन् १७१९ में बैस्टील पर धावा बोल दिया और अस्त्रों शस्त्रों को ग्रहण कर क्रान्ति का आरम्भ कर दिया। जनमत का आदर ही इस क्रान्ति का मुख्य लक्ष्य रहा। चारों ओर घोर विचार परिवर्तन हो रहा था—और घोर अशान्ति-घोर हत्याकाण्ड मचा हुआ था। पुरानी शासन-पद्धति के हामियों, पूंजीपतियों नए परिवर्तन के विरोधियों को 'गुलेटीन' (Guilletine) के हवाले कर दिया गया (फाँसी मिलती थी)। इस क्रान्ति के महान् नेताओं को भी जन-सम्मति के आदर करने में अपनी आहुति दे देनी पड़ी। रोबिसपीअर

जो (हत्या-शासन) का विधाता था—उसे भी अपनी बलि उसी सर्वभक्षी गुलेटीन को देनी पड़ी। केवल इसलिये कि उसे (Reign of Terror) (हत्या-शासन) में उतना विश्वास नहीं रह गया। नवीन प्रथा—प्रजामत—का जिस किसी ने भी विरोध किया उसे ही अपने प्राण गंवा देने पड़े, फिर चाहे वह प्रजामत का कट्टर पक्षपाती ही क्यों न रहा हो।

नैपोलियन ने साम्राज्य की स्थापना करदी, उसमें इतनी शक्ति थी कि वह फ्रान्स को उस क्रान्ति को अपने पक्ष में ला सका—पर उससे प्रजा-शक्ति का विनाश न हो सका। जहाँ कहीं भी उसने प्रजा की भावनाओं के विरुद्ध कुछ करना चाहा, वहीं उसे पूर्ण सहायता भी न मिली। प्रजा के स्वत्वों की रक्षा की इच्छा उस समय बलवती थी। तभी तो सन १८१३ में नैपोलियन की राय के विरुद्ध भी उसी के समक्ष, जब फ्रेंकफर्ट ने युद्ध के विषय मे एक प्रस्ताव उपस्थित किया था तो अन्त मे कहा कि, 'विधानानुसार सरकार को यह अपेक्षित है कि वह शत्रु के निराकरण और शान्ति स्थापना के लिये प्रभावशाली प्रणाली रक्खे। शासन-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जो कि फ्रेन्च जनता की स्वतन्त्रता, सुरक्षिता और सम्पत्ति के अधिकारों के उपयोग का निश्चय कराने वाले नियमों का पूर्ण और अनवरत पालन कराने मे समर्थ हो।'

नैपोलियन ने जब देखा कि इस प्रस्ताव का समर्थन बहुमत द्वारा किया जा रहा है तो उसने क्रोधित होकर शासक-समिति को ही स्थगित कर दिया। इन कुछ एक दृश्यों से क्रान्ति की विशेष प्रवृत्ति का पता चल जाता है। इस क्रान्ति ने हजारों मदान्धों का खून पीलिया। यद्यपि इसका अन्त एक सत्तात्मक सम्राट-शासन में हुआ तथापि सम्राट शासक नैपोलियन भी उन भावों का पूर्ण दमन नहीं कर सका। क्रान्ति से, फ्रौंस की सेनाओं के संघर्ष से अन्य देशों में भी जातीय जीवन की जागृति जगमगा उठी।

इस प्रकार मनुष्य के अथवा जाति के सत्य स्वत्वों का प्रचार करके फ्रान्स की क्रान्ति शान्त हुई। कुछ कह सकते हैं असफल हुई

क्योंकि वियाना (Vienna) में जो शान्ति सभा हुई उसके निर्णयों ने क्रान्ति के भावों की उपेक्षा करके प्राचीन परिपाटी को ही स्थिर रक्खा किन्तु यह एक गम्भीर सत्य है कि प्रत्यक्ष में नहीं, तत्काल भी नहीं पर शनैः शनैः क्रान्ति के फूंके हुए मंत्र अपना प्रभाव अवश्य दिखाते हैं। यूरुप का वातावरण इस क्रान्ति ने बिल्कुल बदल दिया। संकीर्णता का लोप होगया, जातीयता के भाव ऊपर आने लगे, वैयक्तिक मत को स्वतन्त्रता मिल गई।

यद्यपि आज संसार के महायुद्ध ने फ्रांस की राज्य-क्रान्ति को भुला दिया है तथापि इतिहास बता सकता है कि मनुष्यता की दुहाई और उसके क्षेत्र का परिचय इसी क्रान्ति ने कराया। विश्ववाद (Cosmpolitanism) और जातिवाद (Nationalism) आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। यदि जातीयता को विश्व-प्रेम का जन्मदाता नहीं कह सकते तो उसका पूर्व-वर्ती कहने में कोई हानि नहीं। उसी में से सहृदयता और प्रेम के लक्ष्यो को लेकर दूसरे सांचे में ढाल दिया गया है। आज भी (League of Nations) राष्ट्र परिषद् का बीज क्रान्ति के जाति-वाद ने ही वपन किया था। यूरोपीय महा-युद्ध फ्रांस की क्रान्ति का प्रचारक है—किसी नई प्रणाली का प्रवर्तक नहीं।

यही इस क्रान्ति ने बताया। जो जाति क्रान्ति भीरु हो, अपने पूर्वजों को कोसती हो, केवल भाग्य भरोसे रह कर दिन गिना करती हो वह अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकती। जाति उत्थान के लिये क्रान्ति, त्याग, बलि की आवश्यकता होती है। स्वतन्त्रता का नाम त्याग है, स्वच्छन्दता नहीं। नीति का नाम मनुष्यता है, छल नहीं। धर्म का नाम उदारता है, धोखा नहीं। इसी लिये तो फ्रांस की उस क्रान्ति का महत्त्व है। वह वर्तमान युग की जननी है। यूरुप उसे अच्छी तरह समझ सका। पोलैण्ड ने पुनः अपनत्व प्राप्त कर लिया। इसी क्रान्ति ने हमें मन्त्र दिया—धर्म, साहित्य अर्थ—वर्तमान परिस्थिति में सब जाति के हित हैं। हमारा अस्तित्व ही जातीय रक्षा के लिये है। हम नहीं—जाति है। हम स्वतन्त्र हैं पर जातीय मान के लिये। यह जातीय मान विश्व के पवित्र प्रेम का सूत्रधार है।

———

एक रूसी वीराङ्गना

[लेखक—श्री 'प्रताप' महोदय]

[इस लेख के लेखक एक उत्साही, परिश्रमी और कर्त्तव्यनिष्ठ युवक हैं। समय समय पर आपके जो लेख वीर-सन्देश में निकलते रहते हैं उनसे आपके उच्च-भावों का पता भली भांति चलता है। —सम्पादक]

केवल पुरुष कभी किसी राष्ट्र को नहीं उठा सके हैं। स्त्रियों को उन्हें अपने साथ मैदान में लेना पड़ा है। जिस राष्ट्र ने भी अपनी दीन दशा पर दुःखी होकर उत्थान का महाव्रत लिया है, उसने स्त्रियों को अपने साथ लिया है। इतिहास इसका साक्षी है। महायुद्ध के समय स्त्रियां बराबर कारखानों और अस्पतालों में काम करती थीं। रूस को यह दिन दिखाने का श्रेय भी स्त्री समाज को है। आज एक ऐसी रूसी वीराङ्गना का परिचय पाठकों को कराया जाता है, जिसने साहस पूर्वक रूस के भविष्य की रक्षा की थी।

इस वीराङ्गना का नाम ओलगा था। यह बड़ी गरम बोल्शेविक थी। जिस समय वह बोल्शिविज्म पर बोलती, बड़े बड़े वक्ता दंग रह जाते थे। जोश में उसका मुख देदीप्यमान हो उठता था। वह उन्मत्त हो कर नाचने लगती थी। इस सबला अबला का जन्म रूस में एक किसान के घर में हुआ था। इसके माता पिता बहुत ग़रीब थे। जब रूस में ज़ालिम ज़ार के ज़ुल्मों से पीड़ित होकर पहली क्रान्ति हुई थी, तो सरकार ने बड़े बड़े पैशाचिक काण्ड किये थे। ओलगा के माता पिता भी दुष्टों के दमन के शिकार हुए। वे घर से बाहर निकाल दिये गये और जंगलों में मारे ठण्ड के मर गये। ओलगा अकेली और निस्सहाया रह गई।

ओलगा इस दारुण दुःख को कभी न भूली। उसने अपने माता पिता की घातक सरकार से बदला लेने का महाव्रत लिया और आजन्म कुमारी रह कर अपना जीवन इसी व्रत पालन में लगा दिया।

युद्ध के दिनों में वह सैनिक विभाग की सदस्या थी। उसने स्त्रियो

की सेना का संगठन किया। उस समय उसके नेतृत्व में जितनी स्त्रियां थीं; उन पर वह पूरा पूरा दैवी प्रभाव डालती थी। अपने सिपाहियों को सदा साम्यवाद का उपदेश सुनाया करती थी।

जब लेनिन के हाथ में रूस की बागडोर आई तो वह अपनी सेना सहित उस महापुरुष के पास पहुँची और बोली, "भगवन्, मैं और मेरी सारी सेना आपकी आज्ञा में है।" उसी समय से ओलगा लेनिन के साथ बोल्शिविज्म का काम तत्परता और दृढ़ता से करने लगी।

ओलगा ने अब तक विवाह नहीं किया था। लेनिन ने बहुत चाहा कि वह शादी करले पर उसने सदा यह कह कर कि "बोल्शेविक-तन्त्र का कार्य करने के लिये मुझे पूरी स्वाधीनता चाहिये, क्योंकि गार्हस्थ्य जीवन मेरे महाव्रत में बाधक होगा"—इन्कार कर दिया। संसार में केवल यही एक थी जो लेनिन की इच्छा के विरुद्ध अपनी इच्छा चला सकती थी।

एक बार रूस के भाग्य विधाता लेनिन तथा रूसी सेना के सञ्चालक लिओन ट्रोजकी में मतभेद हो गया। ट्रोजकी लेनिन का दाहिना हाथ था; लेनिन उसे बहुत मानते थे पर सहसा उसके दिल में लेनिन को नीचा दिखाने की दुर्भावनाये उठी। उसने लेनिन को जबरदस्ती प्रधान पद से हटा देना चाहा।

ट्रोजकी की यह काली करतूत साहसी और लेनिन भक्त ओलगा से न छिप सकी। ज्योंही उसे इस षड्यन्त्र का पता चला वह सीधी मास्को नगर में ट्रोजकी के दफ्तर में पहुँची। हाथ में पिस्तौल लिए हुए वह बेखटके दनदनाती हुई अन्दर घुसी चली गई और उसके टेबुल के पास खड़ी हो उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखने लगी। उस समय ट्रोजकी लेनिन के विरुद्ध षड्यन्त्र खड़ा करने की स्कीम बना रहा था।

ट्रोजकी उस गम्भीर और साहसी महादेवी को यकायक अपने सामने अविरल भाव से खड़ी देखकर बुरी तरह डर गया। वह घबराई

हुई आवाज़ में बोला "ओलगा ! तुम यहाँ इस समय अचानक कैसे चली आईं ! क्या चाहती हो।"

ओलगा ने (तीक्ष्ण स्वर में) उत्तर दिया "तुम्हारी काली करतूतों का तुम्हें दंड देना चाहती हूँ। विश्वासघात के लिये तुम्हें सबक़ सिखाना चाहती हूँ।"

ट्रोजकी ने काँपती हुई आवाज़ में कहा "ओ-ल-गा, कैसी काली करतूत, कैसा विश्वासघात ! मैं नहीं समझ पाया !"

ओलगा ने गंभीरता पूर्वक कहा "सहयोगी, मुझे तुम्हारी सारी करतूतों का पता चल गया है। अब मैं तुम्हें यह पिस्तौल भेंट करती हूं। या तो तुम इससे अपना काम तमाम कर प्रायश्चित करो, या नेक चलनी की प्रतिज्ञा करो।"

यह कहकर ओलगा उत्तर की प्रतीक्षा न कर ट्रोजकी के हृदय पर अपने साहस का सिक्का जमा कर बाहर निकल आई और वह भय-भीत हो देखता ही रह गया। बाहर निकल कर उसने पाँच मिनट तक पिस्तौल की आवाज़ की प्रतीक्षा की। जब पिस्तौल की आवाज़ न आई तो वह वहाँ से चल दी।

ट्रोजकी इतना घबरा गया था कि ओलगा के चले जाने पर भी उसे मालूम हो रहा था कि वह उसके सामने खड़ी है, और उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देख रही है। मारे भय के उसकी सारी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गई थी। उसे रह रह कर उस वीराङ्गना की गम्भीर मूर्ति दिखाई देती थी।

आखिर वीर रमणी ओलगा के आत्म-बल ने ट्रोजकी के हृदय पर विजय पाई। उसने लेनिन के प्रति सारी दुर्भावनायें त्याग दी। इस प्रकार रूस के सद् भविष्य की एक नारी ने रक्षा की।

धन्य हो साहसी ओलगा ! तुम जैसी वीर रमणियाँ ही देश का संकट दूर करने में समर्थ हो सकती हैं।

कवि-कीर्तन

एडविन आर्लिङ्गटन रौबिन्सन

[लेखक—श्री सत्यदेव नारायणसिंहजी बी० ए०, एल० टी०]

[आप काशी सनातन धर्म हाईस्कूल के सहायक मास्टर, यंगमेन असोशियशन तथा प्रमाद समाज के प्रधान मंत्री तथा बड़े चंचल, हंसमुख और सुविज्ञ लेखक हैं। —सम्पादक]

अमेरिका के न्यू इङ्गलैण्ड में मेन नगर में एक छोटा सा सुन्दर मकान है। सन् १८७४ की बात है। एक छोटा बालक अपनी माता के पास बैठा एक कविता पढ़ रहा है। माता उसे और उत्साहित कर रही है। बालक को कविता का शौक था। उसके माता पिता का भी ख्याल था कि आगे चलकर यह बड़ा आदमी होगा।

❀ ❀ ❀

उसी मकान के पास डा० स्कमान, (Schuman) का मकान था। वह कविता का बड़ा प्रेमी था। यह बालक भी उनके पास आता और एक बूढ़ा और एक बच्चा बैठकर कविता करते। एक दिन उसने एक कविता बनायी और अपने डाक्टर मित्र को समर्पित कर दी। उस अंग्रेजी कविता की प्रथम पंक्तियों का टूटा फूटा हिन्दी अनुवाद यह हो सकता है—

सपने में उस निर्जन ऊसर भू को पार किया मैंने,
  चहु दिशि जिसके मौन नाश की फैल रही थी मृतु-लतिका।
भय सम मौन ज्ञान-शून्या वो भूमि अपश्या विस्मृति में,
  आरकडी की पड़ी बांसुरी-भग्न दशा में पड़ी कलिका॥
शोभामय इतना उपवन जो, अति रमणीक गायना पूर्ण,
  कितना श्रीहत पिञ्जर होकर, भीषण खड़ा हुआ जग में।

विस्मय होने योग न सागर का बस एक चिह्न अवशेष,

आरकडी की तान रहित थी पड़ी बांसरी जंगल में ॥ इत्यादि

\+ + +

कविता का प्रवाह प्रारम्भ-हुआ। एक के बाद एक कविता बनने लगी। ग्यारह वर्ष की अवस्था में उसने कविता करना प्रारम्भ किया। बड़ी चेष्टा तथा प्रयत्न के बाद जब प्रकाशकों का खूब धक्का, लानत मलामत फटकार पड़ी, तब जाकर कहीं उसकी रचनायें छपने लगी। कौन जानता था—बेवकूफ प्रकाशक लेखकों की प्रतिभा क्या पहचाने ! पुस्तक निकलते ही यह युवक कवि सबको उसकी प्रति भेंट करता !!!

इस युवक ने एक छोटा सा क्लब बना रक्खा था। एक दिन इस क्लब से लौटते समय यकायक जोर का पानी आ गया। एक मित्र अपना छाता लाने के लिये लौटा। यह युवक भी लौटा। रोशनी के प्रकाश में टेबुल पर इसे एक छोटी पत्रिका डा० कोन द्वारा सम्पादित दिखलायी पड़ी। इसी डाक्टर को इसने 'टोरेन्ट एण्ड दी नाइट बिफोर' नामक ग्रन्थ भेज दिया—यह १८९६ की बात है !!!

\+ + +

उपरोक्त घटना ने बाल- कवि का जीवन पलट दिया। डा० कोनने उस पुस्तक को कितना पसन्द किया ! उन्होंने इस कवि का परिचय कितने बड़े आदमियों से कराया। बिना बड़प्पन की पूंछ के किसी की प्रतिभा की भी प्रतिष्ठा नहीं होती। १४ वर्ष तक लगातार यह कवि अपनी कृति बढ़ाता रहा—पर यश बहुत दिनों बाद मिला। डा० कोन ने एक ऐसे व्यक्ति से इनका परिचय कराया जो जितना ही विद्वान था उतना ही दरिद्र। यही अवस्था धीरे २ इस युवक की होने लगी। अप्रकाशित पुस्तकों को यह हाथ से लिख कर उन्हें बांटता था। बिचारा नौकरी की तलाश में न्यू-यार्क गया। और—इतिहास साक्षी है कि विद्वान् सदा दरिद्र रहता है। बिचारे को लाख सर रगड़ने पर सड़क की बनवाई में लम्बरदारी की नौकरी मिली। दो डालर प्रति सप्ताह वेतन।

\+ + +

उस बालक को-स्कूल के सभी बच्चों को, अध्यापक को सबको वह छोटी कविता की पुस्तक बड़ी पसन्द थी। एक दिन वह स्कूली लड़का अपने पिता के पास दौड़ा गया-पिता जी इस पुस्तक को पढ़िये ! 'अच्छा पढ़ लूंगा' पिता ने कहा। एक दिन बाहर घूम कर पिता जी आये ! अन्य-मनस्क की भांति पुस्तक उठा कर पढ़ लिया—अहा ! यह कितनी सुन्दर पुस्तक निकली। वे पढ़ते ही गये ! अन्त में चीख उठे ! 'यह कितनी सच्ची सी मालूम होती है'-इस महापुरुष का नाम थियाडोर रूजवेल्ट (Theodore Roose vealt) था-ये अमेरिका के राष्ट्रपति थे।

\+ + +

काम मे लदे उस बिचारे कवि को पत्र मिला। 'तुम कहां हो' क्या करते हो, नौकरी चाहते हो ! तुम में प्रतिभा है ...... बस अब घटना का विस्तार बढ़ाने से लाभ नहीं। अमेरिका का राष्ट्रपति इस कवि पर मुग्ध हो गया। सब काम छोड़कर उसने सड़क के एक नौकर का पता पा लिया। अब उसकी उन्नति क्यों न होगी !!!

इस कवि का नाम एडविन आर्लिङ्गटन रौबिन्सन (Edwin Arlington Robinson) है। अमेरिका के यह सब से बड़े कवि हैं। इस समय भी ये अपनी प्रतिभा से अमेरिका को पवित्र कर रहे हैं !!!

एक सुखद संवाद

पाठकों को यह सूचित करते बड़ा हर्ष होता है कि कुमारी मेयो ने जिस गंदली पुस्तक को लिख कर भारत को संसार में बदनाम करने की घृणित चेष्टा की थी तथा जिसके उत्तर में धुरन्धर विद्वानों की कई पुस्तकें निकल चुकी हैं—उन उत्तरों की एक कमी-मिस मेयो के प्रलापों का वैज्ञानिक तथा दर्शनिक निवेचनात्मक उत्तर—पूर्त्ति के लिये आगरे के प्रसिद्ध डाक्टर मुरारीलालजो एक बड़ी सुन्दर पुस्तक लिख रहे हैं। इसका जो अंश हमने देखा है उससे हमारा विश्वास है कि अपने विषय में यह एक ही होगी। पाठक इसकी प्रतीक्षा करें।

कुछ रुचिकर बातें

बादशाह की हिफ़ाज़त—

लन्दन में पेरिस का एक खुफ़िया पहुँचा। उसे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि सम्राट जार्ज पंचम और उनके सर्वप्रिय पुत्र प्रिंस ऑफ़ वेल्स बिना किसी खुफ़िया की हिफ़ाज़त के, बिना विशेष शरीर रक्षक के दिन में खुले आम इधर उधर घूमा करते हैं। हां, रात्रि को थियेटर इत्यादि स्थानों को जब वे जाते हैं, उस समय पुलिस विशेष प्रबन्ध करती है, वह भी इतना ही कि रास्ते के दोनों ओर इतना प्रबन्ध रहता है कि शाही गाड़ी बिला रुकावट आ जा सके। वहीं आज कल स्पेन के बादशाह अलफ़ौञ्ओ (Alfonoso) टिके हुये हैं। यद्यपि वे भी बहुत कुछ आज़ादी मे नाच रङ्ग थियेटर आदि में भाग लेते हैं पर जहां कहीं जाते हैं तीन स्पेनी तथा तीन स्काटलैण्डयार्ड के खुफ़िया इनके पीछे रहते हैं। इनके साथ भी शरीर रक्षक काफ़ी रहते हैं। ६ खुफ़िया पुलिस के अलावा दो पुलिस के अफ़सर भी सहायता के लिये रहते हैं। दो देश के राजाओं की शरीर-रक्षा मे इतना अन्तर उनकी भिन्न राजनीतिक स्थिति का परिचायक है।

जीवन में सबसे ख़तरनाक समय—

येल विश्वविद्यालय (Yale university) के डा० येण्डेल हेण्डर्सन (Dr. Yandell Henderson) का एक कथन अमेरिका के मेडिकल अशोशियेशन ने प्रकाशित कराया है जिसमें आपने कहा है कि तुरन्त जन्म लेते ही जो १५ मिनट बीतते हैं वही बच्चे का अथवा मनुष्य के जीवन का सबसे ख़तरनाक समय होता है। 'न्यूयार्क' नगर के 'वीक्स' साइन्स (Week's Science) नामक पत्र में डा० ई० ई० फ्री (Dr. E.E. Free) ने डा० हेण्डरसनकी सम्मति देकर लिखा है कि बच्चा पैदा होते ही पहला रोना रोता है जिससे उसके फेफड़े सांस लेने का कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। अक्सर कुछ ख़राबी हो जाती है। और यह आवश्यक पहली रुलास

नहीं निकलती और जब तक डाक्टर जल्दी से कोई कार्यवाही नहीं करता, वह सांस लेना नहीं प्रारम्भ करता ! परिणामतः वह फौरन मर जायगा। पैदा होने के एक मास बाद वा कुछ दिनों बाद जितने लड़के मरते हैं उनसे अनुपात में ज्यादा लड़के पैदा होने के फौरन पन्द्रह मिनट बाद मर जाते हैं। यदि नये अन्वेषण के मुताबिक काम किया जाय तो बहुतों की जान बच सकती है। बच्चे के दिमाग के निचले हिस्से में नस का एक केन्द्र है जो काम करता रहता है और जब कभी खून में कारबन डि ओक्साइड गैस खूब भर जाता है, यही सांस लेने मे सहायता करता है। खाली हवा मे यही गैस सांस में भरी जाती है। हवा में इस ओक्साइड के मिलते आदमी जल्दी सांस लेने लगेगा। डा० हेण्डर सन की राय है कि यदि बच्चा पैदा होते ही फौरन सांस न ले तो धीरे धीरे उसके फेफड़े में कारबन डि ओक्साइड मिली हवा फूंको और निकालो। इससे वह नस का केन्द्र काम शुरू कर देगा। बच्चे का प्राकृतिक सांस लेना शुरू हो जायगा।

इत्र का नशा—

न्यू-यार्क के 'टाइम्स' नामक पत्र में एक रोचक समाचार प्रकाशित हुआ है जिसका सारांश यहां देना पाठकों के लिये रुचिकर होगा। एक दिन की घटना है कि दो स्त्रियाँ एक बन्द मोटर गाड़ी में बैठी चला रही थीं। दुर्भाग्य से वह गाड़ी किसी सड़क में एक गाड़ी से लड़ पड़ी। पुलिस ने इस गाड़ी को पकड़ लिया परन्तु दरवाजा खोलने पर वे दोनों स्त्रियाँ उसमें अर्द्ध अचेत अवस्था में पायीं गयीं। उन्हे खुली हवा में ला कर रक्खा गया। एक डाक्टर बुलाया गया, कुछ क्षण में वे होश में आ गयीं पर पुलिस को डाक्टर से उनकी बेहोशी का कारण पूछना था। मोटर की तलाश लेने पर डाक्टर को उसके भीतर एक अति सुगन्धित बृटिश फूल का गुच्छा मिला जिसकी गजब की महंक उस बन्द गाड़ी में भरी हुई थी और एक अजीब प्रकार का नशा सा उत्पन्न कर रही थी। डाक्टर ने यह रिपोर्ट दी कि मँहक ने इनको नशे की तरङ्ग में

नहला दिया था और इसी कारण ये बेहोश हो गयीं। न्यू-यार्क में आज कल बहुत से ऐसे इत्र प्रचलित हैं जिनका नशा दिमाग़ को ख़राब कर देता है। आजकल बहुत कड़े इत्र लगाने वाले को सावधान रहना चाहिये। डाक्टरी जांच ने तो यहां तक साबित कर दिया है कि यदि आप थियेटर में किसी खूब इत्र में सनी स्त्री के बगल में बैठे हों तो आपको न तो नींद आवेगी, न खाँसी होगी, न छींक आयेगी। हां, सर में दर्द अवश्य हो सकता है। यदि ऐसे स्थान पर बैठे हों जहाँ चारों तरफ अच्छे से अच्छे इत्र लगाये आदमी बैठे हों और एक दूसरे का इत्र अपनी सुगन्ध को प्रबल प्रभावित करने की चेष्टा कर रहा हो तो अपना मरण समझिये!

रंग और निद्रा का सम्बन्ध—

रोशनी के ऊपर अन्वेषण करने के लिये म्यूनिच (Munich) की एक समिति है। इसने हाल ही में लीपज़िग (Lepzig) के सचित्र जेटिंग (Illustrated Zeitung) पत्र में एक नवीन खोज प्रकाशित कराया है। अक्सर इसमें उन्निद्र रोग—नींद न आने की बीमारी हो जाती है। नये खोज पर समिति की रिपोर्ट है कि सोने पर रंग का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। ऐसे रंग ईश्वर ने बनाये हैं जो हमें गहरी निद्रा दिलाने में बड़ी सहायता करते हैं। प्रायः देखा गया है कि शीशे को रंगने वाले यदि उसे नीले रंग से रंगता है तो अपना काम समाप्त करने के पूर्व ही सो जाता है। डाक्टर लोग जिनका दिमाग़ ख़राब हो जाता है या जिनको कोई मानसिक बीमारी होती है, नीले पुते तथा नीले पर्दे टंगे कमरे में रखते हैं। नीले रंग का मस्तिष्क को शान्त करने तथा सुलाने में आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। तभी तो नीलाकाश हमें इतना प्रिय है।

गुब्बारे से खेती—

अमेरिका ने तथा अनेक यूरोपीय प्रदेशों ने यद्यपि बिजली द्वारा खेती करने का प्रयोग आविष्कार किया है तथापि उससे भी हल चलाने,

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ { भाद्रपद सं० १९८५, सितम्बर १९२८ } अङ्क ९

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २) एक अङ्क का मू० ≡)

विषय सूची

हिन्दी के आचार्य महोदय

द्विवेदी जी का आशीर्वाद !

श्रीमान पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी अपने ता० ६—१०—२८ के पत्र में लिखते हैं:—"वीर-सन्देश के ८ अङ्क भी मिले। उन्हें देखकर तबीयत खुश हो गई। मैं इस पत्र को अखबार (Newspaper) समझता था। यह तो मासिक पत्र है। बहुत उपयोगी है। साहित्य का भी वर्द्धक है। बधाई !"

सूचना

वीर सन्देश का वर्तमान अङ्क बड़े विलम्ब से निकल रहा है—इस का हमें खेद है। अक्टूबर का अङ्क अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में निकल जायगा। नवम्बर का अङ्क भी फिर शीघ्र ही निकल जायगा।

हमारे विशेषांक

हमारे 'अन्तर्राष्ट्रीय' विशेषांक को लोगों ने पसन्द किया यह प्रसन्नता की बात है। 'सैनिक' विशेषांक नवम्बर में निकालने का विचार था। परन्तु उसके सम्पादक साहित्य रत्न पं० श्रीकृष्णदत्त जी पालीवाल समयाभाव से अभी तक उसका सम्पादन नहीं कर सके हैं। अब यह अङ्क मार्च में निकलेगा। 'पद्माङ्क' भी पं० हरिशंकर जी के सम्पादन में जैसा पूर्व प्रकाशित हो चुका है जनवरी १९२९ में प्रकाशित होगा। इन अङ्कों के लिये जो सज्जन लेख भेजना चाहें—भेजने की कृपा करें। —मैनेजर

वीर-सन्देश



एक अबला के सतीत्व [illegible] नराधम को यमपुर पहुँचाने वाले

वीरश्रेष्ठ श्री खड्गबहादुरसिंह

आप की मुक्ति के लिए ७५ प्रतिष्ठित सज्जनों के हस्ताक्षर-युक्त
एक मेमोरियल माननीय मालवीय जी ने हाल ही में
श्रीमान् वायसराय को भेंट किया है।

अलंकार प्रेस, आगरा

वीर-संदेश

(वीर रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिस से फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग २ } आगरा—भाद्रपद सं० १९८५, सितम्बर १९२८ { अङ्क ९

शक्ति—सुधा

[लेखक—श्रीयुत रमेश]

प्रभुवर, शक्ति सुधा प्रगटादो।
मोहाछन्न-मुमुर्ष जाति में जीवन ज्योति जगादो॥
स्वत्व और स्वातंत्र्य-प्रेम की, उठे जगत में क्रान्ति।
एक तंत्र परतंत्र-वाद की, हट कर मिथ्या भ्रान्ति॥
प्रभुवर, द्वैधा-वृत्ति मिटादो।
पीड़ित पराधीन जन-रवका, करुणा-क्रन्दन घोर।
करदे नष्ट निरङ्कुश शासन, ढूंढ़े मिले न ओर॥
प्रभु, यह कलुषित कलह हटादो।
भीरु, अशक्य न रहें, ओज, बल पूरित हों विश्वेश।
जीवन-विजय प्राप्त करलें, परिताप रहे नहीं शेष॥
प्रभु, सञ्जीवन सुधा पिलादो।
होकर जीवन-हीन, सह रहे, महाक्लेश हम तात।
परवश पड़ी विषम-बंधन में, व्याकुल भारत मात॥
प्रभु, अब बंधन मुक्त करादो।

अहिंसा और वीरता

[लेखक—श्रीयुत कामताप्रसादजी जैन, एम० आर० ए० एस०]

लोग कहते हैं कि अहिंसा में वीरता नहीं है। अहिंसक, वीर, कायर अथवा डरपोक होता है। वह कभी बहादुरी नहीं दिखा सकता। जिस राष्ट्र में अहिंसा का प्रचार हो जाता है, उसका पतन होते देर नहीं लगती! अशोक ने भारत में अहिंसा का प्रचार बेढब किया था, उसी का परिणाम यह हुआ कि भारत परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ गया! भगवान् जाने लोगों ने अहिंसा को ऐसा 'हउआ' क्यों समझ लिया है? और क्यों वे उसे कायरता की जननी समझते हैं? हां, इतनी बात जरूर है कि अहिंसा-पालन में मनुष्य को किञ्चित अपनी इन्द्रियों को संयत बनाना पड़ता है और उनका जीवन सात्वकि—संयमी—होता है। यह बातें अवश्य ही ऐसी हैं, जो बड़े मौज शौक से रहने वाले इन्द्रियों के गुलाम बने हुए मनुष्य के लिये लोहे के चने दिखाई पड़ें! आजकल दुनियां में ऐसे ही लोगो की बढ़वारी है, बस हम तो समझते हैं, ऐसे ही लोग अहिंसा में कायरता का स्वप्न देखते हैं। वरन् जिन्हें जरा भी विवेक है और जो सच्चे दिल से प्राणी मात्र की भलाई चाहते हैं, वे अहिंसा को जन कल्याण और लोकहित का मुख्य साधन समझते हैं। कारण कि वे जानते और मानते हैं कि अहिंसा द्वारा ही वह सतोगुण उत्पन्न होता है जो दैवी सम्पत्ति और नैतिक जीवन का मूल कारण है। सत्वशाली प्रजा का जीवन श्रेष्ठ होता है और नैतिकता से युक्त होने के कारण वह संगठन शक्ति का आदर्श है। सतोगुण की प्रधानता में मनुष्य सहसा विवेक शून्य नहीं हो सकता और इसलिये वह अपने स्वार्थ में अन्धा हो कर दूसरों को तकलीफ़ नहीं पहुंचा सकता। अहिंसा के साम्राज्य में पारस्परिक वैर विरोध की भावनाओं को प्रमुख स्थान मिल ही नहीं सकता। और यह मानी हुई बात है कि जहां प्रेम तहां सम्पति नाना, तो फिर कहिये भारत का पतन अहिंसा के बहु प्रचार से कैसे? अहिंसक प्रधान

देश, कायर और नैतिक जीवन से विमुख नहीं मिल सकता है ? मनो-विज्ञान का यह सीधा सादा सत्य वाक्य है। क्या कोई इसे असत्य कहने का साहस रखता है। भाई पाठक, भारत का पतन अहिंसा से नहीं हुआ उसका सत्यानाश साम्प्रदायिकता की विष-बेल ने किया, जो इस देश में मुद्दतों से फलती-फूलती रही है। अशोक ने अहिंसा धर्म का प्रचार किया ब्राह्मणों को यह अखर गया। उनका भाग्य चमका, उनने अशोक के करेधरे पर हरताल फेर दी। पशु यज्ञ होने लगे और बौद्ध लोग सताये जाने लगे। पारस्परिक विद्वेष बढ़ता रहा और बढ़ता रहा उसके साथ हिंसा का क्रूर भाव ! परिणाम यह हुआ कि भारत फूट का घर बन गया संगठन का नाश हो गया। हिन्दू राजाओं के हृदयों में विवेक निःशेष हो गया। मान और क्रोध में वे मतवाले हो गये। हम जानते हैं कि मांस भोजन से उन्हें परहेज नहीं था, परन्तु तो भी वह विदेशियों को भारत में अपना पैर जमा लेने मे न रोक सके। ठीक इसके विपरीत अब जरा देखिये उस समय का दृश्य, जब भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध का अहिंसा प्रचार देश के कौने कौने में हो गया था और मनुष्य मात्र में प्रेम-भाव जागृत हो गया था। उस समय भी विदेशी लोगो-यूनानियों-ने भारत पर आक्रमण किया था किन्तु उस समय के संगठित साम्राज्य के समक्ष उनकी दाल न गल सकी। मगध के नन्द सम्राट् ने जिसे विद्वान् जैन बतलाते हैं, यूनानियों के दांत खट्टे कर दिये। वे अपना बोरिया बसना बांध कर चम्पत हुये। कुछ रह भी गये, तो उन्हें सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ने खदेड़ कर भारत के बाहर कर दिया। अफगानिस्तान को भी अपने सा-म्राज्य में मिला लिया ! यह अहिंसावादी राजाओं के कार्य थे। अब भाई पाठक, यह सोच देखो ये अहिंसावादी राजा वीर थे या कायर ! अहिंसा ने देश का नाश किया या विनाश के गर्त में गिरने से उसे बहुत दिनों तक बचाये रक्खा !

सचमुच अहिंसा वीरता की जननी है। वह अव्यवहार्य नहीं है, जो लोग उसके स्वरूप को नहीं समझे हुए हैं, वे ही उस पर निराधार

आक्षेप करते हैं। कर्मवीर भगवान् कृष्ण को देखिये! महाभारत का महायुद्ध हो रहा है, कृष्ण सारथी का काम कर रहे हैं, बाणों की घोर वर्षा हो रही है, योद्धाओं को विकट हुँकार ने बादलसे गर्जा दिये हैं, शोणित की नदियां बह निकली हैं, परन्तु वह देखिये कृष्ण के मुख से मृदु मुस्कान नहीं हटी हैं--उनकी भृकुटी टेढ़ी नहीं है—वह तो गहरी आत्म-चरचा की बातें छान रहा है! ओह, कितनी निस्पृहता है—निर्लिप्तता है और वीरता है। यह सच्चे वीर का आदर्श है। अहिंसाव्रती वीर सदा सर्वथा हिंसक भावों से परे रहता है। कृष्ण कहते हैं—

'कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेश जननं प्रोक्ता अहिंसा परमर्षिभिः ॥'

अर्थात्—'मन, वचन तथा कर्म से सर्वदा किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाना, इसी को महर्षियों ने अहिंसा कहा है।' आज एक रणधीर योद्धा को यदि कोई यह सूक्ति सुनाये तो, लोग उसे कायर और न जाने क्या क्या कह कर पुकारें! किन्तु क्या वह कृष्ण को कायर कह सकते हैं? अर्जुन लड़ रहे हैं और कृष्ण किसी को भी मन, वचन, काय से क्लेश न देने का उपदेश देते हैं। यह उपदेश अर्जुन को कर्त्तव्य पथ से विचलित कर दे और भीरु बना दे तो आश्चर्य ही क्या? और आज कल लोग अहिंसा को कायरता की जननी मानने लगें तो कौनसी अनूठी बात है? ठहरे तो आखिर छद्मस्थ ही! इन्द्रियों के गुलाम! और हृदय के क्षणिक आवेश पर नाचने वाले! किन्तु सात्विक पुरुष उक्त सूक्ति को पाकर हताश नहीं होता, उसे अपने कर्त्तव्य में बाधक नहीं समझता। वह महा पुरुषों के वचन को परखता है और टटोलता है उसका भेद! रहस्य समझ गये, बेड़ा पार है! किन्तु दुःख है कि अभाग्य से महापुरुषों के वाक्य सीधे-सादे तरीके पर करीने से लगे नहीं मिलते और उतावले लोग झट एक सूक्ति को पकड़ कर अगट सगट मान बैठते हैं। हां, जैनधर्म के महापुरुषों के वाक्य अवश्य करीने से वैज्ञानिक ढंग पर रचे हुये मिलते हैं। किन्तु आश्चर्य है, सबसे ज्यादा

ग़लतफहमी उनके विषय में ही फैल रही है। लोग समझते हैं, जैन अहिंसा बिल्कुल अव्यवहार्य है। किन्तु यह वही कह सकते हैं, जिनने जैन अहिंसा का स्वरूप नहीं समझा अथवा जो जान बूझ कर अपने लोभ-कषाय को पुष्टि करना चाहते हैं। जैन शास्त्र भी अहिंसा का स्वरूप ठीक वैसा ही कहते हैं जैसा कि उपरोक्त श्लोक में कृष्ण जी बतला रहे हैं। किन्तु फिर वह बतलाते हैं कि अहिंसा के इस रूप का पूर्ण पालन वही पुरुष कर सक्ते हैं, जो परम योगी हैं और जिन्हें अपने शरीर का भी तनिक ममत्व नहीं है। संसार के प्रलोभनों में फंसा हुआ गृहस्थ उसका पूर्ण पालन नहीं कर सक्ता। उसके लिये तो यही उचित है कि वह अहिंसा को अपना आदर्श बना कर यथाशक्ति उसका अभ्यास करता चले। जानबूझ कर क्रोध, मान, माया, लोभ के वश होकर किसी के प्राणों को कष्ट न दे। गृह कार्य अर्थात् आरंभी हिंसा, व्यापार-व्यवहार अर्थात् औद्योगिक हिंसा और न्याय संचार व अन्याय प्रतीकार अर्थात् विरोधी हिंसा से एक गृहस्थ कहीं बच सक्ता। अपने उपरोक्त कर्तव्य पालन करने में उसे जो हिंसा होगी, उसके लिये वह विवस है। वह गृहस्थाश्रम में रह रहा है—अपने कर्तव्य पालन करना उसे अनिवार्य है। अतएव वह अहिंसक रहते हुए भी अपने कर्तव्य पालन से विमुख नहीं होगा। वह अच्छी तरह जानता है कि 'अहिंसा या वीरता अर्थात् मन से भी किसी का अनिष्ट न सोचना, शत्रु के प्रति भी प्रेम रखना, एक सात्विक गुण है, जो कि राजसगुण-प्रतिहिंसा और प्रतिहिंसा की क्रिया क्षमता-से उच्चतर है, किंतु प्रतिहिंसा की अक्षमता या अयोग्यता केवल कायरता और निःकृष्ट तमोगुण है।' इसीलिये एक अहिंसक वीर अपना जीवन पूर्ण प्रेम मई रखते हुये भी, अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होता वह तामसिक कायरता से बिल्कुल दूर रहता है और सर्वथा अन्याय का नाश करने के लिये तत्पर रहता है। इसमें उसका कुछ भी स्वार्थ नहीं होता। वह निःस्वार्थ भाव से यह सब कुछ करता है। कृष्ण जी ने अहिंसा का सच्चा स्वरूप बताते हुए भी अर्जुन को शत्रुओं से लड़ने के लिये

उत्साहित किया था, क्योंकि कौरव अन्याय पर थे। कृष्णजी ने आत्मा को अमर बताकर अर्जुन में निशङ्क भाव भरने का प्रयास किया था (गीता अ० २-११), किन्तु इससे उनका भाव यह नहीं था कि आत्मा अमर है, इसलिये जीवहिंसा करने में कुछ पाप नहीं—वह विधेय है। नहीं, यह भाव उनका कदापि नहीं था। कृष्णजी ने कर्तव्य-पालन के लिये—अन्याय को मेटने के लिये समभावों से—कषाय के आवेश से नहीं—अर्जुन को युद्ध करने के लिये कहा था। यह बात गीता के निम्न श्लोक से स्पष्ट है:—

'यस्य नांहकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वाऽपि स इमांल्लोकान् न हंति न निबध्यते॥ अ० १८-१७।'

अर्थात् 'जिसे अपने कार्य में अहंकार का भाव नहीं, जो यह नहीं सोचता कि मैं करता हूँ और जिसकी बुद्धि निर्लिप्त है—उस कर्म के राग से अलग है, वह लोगों को यदि मार डाले तो भी (ऐसा समझना चाहिये) कि उसने किसी को नहीं मारा और न उसे उस कामका कोई दंड मिलता है।' ठीक ऐसा ही विवेचन जैनाचार्य भी करते हैं, देखिये—

'मरदुव जियदुव जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बन्धो हिंसामित्तेण समिदस्स॥'

अर्थात्—जैसे किसी जीवने अपने मनमें किसी के मारने का पक्का इरादा कर लिया, इससे उसको उसी समय उस हिंसा का पाप भी बंध चुका, जब तक वह उसको मार भी नहीं पाया कि उसके पहले ही फल भोग लेता है। इसलिये कहा है कि बैठे बिठाये भी कलुषित परिणाम रखने से पापबन्ध हुआ करता है और सावधानी से निष्कषाय होकर काम करते हुए हिंसा हो जाने पर भी पाप नहीं लगता।'

जैनाचार्य अहिंसा के इस स्वरूप को ध्यान में रखते हुए अन्याय के प्रतीकार और न्याय एवं धर्म संचार के लिए अपराध करने वालों को यथायोग्य दण्ड देना सामर्थ्यवान अणुव्रती पुरुषों के वास्ते विधेय ठहराते हैं। (सागार धर्मामृत—गृहस्थ धर्म पृ० ९२) वह ठीक गीता के उपरोक्त

विधान के समान अन्याय के नाश के लिये युद्ध करना उचित बतलाते हैं पंचाध्यायी में जैनाचार्य यही कहते हैं:—

"अर्थादन्यतमस्योच्चैरुद्दिष्टेसु स दृष्टिमान् ।
सत्सु घोरोपसर्गेषु तत्परः स्यात्तदत्यये ॥८०८ ॥
यद्वा नह्यात्म सामर्थ्यं यावन्मन्त्रासिकोशकम् ।
तावद् द्रष्टुं च श्रोतुं च तद्बाधां सहते न सः ॥८०९॥२॥"

अर्थात्—सिद्ध-परमेष्ठी, अर्हत्बिम्ब, जिनमंदिर, चतुर्विधि संघ आदि अर्थात् धर्म, धर्मायतन और साध हितैषियों पर यदि घोर उपसर्ग होवे—कोई आतताई उनको सताने लगे—तो एक सम्यग्दृष्टि (जैनी) को उसे दूर करने के लिये तत्पर रहना चाहिये। अथवा 'जब तक अपनी सामर्थ्य है और जब तक मंत्र, असि (तलवार का जोर) और बहुतसा द्रव्य (खजाना) है, तब तक वह सम्यग्दृष्टि पुरुष उन पर आई हुई किसी प्रकार की बाधा को न तो देख ही सक्ता है और न सुन ही सक्ता है।' यहां पर आचार्य महाराज प्रकट रीति से आतताई को परास्त करने के लिए एक जैन को हर तरह तैयार रहने का उपदेश देते हैं। फिर भला जैन अहिंसा मे कायरता कहां है? और वह एक गृहस्थ के लिये अव्यवहार्य कैसे है? भगवान महावीर ने जो उनकी शरण में पहुँचा, उससे साफ यही कहा कि यदि तुमको जैनधर्म में श्रद्धा है और उससे अपना आत्म कल्याण करना चाहते हो, तो सबसे पहले निःशङ्क हो जाओ। किसी प्रकार की शङ्का और भयको अपने पास मत फटकने दो। इस आदेश पर जो मनुष्य आरूढ़ हुए वह सतोगुण प्रधान वीर हो गये और बड़े २ कवि उन लोगों (जैनो) को सकल-जनोपकारक समझने लगे! (सकल-जनोपकार सज्जा सज्जनता जैनी—हर्षचरित अ० ८) अतः अहिंसा में कायरता की गंध सूंघना असंभव है।

प्रत्येक धर्म उसको थोड़े बहुत अंश में स्वीकार करता है और अन्याय का नाश निर्लिप्त भाव से करने का आदेश देता है। 'महाभारत' में कहा गया है कि "प्रत्येक अवस्था में और प्रत्येक स्थान पर सामर्थ्य

होते हुए भी क्षमाभाव (अहिंसक भाव) रखने से बढ़कर सुख कर और कुछ नहीं है। जो निर्बल है उसे प्रत्येक दशा में क्षमा का अभ्यास करना चाहिये। जो सामर्थ्यवान् हैं उन्हें धर्म हेतु क्षमा रखनी चाहिए और जिसके निकट हानि-लाभ समान हैं अर्थात् योगीजन, वह स्वभावतः क्षमाभाव रखते हैं।" (उद्योग० ३९-५९-६०) इस वृत्ति पर होने वाले आक्षेप का निरसन भी खूब ही किया है। लिखा है कि "क्षमावान (अहिंसक) पुरुषों में एक दोष बताया जाता है। वह यह कि लोग क्षमावान पुरुष को निर्बल समझने लगते हैं, किन्तु इसकी परवा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि क्षमा एक प्रबल शक्ति अथवा बल है। अतः क्षमा (अहिंसा) निर्बल का धर्म है और सबल का भूषण है। क्षमा से सारे संसार के सब पदार्थों पर विजय पाई जा सक्ती है।" (उद्योग० ३३-५५-५९)

अहिंसक वीर का दुष्ट व्यक्ति बिगाड़ ही क्या सक्ते हैं? वह अन्याय को तो अपने पास रहने नही देता-सदा ही उसका प्रतीकार करता रहता है। बस, जहां घास-फूस कुछ नहीं, वहां अग्नि गिरकर स्वयं नष्ट हो जाती है। यही अहिंसक भाव की विशेषता है-क्षमा का यही अपूर्व प्रभाव है, यह आदर्श वीर्य अथवा शौर्य का खासा नमूना है। इसी कारण 'कुरान शरीफ' में भी कहा गया है कि:—

"Commit not the injustice of attacking first."

(The Ethics of Koran, p. 102)

अर्थात्—'पहले ही आक्रमण करने—तलवार उठाने का अन्याय मत कर।' सचमुच यह अन्याय है—जान बूझ कर दुःख और क्लेश की सिरज है। महात्मा गांधी के वाक्य सवा सालहआने यहां फबते हैं कि 'तलवार का वार करने मे बहादुरी नही है। सच्ची बहादुर तलवार का वार सहन करने मे है।' तभी तो बाइबिल में यह सुनहरी शिक्षा मौजूद है कि 'यदि कोई एक गाल पर चपत मारे, तो उसके सामने दूसरा गाल कर दो।' म० बुद्ध भी क्या ठीक कहते हैं कि—"जो क्रोध को चलते हुए रथ की तरह एक दम रोक लेता है, वही मेरे निकट सच्चा चालक

(Driver) है, शेष पुरुष तो मात्र लगाम हाथ में थामे हुये हैं। अतएव मनुष्य को क्रोध पर प्रेम से विजय पानी चाहिये। बुराई को भलाई से जीतना चाहिये।" (धम्मपद S B E भा० १० पृ० ५८) मनुष्य जिस समय इस उत्कृष्ट सिद्धान्त को हृदयङ्गम कर लेते हैं—उत्तम ढङ्ग से आपस में एक दूसरे से प्रेम करते हैं, तब पारसी धर्म संस्थापक के शब्दों में 'वे परमानन्द को पाते हैं।' (The Zoroastrion Ethics, pp.138-139) अतः अहिंसा को पालन करने से कोई भीरु नहीं होता और न उससे मनुष्यों को दशा खराब होती है। अहिंसा में वीरता है और वह सुख का आगार है। यदि आज भारतीय सतोगुण प्रधान अहिंसा को समझ लें और उसका अभ्यास स्वयं करें और विदेशों में फैलावें तो जगत में पुनः एक बार शान्ति और सुखका साम्राज्य छा जावे। लोग गांधी या लेनिन का मुंह न तार्कें—स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें ! स्वावलम्बी होकर प्रेम की पुण्य धारायें बहा दें ! पर क्या यह संभव है ? भविष्य जाने !

घनश्याम गये पथ भूलि कहां ?

[लेखक—श्री० लक्ष्मीसहायजी माथुर, विशारद]

एक ग्राह को व्यथित देखकर तुम झट दौड़े आते थे।
आरत सुन शत योजन पर भी दुख मोचन को जाते थे ॥
प्रेम-सहित यदि असन मिले तो झूठा भी तुम खाते थे।
मुट्ठी भर तन्दुल ही तुमको मनोयोग से भाते थे ॥
भारत हित सुख और सम्पदा निशिवासर तुम लाते थे।
माणिक, मोती, लाल, हमारे भवनों में न समाते थे ॥
दधि माखन के खेल खेल वनिताओं को तरसाते थे।
और साथ ही उस कौतुक में प्रेम-सुधा बरसाते थे ॥
है वह क्रीड़ा-स्थल अब भी यह किन्तु, नहीं सुख शान्ति यहां।
आओ, आकर फिर सुधि लो, घनश्याम ! गये पथ भूलि कहां ?

"साहित्य-मीमांसा"

(प्रत्यालोचना)

[लेखक—श्रीयुत पं० किशोरीदासजी वाजपेयी शास्त्री]

अगस्त के 'महारथी' में श्रीयुत 'श ष स' महाशय ने 'साहित्य मीमांसा' की समालोचना करते हुए लिखा है:—

"लेखक ने इस छोटी सी पुस्तक में साहित्य पद का अर्थ, तत्संबन्धी संक्षिप्त परिचय, रस, रसाभास, प्राचीन कवियों का रस-निरूपण, औचित्य विचार आदि विषयों पर विवेचना की है।

"पुस्तक के अन्त में लेखक महोदय एक बहुत बड़ी और विवाद-ग्रस्त बात छेड़ बैठे हैं, और उस पर इतने संक्षेप से विचार किया है कि कई स्थल शंकाओं और आलोचनाओं की भूमि बन गये हैं। आपका यह लिखना कि 'जिसे देखो अपना उपनाम रखकर, कविता करने चल पड़ा है.......। हम इसे कविता नहीं कह सकते...। न इनमें भाव होते हैं, न अलंकार......रसों का तो नाम ही छोड़िये।......आज यदि कोई साहित्य-ग्रन्थ बनावे, तो उसे दोषों के उदाहरण ढूंढ़ने में दिक्कत न पड़ेगी।.......हमारा अनुरोध है कि कवि बनने के इच्छुक इन तुकड़ों को पुराने साहित्य और काव्य का पूर्ण अध्ययन और मनन करना चाहिये।'

"आपका तात्पर्य्य यह है कि आधुनिक (व्रज-भाषा से इतर भाषा अर्थात् खड़ी बोली के)* कवि कविता नहीं, बल्कि तुकबन्दी करते हैं। उनके काव्यों में दोष के अतिरिक्त गुण होते ही नहीं। इन कवियों को चाहिये दस पन्द्रह वर्ष तक व्रज-भाषा के आचार्य्यों के ग्रन्थों का अध्ययन करें और तब आगे बढ़ें।

---

* कोष्ठक में लिखा वाक्य साहित्य-मीमांसा का नहीं, उसके आलोचक श्रीयुत 'श ष स' महाशय का है। उन्होंने अपनी ओर से भावार्थ निकाल कर लिखा है!

—प्रत्यालोचक।

"हम लेखक महोदय से केवल इतना ही अनुरोध करेंगे कि वह कृपा कर आधुनिक सभी कवियों पर ऐसा व्यापक आक्षेप न करें। उन्हें चाहिये कि खड़ी बोली की ओर से केवल हीन धारणाएं रखने के स्थान पर श्री० जयशंकर'प्रसाद' श्री० सुमित्रानन्दन पन्त, श्री० मैथिली शरण गुप्त, श्री दुर्गादत्त त्रिपाठी, श्री० 'निराला', श्री० 'सुमन,' श्री० मोहनलाल महतो, श्री० 'चातक,' श्री० 'रसिकेन्द्र' और श्रीमती महादेवी वर्म्मा आदि हिन्दी साहित्य के उज्वल रत्नों की पद्य-पंक्तियां पढ़ने और समझने की चेष्टा करें। कुछ भी हो, पुस्तक उपयोगी है और हमें आशा है कि लेखक महोदय परिवर्द्धित संस्करण में और भी सुन्दर और निर्दोष मीमांसा करने की उदारता दिखायेंगे।"

+　　+　　+

समालोचक महोदय के इन वाक्यों में कुछ अंश ऐसा है, जो समालोच्य पुस्तक को पूर्ण पढ़े बिना ही शायद समालोचना लिख देने के कारण प्रतिवादनीय हो गया है। 'साहित्य-मीमांसा' की उद्धृत पंक्तियों से, न मालूम आपने पुस्तक के लेखक का खड़ी-बोली-विषयक वैसा विद्रोह, कहां से निकाल लिया ? इन पंक्तियों में तो सिर्फ आजकल के तुकड़ों के लिये दो शब्द लिखे गये हैं और 'साहित्य-मीमांसा' में निम्न लिखित आशा के साथ यह विषय समाप्त किया गया है:—

"हमारा अनुरोध है कि कवि बनने के इच्छुक इन तुकड़ों को पुराने काव्य और साहित्य का पूर्ण अध्ययन और मनन करना चाहिये। फिर, वे काव्य करने का प्रयत्न करें। अवश्य समय पाकर 'कवि' बन जायंगे और अपनी मीठी तथा सरस कविता से जगत् को आह्लादित करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।"

पाठक ढूंढ़े कि कहीं किसी भाषा का नाम भी आया है। चाहे किसी भी बोली या भाषा का तुकड़ हो, सब के लिए एक ही बात है। और जो खड़ी बोली के सिद्ध कवि हैं, उनका सिक्का तो सहृदयों के हृदयों पर बैठा ही है। 'साहित्य-मीमांसा' का लेखक तो उनका दास है।

समालोचक महाशय ने जिन कवियों के नाम गिनाये हैं, उनमें से दो-तीन को छोड़ बाकी सबको कवि, यथार्थ कवि, 'साहित्य-मीमांसा' का लेखक भी मानता है। 'गुप्त' जी और 'प्रसाद' जी की लेखनी तो संसार में एक अनुपम ज्योति ही चमका चुकी है। हां, इस कवि-सूची में समालोचक महोदय को सब से पहिले खड़ी बोली के कवि श्री 'शंकर' जी का नाम स्मरण करना चाहिए था, जिन्हें प्रसिद्ध समालोचक श्री पं० पद्मसिंहजी शर्म्मा ने 'वश्यवाक' लिख कर अपनी सहृदयता का पूर्ण परिचय दिया है। अस्तु—

तो, 'साहित्य-मीमांसा' में कहीं भी ऐसी बात नहीं लिखी है, जैसी कि समालोचक महोदय ने अनुमित की है। पुस्तक में जिस स्थल की यह बात है, उस से आगे, उसी पुस्तक में, भाषा के विषय में, ये पंक्तियां लिखी हैं:—"इस विषय में हमारा यह सिद्धान्त है कि (खड़ी बोली और ब्रज-भाषा) दोनों प्रकार की भाषाऐं काव्य-सृष्टि में रहनी आवश्यक हैं; क्योंकि इन दोनों का समर्थन सहृदय-समाजों द्वारा ही होता है और काव्य के लिए कौन सी भाषा उत्कृष्ट है, इसमें सहृदयों के हृदयों के अतिरिक्त और कोई प्रमाण हो भी नहीं सकता।······यह नहीं कहा जा सकता कि अब भी कविता की भाषा ब्रज-भाषा ही रहनी चाहिए और खड़ी बोली नहीं; जब कि सहृदयों की एक बराबर की पार्टी ने उसे हृदय से अपना लिया है और उस में बहुत कुछ अर्थ-संचय कर दिया है। हां, एक बात अवश्य होनी चाहिए। ब्रज-भाषा के और खड़ी बोली के पक्षपाती कवियों में कुछ सहयोग होना आवश्यक है। इन्हें परस्पर एक-दूसरे की भाषा के उपयोगी पदों, मुहाविरों और भावों को आदान-प्रदान करने की जरूरत है। वास्तव में ऐसा हुए बिना काव्य सरस और उपयोगी हो भी नहीं सकते। यह बात और है कि कवि अपनी प्रतिभा से किसी भी भाषा में और किन्हीं शब्दों में जान डाल कर उन्हें उत्तम काव्य का रूप दे सकता है। यही कारण है कि संस्कृत अथवा हिन्दी के किसी भी आचार्य्य ने काव्य का लक्षण करते समय उसमें किसी खास भाषा का समावेश नहीं किया है।······जब किसी ने भी काव्य के लक्षण में

भाषा का सन्निवेश नहीं किया है, तो हम नयी रीति निकाल कर अराजकता नहीं पैदा कर सकते। भाषाएं सभी काव्य के उपयुक्त हैं, यदि उनमें कवि काव्य के गुण निहित कर सके।"

अब आप समालोचक महाशय की उन पंक्तियों को और 'साहित्य-मीमांसा' के इन शब्दों को एक साथ मिला कर पढ़िए। अवश्य ही आप कहेंगे कि समालोचक महाशय पुस्तक पूरी पढ़े बिना ही समालोचना लिखने बैठ गये होंगे। उन्होंने द्वेष-बुद्धि से या अज्ञान से वैसा नहीं लिखा है, लेकिन लिखने में उन्होंने जल्दबाजी जरूर की है।

एक जगह आप ने 'साहित्य-मीमांसा' के लेखक को खड़ी बोली की कविताएं पढ़ने और समझने की सलाह दी है। इसमें निवेदन इतना ही है कि उसने यथाशक्य इन कविताओं को पढ़ा है और समझा है। परन्तु, यह अवश्य है कि खड़ी बोली के दो चार निराले कवियों की 'रेखाएं' उसकी समझ में नहीं आती। किन्तु, इस से कोई पश्चात्ताप नहीं है, कारण, जब बड़े बड़े 'महारथी' इन कविताओं को नहीं समझ सकें तब छोटे-मोटे लोगों की तो गिनती ही क्या है—

"जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥"

सम्भवतः इन्हीं कविताओं को खास तौर पर समझने के लिए आपने अनुरोध किया है पर यह बस की बात नहीं है। अतः क्षमा प्रार्थना है।

इस प्रकार इस छोटे से लेख में यही बतलाना अभीष्ट था कि 'साहित्य-मीमांसा' ने कहीं भी खड़ी बोली पर हमला नहीं किया है, किंतु उसका पक्ष लेकर पोषण किया है, उक्त पुस्तक के लेखक का तो भारतेन्दुजी के शब्दों में मन्तव्य है कि:—

"भाव अनूठो चाहिए भाषा कोऊ होय।"

वस्तुतः यही बात ठीक भी है।*

---

* "साहित्य-मीमांसा" नामक एक उत्तम आलोचना पुस्तक प्रस्तुत लेख के लेखक की लिखी हुई साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित हुई है। इस लेख का सम्बन्ध उस पुस्तक की "महारथी" में प्रकाशित समालोचना से है। अतः पाठकों को चाहिए कि वे मूल पुस्तक को अवश्य देखें। —सम्पादक।

राधे

(एक सत्य घटना के आधार पर लिखित गल्प)

[लेखक—कविरत्न पं० जगदीशचन्द्र जी, आयुर्वेदाचार्य]

—१—

सन् १९११ को भाद्र शुक्ला दशमी थी, नगर निवासी सदा की तरह इस वर्ष भी उसी उमंग से, नरवर मोहन की कौतुक क्रीड़ा, तथा असुर मामा की अन्तिम लीला देखने को, निःशंक भाव से अपने अपने बालकों को गोद में लिये दौड़े आ रहे थे।

नियत समय पर असंख्य जयघोषों के बीच अपनी मनोहारिणी छटा से नगर निवासियों को उल्लासित करते हुये, भगवान् श्रीकृष्ण ने सुन्दर स्वर्णरथ पर पदार्पण किया।

दोपहर का समय था, असंख्य हिन्दू उल्लास से इधर उधर दौड़ रहे थे। क्षण भर में आने वाले सङ्कट का किसी को ध्यान ही न था, वर्ष भर के इस सुन्दर अवसर पर भगवान् के इस वीर रस पूर्ण निदर्शन में भी क्या कोई वाधा या सङ्कट उपस्थित हो सकता है यह उनके मन में समाया ही न था। यद्यपि इस तरह की अफवाहें नगर भर में दस दिन से प्रचलित थी फिर भी सभी निश्चिन्त थे, निश्शंक थे, उनके भक्ति पूर्ण चेहरे पर न भय था न चिन्ता। सभी शान्त तथा अलौकिक उल्लास में भूले थे।

घोर शंखध्वनि ने रथ यात्रा की सूचना दी, लोग उत्सुकता से इधर उधर होने लगे। चौमुहानी पर खड़े जएट साहब ने पुलिस को सतर्क करने के लिये घोड़े को एड लगाई।

बस पलक मारते ही, अगणित आततांई एक साथ रथ पर टूट पड़े। अल्लाहो अकबर के नारे से आकाश गूँज उठा। आकस्मिक विपत्ति से त्रस्त मानव समुदाय विशृंखलित हो भाग पड़ा। सैन्य की तरह सुसज्जित इस दल ने जिसे जहां पाया वहीं मार लिया। अपनी अपनी सम्भालने

वाली हिन्दू जनता, बुरी तरह पिटने लगी। सभी अपने अपने बचाव की फिक्र में लगे थे। पिता ने बच्चे को छोड़ दिया, भाई भाई से बच कर निकल भागा, दूकानदार खुली दूकान छोड़ छुप गया। नगर में इस लहर के फैलते ही जो निकल सका निकल भागा।

सक्के ने मशक उडेल कर रस्सी सम्भाल ली। मुलजिम ने मालिक के सामने जूते को ही नव्यास्त्र का रूप दे दिया। पल्लेदार, तैली, सभी काफिरों का बधकर सबाब पाने के लिये अधीर हो दौड़ पड़े। मर्द जिस प्रकार जन्नत की हूरों के लिये, लालायित हुये; स्त्रियें भी, गिलमां के लिये उतनी ही लालसा मन में कर आँचलों में ईंट पत्थर ले, छतों पर चढ़ सबाव सञ्चय करने लगीं।

—२—

बाजार प्रायः हिन्दुओं से खाली हो चुका था, बीच बाजार के सदर फाटक पर केवल रथ था, उसमें बन माली और उसके चारों ओर अगणित यवन।

महाराज में आज सचमुच अलौकिक आभा थी, वह शान्त भाव से उसी प्रकार बैठे थे। इतनी मार काट में एकाकी बैठे हुये उन्हें भय हुआ न उद्वेग। उन्होंने एकवार बाजार की ओर देख आततायियों को सम्बोधित कर कहा:—

क्या चाहिये ?

तुम्हारा धर्म।

क्या तुम्हारे पास कोई धर्म नहीं ?

है।

फिर ?

तुम काफिर हो।

क्या काफिरों का धर्म लोगे ?

नहीं।

फिर ?

उनका धर्म नाश करेंगे।

किस तरह ?

उन्हें ईमान देकर।

यदि तुम्हारी इस ज्यादती पर भी कोई ईमान न लाया ?

तब मारेंगे।

मार देने से तो उनका धर्म नष्ट नहीं होगा ?

तो सवाब होगा, जन्नत नसीब होगी।

महाराज ऐसे भयङ्कर समय में भी, ठहठहा कर हंस पड़े। उन्होंने कहा मूर्खों तुम पर शैतान आया है, तुम्हें धर्म का तनिक भी ज्ञान नहीं। तुम्हारे इन कर्मों का फल बड़ा ही भीषण होगा। इस प्रकार तुम मुझे कभी भी पा न सकोगे।

उनका धैर्य्य छूट गया, उन्होंने एक साथ आक्रमण किया। महाराज हाथों से लाठी हटाते हुये रथ से कूद पड़े। मन्दिर के द्वार को स्पर्श करते हुये उन्होंने कहा, कोई है।

राधे बद्धाञ्जलि हो सामने आया, महाराज ने एक अन्तर्भेदी दृष्टि डालते हुये कहा।

राधे, क्या आज मेरे पार्थ की तरह वीरता की लाज रख सकोगे?

आपकी जिस दास पर अनुकम्पा हो उसके लिये त्रैलोक्य विजय भी सुकर है।

तो राधे जाओ इस दलित हिन्दू जाति के नाम की और विपन्न कायर नगर निवासियों की मानरक्षा आज तुम्हारे ही हाथ होगी। यह कहते हुये महाराज द्वार चीर कर अन्दर चले गये।

राधे एक क्षण तक उस विशाल जन समूह को जिसकी संख्या लगभग ५ हजार होगी। बड़े ध्यान से देखता रहा और दूसरे क्षण किसी आन्तरिक आवेश से उछल कर नीचे कूद पड़ा।

—३—

भगवान् प्रभु को जब राधे सा कर्मवीर भाई मिला तब से वह

एक तरह इस मायावी संसार से बहुत दूर हट गये थे। स्त्री तथा पुत्र की चिन्ता अब उनके पास न थी। अपने कारोबार का उन्हें तनिक ध्यान न था। राधे को मनुष्यत्व की उच्च शिक्षा प्रदान कर अब वह धीरे धीरे किसी अज्ञात पथ पर खिंचे जा रहे थे।

आज दशमी थी। भगवान् की रथयात्रा का दिन था। राधे आरम्भ से ही भावुक था, पर उसकी भावनायें प्रभु की तरह शून्य में तरङ्गित होने वाली कोमल रश्मिमालवत् लहरें न थीं। वह पर्वत की तरह अचल, सत्य की तरह निश्चित, जीवन की तरह कार्य-कारिणी भावनाओं का स्वामी था।

प्रभुलाल उसकी इस वृत्ति से खूब परिचित थे, दो दिन की गरम अफवाहों से नगर में उत्पात होजाने की उन्हें भी शङ्का थी, इसीसे आज की रथयात्रा में राधे का चला जाना उन्हें अच्छा नहीं जँचा था।

एक दो बार उन्होंने चाहा भी कि चल कर राधे को बुला लायें पर स्वाध्याय की चाट इतनी मोहिनी थी कि उसे छोड़कर चलना उन के वश से बाहिर की बात हो गई थी। कुछ देर बाद हांपते हुये मानसिंह ने आकर उसी तरह ध्यान मग्न प्रभु को जोर से पुकारा—'भैया क्या अब भी पाठ खतम नहीं होगा।'

प्रभु—भैय्या आज का पाठ तो बहुत ही मनोरञ्जक है।

मानसिंह—भैया! इसे छोड़ो, इसके लिये अभी जीवनभर पड़ा है। चलो, उठो, सुना है शहर में भारी गड़बड़ मची है और राधे अकेला हजारों मनुष्यों से वनराज की तरह भिड़ रहा है।

पुस्तक को नीचे खिसकाते हुए प्रभु ने कहा— ऐं राधे, अकेला, क्या और कोई नहीं बचा?

मानसिंह—बचे क्यों न होंगे पर डर से सब छिपे होंगे।

प्रभु—हाँ, तो सिर्फ मेरे राधे को जान प्यारी न थी! मैंने पहले ही कहा था। चलो भैया, देखें तो राधे का क्या हाल है!

प्रभु और मानसिंह जब बाजार की दूसरी ओर आये तब तक यवन दल पर्वत की तरह अचल खड़ा था। यत्न करने पर भी जब पार न पा

सके तब मानसिंह ने कहा—"भैया चलो दूसरी ओरको चलें बहुत भीड़ है।"

प्रभु—भैया तुम जा सकते हो मुझे तो राधे के पास पहुँचना है।

मानसिंह—कैसे !

प्रभु—एक लाठी भीड़ पर छोड़ते हुये कहा—ऐसे।

लाठी पड़ते ही यवन चौंक उठे। अल्लाहो-अकबर के नारे के साथ सैकड़ों लाठी एक बार ही प्रभु के सर पर गिरती हुई, मानसिंह की भयभीत चर्म चक्षुओं ने देखी।

❀ ४ ❀

केवल अपने एक घोड़े के साथ नगर का गस्त और खजाने को देख भाल के बाद जब जण्ट साहब लौटे तो उन्होंने देखा कि राधे अभी तक उसी प्रकार अलौकिक शक्ति से बढ़ा जा रहा था। ४-५ घण्टे के कठिन दुःसाहस ने अभी तक उसका साथ न छोड़ा था। हजार हाथ पड़ने पर शरीर पर कोई निशान न था। सैकड़ों लाठियों के बीच, अवरूद्ध बनराज की तरह उछल कर जब वह चोट करता था तब विपक्षी बीस-बीस कदम पीछे भाग जाते थे। उसी एक चोट में दो तीन को धराशायी कर फिर दूसरा बार कर देता था।

जण्ट साहब खुद एक वीर जाति के रत्न थे। जहां वह राधे की वीरता पर मुग्ध थे, वहां आज अपनी विवशता पर झुंझला रहे थे। पुलिस साथ छोड़ चुकी थी। यदि आज राधे मैदान में न आता तो वह नगर और खजाना किसी प्रकार भी बचा न सकते। पर कब तक, गाड़ी मे अभी आधे घण्टे की देरी थी। उससे पहिले कोई सहायता मिल नहीं सकती थी? उन पर भी काफी चोट पड़ी थी बदन दर्द कर रहा था पर कर्त्तव्य का ध्यान कर वह आगे बढ़े। दूर से उन्होंने देखा, राधे का रुख बदल गया। अब उसमें दानव का बल आ गया था, अब उसकी मार कड़ी पड़ रही थी। उसका निशाना अब विपक्षियों की कनपटी पर था जिसके लगते ही लोग चीख-चीख कर गिर रहे थे। वह अब उचान पर से घायल व्यक्तियों को रौंदता हुआ धीरे धीरे नीचे उतर रहा था।

जण्ट साहब क्षण भर इस नर संहार को देखकर सोचने लगे,

क्या ऐसी बचाव की जगह छोड़ कर नीचे जाना अच्छा होगा? क्या उस तरफ की दीवार इसे कठिन सङ्कट में न डाल देगी? कारण खोजने के विचार से ज्योंही उन्होंने नीचे देखा त्योंही उनका वीर हृदय प्रकम्पित हो उठा।

राधे के सामने नीचे की तरफ एक व्यक्ति जिसकी खोपड़ी लाठियों की चोट से टुकड़े-टुकड़े हो गयी थी और उससे बहने वाला रक्त शत धारा में विभक्त होकर मुंह, आँख, कान को रक्त रञ्जित कर इतना भयावह और रौद्र बना रहा था कि विपक्षी भागने लगे थे, राधे राधे पुकारता हुआ वह बड़े वेग से बढ़ा आ रहा था और उसकी लाठी भी चल रही थी। पर राधे का वही तो लक्ष्य है, उसी को देखकर तो वह विकल हो गया है। राधे का उससे कोई अवश्य घनिष्ट सम्बन्ध है, तभी तो अपने को सङ्कट में डाल वह उसके पास पहुँचने का यत्न कर रहा है।

राधे और उस व्यक्ति में अब केवल ४ गज का ही अन्तर था। दीवार के पास आते ही उन्होंने देखा एक व्यक्ति ने मोड़ पर से घूमते हुये राधे के सर में एक बड़ी लोहे की छड़ दोनों हाथों से दे मारी। साहब का हृदय विदीर्ण हो गया, वह पिस्तौल हाथ में ले घोड़े से कूद पड़े और क्षण भर में बिजली की तरह भीड़ को चीरकर राधे के पास आ पहुँचे। साहब ने चिल्ला कर कहा—हमारा दो सौ आदमी बन्दूक भरे आ लिया है, अगर दो मिनट में तुम लोग भाग न गये तो गोली छोड़ दी जांयगी। गाड़ी आ चुकी थी। गारद का पद शब्द सुनाई दे रहा था। भीड़ बिखर गयी।

चोट राधे के मर्म स्थान पर पड़ी थी। कुछ देर साहब को एक टक देखने के बाद उसकी आभा सदा के लिये भगवान् के अङ्क में विलीन हो गई।

रक्त रञ्जित रेत के ढेर में एक ओर संज्ञा शून्य प्रभु पड़ा था जिसके पास घुटनों के बल साहब बैठे थे। उनकी दृष्टि से अश्रु कण बरस रहे थे। टोप पास पड़ा था। और दूसरी ओर बनमाली राधे के शव को छाती से लगाये बैठे थे। उनकी दृष्टि स्तब्ध थी और हृदय निस्पंद। तमाम सैनिक टोपी उतारे उस वीर के सम्मान को झुके खड़े थे।

वीरत्वाभिलाष

[लेखक—श्री० श्यामबिहारी कुलश्रेष्ठ "जयति"]

रामचन्द्र का रक्त पवित्र।
बहता है अङ्गों में मित्र!
वीर शिवाजी, भीमार्जुन की सन्तति हैं, हे प्रियवर तात!
अमर आज भी है जिनका, वीरत्व प्रभा से नश्वर गात॥
प्यारा उनका क्षत्र-चरित्र।
देता है उपदेश पवित्र॥१॥

कभी न जाने दो स्वतन्त्रता, बनकर वीर-महान् प्रताप।
चाहे पड़े अनेकों बाधा, सहो सर्व सङ्कट सन्ताप॥
बनो कभी मत जैसे चित्र।
अड़ जाओ कर शक्ति विचित्र॥२॥

दल कर दुष्ट दैत्य-दर्पों को, दिखला दो निज अद्भुत शक्ति।
जिससे सत्य तुम्हारे होवें, मातृ-भूमि प्रति प्रेमऽरु भक्ति॥
दुर्बल के बन जाओ मित्र।
होवेंगे प्रसन्न तब पित्र॥३॥

कायरता क्रूरत्व कर्म का, काला मुख कर काटो क्लेश।
हो जीवन-संचार युक्ति से, उठे जगमगा प्यारा देश॥
प्राणी सब बन जावें मित्र।
सब में होवे प्रेम पवित्र॥४॥

धर्म-कर्म हित करदें अपने, प्राण निछावर, छाती रोप।
नहीं डरें, डट जावें निर्भय होकर, सह कर सारे कोप॥
आत्म अमर है सत्य चरित्र।
सौंपें इसे देश हित मित्र॥५॥

सच्चे 'सैनिक' बन जावें सब, सची शास्त्राज्ञा अनुसार।
पूर्व-समान बना दें अपना प्यारा भारतीय संसार॥
प्रभो दें बल वह परम पवित्र।
"जयति" जग लगे खींचने चित्र॥६॥

वीर-नारी

[लेखक—श्रीयुत अयोध्याप्रसाद गोयलीय "दास"]

युवती ने क्रोध के वेग को रोक कर कहा "कवि जी कविता फिर भी रची जायगी इस समय अपनी बहन की इज्जत बचाओ"।

यह कवि बीकानेर महाराज के भाई थे, कई कारणों से आगरे में अकबर बादशाह के यहां रहते थे। इन्हें कविता करने का व्यसन था। अकबर बादशाह इनकी कविता चाव से सुनता था।

हर समय इन्हें यही एक धुन रहती थी। इनका नाम पृथ्वीराज था। अन्यमनस्क भाव से बोले "क्यों क्या हुआ? प्राणप्रिये! इस समय मुझे क्षमा करो, मुझे एक समस्या पूर्ति करनी है इसलिये ·····"

युवती—(बात काटकर) तो साफ क्यों नहीं कहते कि इस समय चली जा, नहीं तो कविता अच्छी न बन सकेगी।

पृथ्वी—अच्छा यही समझलो।

युवती—मैं खूब समझ चुकी हूं। यदि यही अकर्मण्यता न होती तो आपको इस प्रकार दासत्त्व वृत्ति स्वीकार नहीं करनी पड़ती। देश के ऊपर आपत्ति की घनघोर घटा छाई हुई है, सगी बहन का सतीत्त्व नष्ट हो रहा है और आप कविता करने बैठे हैं। धिक्कार है आपकी कविता को, फटकार है आपकी बुद्धि को, लानत है आपकी सूझ को!

पृथ्वी—तो क्या कविता करना छोड़ दूं?

युवती—अवश्य!

पृथ्वी—ध्यान रहे संसार में सब वस्तु मिट सकती हैं, परन्तु कृति नहीं मिटती!

युवती—मैं सौगन्द पूर्वक कहती हूं कि संसार में सब कुछ मिट सकता है, परन्तु कुल में लगा हुआ कलंक कभी नहीं मिट सकता।

पृथ्वी—कविता से सैनिकों के हृदय में वीर भाव उत्पन्न होते हैं। चन्द बरदाई का नाम उसकी कविता के कारण अमर होगया है।

युवती—हां, यदि कविता में हृदय के भाव हों, और स्वयं कवि भी अपने कथनानुसार कर्मवीर हो तब न ? जब लोगों को यह मालूम होगा कि यह कृति उस अकर्मण्य की है जो परतंत्रता के बन्धन से जकड़ा हुआ था, जो अपनी बहन का सर्वनाश आँखों से देखता रहा, तब वह आपकी कृति का उपहास करेंगे । चन्द बरदाई का नाम कविता के कारण नहीं उसकी वीरता के कारण अमर है ।

पृथ्वी—साहित्य और संगीत से रहित मनुष्य पशु है ।

युवती—लेकिन यदि किसी घर में आग लगी होवे तो उसके निवासियों को गाते बजाते देखकर तुम क्या कहोगे ?

पृथ्वी—मूर्ख कहूँगा और क्या ?

युवती—क्यों ? गाना तो कोई बुरी चीज नहीं ।

पृथ्वी—बुरी चीज नहीं, किन्तु उस समय उसकी आवश्यकता नहीं । समय पर ही सब कार्य अच्छे लगते हैं ।

युवती—बस आपके कथनानुसार फैसला होगया । कविता करना बुरा नहीं, किन्तु इस समय उसकी आवश्यकता नहीं ।

पृथ्वी—इसका तात्पर्य्य ?

युवती—यही कि आप क्षत्री हैं । भारतमाता को इस समय वीर पुत्रों की आवश्यकता है । आपही सोचलें यदि आज वीर राजपूत समस्या पूर्ति में लगे रहें, तो फिर देश की समस्या को कौन हल करेगा ?

पृथ्वी—तो तुम क्या चाहती हो ?

युवती—यही कि देश सेवा के व्रत में केशरिया बाना पहन कर शत्रुओं का संहार करो । आज इनके अत्याचारों से भारतमाता रुदन कर रही है, स्त्री बच्चों की गर्दनों पर निर्दयता पूर्वक छुरी चलाई जा रही है, वीर ललनाओं का बल पूर्वक शील नष्ट किया जा रहा है । अतएव इस समय कविता करना योग्य नहीं । प्रताप का साथ दो, प्राणनाथ ! प्रताप जैसे बनो !

कहते कहते युवती का गला रुंध गया वह अब अपने को अधिक न सम्हाल सकी । लज्जा, घृणा, मानसिक सन्ताप आदि ने उसे बोलने में

असमर्थ कर दिया। वह अपने पति के पाँवों में पड़कर फूट २ कर रोने लगी। युवती के रुदन में कुछ बेबसी का ऐसा अंश था कि पृथ्वीराज का कठोर हृदय भी पिघल गया और उत्सुकता से उसके इस दुःख का कारण पूछने लगे।

❀ ❀ ❀

जिस समय यवन बादशाह अकबर के हाथ में भारतवर्ष के शासन की बागडोर थी, उस समय वीर चूड़ामणि प्रताप को छोड़कर सभी राजे अपनी स्वाधीनता खोकर, पूर्वजों की मान मर्यादा को तिलांजली देकर दासत्त्व वृत्ति स्वीकार कर चुके थे। जोधपुर का राजा उदयसिंह (मोटा राजा) अपनी पुत्री जोधाबाई और आमेर के राजा मानसिंह अपनी बहन का सम्बन्ध बादशाह से करके, राजपूत जैसे उज्वल कुल में कलंक लगा चुके थे। खेद है कि महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्त-सिंह घरेलु झगड़ों के कारण अकबर से आ मिले थे। इन्हीं शिशोदीय वीर शक्तसिंह की कन्या बीकानेर के राजकुमार पृथ्वीसिंह को व्याही थी। शक्तसिंह यद्यपि इस समय "घर का भेदी लंका ढावे" इस कहावत के निशाने बन रहे थे, किन्तु उनकी कन्या के हृदय में मातृभूमि के प्रेम का अंकुर फूट निकला था। वह क्षत्राणी थी, उसे अपने कुल की मान मर्यादा का पूरा ध्यान था। उसके कुल की असंख्य वीरांगना जीते जी आग में कूद कर मरी हैं, रण क्षेत्र में शत्रुओं का रक्त बहा कर राजपूती शान दिखा गई हैं, इत्यादि बातों का उसे पूरा ज्ञान था। वह भी अपने पति के साथ आगरे में रहती थी। अकबर अपनी काम वासनायें तृप्त करने के लिये अनेक राक्षसी यत्न करता रहता था। अपनी विलासिता के लिये वह आगरे के क़िले में महीने में एक बार मीना बाज़ार लगवाता था। उसमें केवल स्त्रियों के जाने की आज्ञा थी। राजपूत और मुसलमान व्यौपारियों की स्त्रियाँ अनेक देशों के शिल्प जात पदार्थ लाकर उस मेले में कारबार किया करती थीं। और राज परिवारों की स्त्रियां वहां जाकर मनमानी सामग्री मोल लिया करती थीं। पाखण्डी अकबर भी मेरा

बदले हुये वहां आता था और किसी न किसी सुन्दर युवती को अपने षड्यन्त्र में फांस लिया करता था। एक समय पृथ्वीराज की पत्नी किरन भी उक्त मीना बाजार की सैर करने गई। अकबर ने इसे धोखे से भुलावा देकर महलों में बुला लिया। किरन अकबर के पैशाचिक भाव को ताड़ गई, लपक कर उखेड़ में बैठ बादशाह को दे मारा और कमर से एक छुरा निकाल बादशाह की छाती पर बैठ सिंहनी की तरह गरज कर बोली "ईश्वर के नाम से शपथ कर के कह कि और किसी अबला के शील नष्ट करने की इच्छा नहीं करूंगा। कह शपथ कर नहीं तो यह तीक्ष्ण छुरी अभी तेरे हृदय के रुधिर से स्नान करेगी।" कायर अकबर प्राणों की भिक्षा मांगने लगा, उसने तत्काल वीर बाला की आज्ञा का पालन किया। वीर-नारी किरन ने भी अकबर को जीवन दान दिया।

इसी घटना से घायल सिंहनी की तरह जब किरन अपने मकान पर आई तब वहां पृथ्वीराज को कविता करते देख वीर बाला का क्रोधरूपी समुद्र उमड़ आया और उसी आवेश में अपने पति को उसके क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का ज्ञान कराने के लिये झूठ मूठ अपनी ननद का नाम ले दिया! शिशौदीय राज-कन्यायों ने हमेशा धर्म के लिये जान दी है। उन्होंने कभी अपने उज्वल कुल में कलङ्क नहीं लगने दिया, यही कारण है कि उस समय जिसको शिशोदिया राजकुमारी व्याही जाती थी वह मारे गर्व के फूल उठता था, लोग उसके भाग्य की सराहना करते थे। चित्तौड़ राजकुमारी पटरानी रहेगी, उसी की सन्तान राज्य की उत्तराधिकारिणी होगी, इन शर्तों पर वे व्याही जाती थीं। इसी वीर बाला किरन ने महाराणा प्रताप का सन्धिपत्र जो अकबर के पास आया था, उसके उत्तर में अपने पति पृथ्वीराज से एक वीरोचित शब्दों में पत्र लिखवाया था, जिसे पढ़ कर महाराणा प्रताप फिर अपने खोये हुये धैर्य को प्राप्त कर सके थे। हे भगवान्! क्या अब भी हिन्दू ललनायें उक्त वीर बाला के समान अपनी शील रक्षा करने को उद्यत रहेंगी?

विचार-तरङ्ग

शान्ति या शक्ति ?

हमारे देश की भेड़िया-धसान प्रसिद्ध है। एक भेड़ कुएं में गिरेगी, तो सारी भेड़ें आंखें मींच कर उसके पीछे दौड़ेंगी। यह कौन देखता है कि आगे कूप है, या खाई ? हम करोड़ों भारतीय भेड़ों की तरह हैं। एक चौकीदार या पुलिस का सिपाही, बीसियों देहातियों को, जिधर चाहता है, उधर ही भेड़ों की तरह हांक ले जाता है। यदि एक आदमी ने शान्ति की आवाज़ उठाई, तो, सब 'शान्ति', 'शान्ति' चिल्लाने लगते हैं। फिर, कोई यह पूछने-ताछने वाला नहीं कि भाई उस पहले आदमी की 'शान्ति' का असली मतलब क्या है ?

त्याग, तपस्या, साधुता शान्ति आदि बातें बड़ी अच्छी हैं। परन्तु, जितनी ये अच्छी हैं, उतनी ही दुष्कर हैं। इन बातों पर चलने वाला व्यक्ति नर से नारायण बन सकता है। परन्तु, देखना यह है कि क्या इस दीन देश के करोड़ों दलित प्राणी, जो मूर्खता और पराधीनता के कारण पशु से भी गये बीते हैं, इस समय एकदम इतना ऊंचा चढ़ जाने के अधिकारी हैं ? एक ओर खाली पेट में भूख की ज्वाला जाग्रत है, दूसरी ओर 'त्याग' की ध्वनि है ! अरे, जिसके पास तन ढकने को कपड़ा, और पेट की ज्वाला शान्त करने को अन्न नहीं है, वह त्याग क्या ख़ाक करेगा ? त्याग के लिये अपना घर भरा-पूरा होना चाहिये। शान्ति के लिये, मन और शरीर में असीम शक्ति और बल की ज़रूरत है। जो बली और शक्ति-सम्पन्न हैं, वास्तव में उन्हीं को शान्ति मिल सकती है। दुर्बल की शान्ति 'शान्ति' नहीं मृत्यु है। इसी से तो कहते हैं, कि आज, जब कि, पराधीनता और जुल्म ज़्यादतियों के विषैले धुएं से, करोड़ों भारतीय मरणासन्न हैं, शक्ति सञ्चय की ज़रूरत है, शान्ति की नहीं। इस दशा में कोरी शान्ति या त्याग का राग अलापना बिल्कुल अस्वाभाविक और अव्यावहारिक है। —सुरेन्द्र शर्मा

शान्ति का ढोंग—

सन् १८९८ की बात है। यूरोप की सम्पूर्ण शक्तियां लड़ते २ थकी सी हो चुकीं थी। फ्रान्स 'प्रशियन-वार' में तबाह हो चुका था। उस समय रूसी सम्राट निकोलिस तृतीय ने यूरोपीय राष्ट्रों को यह सलाह देकर आश्चर्य में डाल दिया कि सब ही राष्ट्र मिल एक सन्धि करें कि युद्ध अवैध तथा अनभीष्ट पदार्थ है। वह एक प्रस्ताव मात्र था, जिसका प्रस्तावक यूरोप की उस जर्जर अवस्था में उतनी ही शक्ति रखता था जितना दिवालिये यूरोप की इस अवस्था में अमरीका। भावना

पनप रही थी—संयुक्त राज्य अमरीका की ओर से केलॉग ने सभी राष्ट्रों से प्रस्ताव किया कि महासभा को नाजायज़ करार दें। रूस को इसमें आमन्त्रित न किया गया। फ़रांसीसी पर-राष्ट्र सचिव ब्रियांद ने अन्त तक रूस को अलग रखने की चेष्टा की। रूसी पर-राष्ट्र सचिव श्री लिटविनौफ़ ने स्पष्ट कह दिया कि यदि महासमर को नाजायज़ कराने की इच्छा है तो रूस से दुश्मनी क्यों दिखलाई जा रही है। इसका सब से बड़ा इलाज़ ही यह है कि मेरे साथ मिलकर जेनेवा के निश्शस्त्रीकरण सम्मेलन में एक दम निरशस्त्र होना स्वीकार करो। पर यहां तो दूसरे दर्ज़े के राजनीतिज्ञ बृटिश मकार लार्ड केशेंडेन थे। प्रसिद्ध जर्मन पर-राष्ट्र सचिव हर स्ट्रेसमन रूस की बात मानते थे—परन्तु आयरलैण्ड को खाली कराने के लिये फ्रान्स की खुशामद उन्हें अभीष्ट थी। किसी प्रकार-पैरिस में बड़ी महाशक्तियों ने हस्ताक्षर कर दिया—महासमर अवैध घोषित किया गया। अलबानिया-पोलैण्ड-सभी छोटे राष्ट्रों ने उसे स्वीकार किया।

एक ओर यह हो रहा था, दूसरी ओर ब्रिटेन तथा फ्रान्स में एक गुपचुप सन्धि हो गयी। ब्रटेन ने फ्रान्स को यूरोप में सैनिक-शक्ति बढ़ाने में हस्तक्षेप न कराने का वादा किया। फ्रान्स ने इङ्गलैण्ड को जल में प्रमुख स्थापन में निर्द्वन्द कार्य करने में सह-मति प्रगट की। और भी बहुत सी बातें थीं। किन्तु भण्डा फूट गया। संयुक्त राज्य को बात मालूम हो गयी। शोर मच गया, समाचार पत्रों में गुप्त सन्धि के टुकड़े छप गये। ब्रटिश समाचार पत्रों ने अवस्था क़ाबू से बाहर देख अपनी सरकार से आग्रह किया कि वह पूरा मस्विदा छाप दे ताकि लोग झूठी बातें तो न कहें। पर बाल्डविन सरकार में इतना साहस कहाँ। संयुक्त राज्य ने फटकार कर एक पत्र लिखा। डर कर ब्रटेन-फ्रान्स ने अपना गुप्त समझौता रद्द कर दिया। किन्तु संसार को जो समझना था, उसने समझ लिया।

—परिपूर्णानन्द वर्मा

सायमन सतक—

१२ अक्टूबर को देश की छाती पर वह सफेद कमीशन फिर आ धमकेगा, जिसके संगठन और कार्य से देशवासी सर्वथा असंतुष्ट हैं और जो एक बार बहिष्कार की विकट मार से तिलमिला चुका है। इस बार कूट नीति और भेद नीति में पारंगत अङ्गरेज शासकों की कृपा से अधिकांश प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं ने सरकारी मेम्बरों के बहुमत से कमीशन से सहयोग करने का निश्चय कर लिया है पर यह सुनिश्चित है कि देश कमीशन के सर्वथा विरुद्ध है। यह बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि सभी प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के अधिकांश लोक निर्वाचित सदस्य सहयोग के विरोधी थे और हैं। बड़ी व्यवस्थापक सभा

तो बहिष्कार की पक्षपातिनी है ही । इतना होते हुए भी कमीशन का आना इस बात का द्योतक है कि ब्रिटिश राष्ट्र भारत की स्वाधीनता नहीं होने देना चाहता, वह उसे बलात् अपनी गुलामी में रखने पर तुला हुआ है । परन्तु जागृति की लहर देश में फैल चुकी है । देशवासी यह अनुभव कर चुके हैं कि पराधीनता की प्राणनाशिनी वायु में जितने दिन और रहेंगे उतना ही अधिक दम घुटता जायगा । अतएव वे अब ब्रिटिश राष्ट्र की आज्ञा का पालन आंख मींच कर नहीं कर सकते हां, अगर ब्रिटेन को अपना अस्तित्व भारत से नहीं हटाना है तो उसे भारत-वासियों की मनस्तुष्टि करनी पड़ेगी—यह ध्रुव सत्य है ।

सर्वदल सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट—

विधाता का विधान कोई नहीं जानता कब कैसा होगा । सायमन कमीशन आने से पूर्व देश की कैसी हालत थी और उसके पदार्पण करते ही कैसी काया पलटी, यह बुद्धिमानों से छिपा नहीं है । इसी प्रकार एक्यता पैदा करने और सब दलों को मिलाने के लिए जिस सर्व दल सम्मेलन की व्यवस्था की गई थी, प्रारम्भ में वह कितना असफल प्रतीत होता था । परन्तु कब क्या होगा यह कोई नहीं जानता । सर्व दल सम्मेलन ने शासन सम्बन्ध में रिपोर्ट देने के लिए एक कमेटी बैठाई । इस कमेटी की रिपोर्ट क्या निकली मानो अमावस्या की रात्रि में पूर्ण चन्द्र का उदय हो गया । कमेटी ने झगड़े के सब प्रश्नों पर ऐसे ढङ्ग से विचार किया कि सब लोग दंग रह गए । और तो और सर सायमन ने भी उन पांच सौ मेमोरियलों में से एक की भी चर्चा न की और न प्रशंसा जो बड़ी दीनता पूर्वक गुलाम भारतवासियों में से भिखमंगी वृत्ति वाले लोगों की ओर से भेजे गए बताए जाते हैं । उसने प्रशंसा की तो पं० मोतीलाल नेहरू की उपर्युक्त रिपोर्ट की जिसे उन्हें तार भेजकर मोल मंगाना पड़ा था । वास्तव में यह देश का सौभाग्य है कि पं० मोतीलाल नेहरू जैसे बड़े नीतिज्ञ और बुद्धिमान इस में मौजूद हैं जिन्हों ने आज यह रिपोर्ट लिखकर अपनी ख्याति तो संसार में कर ही ली, भारत का भी मस्तक ऊंचा कर दिया । यही नहीं इस समय देश की जो सेवा उन्होंने यह रिपोर्ट लिख कर की है वह स्वर्णाक्षरों में लिखने के योग्य है । इस रिपोर्ट ने देश की अधिकांश उलझनों को बड़ी बुद्धिमानी से सुलझा दिया है । यही कारण है कि आज सारा देश उसकी प्रशंसा कर रहा है और सब लोग उससे सहमत हैं । अगर विरोधी हैं तो कुछ स्वार्थी या बहकाए हुए जाति-विद्वेषी लोग जो सदा और सर्वदा से सब देशों में रहते आ रहे हैं और रहेंगे । हम तो इस रिपोर्ट के लिए पं० मोतीलाल नेहरू उनकी समिति के अन्य सदस्यों तथा समस्त भारतवासियों को बधाई का पात्र समझते हैं !

दो महत्व पूर्ण घटनायें—

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में शिक्षामन्त्री राजा जगन्नाथबख्शसिंह के अविश्वास का प्रस्ताव था। प्रस्तावक और समर्थकों ने यह बात भली भांति समझा दी थी कि राजा साहब सायमन कमीशन के बड़े विरोधी थे। लखनऊ में जब उसके विरुद्ध सभा हुई तब आपने ही कमीशन के विरुद्ध प्रस्ताव उपस्थित किया और लम्बी चौड़ी स्पीच दी। व्यवस्थापक सभा में जब कमीशन का मामला पेश था तब आपने स्वयं कमीशन के विरुद्ध वोट दी और प्रबल प्रयत्न कर अपने साथियों से दिलवाई। जो राजा कमीशन के इतने विरोधी थे वे शिक्षा-मन्त्री की जगह खाली होते ही उसके उम्मेदवार बन गए और कमीशन से सहयोग करने की निश्चित शर्त पर आपने शिक्षा मंत्री होना स्वीकार कर लिया। इस बार जब कौंसिल में कमीशन से सहयोग के सम्बन्ध में प्रस्ताव उपस्थित हुआ तो आपने उस के पक्ष में वोट संग्रह करने का पूर्ण प्रयत्न किया। तात्पर्य यह है कि मिनस्टर होने की लालसा और ३—४हजार मासिक रुपयों के पीछे आपने सार्वजनिक शुचिता, अपनी ख्याति, देश की भलाई और मनुष्यता पर कुठाराघात कर दिया। ऐसे देश-द्रोही व्यक्ति के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव करना नितान्त उचित प्रस्ताव हुआ। उस पर मत मांगे गए। सरकारी पिठ्ठुओं ने छल बल से कितने ही वोट अपनी ओर खींच लिए स्वयं राजा साहब ने अपना वोट अपनी ओर दिया, फिर भी प्रस्ताव के दोनों ओर मत बराबर रहे। उस समय कौंसिल के सभापति ने निर्भीकता पूर्वक अपना मत सरकार और राजा के विरुद्ध देकर वास्तव में मनुष्योचित कार्य किया। उनके उस न्याय और साहस पूर्ण कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी होगी। आपके मत से अविश्वास का प्रस्ताव पास हो गया। और राजा साहब को शिक्षा मन्त्रित्व छोड़ना पड़ा। बेचारे दोनों दीन से गए न यहाँ के रहे न वहां के। देश द्रोहियों का यही हाल होता है?

इसी प्रकार बड़ी व्यवस्थापक सभा में सरकार ने एक बिल पेश किया था कि बोलशेवी विदेशी व्यक्तियों को सरकार बिना जांच पड़ताल के एक दम देश से बाहर निकाल सकेगी। हिन्दुस्तानी मेम्बर इस बिल के विरुद्ध थे। वोट लेने पर दोनों ओर समान वोट आए। यहां भी महामना पटेल की एक राय से प्रस्ताव गिर गया और सरकार के हाथ में एक और नया शस्त्र न पहुँच पाया। पहले अनेक अवसरों की तरह इस बार भी माननीय पटेल ने सरकार के विरुद्ध वोट देने में जैसे साहस, गंभीरता और तेजस्विता का परिचय दिया वह देश के लिए गौरव की बात है।

विविध विषय

स्व० पं० श्रीधर पाठक—

ब्रजभाषा के बड़े सरस कवि, हिन्दी के महारथी, खड़ी बोली की कविता के आचार्य श्रीमान् पं० श्रीधर जी पाठक अब इस संसार में नहीं हैं। गत १३ सितम्बर को मंसूरी में उनकी आत्मा इस पंचतत्वमय शरीर को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गई। आपका पार्थिव शरीर तो न रहा पर यश: शरीर अब भी विद्यमान है और जब तक हिन्दी का अस्तित्व है वह मिट नहीं सकता। पाठक जी ने अपने जीवन में हिन्दी की जैसी निसस्वार्थ सेवा की वह सब के लिए अनुकरणीय है। आपकी लिखी पुस्तकों में प्रकृति का जैसा सुन्दर वर्णन मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं। आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में बड़ी सुन्दर कविता करते थे और गद्य भी बड़ा अच्छा लिखते थे। पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति बनाकर हिन्दी संसार ने आपको सर्वोच्च पद प्रदान किया था। आप आगरे के निकट जौंधरी गांव के निवासी थे। सरकारी नौकरी में आप आगरे भी कितने ही वर्ष रहे थे। आगरे से आपको सहज स्नेह था और उसका दिग्दर्शन आपने अपने कितने ही पत्रों में किया था। नीचे हम आपके एक पत्र में से कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

"आगरा जिले में जन्मा हुआ और आगरा और मथुरा जिलों की मृदु जल-वायु में पला हुआ यह दीन शरीर आगरे में जितनी ममता रखता है उसकी आधी भी अन्यत्र नहीं मानता। परन्तु अकरुण अदृष्ट ने इसे जीवनारंभ से ही आगरे से बहिस्कृत कर रक्खा है।

"आप, आगरे के गुणिगणाऽग्रणी, मुझे मातृभाषा के नाते, कभी

कभी विस्मृति के गहन-तम-तमोगर्त्त से समुद्गृत कर लेते हैं यह आपकी सौजन्यमयी सुगढ़ सहृदयता है; परन्तु मैं आगरे की ओर सतत एव संस्मरणरत रहता हूं इसमें अणुमात्र भी अविश्वास का अवसर नहीं।"

"आगरा अथवा आगरा-प्रान्त अकेलो ब्रजभाषा ही का केलि-स्थल नहीं है, खड़ी बोली का भी केन्द्र है, बल्कि जन्म स्थान है। क्योंकि सूरदास और लल्लूलाल दोनों ही को इतिहास आगरे से घनिष्ठतया सम्बद्ध बखानता है। अतः आगरे को मातृ-भाषा के दोनों प्रसिद्ध रूपों का अभिमानी और प्रेमी होना चाहिये।"

आपकी लिपि बड़ी सुंदर होती थी। दूरसे ऐसा मालूम होता था मानो मोती जड़े हैं। इधर कई वर्ष से आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था, फिर भी हिन्दी की सेवा के लिए आप सदैव कटिबद्ध रहते थे। आपके वियोग से हिन्दी माता का एक सच्चा सपूत जाता रहा, साहित्याकाश का एक जाज्वल्यमान नक्षत्र टूट गया। परमात्मा से प्रार्थना है कि आपको सद्गति मिले और आपके कुटुम्बी धैर्य धारण करें।

२—स्व० श्री चिन्तामणि घोष—

हमें दुःख है कि हिन्दी माता का एक बङ्गाली पुजारी आज संसार में न रहा। ऐसा कौन हिन्दी प्रेमी होगा जिसने इण्डियन प्रेस या 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का नाम न सुना हो। इण्डियन प्रेस ने हिन्दी की जो सेवाएं की हैं वह स्तुत्य हैं। 'सरस्वती' का तो कहना ही क्या, वह तो तब से हिन्दी आकाश में चमक रही है जब और एक भी तारा न था और आज अनेक तारों के चमकने पर भी उसका प्रकाश कम नहीं हुआ है। ऐसे प्रेस के खोलने और ऐसी पत्रिका के निकालने का सौभाग्य जिस महामना को प्राप्त था वह श्री चिन्तामणि घोष ७३ वर्ष की दीर्घ आयु भोग कर इस संसार को छोड़ गए। उन्होंने अपने बाहुबल और कार्य कौशल से स्वयं लाखों की सम्पति पैदा की और हिन्दी की अपार सेवा की। सम्पत्ति का उपभोग करने के साथ साथ आपने उसका सदुपयोग भी किया। आपके सहान से प्रयाग में एक अस्पताल चल रहा है

वीर-सन्देश



'सरस्वती' के जन्मदाता और इण्डियन प्रेस के मालिक
स्वर्गीय श्रीमान चिन्तामणि घोष

महावीर प्रेस, आगरा

और कितनी ही विधवा तथा अनाथों का पालन होता है। परमात्मन्, ऐसे व्यक्ति को शान्ति और उनके कुटुम्बियों को सान्त्वना मिले।

३—खड्ग बहादुर सिंह की रिहाई—

एक बार फिर बङ्गाल कौंसिल तथा एसेम्बली के अनेक मेम्बरों ने मिलकर एक प्रार्थना पत्र वीरवर अभियुक्त खड्गबहादुरसिंह को छोड़ने के लिये भेजा है। इस प्रार्थनापत्र पत्र ७२ प्रतिष्ठित और प्रतिनिधि सज्जनों के हस्ताक्षर हैं। इनमें कितने ही अंग्रेज भी हैं। महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय ने स्वयं यह प्रार्थना पत्र वायसराय को प्रदान किया है। इस प्रार्थना पत्र में यह स्पष्ट लिखा गया है खड्गबहादुरसिंह का कार्य नैतिक दृष्टि से किसी प्रकार भी दंडनीय नहीं है। उसे तुरन्त छोड़ देना चाहिये। हम विश्वास करते हैं कि वायसराय महोदय शीघ्र ही इस अभागे अभियुक्त को छोड़ने की आज्ञा देंगे। यदि ऐसा न हुआ तो हम समझेंगे कि बड़ा पद प्राप्त करने से ही किसी व्यक्ति में बड़प्पन नहीं आ सकता और वायसराय को मारने और बचाने के जो अधिकार दिए गए हैं वे दिखावटी हैं।

४—कवियों की कीर्ति रक्षा—

कवियों की कीर्ति रक्षा के प्रश्न पर हमारे मित्र पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी बहुधा कुछ न कुछ लिखते तथा करते रहते हैं। हम भी यह समझते हैं कि यह एक आवश्यक प्रश्न है और इस लिए इस ओर जो कुछ हम कर सकते हैं सदैव करने को तत्पर रहते हैं। इस सम्बन्ध में चतुर्वेदी जी की सेवा में हमने कुछ प्रस्ताव भेजे हैं, उन्हें यहाँ भी संक्षेप में लिख देते हैं:—

१—किसी एक स्थान पर बड़े बड़े कवियों के नाम पर एक एक कमरा बनवाया जाय। यह स्थान कवियों का तीर्थ स्थान समझा जाय। हम स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभा को इसके लिए उपयुक्त समझते हैं। उसकी भूमि पर सत्यनारायण कुटीर, लक्ष्मण मंदिर, राधा निवास, श्रीधर सदन, और भारतेन्दु भवन बनवाए जायँ।

२—इन कमरों में उन कवियों के चित्र तथा उनकी पुस्तकें सुरक्षित रक्खी जायँ।

३—कवियों के विस्तृत जीवन चरित्र प्रकाशित किए जायँ।

४—कवियों के नाम पर अनेक पदक तथा पुरस्कार वितरण किए जायँ।

५—वर्तमान कवियों के जीवन के अनुभव प्राप्त करने का विशेष रूप से उद्योग किया जाय।

यदि हिन्दी भाषी चाहते हैं कि वे अपने कवियों की कृतियों से उऋण हो जायँ तो उन्हें चाहिए कि वे उनका आदर करना सीखें। सहयोगी सम्पादकों को इधर ध्यान देना चाहिए।

५—गंगावतरण, रंगभूमि और वीर सतसई—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन जिस प्रकार प्रति वर्ष १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान करता है उसी प्रकार काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रति वर्ष एक पुरस्कार २००) का तथा एक पदक प्रदान करती है। तथा हिन्दुस्तानी एकाडेमी ५००)–५००) के दो पुरस्कार प्रदान करती है। इस वर्ष ना० प्र० सभा ने २००) का पुरस्कार सर्वोत्तम काव्य ग्रन्थ 'गंगावतरण' पर दिया है। हिन्दुस्तानी एकाडेमी ने एक पुरस्कार सर्वोत्तम पद्य ग्रन्थ और दूसरा सर्वोत्तम गद्य ग्रन्थ पर दिया है। पद्य ग्रन्थों में 'गङ्गावतरण' पर और गद्य ग्रन्थों में 'रंगभूमि' पर यह पारितोषिक दिए गए हैं। 'रङ्गभूमि' श्री प्रेमचन्द्रजी का एक उपन्यास है। हमने उसे पढ़ा है और हमारी समझ में यह ग्रन्थ वास्तव में पुरस्कार देने योग्य है। 'गङ्गावतरण' श्री जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' बी० ए० का काव्य ग्रन्थ है। यह भी बहुत उच्चकोटि का ग्रन्थ है। एकाडेमी और ना० प्र० सभा दोनों ने उसे पुरस्कारणीय मान कर सचमुच न्याय किया है। कुछ लोग 'गंगावतरण' और 'वीर सतसई' की तुलना करते हैं। हम समझते हैं कि उनकी तुलना नहीं हो सकती। गंगावतरण वास्तव में उच्चकोटि का एक सुन्दर काव्य ग्रन्थ है। वीर सतसई एक पृथक् वस्तु है। वह समयानुकूल कविता का

एक उत्कृष्ट उदाहरण है। मुक्तक का एक अनुपमेय काव्य है। दोनों अपने अपने स्थान पर एक ही एक हैं। हम दोनों के कर्त्ताओं को उनकी कृतियों के लिए बधाई देते हैं, रत्नाकर जी, प्रेमचन्द्र जी और वियोगी-हरि जी तीनों महानुभाव बधाई के पात्र हैं!

६—सात्विक दान—

पिछले किसी अङ्क में श्रीमान् वियोगी हरि जी के १२००) के बृहद्दान की सूचना और उसके लिए उन्हें बधाई की पंक्तियां हम लिख चुके हैं। उसके पश्चात् हमें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्री रत्नाकर जी को उनके गंगावतरण पर जो दो पुरस्कार ७००) के मिले हैं, उस रुपए को रत्नाकर जी ने स्वयं न लेकर काशी ना॰ प्र॰ सभा को दान दे दिया है। रत्नाकर जी उक्त सभा को पहले भी १०००) प्रदान कर चुके हैं। उनकी इस उदारता की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी होगी।

इन सब दानों से अधिक महत्व पूर्ण दान, जिसकी सूचना पिछले दिनों हमें मिली है, उस महानुपुरुष का है जिसकी सेवाओं की तुलना वर्तमान हिन्दी सेवियों में किसी से नहीं हो सकती। वह हैं 'सरस्वती' के ख्यातनाम सम्पादक, हिन्दी के आचार्य, वयोवृद्ध श्री॰ पं॰ महावीर प्रसाद जी द्विवेदी। आपने अपने महत्व पूर्ण ग्रन्थ संग्रह को तो दो वर्ष हुए काशी ना॰ प्र॰ सभा को दे ही दिया था। अब आपने एक हज़ार रुपया नक़द भी उस सभा को दान दिया है। निश्चय ही द्विवेदी जैसे महानुभाव का यह एक हज़ार का दान किसी धनाढ्य के एक करोड़ के दान से कम नहीं है। कई दृष्टियों से तो यह और भी अधिक महत्व पूर्ण है। इस दान के लिए द्विवेदी जी को बधाई देना या उनकी प्रशंसा करना हमारी सामर्थ्य से बाहर है। हम समझते हैं यह दान उनके अनुरूप ही हुआ है। हमें विश्वास है कि इस दान से अनेकों लक्षाधीशों और विद्यानिधियों की आंखें खुल जायँगी।

७—महात्मा जी की अहिंसा—

हाल ही में महात्मा गांधी जी ने सत्याग्रह आश्रम में रोग ग्रस्त

एक बछड़े को यह सोच कर मरवा दिया है कि वह बहुत कष्ट में था और डाक्टरों की राय में उसका जीवन बचना असंभव था। इस कृति के पक्ष में महात्मा जी ने कई लेख लिखे हैं। हमने उन्हें ध्यान से पढ़ा है, परन्तु हमे खेद है कि महात्मा जी के विचारों से हम सहमत नहीं हो सके। अशक्त और जीवन की आशा से रहित व्यक्ति को मार देना यूरोपीय सभ्यता के अनुसार अच्छा है। महात्मा जी पर भी इस विषय में उसी सभ्यता का असर पड़ा होगा यह हमारा विश्वास है। बाहरी दृष्टि से देखने पर यह भला भी मालूम होता है कि जो व्यक्ति घोर कष्ट सह रहा है, जिसके जीवन की आशा डाक्टरों ने छोड़ दी है, उसके वध कर देने से हम उसे कष्टों से मुक्त कर देते हैं। परन्तु हमारी तुच्छ सम्मति में यह बात ठीक नहीं। इसके तीन कारण हैं:—(१) जिस व्यक्ति को हम जिला नही सकते उसे मारने का हमें क्या अधिकार है। प्रत्येक प्राणी सुख या दुख अपनी कृति के अनुसार पाता है। उसके उस दुख में हम यदि कुछ उसको लाभ पहुँचा सकें तो उसके करने में हमें चूकना न चाहिये। परन्तु जब हम उसे लाभ नही पहुँचा सकते तब उसे वध कर देने का हमें क्या अधिकार है। ऐसे व्यक्ति को उसके भाग्य पर छोड़ देना ही हमारा कर्त्तव्य है। (२) कोई भी डाक्टर या मनुष्य निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि अमुक व्यक्ति मर ही जायगा। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिस व्यक्ति के बचने की आशा अनेक बड़े बड़े डाक्टरों ने छोड़ दी है। वह व्यक्ति साधारण दवा से या बिना दवा के ही अच्छा हो जाता है। ऐसा तो प्रायः ही होता है कि जिस बीमार को कई डाक्टर असाध्य बता जाते हैं, दूसरे डाक्टरों के इलाज से वही बीमार स्वस्थ हो जाता है। ऐसी दशा में किसी डाक्टर के कहने और ऊपरी चिह्नों से यह कैसे विश्वास किया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति मर ही जायगा और उसे मार कर हम उसे कष्टों से बचा देंगे। मनुष्य का ज्ञान सीमित है, तभी तो यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'जब तक सांस तब तक आस।' (३) यदि किसी व्यक्ति को कष्टों से छुड़ाने के लिये ही मारा जाता है, तो यह

बड़ी भूल है। किसी बीमारी या किसी दशा में उतना कष्ट नहीं होता जितना मरने में होता है। यही कारण है कि मरने से सब डरते हैं। जो लोग घोर कष्टों से पीड़ित हैं वे भी यह नहीं चाहते कि वे मर जायँ। मरने से उन्हें भी भय लगता है। वास्तव में जो कष्ट मृत्यु समय अनुभव होता है। वह मर कर ही जाना जा सकता है, वैसे नहीं। तब थोड़े कष्ट से बचाने के लिए किसी व्यक्ति को मृत्यु के अधिकतर घोर कष्ट में डालना कहाँ की बुद्धिमानी है।

इन तीन कारणों से हम समझते हैं कि कैसी भी दशा में कोई व्यक्ति क्यों न हो, उसकी जान लेने, उसका बध करने का अधिकार हम नहीं ले सकते, और इसीलिए महात्मा जी के उपर्युक्त कृत्य का न तो हम समर्थन कर सकते हैं न उनके लेखों को पुष्टि। हमें तो ऐसे घात में प्रत्यक्ष हिंसा का अनुभव होता है।

८—हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा—

दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा की ओर से सर टी० विजयराघवाचार्य ने गत ८ अगस्त को 'शिक्षा में हिन्दी का स्थान' विषय पर एक भाषण मद्रास में दिया था। आपने उस व्याख्यान में बड़ी योग्यता से सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि शिक्षा, व्यवहार और राजनीति सभी दृष्टियों से प्रत्येक मदरासी को हिन्दी जानना अनिवार्यतः आवश्यक है और इसी लिए आपने वहां की सरकार तथा शिक्षा संस्थाओं से अनुरोध किया है कि वे हिन्दी को सब विद्यार्थियों को पढ़ना आवश्यक और अनिवार्य करदें। आपके इस व्याख्यान का वहाँ प्रभाव भी बहुत पड़ा है—उसकी चर्चा भी बहुत हुई है। इतना ही नहीं वहाँ इस बात का उद्योग बड़े वेग से हो रहा है कि इस प्रस्ताव को अमली रूप दिला दिया जाय। कोचीन की व्यवस्थापक सभा ने तो इस आशय का एक प्रस्ताव भी पास कर दिया है। हमें विश्वास है कि निकट भविष्य ही में वहां यह प्रस्ताव व्यवहार में आ जायगा। परन्तु अन्य प्रान्तों की क्या दशा है? जिस प्रकार मदरासियों ने हिन्दी के पक्ष को अपनाया है, उस प्रकार अभी तक बंगाली,

मराठी, गुजराती आदि भाषा भाषी प्रान्तों ने हिन्दी की ओर अपनी रुचि प्रकट नहीं की है। हम समझते हैं कि इन प्रान्तों में भी प्रचार की आवश्यकता है और आवश्यकता है इस बात की कि इन प्रान्तों में भी हिन्दी शिक्षा को एक अनिवार्य विषय बना दिया जाय।

यह तो रही अन्य प्रान्तों की बात। अब अपने प्रान्त की सोचिए, यहाँ हिन्दी की शिक्षा बरसों पहिले अनिवार्य हो जानी चाहिए थी, पर आज तक उसकी चर्चा नहीं। शिक्षा का माध्यम हिन्दी उर्दू होता जाता है, पर हिन्दी की उच्च शिक्षा की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। आगरा कालेज जैसी उच्चकोटि की संस्थाओं में हिन्दी अनिवार्य तो क्या ऐच्छिक विषयों में भी अभी तक सम्मिलित नहीं की गई। यही कारण है कि शिक्षा का माध्यम बदल देने से आज शिक्षा में कितनी कठिनाई पड़ रही है। आज यदि तमाम स्कूलों के अध्यापक हिन्दी पढ़े होते तो उन्हें हिन्दी के द्वारा शिक्षा देने में बड़ी आसानी होती, पर वे हिन्दी स्वयं ही नहीं जानते, दूसरों को क्या पढ़ावें। ऐसी दशा में अपने प्रान्त में यह सब से पहिले आवश्यक है कि हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य कर दी जावे। क्या यह बात लज्जा की न होगी कि भिन्न भाषा भाषी मदरासी तो हिन्दी के लिए इतने पचें कि उसके लिए सब कुछ करने को तैयार हों और हम हिन्दी भाषी उसकी तरफ से नितान्त उदासीन रहें। हम आशा करते हैं कि प्रान्त के धनी धोरी और शिक्षा के अधिनायक इस गुरुतर विषय पर अपना ध्यान शीघ्रता से खींचेंगे और इस प्रान्त पर कलंक की कालिमा न लगने देंगे।

६-देवनागरी या रोमन—

६ अक्टूबर के 'लीडर' में 'स्टेट्समैन' पत्र से एक अंश उद्धृत हुआ है जिसका शीर्षक है 'लिपियों की प्रतिस्पर्द्धा' यह अंश उस पत्र के विद्वान अंग्रेज सम्पादक का लिखा मालूम होता है। आप लिखते हैं:—
'हमें विश्वास है कि यदि इस बात की जांच के लिये एक कमीशन बैठाया जाय कि संसार में जो लिपियां प्रचलित हैं उनमे सब से अच्छी,

सब से सीधी, सब से सरल, और सब से अधिक वैज्ञानिक लिपि कौनसी है तो सब से पूर्व देवनागरी, दूसरी संख्या में रोमन, तीसरी में स्लेवोनिक, चौथी में अर्बी और पांचवी में चीनी लिपि रक्खी जायँगी।' देवनागरी को सर्व श्रेष्ठ लिपि मानते हुए भी उपर्युक्त लेखक ने आगे चलकर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि संसार में अधिकतर रोमन लिपि का प्रचार है अतएव अच्छी होते हुए भी देवनागरी को नहीं अपनाया जा सकता। हम समझते हैं कि रोमन लिपि की यह प्रभुता भारतीयों पर जमाने के लिए यह टिप्पणी लिखी गई है। परन्तु इस टिप्पणी के पढ़ते ही एक बात सब हिन्दी प्रेमियों को सूझेगी और वह यह कि यदि वे यह चाहते हैं कि उनकी लिपिका सर्वत्र प्रचार हो तो उनका कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे तमाम देशों में इस लिपि की उत्कृष्टता दिखावें, उसका महत्व समझावें और उसके प्रचार का प्रयत्न करें। काम साधारण नहीं है। इसके लिए बड़े आयोजन की जरूरत है। अधिकारी विद्वानों से लिखवा कर संसार भर के समाचार पत्रों मे इस विषय के लेख छपवाने होंगे; शहर शहर में घूम घूम कर इसके सम्बन्ध में व्याख्यान देने होंगे और लाखों की संख्या में नोटिस और पुस्तकें छपवा कर बटवानी होंगी। 'हिन्दी इन थरटी डेज' जैसी अनेकों पुस्तकें लिखवा कर स्वल्प मूल्य में उनका प्रचार करना होगा। यह सब काम निरन्तर वर्षों करने के पश्चात् यह परिणाम होगा कि संसार का ध्यान इधर आकृष्ट होगा और फिर बहुत संभव है कि देव-नागरी भारतवर्ष की ही नहीं संसार भर की भाषा हो जाय। परन्तु यह सब तो सुख स्वप्न है। अभी जब भारतवर्ष में ही नागरी को सब प्रान्तों में स्थान नहीं मिला है तब बाहर की क्या आशा की जा सकती है। हां यदि हम लोग चाहें तो नागरी का प्रचार हमें पहले अपने ही देश में बड़े जोरों से करने का प्रयत्न करना चाहिये।

१०—मासिक पत्रों की स्पर्धा—

यह सचमुच बड़ी प्रसन्नता और सन्तोष की बात है कि हिन्दी में मासिक साहित्य बहुत उच्च कोटि पर पहुंच चुका है। आज हिन्दी के

मासिक पत्र किसी भी भारतीय भाषा के मासिक पत्रों से टक्कर ले सकते हैं। इतना ही नहीं कई दृष्टियों से वे उनसे बढ़े चढ़े हुए हैं। परन्तु उन्नति की यह बाढ़ जहां प्रसन्नता और संतोष की जननी है वहां एक छोटी सी शंका भी पैदा करती है। उन्नति की यह बाढ़ कहां तक और बढ़ेगी? यह प्रश्न हम इसलिए कर रहे हैं कि हिन्दी के मासिक पत्रों ने जितने बेग से उन्नति की है, हिन्दी के पाठकों ने उन्हे उतने बेग से अपनाया नहीं है। ऐसी दशा में यह प्रश्न होता है कि स्पर्धा के आवेश में यह पत्र कहां तक पहुँचेंगे और अपनी सीमा को उल्लंघन करके वे अपने भावी जीवन को शंकामय तो न बना लेंगे? कारण स्पष्ट है। जिस मूल्य में आज हिन्दी के मासिक पत्र मिल रहे हैं और जितनी अधिक सामिग्री वे दे रहे हैं उसमें वे स्पष्ट घाटे में चलाए जा रहे हैं। तब यह घाटा कब तक उठाया जा सकेगा। सामिग्री बढ़ने पर भी आज मूल्य घटाया जा रहा है और वह केवल स्पर्धा के कारण—यही बात हमें खटक रही है। हमारी इस आशंका को हिन्दी के पाठक ही मेट सकते हैं। यदि वे चाहते हैं कि पारस्परिक स्पर्धा के कारण यह पत्र मर न मिटें तो उन्हे उदारता पूर्वक इन पत्रों को अपनाना चाहिए।

११–माधुरी का विशेषाङ्क—

कुछ दिन हुए जनवरी में 'सरस्वती' ने अपनी एक वार्षिक संख्या निकाली थी। उसने निश्चित रूप से उस समय तक का हिन्दी विशेषांकों का 'रेकर्ड बीट डाउन' कर दिया था। परन्तु अभी 'माधुरी' का जो विशेषाङ्क निकला है वह कई दृष्टियों से उससे भी बढ़ गया है। 'सरस्वती' ने अपनी वार्षिक संख्या का मूल्य १) अपने ग्राहकों से अलग वसूल किया था। परन्तु माधुरी ने अपनी यह संख्या—जिसका मूल्य तो बहुत है परन्तु न्योछावर १॥) मात्र है—अपने ग्राहको को बिना मूल्य ही दी है। निस्संदेह यह माधुरी के प्रकाशकों का बड़ा साहसपूर्ण कार्य है और इसके लिए हम उन्हे बधाई दिए बिना नहीं रह सकते। लेख, चित्र, कविताएं और प्रकाशन सभी दृष्टियों से यह अङ्क श्लाघ्य हुआ है। सम्पा-

दन भी बहुत अच्छा हुआ है। सभी विषयों के उच्च कोटि के लेखों का संचय करना और उन्हें अलग स्तम्भों में निकालना नई बात हुई है। हम इसके लिए सम्पादक महोदयों को भी सादर बधाई देते हैं और अपने पाठकों से आग्रह करते हैं कि वे 'माधुरी लखनऊ' के पते से यह विशेषांक मंगा कर मनोरंजन और ज्ञान सम्पादन करें। इस अङ्क के देखने के पश्चात् हम सहयोगिनी सुधा की 'साहित्य-संख्या' देखने के लिए आतुर हैं।

१२—सहयोगी 'भारत'—

प्रयाग के लीडर प्रेस ने हिन्दी में साप्ताहिक रूप से 'भारत' का प्रकाशन कर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। 'भारत' का सम्पादन श्री पं० वेंकटेशनारायण जी तिवारी एम० ए० करते हैं। तिवारी जी भारत सेवक समिति और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के प्रभावशाली सदस्य हैं। हिन्दी के आप प्रौढ़ लेखक और सम्पादनकला के अनुभवी पंडित हैं। अब तक 'भारत' के जितने अङ्क निकले हैं वे सब पठनीय और आदरणीय हैं। 'भारत' में कई विशेषताएं हैं और उसका पढ़ना सभी के लिए उपयोगी हो सकता है। पत्र का वार्षिक मूल्य ३॥) है।

बहादुरी की बातें

संस्कृत ग्रन्थकारों ने वीरों के चार भेद किए हैं:—दान-वीर, दया-वीर, युद्ध-वीर, और धर्म वीर। इनमें दान वीरता का एक उदाहरण अभी पत्रों में प्रकट हुआ है। सिरामपुर (हुगली) के स्वर्णकार मानिकलाल दत्त ने अपनी सारी सम्पत्ति जिसका मूल्य लगभग साढे पांच लाख रुपया है दान कर दी है। सन्देह नहीं कि आपकी यह उदारता असाधारण है। और उसकी प्रशंसा मुक्त कंठ से करनी पड़ती है।

\+ + +

अन्तर्राष्ट्रीय विशेषांक पर सम्मतियां

यह विशेषांक हिन्दी में एक नई चीज है। इस से हिन्दी-प्रेमियों को लाभ उठाना चाहिये। —श्री जगन्नाथ मिश्र गौड़, "कमल"

निश्चय ही यह अङ्क अन्य पत्रिकाओं के लिए ईर्षा की वस्तु है। कानपुर की सभा बंद होने पर हिन्दी में इस सम्बंध की चर्चा आज ही हमें पढ़ने को मिली है। —जी० एस० पथिक

'वीर-सन्देश' का 'अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क' मिला। बधाई है! जितने की आशा थी, उस से भी अधिक—बहुत अधिक—पाया। विशेषांक बहुत बढ़िया निकला है। सभी लेख पठनीय और मननीय हैं, सम्पादन बड़ी योग्यता से किया गया है। —किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री

पत्र का यह विशेषांक विशेष सम्पादक के योग्य ही हुआ है। लेख सब अच्छे हैं। पालीवाल जी का लेख मुझे बहुत अच्छा लगा है। मैंने उसको कई बार पढ़ा है। हिन्दी भाषा में ऐसे मौलिक लेख अभी इन विषयों पर कम लिखे जाते हैं। —हरिहरनाथ टंडन, एम. ए. (काशी)

इस अङ्क का सम्पादन एक योग्य व्यक्ति ने किया है, इसमें सन्देह नहीं। प्रस्तुत अङ्क में प्रायः सभी लेख पढ़ने योग्य हैं। पालीवाल जी का लेख विशेष प्रशंसा के योग्य है। मेरा विश्वास है, हिन्दी-संसार में वीर सन्देश के प्रस्तुत विशेषांक का यथेष्ट आदर होगा।

—श्री केदारनाथ मिश्र, प्रभाकर

कल वीर-सन्देश का विशेषांक पा कर बड़ी प्रसन्नता हुई। हिन्दी में 'महारथी' और 'वीर-सन्देश' ही ऐसे मासिक पत्र हैं जो वीर-रस प्रधान होकर देश में नवीन जीवन का संचार कर रहे हैं। किन्तु 'महारथी' से 'वीर-सन्देश' विशेष सुसम्पादित होता है। यह यद्यपि छोटा सा ही विशेषांक है; पर इस में जो कुछ है, सब काम की चीज है। सभी लेख अपनी विशेषता रखते हैं। आपका उद्योग शतशः श्लाघ्य है। आपने इसी नवीन युवावस्था में जैसी उन्नति कर दिखाई है, वह बहुत ही सन्तोष-प्रद और गौरव वर्द्धक है। मैं हृदय से आपके प्रमुदित अभ्युदय का अभिलाषी हूं। वीर-सन्देश के इस विशेषांक को मैं आद्यन्त अक्षर अक्षर पढ़ गया। बड़ा सन्तोष हुआ। बहुत ही प्रसन्नता हुई। बधाई लीजिए।

—शिवपूजनसहाय

VEER SANDESH Regd. No. A 1630

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ { आश्विन सं० १९८५, अक्टूबर १९२८ } अङ्क १०

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २)   एक अङ्क का मू० ≈)

विषय-सूची

भूल सुधार

वीर-सन्देश के इसी अङ्क में पृष्ठ संख्या ४०६ के आगे के आठ पृष्ठों में ४०७ से ४१४ तक न छप कर भूल से ३९९ से ४०६ तक छप गया है, पाठक कृपया सुधार कर पढ़ें। —मैनेजर।

देरी का कारण

सम्पादक जी के कई अनिवार्य कार्यों में फंसे रहने के कारण यह अङ्क फिर देरी से निकल रहा है, पाठक क्षमा करें। —मैनेजर।

वीर-सन्देश —



वीररस-पूर्ण 'वीर-सतसई' लिख कर बारह सौ रुपए का मंगलाप्रसाद
पारितोषिक प्राप्त करके उसे दान कर देने वाले

दान-वीर-कवि श्री वियोगी हरि

ॐ

वीर-संदेश

(वीर रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिससे फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग २ } आगरा—आश्विन सं० १९८५, अक्टूबर १९२८ { अङ्क १०

विजया-दशमी

[लेखक—श्री पं० गोकुलचन्दजी शर्मा, एम० ए०]

—१—

विजयादशमी, प्राणार्पण ही प्रतिमे! आओ, आओ,
राम-राज्य की दिव्य दुंदुभी विजये! वेग बजाओ।
अप्रतिम सुभट राजपूतों की सेनाएं सजजाएँ,
लख केसरिया केसरियों को शत्रु-वृन्द लजजाएँ॥

—२—

भारत के जीवन-जलनिधि में उथल-पुथल मचजाए,
वीर वाहिनी चतुरङ्गिनि का चक्र व्यूह रच जाए।
कर में धनुषवाण लेकर फिर सिंह किशोरक खेलें,
सुभट शूर अभिमन्यु तुल्य वे पर-पक्षी को ठेलें॥

+ + +

—३—

ऐसी प्रभा प्रकट हो विजये ! इन रजपूती लालों से,
उठ बैठे भारत सब विध से पीड़ित है जो सालों से।
चमक उठे माता का मंजुल मुकुट चमकते भालों से,
जलजाए परता की प्रभुता अपने ज्वाला-जालों से॥

—४—

हां, गाण्डीव-ध्वनि-सी गूंजें धनुषों की फिर टङ्कारें,
हृदय हिलाने वाली श्रुत हों भिलमों की भट भङ्कारें।
कर्ण-बधिर करने वाले वे कर्ण तुल्य ही शर छूटें,
भ्रातृ-भाव की भीमगदा से फूटों के फिर शिर फूटें॥

—५—

चक्रपाणि सम विजये ! तेरा अब कुछ ऐसा चक्र चले,
जिसे देखकर डरजाए फिर सीधा हो हठ-शक्र चले।
ऐसा विकट सङ्गठन हो कि न कोई कुछ भी वक्र चले,
अपने बल प्रताप के सम्मुख नाक छिदा रिपु नक्र चले॥

—६—

ताप ताड़का का वध करके राम-रोष अब जाग उठे,
मत्सर-मृग-मारीच तपस्वी वेश देखकर भाग उठे।
सम्पति जनक-नन्दिनी का फिर वह अशोक-तल-राग उठे,
जिससे बन्धन-रावण के घर खिल विनाश का फाग उठे॥

—७—

श्री प्रताप से लालों से फिर भारत माँ का मण्डन हो,
शूर शिवाजी से सुभटों से शठता का मद खण्डन हो।
उठते हुए राष्ट्र-भण्डे के सम्मुख पाप प्रचण्ड न हो,
शुभ स्वातंत्र्य-सौख्य घर घर हो पर कोई उद्दण्ड न हो॥

दया और युद्धवीर

[लेखक—श्रीयुत पं० किशोरीदासजी वाजपेयी शास्त्री]

पाठक इन दोनों शब्दों को आपततः परस्पर विरुद्ध समझेंगे। दया और युद्धवीर! पर हम बतलायेंगे कि ये दोनों परस्पर विरुद्ध नहीं, अत्यन्त अनुकूल एवं अन्योन्याश्रित हैं। दया के बिना युद्धवीर हो ही नहीं सकता और बिना युद्ध के दया दो कौड़ी की। इस बात को स्पष्ट करने के लिए पहले इन दोनों का स्वरूप समझ लेना आवश्यक है।

दुखित जीवों को तड़पते देख कर जी में जो एक प्रकार की सहानुभूति पूर्वक तीव्र वेदना होती है, उसी का नाम दया किम्वा करुणा है। दया की हमारे शास्त्रों में भूरि-भूरि प्रशंसा है, वह धर्मों में प्रधान धर्म है। कहने वालों ने कहा है और बहुत ठीक कहा है कि 'दया बिन सन्त कसाई' सब गुण मनुष्य में हों और वह नित्य लक्ष नाम भगवान् के जपता हो, पर यदि उसमें दया का अभाव है तो समझ लो कि उसका वह सब आचरण केवल ढोंग है। यही बात श्रीमद्भागवत में, स्वयं भगवान् ने कही है। उन्होंने कहा है कि जो पुरुष मेरी पूजा, पाठ तो करता है पर जिसका मन विपन्न जीवों के क्लेश को देखकर कातर नहीं होता, वह राख में हवन कर रहा है। उसकी पूजा आदि ऐसे निष्फल है जैसे राख में पड़ी हव्य सामिग्री।

सो यह दया जिसकी इतनी प्रशंसा है, कुछ सहज नहीं, मखौल नहीं। ऐसी उत्कृष्ट वस्तु प्राणों को देकर ही मिल सकती है। मान लीजिये आपके सामने कोई एक गरीब निरपराध और मूक जीव का क़त्ल कर रहा है। आपको जी दुखा, आपने उस ओर से दृष्टि हटा ली और दूसरी सड़क से अपने घर का मार्ग लिया। अब बतलाइए कि क्या आपको दया आयी? कभी नहीं। इसका नाम दया नहीं है, यह तो कृपणता है। आपकी इस बनावटी दया ने काम क्या किया! कुछ नहीं। तब फिर इसका मूल्य ही क्या? क्या इसको भी धर्म में गिनना है? क्या इसी को प्रधान धर्म माना है? उत्तर है, नहीं।

तो फिर दया है क्या ? सुनिये। आपने देखा, एक दुष्ट निरपराध गरीब जीव की बोटियां निकाल रहा है। उसे धीरे-धीरे तलछा-तलछा कर मार रहा है। आपके मन में स्वाभाविक वेदना हुई। आपने चाहा कि यह दुष्ट इसे छोड़ दे, न मारे और यह जीव फिर चंगा भला होकर हरी-हरी घास चरे और आनन्द करे। मन में यह भाव आया अब इसकी पूर्ति के लिए उद्योग कीजिए। उस बधिक के पास जाइये, उसे समझाइये-बुझाइये, साम दाम सबसे काम लीजिये। इतने पर भी न माने तो उसके पाँव पड़ कर मनाइए और फिर भी न माने तो बस, वही अव्यर्थ मूढ़ चिकित्सा करने को तैयार हो जाइए। यदि आप में बल है तो उस दुष्ट को ठीक करके उस जीव को छुड़ा लेंगे अन्यथा असफल होने पर भी आपकी यह दया 'धर्म' गिनी जायगी। इसका मूल्य बड़ा है। पर स्मरण रहे कि बनावटीपन बिलकुल न हो। इस महनीय गुण या धर्म के लिए शरीर तक न्यौछावर करना होगा। फिर भला तुच्छ धन सम्पत्ति की तो बात ही क्या है। दया करके इस प्रकार दूसरे विपन्न जीवों के उद्धार के लिए, जो प्रतिद्वन्द्वी से लोहा लेता है वही तो युद्धवीर है।

यह कुछ आवश्यक नहीं कि सब जगह दया के लिए युद्ध ही आवश्यक हो, नहीं, जहां और किसी प्रकार काम बन जाय वहां इसका कुछ काम ही नहीं है। जब तक अपनी बुद्धि या धन सम्पत्ति से काम बन सके तब तक तो कहना ही क्या है। किन्तु जब किसी तरह काम बनता नजर न आए तो फिर यह दवा है। बिना इसके फिर दया 'दया' नहीं रह जाती, वह तो खेलवार है। जो जिस वस्तु को प्यारी समझता है वह उसके लिये प्राण देने को तैयार हो जाता है। धर्मात्माओं के लिए धर्म से बढ़ कर और चीज दुनियां मे प्रिय नहीं है और धर्म में प्रधान है—दया। तो फिर इस दया के लिये वह क्या कुछ उठा रक्खेगा ?

इसी दया का नाम धर्म है और आज कल हम लोगों में जो नकली दया रह गई है, सो तो केवल बिडम्बना है। यदि वह दया धर्म होने लगे तो फिर सभी धर्मात्मा हैं और सभी निर्वाण पद को पा लेंगे !

क्या कहना है ? हमारे देश और जाति में जहां और और बातें उलटी समझी जाने लगी हैं, इस बेचारी दया की भी बड़ी छीछालेदर हुई है। सभी दयालु बने बैठे हैं, सभी मोक्ष के अधिकारी हैं ! वाह ! हल्दी लगी न फिटकरी रङ्ग भी चोखा आ गया। और क्या चाहिए ? संसार में ऐश आराम करो। जिधर कोई किसी निर्बल को सताता हो, उधर से आँखें घुमा लो और दूसरी ओर देखने लगो। बस दयालु हो। मरने पर सीधे वैकुण्ठ चले जाओगे। लोक मौज परलोक सुख !

किन्तु भाई ये सब धोखे हैं। जरा दिल से सोचिये पता लग जायगा। कहा गया है —"दया धर्म का मूल है" अवश्य मूल है— मूल भी और फल भी। किन्तु उस दया के स्वरूप को समझिए। हमने ऊपर जो कुछ लिखा है उससे यह बात साफ़ होती है कि दया के लिये सब जगह नहीं किन्तु अवसर पर युद्ध अपेक्षित होता है और ऐसा किये बिना कभी भी वह पुरुष दयालु नहीं कहा जा सकता और नहीं दया का फल उसे मिल सकता है। वह तो बनावटी है। दया के लिये प्राण बिसर्जन तक करना पड़ता है।

इस प्रकार दया से अभिभूत होकर जो पुरुष किसी से युद्ध करता है वह युद्धवीर है। ऐसा ही वीर रविमण्डल का भेदन करता हुआ दिव्य लोक जाता है। युद्धवीर अपने लिये कुछ भी नहीं करता, सब जीवों के लिये, ईश्वरार्पण। इसीलिये उसकी प्रत्येक क्रिया, यज्ञ और समाधि है। जीवदया के बिना जो केवल अपने सुख के साधन भूत पृथ्वी भागों के लिये युद्ध करके दोनों ओर के जीवों का क़त्ल करता है वह युद्धवीर नहीं, क़ातिल है, हत्यारा है। 'वीर' तथा 'हत्यारे' या 'क़ातिल' शब्द में कितना भेद है ? एक मनुष्य वीर कहने से कितना प्रसन्न होता है, पर यदि आप उसे हत्यारा कहदें तो ? यह विभेद और कुछ नहीं केवल दयाकी भित्ति है।

संक्षेप में युद्ध के बिना दया की पूर्णता नहीं और बिना दया के कोई वीर अथवा युद्धवीर नहीं, यह शास्त्रीय सिद्धान्त है।

——:*:——

माता और पुत्र का संवाद

[लेखक—श्रीयुत रमेश वर्म्मा]

संजय—

कैसो है कठिन काम युद्ध को न लेवों नाम हाय ! याद करि २ छाती दहलति है ।
पाई मैंने हार यह जी में है खुमार पर, विधि करतव्य कछु पेश न चलति है ॥
सुनि हैं जो लोग शोक करि हैं हा बात यह मात ! जी में याद होय मेरे खटकति है ।
पर उस युद्ध-दृश्य जिय में उदय होत होश उड़िजात मति थिर न रहति है ॥

बिन्दुला—

हाय ! पुत्र कहै कहा युद्ध ते बिमुख होत देख ! क्षत्री कुल को कलंक लगि जायगो ।
अस्त होय सूर्य आर्य वीरता को आज सुत शोक से धरापै अन्धकार छाय जायगो ॥
कांपैगी मही, दिन ही में हो उलूक पात, शेषको सहस्र शिर नीचो नवि जायगो ।
तोड़ें मर्य्याद रवि चन्द्र, गंग ऊर्ध्व बहै, जो पै सुत रण ते तनिक छूटि जायगो ॥

संजय—

प्यारे पुत्र को न शोच, युद्ध को तू लेवे नाम, रण में विजय पुत्र तेरो नहीं पावैगो ।
मैं हूं अति निबल, सबल शत्रु, मात कहि कैसे तेरो पुत्र युद्ध जीत घर आवैगो ॥
होवेगो मरण मेरो, सत्य यह जी में जान, शोक से उमड़ मात हियो तेरो आवैगो ।
देह मति युद्ध सीख, भीख यह मात देउ, सोनो सो शरीर मेरो मिट्टी मिल जावैगो ॥

बिन्दुला—

धन्य यह कोख, सुत युद्ध में जो मेरो मरै, जीवन सफल तब मैं हूं करि पाऊंगी ।
यह तन खाक सुत नाम सार जग में है, शोक तेरो चित्त में तनिक नहीं लाऊंगी ॥
क्षत्री होय निज को निबल कहै, फेरि यह शब्द इन कानन ते सुन नहीं पाऊंगी ।
आवैगो जो शत्रु जीति, आरती सजाऊं फिर पुत्र तेरे यश के मल्हार राग गाऊंगी ॥

संजय—

देखि मात सोचि, नहीं आवों फेरि लौटकर निश्चय हो मरण यह युद्ध नहीं काल है ।
जानि बूझि मौत मुख में न तू ढकेल मोय, अबलों मसानों नहीं पहिलो उर साल है ॥
रहि हौं जो जीवित सकल सेवा तेरी करों, मेरे बाद कौन कूं कहैगी मेरो लाल है ।
शत्रु के आधीन होयं तोहू यह राज रहै, सम्पत्ति सकल रहै ज्यों की त्यों बहाल है ॥

बिन्दुला—

वीर रजपूतियां सदा ही सुत एक जन्में, सो भी सुत युद्ध के लिए ही वह जाती हैं ।
घरमें निठल्ले मरें कूकर की मौत वे, तो रोय रोय आंसुन की नदियां बहाती हैं ॥

मानती हैं धन्य निज सुतकी सुकीर्ति सुन, रणमें समोद वह देखने को जाती हैं।
कायर, कपूत, कूर, कामी नहिं जन्में वह, जो पै यदि जन्में हूं तो गंग में बहाती हैं॥
कहै तू जो शत्रु के आधीन होय भोगूं राज, धिक ! पुत्र मेरो, तू गुलाम कहलायगो।
लेवेगो कलंक कालिमा को यह टीका सिर निज जननी को पर-बंधिनि बनावेगो॥
पहनेगो बेड़ी परतंत्रता की चाहे सुख, यह सुख साज सब स्वप्न ह्वै जावेगो।
कौने पायो सुख पराधीनता में कहि, मात आह को भकारो देख तीय डासे खायगो॥
अबलों कहो है अब कहूंगी न बार बार युद्ध को सजाऊं साज रण को मैं जाऊंगी।
करूंगी विजय शत्रु, राखूं निज कुल लाज, रण चंडिका पै शीश आहुति चढ़ाऊंगी॥
तोड़ व्यूह, फोड़ शीश, शत्रु को भगाऊं हाल, मोड़ूं मूछं, तब जय दुन्दुभी बजाऊंगी।
एतो सब करूं इन हाथन ते, पर सुत काटि तेरो शीश पहले गंगा में बहाऊंगी॥

\+ \+ \+

सुने जब माता के यों बैन, खुले जनु संजय के अब नैन।
छाय गयो मन में भारी रोस, रह्यो नहीं जीवित तन को होस॥
मात बस अब काहे की देर, उठ्यो अब सोवत ते यह शेर।
वीर रस पूरित भरयौ उमंग, अंग में रंग्यौ वीर बजरंग॥
शत्रु दल काई सौ बिलगाय, मोद से गहे मात पद आय।
पुत्र जय धन्य धन्य तुम धन्य, बीर को तो सौ जग में अन्य॥
राख भारत माता की लाज, कियौ सुत आज महा तुम काज॥
वीर, लाड़ले, वत्स मम, विजयी, शूर, सपूत।
शत्रु दलन, रंजन, जनन, तुम बल राशि अकूत॥

पीछे नहीं हटूंगा

[लेखक—श्रीयुत दिव्य कवि]

कुटिल कंटकों पर चल कर मैं उनको चूर्ण करूंगा।
निज स्वध्येय तक जाने का प्रण अपना पूर्ण करूंगा॥
लख बाधाओं के वारिध को किञ्चित नहीं डरूंगा।
विकट भयङ्कर निर्जन बन में हो निशंक विचरूंगा॥

❀ ❀ ❀

सबल शत्रु के युद्ध क्षेत्र में छाती खोल डटूंगा।
प्राप्त किये बिन विजय वहां से पीछे नहीं हटूंगा॥

बल

[लेखक—श्रीयुत सबलसिंह जी वर्मा]

निराशा में आशा जनक, आपत्ति में सहारा देने वाला, उन्नति का सहचर कौन है ? सब पर विजय प्राप्त करने के लिए, संसार में साम्राज्य स्थापित करने के लिए, लौकिक और पारलौकिक मुक्ति प्राप्त करने के लिए किसको आवश्यकता है ? किसके भरोसे एक मनुष्य सगर्व ऊंचा मस्तक किए हुए चलता है और किसके अभाव में दूसरा सिर नहीं उठा सकता, कौनसी वह चीज जिसके बिना मनुष्य अपना मनुष्यत्व खो देता है और क्या कोई बात ऐसी हो सकती है जिसके कारण मनुष्य मनुष्य से देवता हो जाय ? इन सभी विभिन्न प्रश्नों का उत्तर दो अक्षरों के एक शब्द में है और वह है 'बल'। बल के ही द्वारा मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है। बलके अभाव में सब चला जाता है और बल के सद्भाव में कोई वस्तु अप्राप्य नही रहती। बलके अनेक भेद हैं। यथा:—आत्मबल, भुजबल, ज्ञानबल, चरित्रबल, ऐश्यबल, धनबल राज्यबल आदि। इनमें से एक के होने से ही मनुष्य जगत् मान्य बन जाता है। जिसके पास इनमें से कई बल मौजूद हैं, उस भाग्य शाली की क्या बात। कौन नहीं जानता कि आत्मबल के कारण आज महात्मा गान्धी संसार के सर्व श्रेष्ठ महापुरुष है। भुजबल के कारण गामा संसार प्रसिद्ध हो गया और केवल साहस के कारण लिंडबर्ग ने अपना नाम अमर कर दिया। बलकी महत्ता का वर्णन कौन कर सकता है ? जो संसार में महान् बनना चाहे उसे बल प्राप्त करने का निरंतर प्रयत्न करना चाहिए। बल की आराधना में अपना सर्वस्व लगा देना चाहिए। बल प्राप्त करने के लिये, सबल बनने के लिये, कोई काम करे बिना न छोड़ना चाहिये।

वीर हम्मीरदेव चौहान

[लेखक—श्री० किशोरीलालजी गुप्त 'विशारद']

जब भारतवर्ष मुसलमानों के जुल्म से पद दलित हो रहा था, इनके शासन काल में हिन्दू लोग जबरदस्ती मुसलमान बनाए जाते थे, मां बहिनों की इज्जत बचना तक कठिन हो रहा था, इतना ही नहीं वरन् अनेक हिन्दू महाराजा भयभीत हो मुसलमानों की अधीनता स्वीकार कर अपनी पुत्रियां भी व्याह चुके थे अर्थात् मुसलमानी साम्राज्य का पूर्ण अभ्युदय हो चुका था। उस समय हम्मीरदेव ने रणथम्भगढ़ के राज प्रासादों में जन्म लिया। उनकी वीर माता सदैव वीर-रस पूर्ण कहानियां सुनाया करती थीं। अपने पूर्वजों की उज्वल कीर्ति की आभा उनके हृदय पटल पर सदैव डाला करती थीं। यही कारण है कि हम्मीरदेव थोड़े ही समय में धीर-वीर बन गये। उसी समय से वीर हम्मीर की हठ का प्रचार हुआ। देश में कहावत ही प्रचलित होगी कि—

सिंह गमन सुपुरुष वचन, कदली फलै इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार॥

आप जैसे वीर साहसी थे वैसे ही अपनी बान निभाने में ध्रुव के समान अचल थे। एक समय अलाउद्दीन बादशाह अपनी बेगमों के साथ शिकार खेलने बन में गये। तब मीर मुहम्मद मंगोल नामक मुसलमान सरदार भी उनके साथ था। शिकार खेलते हुए मरहठी बेगम मंगोल के सौन्दर्य पर मोहित हो गई, एवं एकान्त स्थान पर उससे अपनी इच्छा पूर्ण करने की याचना की, किन्तु मंगोल ने किसी प्रकार बेगम की बात स्वीकार न कर स्वामि भक्ति का परिचय दिया। यह बात मरहठी को चुभ गई तब से वह मंगोल के घात में थी और एक दिन अवसर पाकर बादशाह सलामत को उलटा सोधा समझाया जिसका फल यह हुआ कि उसने मंगोल को मार डालने का निश्चय कर लिया। किसी भांति यह वृतान्त मीर तक पहुँचे। वह मौका पाकर वहां से भाग निकला।

सोचत मीर चल्यो मग जात लखै नहिं ठौर कहूं सरने को।
जाउ जहाँ जिटिके ढिंग सो न सकै छिन राखि डरै करने को॥
एक यहै रनथम्भ को खम्भ अहै चौहान अजौ अरने को।
दण्ड भरै न हमीर हठी हर वार जुरै न मुरै मरने को॥

इसी भांति सोच विचार कर रणथम्भगढ़ आकर महाराजा हम्मीरदेव के पास पहुँचा और महाराज से सब रहस्य प्रकट कर दिये एवं प्रार्थना की कि नरनाथ! आपकी वीरता की प्रशंसा सुन आपकी शरण में आया हूँ, आप सच्चे वीर क्षत्री हैं, मेरी रक्षा कर करना आपका परम कर्त्तव्य है। मुझे साम्प्रति आपके अतिरिक्त दूसरा साहरा नहीं है। तब हम्मीरदेव ने उसी क्षण आश्वासन देकर भीष्म प्रतिज्ञा की, वह थी सुनने योग्य है।

"चाहे सूर्य पश्चिम से उगने लग जाय, चाहे चन्द्र अपनी शीतलता का छोड़ दे, चाहे गंगा बंगाले की खाड़ी से लौट कर हिमालय की ओर बहने लगे। चाहे समुद्र अपनी मर्य्यादा उलंघन करदे किन्तु हम्मीर के जीवित रहते अलाउद्दीन मंगोल को नही पा सकता।

इस प्रकार प्रतिज्ञा कर मोल्हन को शरण में रख लिया। उधर अलाउद्दीन बादशाह के डेरों में मीर के भगजाने का हल्ला मचा। खोज शुरू हुई। कई चतुर गुप्तचर इधर उधर भेजे गये। बड़ी जाँच पड़ताल होने पर रणथम्भगढ़ का पता चला। उजीर नामक समझदार दूत बादशाह का सन्देश लेकर रणथम्भगढ़ पहुँचा। उसने हम्मीरदेव से मोल्हन को दे देने के लिए बहुतेरा समझाया, किन्तु हम्मीरदेव मोल्हन को देने के लिए तैयार न हुये प्रत्युत युद्ध के हेतु बादशाह को निमन्त्रण दे दिया। सन्देशा लेकर दूत वापिस लौटा। हम्मीरदेव की हठ जाहिर की। इधर मोल्हन युद्ध के डर से घबड़ाया और महाराज से विनय की कि आप मुझे जाने दीजिए मेरे लिए इतना कष्ट न उठाइए। इसके उत्तर में महाराज ने कहा—

"मोल्हन बात न सो बदलै अब जो प्रथमै मुखते हम काढ़ी।
मैं अपने बल बैर कियो किन मीचु रहे सिर ऊपर ठाढ़ी॥
दीन मुहम्मद को करि खीन मलीन करो मुख की छवि बाढ़ी।
कै सुलतान की सान रहे कै हमीर हठी की रहे हठ गाढ़ी॥"

इस तरह मंगोल को सान्त्वना दी। इधर बादशाह ने हम्मीर देव पर चढ़ाई करने का हुक्म दे दिया फिर क्या था सब दीन इस्लाम के रंग में मस्त होने वाले मुस्लिम वीरों ने रण भेरी बजाकर सेना सजाई और रणथम्भगढ़ पर चढ़ाई बोल दी। कई हजार सवार एवं कई लाख सैनिक लेकर स्वयम् अल्लाउद्दीन साथ रहे। एक दम जाकर दुर्ग को चहुँ ओर से घेर लिया इस पर हम्मीर देव के मंत्री महाराज से विनय करने लगे कि नाथ आपकी आज्ञा हो तो संधि करने का कुछ उपाय करें क्योंकि इतनी सुविशाल सेना के सामने मुट्ठी भर क्षत्री क्या कर सकेंगे और बिना ही कारण हानि उठाना उचित नहीं है। इस पर वीर हम्मीर देव अपनी प्रतिज्ञा से तिल भर भी विचलित न होकर बोले:—

"जात मरे मरि हैं जग जीव जिते धरि देह धरा पर आवें।
अमृत पान कियो न कोऊ यह जानि लई निहचै सब भावें॥
है रन तीरथ क्षत्रिन को पर स्वारथ की पदवी कहँ पावें।
मानि जथारथ बात लरौं कलि मे कवि कोविद कीरति गावें॥
कोटिन काटि कटारिन सों तरवारिनि मारि करौं घमसानें।
मुण्ड विहीन वितुण्ड परैं रण रुण्ड फिरैं रज श्रोनित सानें॥
साह को देऊं पठै जमलोक हमीर हठी तब मोहि बखाने।
कै अब सूरज मण्डल वेधि बसौ हरि के पुर बैठि विमाने॥"

दोनों ओर से युद्ध भेरी बजने लगी। इधर से हम्मीरदेव के योधागण सुसज्जित होकर गढ़ के निकट आये उधर से बादशाह की सेना मोरचे बांध कर तय्यार हुई। दोनों ओर से तोपें दगने लगी घमासान युद्ध आरम्भ हुआ सकड़ों वीर धरा पर सदा के लिए सोने लगे।

उस समय हम्मीर देव की प्रसन्नता उत्साह एवं वीरता देखते ही

बनती थी। मीर मंगोल ने एक बाण ऐसा साध कर मारा कि शाह के छत्र का दंड एक दम टूट पड़ा। दण्ड के टूटते ही बादशाह का मुंह पीला पड़ गया उसकी सेना में निस्तब्धता छा गई। इधर हम्मीर देव की सेना दीवार के सहारे लड़ रही थी इससे उसकी विशेष हानि न हुई इन मुट्ठी भर वीरों ने ऐसी वीरता का परिचय दिया, जिसे देख बादशाह की सेना चकित हो रही। थोड़ी देर में उसके पांव उखड़ गये और वह भाग खड़ी हुई।

इस प्रकार सुलतान दल बल सहित पराजय हो भाग निकला। तब मौका पाकर हम्मीर देव का पुराना शत्रु उसका भाई रणमल चौहान बादशाह से जा मिला। और उसे गढ़ का भेद देने का वायदा कर वापस लौटा लाया। जब घर का भेदिया फूटा तो रणथम्भगढ़ की वैसे ही दुर्दशा हुई—जैसी कि जयचन्द के फूटने से भारतवर्ष की हुई या विभीषण के फूटने से स्वर्णपुरी लंका की। रणमल की नीचता और कपटता का विवरण नहीं हो सका। इन्हीं नीच विचारो से स्वर्ण मय भारत के पैरों में पराधीनता की बेड़ी पड़ी। अर्थात् शाह ने रणथम्भगढ़ आते ही मजबूत मोरचे बांधे और रणमल के बताये हुए स्थान पर सुरंग लगाई गई। इसका विवरण हम्मीर देव को मिल चुका था। हम्मीर देव आग बबूला हो गये। उन्हें इसका तो डर ही नहीं था कि प्राण रहे या जायँ। महाराज ने गंगाजल मंगा कर स्नान कर दान पुण्य किया, अच्छे २ आभूषण धारण कर अस्त्र शस्त्र मंगवाये। वह अपने महल से चल कर पूज्य माता के पास जा उसके चरण कमलों में प्रणाम किया। इधर सेना को तैयार हो जाने की आज्ञा दी सब योधागण युद्ध के लिये साज सजने लगे। माता ने हम्मीर देव को आशीर्वाद दिया।

"तीरा ऊपर तीर सहि, सेलाँ ऊपर सेल।
खग्गां ऊपर खग्ग सहि, रण सनमुख सुत खेल॥
भुज मुख छाती सामुह, घावां ऊपर घाव।
पलक न झंपै पूतकी चढ़ चौगुनो चाव॥

तिल २ तन कटि २ परै, तेगां मुक्ख मुब्बन।
दीधी लाहि असीस में, नारी गीत गुवन्न ॥

जो जूझे तो अति भलो, जो जीतै तो राज।
देति पुकारें मैं सबै, मङ्गल गावो आज ॥"

इधर माता से संवाद हो रहा था उधर सुरंग में कई मन बारूद भर कर आग लगा दी जिससे किले की सुदृढ़ दीवाल एक दम उड़ पड़ी। शाह की सेना में आनन्द ही आनन्द छा गया सब उछलने लगे। उसी दम घोड़े पर हम्मीर देव सवार हुए और दीवाल की ओर अपने बहादुर वीरों के साथ चल दिये। नाना भांति के बाजे बजने लगे। दोनों ओर की सेना की मुठ भेड़ हुई। घनघोर युद्ध हुआ।

इस युद्ध को देख कायर तो पहिले से ही कूंच कर गये सच्चे वीर ही सामने ठहरे। यह लड़ाई बराबर सात दिन तक होती रही। गढ़ से खून की "धाराएं" बह निकली। हम्मीर देव फिर अपने प्राणों को हथेली पर ले सुलतान के सामने झपटे। उनके भयानक आक्रमण से सेना के छक्के छूट गये। उसके पांव उखड़ गये और फिर से सुलतान रणाङ्गण से भाग निकला। वीर हम्मीर देव की विजय पताका फहराने लगी। वीर हम्मीर देव ने शरणागत की रक्षा जिस धीरता, वीरता और गम्भीरता से की, वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने की बात है।

वीर-सन्देश

[लेखक—श्री पं० किशोरीदास जी वाजपेयी, शास्त्री]

ज्ञान की गागरि कोई बतावत,
कर्म्म की सूझ बतावत कोई।
भक्ति तरंगिनि कोई कहै,
पुनि तीनों समुचित मानत कोई ॥
कोई आचार विचार बतावत,
भाखत जो जिय आवत सोई।
मेरे तो जाने है गीता सोई इक—
वीर-सन्देशो, गुनो सब कोई ॥

विचार-तरङ्ग

[लेखक—श्री० सुरेन्द्र जी शर्म्मा]

महात्मा गान्धी ने साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) में एक मरणासन्न बछड़े को, 'शुद्ध अहिंसा' के भाव से प्रेरित हो कर ज़हरीली सुई से मरवा डाला। वे इस काम में हिंसा नहीं मानते। वे इसी सिद्धान्त को, ऐसी ही परिस्थिति में, मनुष्य के लिए भी लागू करना हिंसा नहीं मानते। वे कहते हैं कि सांप के काटे हुए को सोने न देने के उद्देश से उसके थप्पड़ मारना हिंसा नहीं है। हम भी कहते हैं कि यह हिंसा नहीं है। परन्तु, सांप के काटे हुए को थप्पड़ मार कर उसे सोने न देने की अपेक्षा, उसे ज़हरीली सुई से सदा के लिए मृत्यु की गोद में सुला देना क्या है? क्या यह भी शुद्ध अहिंसा होगी? यदि नहीं, तो बछड़े की हत्या के साथ इस उदाहरण का मेल ही क्या है?

❀ ❀ ❀

वोटिङ्ग के वक्त कौंसिल में बड़ी भगदड़ मचती है। ग़ैरसरकारी मेम्बरों की वोटें प्राप्त करने के लिए सरकारी आदमी बड़ी घृणित चालों से काम लेते हैं। युक्त प्रान्तीय कौंसिल की पिछली बैठक में यह बात प्रत्यक्ष सामने आगई। बेचारे राजा जगन्नाथबख्शसिंह को बचाने के लिए सरकार ने सब कुछ किया। बनारस के कवीन्द्रनारायणसिंह को सरकारी चीफ़ सैक्रेटरी के पञ्जे में फस कर कमरे में बन्द तक होना पड़ा! लोग अगर उन्हें ऐन वोटिंग के मौके पर न ढूंढ निकालते तो क्या उनकी मोहनी मूरति सहज दिखाई पड़ती? सरकार की दोग़ली दुहत्थी शासन-प्रणाली (Hybrid Dyarchy System) का यह अभिशाप है जो उसके बड़े से बड़े अधिकारी को इस प्रकार के ज़लील काम करने पड़ते हैं और ऐसा करते हुए उन्हें तनिक भी शर्म नहीं आती!

❀ ❀ ❀

इस प्रान्त की कौंसिल ने राजा जगन्नाथबख्शसिंह को निकाल दिया। अब कोटला के राजा बहादुर कुशलपालसिंह शिक्षा-मंत्री हुए हैं। राजा बहादुर का सार्वजनिक जीवन इतना गन्दा और भ्रष्ट है कि उसके कड़ुवे फल सर मालकम हेली की सरकार को निकट भविष्य में खाने पड़ें तो कोई ताज्जुब न होगा। सरकार तीनों मिनिस्टरों के गले में संयुक्त मंत्रित्व के उत्तरदायित्व (Joint Ministerial responsibility) की ज़ंजीर भले ही बांध दे, परन्तु, यू० पी० कौंसिल तो उन पर अविश्वास का प्रस्ताव पास किये बिना न मानेगी।

इस दशा में राजा बहादुर के सर पर चन्द दिन के लिए यदि मिनिस्टरी का सेहरा बंध ही गया तो, बुरा क्या हुआ ? अब देशभक्त कौंसिलरों को यू० पी० के ताना-शाह और उनके राजा बहादुर जैसे मिनिस्टरों से सङ्घर्षण करने का अच्छा मौका है।

❀ ❀ ❀

सायमन कमीशन ने इस देश में आकर 'अपना काम' शुरू कर दिया। देश में चारों ओर से बहिष्कार और 'सायमन वापस जाओ' की आवाज़ आ रही है। परन्तु सायमन साहब मूंछों पर ताव दे कर, इस दलित देश के भले के नाम पर चन्द जयचन्दी जमात के लोगों की गवाहियां ले रहे और शासन-सुधारों की जाँच का नाटक खेल रहे हैं। परन्तु यह कौन कह सकता है कि भूतपूर्व भारत-मंत्री लार्ड बर्कन हेड के साथ गोष्ठी करके, भारतीय शासन के सम्बन्ध में कुछ नाममात्र के हेर-फेर करने और सुधारों की जाच के नाम पर इस पराधीन भारत के लोगों को भुलावे में डाल देने का प्रयत्न करने की बात उन्होंने पहले से तय नहीं कर डाली ?

❀ ❀ ❀

भारत पराधीन है। किन्तु, वह प्रत्येक दशा में, अपना सर्वस्व खो कर भी, अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करेगा। वह सायमन सप्तक की कलाबाज़ी के फेर में हर्गिज़ न पड़ेगा। सरकार भारतीय जनता के बहिष्कार आन्दोलन को, भले ही आंखें बन्द कर के उपेक्षा की दृष्टि से देखे, परन्तु अब अधिक समय तक वह दुनिया को धोखा नहीं दे सकती। दुनिया अब अच्छी तरह जानती है कि हिन्दुस्तान में सरकार और जनता के बीच करारी कशमकश है। हिन्दुस्तानी जनता अपने देश की आज़ादी के लिए, अपने घर में स्वेच्छानुसार फैल-फूट कर आदमी की तरह रहने के लिए, परमशक्तिशाली अंग्रेज़ सत्ताधारियों से संघर्षण करना सीख रही है। हिन्दुस्तानी अब अपनी इच्छा के विरुद्ध, अपने भाग्य निर्णय के लिए भेजे गये सायमन सप्तक के मायाजाल में फंस कर, अपने देश की स्वतंत्रता के सुनहले आदर्श की उपेक्षा नहीं कर सकते।

❀ ❀ ❀

प्रयाग के हिन्दू आज ३-४ वर्ष से रामलीला और विजयादशमी का उत्सव नहीं मना रहे इसलिए कि, अधिकारी स्वतन्त्र रूप से उनके इच्छानुसार उन्हें रामलीला का जुलूस निकालने की इजाज़त नहीं देते। विजयादशमी हिन्दुओं का बहुत पुराना धार्मिक त्यौहार है। परन्तु, शान्ति और व्यवस्था के ठेकेदार इस अवसर पर प्रयाग के हिन्दुओं के जुलूस आदि निकालने में बाधा डालते हैं। कुछ अन्य स्थानों में भी नगरकीर्तन के जुलूस आदि को रोक कर उन्होंने ऐसा

किया है। कहते हैं कि प्रयाग के हिन्दुओं ने इसके प्रतिकार में रामलीला करना ही छोड़ दिया। अपने धर्म पर अटल रहने की ऐसी अच्छी मिसाल दुनिया के इतिहास में भला और कहां मिलेगी? न रहा बांस, न बजेगी बांसुरी!

❀ ❀ ❀

विजयादशमी का त्योहार मनाने का ऐसे बुज़दिलों को सचमुच कोई अधिकार नहीं है जिन्होंने अपने जीवन में 'विजय' नाम की कोई चीज़ समझी ही नहीं। जो कुत्तों की मौत मरना पसन्द करते हैं, किन्तु वीरों की तरह नहीं। जिनमें राणा सांगा, प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविन्द ऐसे अमर वीरों के रक्त का अन्श तक शेष नहीं रह गया। जिनमें अपने पूर्वजों की कीर्ति तथा अपने महान आदर्शों की रक्षा करने की कोई भावना ही नहीं रह गई वे विजयादशमी ऐसे पुण्य अवसर पर रामलीला का जुलूस निकालने का खिलवाड़ न करें, यही अच्छा है। यदि विजया का त्योहार मनाना सचमुच हम अपना धर्म समझते हैं, तो क्यों न हम उसे मनायें? दुनिया में कौन सी ऐसी ताक़त है, जो हमें अपने धार्मिक जुलूस निकालने से रोक सके? हम मर मिट कर भी विजयादशमी पर विजयोत्सव मना कर गौरव से अपना मस्तक ऊंचा करेंगे। हिन्दुओं के हृदय में इस प्रकार की भावना क्यों नहीं उठती? वे अपने मनुष्योचित अधिकारों की रक्षा के लिए मरना क्यों नहीं सीखते? अकर्मण्यता के गहरे गर्त में गिर कर, अपने धार्मिक उत्सवों को इस प्रकार बन्द कर देने से उनके शत्रुओं का क्या बिगड़ता है? यह कोई प्रतिकार का ढंग है या पल्ले सिरे की कायरता?

सैनिक के प्रति

[लेखक—श्री० रमेश वर्मा]

खोना मत साहस, शिथिलता न लाना उर,
बढ़े जाना वीर निर्द्वन्द रण-रङ्ग में।
कालहू को देख नहिं संक उर नेक लाना,
अपना निशाना कभी चूकना न जंग में॥
अस्त्र शस्त्र आदि सब रखना संभाल कर,
भूल कर शत्रु के न आना फर फंद में।
हार में न लाना खेद, फूलना न जीत लखि,
रखना सदैव समभाव दुखकन्द में॥

वीरादेवी

[लेखक—श्रीयुत कामताप्रसादजी, जैन]

(१)

महा भयङ्कर युद्ध हो रहा था, तेज तलवारें चमचमा रही थीं, वीरों की हुँकारों से आकाश गूंज रहा था, 'मारो मारो' की आवाजों के अतिरिक्त और कुछ सुनाई ही नहीं पड़ता था, देखते ही देखते एक ओर की सेना भाग खड़ी हुई! शूरमा कायर बन गये। मारके अगाड़ी भूत भी भागता है—पर वीर नहीं! किन्तु ठहरो यह बिजली की चमक कहां से आ दमकी? विद्युत लहर की तरह इन भागते हुए कायरों में फिर से लड़ने और जूझ मरने का साहस कहां से आ गया? ओहो, वह देखो, मालूम होता है कि स्वयं रणचन्डी ही इन पर सदय हुई हैं। कैसी मोहिनी मूरत है? वीरता और साहस उस मुखमण्डल के प्रकाश की एक एक रश्मि में टपक रहा है! घोड़े पर सवार हैं और हाथ में तलवार है। जिस ओर वह झुक जाती है, पापी पामरों के दिल दहल जाते हैं। भागती हुई सेना में जान आ गई, उसको जीवनदात्री मिल गई।

युद्ध होता रहा। रणबांकुरा अश्वारोही क्षत्रियाणी बढ़ बढ़ के हाथ चलाती और खेत लेती रही! लड़ते लड़ते वह शत्रु-सेना के ठीक वक्ष-स्थल में पहुँच गई। उसे न साथी की परवा थी और न अपनी सेना का ख़याल! सेना भी नये साहस और उत्साह से काम आ रही थी। एक अबला के साहस को देख कर कौन नर-पामर कायर ही बना रहेगा? पर उस बेचारी को क्या खबर कि जिस वीरांगना ने उसे नवसाहस दिया है, जिसके लिये वह जान पर आकर खेल रही है और जो उसकी सर्वस्व है, जीवनदात्री है, राजमाता है वह शत्रु सेना के बीचोबीच घिरी हुई है? उसके प्राणों पर बीत रही है! अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता! वह वीरांगना अतुल पराक्रम से युद्ध कर रही थी—पर किस किस का वार झेले। एक नहीं, दो नहीं हज़ारों नर-शूर कहलाने का दम भरने

वाले पामर उस वीर अबला पर टूट पड़े। जैसे निष्ठुर ब्यार के झोके से कली पेड़ पर से गिर पड़ती है, ठीक वैसे ही वह वीरांगना अश्व पर से खिसक कर जननी जन्मभूमि की गोद में आ गई! उसके चहरे पर वीरोचितपूर्ण मुस्कराहट थी। यह उसका अन्त समय था। वह वैर-भाव भूल गई, चण्डता उसके पास से भाग गई। ईश्वर प्रार्थना के साथ ही वह सरल हृदया वीरांगना इस नश्वर शरीर को छोड़ गई। उसकी सेना में हाहाकार मच गया! शत्रुओं की बन आई, उन्होंने खूब लूट मार की।

यह घटना सन् १६०० के लगभग दक्षिण भारत के एक छोटे से राज्य में घटित हुई थी। बारकुर की रानी वीरादेवी थी। यह बड़ी धर्मात्मा और प्रवीण शासक थीं। इन्हों ने अनेक जैन मंदिर और प्रतिबिम्ब बनवाये थे। कितने ही जैन विद्वान् इनके आश्रम में रहे थे, इनको जैन धर्म में श्रद्धान था, यह जैन गुरुओं की विनय करती थीं। सच पूछिये तो क्षत्रियों के सूर्य्यवंश की यह रत्न थीं। उस समय भी आजकल के समान दक्षिण भारत में साम्प्रदायिक विद्वेष फैल रहा था। जैसे आज हिन्दू-मुसलमानों में ज़रा २ सी बात पर ठनी रहती है, ठीक वैसे ही उस समय शैव और जैनों की हालत हो रही थी। एक ही माता के लाल आपस में लड़ मरते थे। वीरादेवी के पतन का कारण उनका धर्म प्रेम था। इक्केरी का शिवप्पा नायक शैव था। उसे जैन धर्म का अभ्युदय सहन नहीं हुआ। वही दल-बल सहित बारकुर पर जा चढ़ा और उसको ध्वंश कर डाला। वीरादेवी इसी युद्ध में काम आई! वह धर्म के लिये मरमिटीं! एक सच्चे और बहादुर सैनिक की तरह वह अपने देशवासियों को शत्रुओं के दुःखों से बचाने के लिये जूझ मरीं! आज भी धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों का अन्त वीरादेवी जैसी भारत ललनायें ही कर सकती हैं। क्या हम आशा करें कि भारतवासी इस वीरांगना के वीरोचित बलिदान से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे!

जीवन

[लेखिका—श्रीमती द्रौपदी देवी जी]

जीवन ! जरा हँसा दो, तुम्हारे हँसने पर सारा संसार निछावर है, तुम्हारी मुसकराहट की गहरी लाली में हृदय वन खिल खिलाकर हँसने लगता है, प्रकृति का प्रस्फुटित कोष तेरे ही विरागयुक्त गाने पर मुग्ध होकर, स्वार्थ साँचे में ढाली हुई मधुप की आकृति की परवाह न करके उसके ही फन्दे में ग्रस्त हो, प्रेम की वेदी पर बलिदान हो जाता है। उषा परिणय के समय अपने अन्तर जगत के दृष्य को दिखलाने के लिए तू पागल बन जाता है, मनुष्यों को कौन कहे पक्षी भी तेरे नाटक की वाह वाही में कुछ कोर कसर नहीं रखते।

+ + +

मेरे जीवन ! दुपहरी की इस प्रचण्ड ज्वाला में मानव तीर पर तुम्हारे एकान्त रुदन की चिनगारियाँ छिटक छिटक कर प्राणी मात्र के हृदयों में विष बो रही हैं, लोग आकुल हो नहीं मालूम किसकी शरण के लिये दौड़े जा रहे हैं। प्रकृति भी स्तब्ध हो चुप चाप एक कोने में खड़ी है। प्यारे सुमनों की अठखेलियाँ धूल में मिली जा रही हैं। ताण्डव नृत्य मचा हुआ है, चारों ओर त्राहि त्राहि हो रही है! प्रलय काल का ऐसा विराट आयोजन क्यों कर रहे हो ! तुम तो हँसने हसाने वाले तथा चित्त में गुदगुदी करने वाले थे ! मधुर संगीत खिलाड़ी के भी अभिनय शाला के, कोने कोने में अपने अस्तित्व का परिचय दिलाता हुआ गूञ्ज रहा है। तुम अणु परिमाणुओं में सर्वत्र व्याप्त हो। तुम प्रकाश और जीवन हो, तुम्हारे एक ही विराग गाने पर विश्व पलकों के पुलकों पर अनुपम बहार छा जाती है, सारे संसार में एक नये प्रकार की ज्योति फैल जाती है ! पर तुम मेरे विरुद्ध ही क्यों चल रहे हो। सत्य कहती हूं, तुम्हारे रोने पर सारा संसार रो देगा, और हँसने पर कोना कोना जगमगा उठेगा, अतएव एक बार फिर वही प्रार्थना है कि जरा हँसदो !

कड़क कर कहा, "इस समय बड़े बड़े विद्वान् और शास्त्रज्ञ उपस्थित हैं। क्या, कोई मुझे इस बात का उत्तर देगा कि जब पांडव अपने को ही हार गये तो उन्हें मुझे दाव पर रखने का क्या अधिकार था?" जब कोई न्याययुक्त उत्तर न मिला तो उसने क्रोध से लाल हो कड़क कर कहा, "क्या इस सभा में कोई भी न्याय प्रिय और सच्चा आदमी नहीं है? क्या सब नपुंसक, कायर और भीरु हैं जो एक अबला पर इस प्रकार भरी सभा में अत्याचार होते देख रहे हैं और चूं तक नहीं करते? पितामह, कहां गई तुम्हारी सत्य प्रियता? गुरु द्रोण, कहां गया तुम्हारा धर्म। हाय, क्या गांडीव में और भीम की भयंकर गदा में मेरी रक्षा करने का बल न रहा?" पर सब व्यर्थ। कोई कुछ न बोला।

दुर्योधन की आज्ञा से पांडवों ने तो अपने वस्त्राभूषण उतार दिये परन्तु द्रौपदी एक वस्त्रा थी, वह कैसे उतारती। तब दुर्योधन ने दु:शासन को आज्ञा दी कि 'क्या देखते हो, उतारलो इसके वस्त्र।' जब दु:शासन असहाया द्रौपदी की ओर बढ़ा तो वह चीख पड़ी और गिड़गिड़ा कर रक्षा के लिये प्रार्थना करने लगी 'अरे नीचो' मुझे छोड़ दो। मैं रजस्वला हूं पर उसको किसी ने न सुनी और नीच दु:शासन ने उसका वस्त्र पकड़ लिया तो वह निर्बलों के बल, असहायों के सहायक, अपने परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करने लगी। अहा, धन्य हो, सती के सतीत्व ने उस महान् शक्ति का सिंहासन डिगा दिया। उसने चीर बढ़ा कर उसके मान की रक्षा की। दु:शासन चीर खींचता जाता था और चीर बढ़ता जाता था। यहां तक वह थककर बैठ गया। सारी रङ्गभूमि धन्य धन्य की हर्ष-ध्वनि से गूंज उठी। सब सती की प्रशंसा करने लगे और दुर्योधन को धिक्कारने लगे।

यह अपमान भीमसेन को असह्य हो गया। उन्होंने क्रोध से लाल होकर प्रतिज्ञा की कि "यदि मैं इस कुलाङ्गार दु:शासन की छाती युद्ध में फाड़ कर उसका खून न पीऊं तो अपने पूर्वजों की गति को प्राप्त न होऊं।

जब विदुरजी ने देखा कि अन्याय के कारण क्षुब्ध होकर लोग कोलाहल मचा रहे हैं तो शान्ति स्थापित करने के लिए उन्होंने सबों को सम्बोधित कर कहा "सभासद्गण, द्रौपदी पर और अत्याचार किये जाने से पहले यह निश्चय हो जाना चाहिये कि युधिष्ठिर उसे दांव पर रख सकते थे या नहीं। परन्तु धृतराष्ट्र के डर से किसी ने उत्तर नहीं दिया और पाण्डव भी चुप रहे तो दुर्योधन की बन आई। उसने द्रौपदी की ओर देख कर अपनी बांई जाँघ ठोकी और अपमान सूचक इशारा किया। यह भीम से न देखा गया, उसकी आँखों से अग्नि निकलने लगी। उसने एक और प्रतिज्ञा की कि "इस रण-क्षेत्र में इस दुष्ट दुर्योधन की बांई जाँघ न तोड़ूं तो अपने पूर्वजों की गति न पाऊं।"

जुए में जीते हुए पाण्डव इस शर्त पर मुक्त कर दिये गये कि वे बारह वर्ष वन में बितावें और तदन्तर एक वर्ष का गुप्त वास करें।

शर्त के अनुसार पाण्डवों ने बारह वर्ष तो बन में काटे और उस के बाद वेश बदल कर बिराट नगर में एक वर्ष का गुप्त वास किया। इन दिनों भी कौरवों ने उनको हानि पहुँचाने में कुछ उठा न रक्खा।

बन से लौट कर पांचों भाई विचार करने लगे कि खोया हुआ राज्य किस भांति वापिस लिया जाय। निश्चित हुआ कि श्रीकृष्ण से परामर्श कर सन्धि की चेष्टा की जाय।

कृष्णजी बुलाये गये और उनसे राय ली गई तो उन्होंने भी सन्धि के लिये प्रयत्न करना ही ठीक समझा। पाण्डवों के प्रार्थना करने पर वे स्वयं जाने के लिए राजी भी हो गये।

जब द्रौपदी ने सुना कि कृष्ण कौरवों से सन्धि करने जा रहे हैं तो वह उनके पास आई और सजल नयन हो करुणा भरे शब्दों में अपनी बिखरी हुई अलकें दिखाती हुई बोली—"हे गोपाल, तुम कौरवों से सन्धि करने जाते तो हो परन्तु भरी सभा में दुष्ट दु:शासन द्वारा खेंचे गये मेरे इन मलिन मुक्त केशों की कथा न भूल जाना।" इन शब्दों ने कृष्ण पर जादू का काम किया। वे द्रौपदी को ढाढस बँधाते हुए इन्द्रप्रस्थ की ओर रवाना हुए।

इन्द्र प्रस्थ में कृष्णजी का बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ। उनका सन्धि सन्देश सुनने के लिए दरबार जुड़ा। दुर्योधन सकुटुम्ब उपस्थित था। कृष्णजी ने सभा को सम्बोधित कर सारी परिस्थिति समझाई और सन्धि की शर्तें पेश कीं। सब लोगों के समझाने पर भी दुर्योधन ने एक भी शर्त न मानी और सगर्व बोला—'राज्य तो क्या! एक सुई की नोंक के बराबर स्थान भी मैं पाण्डवों को न दूंगा।' कृष्ण को भी द्रौपदी के वाक्य याद थे। उन्होंने विशेष जोर न दिया। वे कौरवों को युद्ध के लिये तैयार रहने को कह कर वापिस चले आये।

दोनों ओर युद्ध के लिये प्रलय कारिणी तैयारियाँ होने लगीं। श्री कृष्ण ने अपने सखा अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार किया। कुरुक्षेत्र के वृहत् मैदान में दोनों दल अक्षौहिणी सेनाओं के साथ आ डटे। भयङ्कर युद्ध हुआ। पाण्डवों ने अपनी युद्ध कुशलता से संसार को चकित कर दिया। सारा कुरुक्षेत्र का मैदान रक्तावर्ण हो गया और लाशों से पट गया। बालक अभिमन्यु ने अर्जुन की अनुपस्थिति में गुरु द्रौण द्वारा रचित चक्रव्यूह अकेले ही तोड़कर अद्भुत पराक्रम दिखाया। गाण्डीवधारी अर्जुन ने बाण-वर्षा से चहुँ ओर हा हा कार मचा कर बैरियों के हृदय दहला दिये। भीम ने सती का अपमान करने वाले दुष्ट दुःशासन को रण-भूमि में मार कर और छाती फाड़ उसका गर्मागरम लहू पीकर अपनी पहली प्रतिज्ञा पूरी की। अन्त में रण से भाग कर जल में छिपे हुये दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारा। वह निःशस्त्र था। उसको भी एक गदा देकर भीम ने अद्भुत वीरता दिखाई और भरी सभा में द्रौपदी को दिखाई हुई उसकी बांई जाँघ तोड़ कर अपनी दूसरी प्रतिज्ञा भी पूरी की। इस प्रकार पाण्डवों ने अन्यायी और एक अबला का अपमान करने वाले कौरवों को मय साथियों के समूल नष्ट कर दिया। एक नारी अपमान के बदले खून की नदियाँ बहा दीं और कुरुक्षेत्र के मैदान को लाशों से पाट कर भारतवर्ष का इतिहास ही पलट दिया।

——:※:——

भाषाओं का उद्गम स्थान आगरा

[लेखक—श्री० पं० भागीरथप्रसाद जी दीक्षित, विशारद]

जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में भारतीय समाज का हृदय संयुक्त प्रदेश आगरा से सञ्चालित होता रहा है और सदियों से भारतवर्ष के नैतिक जीवन मरण का प्रश्न भी इसी क्षेत्र की समरस्थली में हल होकर देश के शासन का भाग्य विधाता बनता रहा है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओं के उद्गम का स्थान भी यही रहा है। भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न भाषाओं का रूपान्तर दृष्टि गोचर होता है। महाभारत से पूर्व जब दुष्ट दुर्योधन ने पाण्डवों को वरणावर्त स्थान के लाक्षा-गृह में भेजने का षड्यन्त्र रचा था तब विदुर महाराज ने देववाणी से भिन्न भाषा का प्रयोग करके पाण्डवों को उस लाक्षा-गृह के षडयन्त्र का अभिज्ञान करा दिया था। भारतवर्ष में भी भिन्न भिन्न स्थानीय भाषाओं में अधिक रूपान्तर हो गया था। यद्यपि उन भाषाओं को साहित्यिक रूप बुद्ध भगवान् की कृपा से ही प्राप्त हो सका था। प्रारम्भिक कालीन वेदों से ही हमें इस भाषा भेद का आभास मिलने लगता है। ऋग्वेद और अथर्व वेद की भाषा में भी अन्तर है। यही नहीं ऋग्वेद के ही प्रारम्भिक मण्डलों और अन्तिम मण्डलों में यह भाषा भेद स्पष्ट दिखाई देता है। संस्कृत और प्राकृत की भाँति वैदिक भाषा में भी एक ही विभक्ति के भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं। यही भाषा की विभिन्नता है। जरथुस्त की जेन्दावस्ता की भाषा वैदिक भाषा का ही विकृत रूप है। लैटिन भी संस्कृत से ही निकली हुई है, फाउण्टैन हैड आफ़ दी रिलीजन (धर्मों का मूल श्रोत) के रचयिता बा० गङ्गाप्रसादजी ने इसे अपने उक्त ग्रन्थ में बहुत ही अच्छी तरह प्रतिपादन किया है। संस्कृत में लाटी, गौड़ी, वैदर्भी और पाञ्चाली इत्यादि प्रभेदान्तर परक प्रणालियां यद्यपि प्रचलित थीं परन्तु इनमें मुख्य प्रणाली पाञ्चाली की थी और अधिकांश संस्कृत ग्रन्थ इसी संस्कृत में पाये जाते हैं। भास के नाटक तथा रघुवंश

इत्यादि कालिदास के काव्य और नाटक इसी प्रणाली के अनुसरण का फल है। पाञ्चाल प्रदेश की राजधानी कम्पिला आगरा कमिश्नरी में एक प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान है। जहाँ के विद्वानों के प्रभाव से पाञ्चाल को यह गौरव प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् संस्कृत का प्रभाव कुछ न्यून होने लगा। अथवा यह कहा जा सकता है कि प्राकृत भी संस्कृत के साथ-साथ विस्तार पाने लगी। प्राकृत में शौरसैनी, मागधी महाराष्ट्री इत्यादि कई प्रभेद हो गये। इन सबमें शौरसेनी मुख्य मानी जाती थी। उत्तरी भारत में इसी का दौर दौरा था। यद्यपि बुद्ध के प्रचार से मागधी का प्रभाव बढ़ गया था। परन्तु थोड़े ही दिनों पीछे मागधी को दबा कर शौरसेनी ने अपना प्रभाव बढ़ा लिया था। ग्रियर्सन महोदय भी इसी मत की पुष्टि करते हैं। उनका कथन है कि शौरसेनी नवागत आर्यों की भाषा थी और शौरसेनी ने मागधी के बीच में घुसकर मागधी को दो भागों में विभक्त कर दिया था। मागधी का केन्द्र केवल पूर्व की ओर रह गया और पश्चिम की भाषाओं पर से उसका प्रभाव हट गया।

इस शौरसेनी प्राकृत का मुख्य केन्द्र बटेश्वर (जिला आगरा) माना जाता है। बटेश्वर का प्राचीन नाम शौरसेनपुरी जो पीछे सोर्यपुर* और फिर बटेश्वर हो गया। अतः शौरसेनी का उद्गम बटेश्वर मानना युक्ति-युक्त ही है।

लैसन साहब का मत है कि कुरुओं की अपेक्षा पाञ्चाल लोग भारत में पहिले आकर बसे थे। यूरोपियन विद्वानों को इस आगमन धारा को चाहे इस रूप में भारतीय विद्वान न मानें और इस प्रकार के प्रभेद न भी पड़े हो परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भारत में विदेशी आक्रमणकारी (यवन) यूनानी, शक और हूण इत्यादि अवश्य इस देश में आये और यहीं बस गये। इसका प्रभाव हमारी भाषा पर भी पर्याप्त रूपेण पड़ा था।

---

* अब भी बटेश्वर के पास जैनियों का एक तीर्थ स्थान है जिसका नाम शौरीपुर है। —सम्पादक।

मध्य देशान्तरगत जो प्रदेश माने जाते हैं उनमें पाञ्चाल, कौशल आगरा, मथुरा इत्यादि हैं। यहां की वर्तमान भाषा हिन्दी अपनी समीप वर्ती भाषाओं की अपेक्षा कुछ विशेषता रखती है और इसो प्रान्त की प्राचीन शौरसेनी प्राकृत अन्य प्राकृतों की अपेक्षा संस्कृत से अधिक मिलती जुलती है। यही नहीं कुछ पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि साहित्यिक संस्कृत की उत्पत्ति ही शौरसेनी प्रान्त में हुई है। बौद्ध युग में बटेश्वर अधिक महत्वशाली नगर था और मेगस्थनीज़ ने अपने विवरण में इस बटेश्वर (क्लेखोबोरा) को भारत के ६ प्रसिद्ध नगरों में एक माना था।

शौरसेनी प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश रूप में दृष्टिगोचर होती है। हेमचन्द्र एक प्रसिद्ध व्याकरणकार हुए हैं। आपने अपने व्याकरण में स्पष्ट लिखा है कि गुजराती का विकास शौरसेनी से हुआ है। और मारवाड़ी इत्यादि बीच की भाषाओं का भी वही उद्गम मानना पड़ेगा। इसी अपभ्रंश शौरसेनी से ही खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों का विकास हुआ है। हेमचन्द्र के व्याकरण से कुछ उदाहरण देना यहाँ अनुपयुक्त न होगा—

जो जहँ होत उसो तहँ होतउ। सत्तु वि मित्तु वि कि हे विहु आवहु।
जहिं विहु तहि विहु भग्गे लोगा। एकए छिट्टिहि दोन्निविजो अज॥

यह हेमचन्द्र बारहवीं शताब्दी में हुए हैं। जिन लोगों को हिन्दी और गुजराती दोनों का ज्ञान है वे भली प्रकार समझ सकते हैं कि दोनों भाषायें आपस में कितनी समता रखती हैं।

अब एक उदाहरण श्रीकंठ रचित शार्ङ्गधर पद्धति से भी लीजिए, इसमें स्पष्ट खड़ी बोली का पुट दिया हुआ है—

नूनं बादल छाइ खेह पसरी निश्राण शब्दः खरः।
शत्रुं पाड़ि लुटालि तोड़ि हनिसौ एवं भणन्त्युद्भटः॥
झूठे गर्व भरा मघालि सहसा रेकन्त मेरे कहे।
कंठे पाग निवेश जाह शरणं श्री मल्लदेवं विभुम्॥

कुछ लोगों का कथन है कि खड़ी बोली मुसलमानों के प्रभाव से

बनी है—मूल है। शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रज भाषा का वर्तमान रूप अवि-र्भूत हुआ है यद्यपि यह विकाश क्रम इतना सूक्ष्म रूप धारण कर लेता है कि दोनों भाषाओं की भिन्नात्मिक सीमा बतलाना असम्भव ही है। वर्तमान हिन्दी का रूप प्रदान करने वाले अथवा उसे साहित्य में लाने वाले लल्लू जी लाल है जो आगरे निवासी थे। इनसे पहिले साहि-त्यिक रूप देने के विचार से किसी लेखक का कोई ग्रन्थ दृष्टि गोचर नहीं होता। उसी समय से खड़ी बोली का अधिक प्रशस्त रूप साहित्य में आने लगा। मियां नजीर अकबराबादी ने भी इस दृष्टि से साहित्य और भाषा की बड़ी सेवा की। आपकी कविता बड़ी टकसाली भाषा में होती है। सूरति मिश्र ने इसी आगरे की भूमि मे रह कर अपने ग्रन्थों की रचना कर साहित्य की अपूर्व वृद्धि की जिसके आधार पर अब लोग साहित्यज्ञ बनने का दावा करते हैं।

महात्मा सूरदास का निवास भी इसी जिले में गौघाट (रुनुकुता) पर था जो कि ब्रज भाषा के सब से बड़े आचार्य माने जाते हैं।

अतः हम सुगमता से खड़ी बोली और ब्रज भाषा के आदि मध्य और अन्त तक के विकास का अनुमान कर सकते हैं।*

छप्पय (!)

[अंग्रेजी से अनु०—श्री० ईश्वरलाल शर्मा 'रत्नाकर']

अनमापी बहु गुप्त गुफाएं हैं सागर में।
उत्तम अनुपम आबदार मुक्तामणि जिनमें॥
पैदा होते बहुत कुसुम हैं छिपे छिपे पर।
नष्ट करें अपना सौरभ वे बिजन भूमि पर॥
नर-रत्न बहुत से इस तरह, कहुं कोने में पड़ रहैं।
नहिं चमक दमक दिखला सकें, लाभ न जन उन से लहैं!

* आगरा नागरी प्रचारिणी सभा के वार्षिक अधिवेशन में पढ़ने के लिए यह लेख शीघ्रता में लिखा गया है, अतः विद्वत्समाज त्रुटियों के लिए क्षमा करें।—लेखक।

साहित्य परिचय

राष्ट्र भाषा हिन्दी के राष्ट्रीय सुकवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त का हिन्दी संसार में एक खास स्थान है। आपकी 'भारत भारती' ने देश में जितना उत्साह और जागृति पैदा की है वह किसी से छुपी हुई बात नहीं है। 'भारत भारती' के बाद आपके लिखे हुए 'जयद्रथबध' में काव्य की जैसी अनुपम छटा छिटकी है वह भी सर्वमान्य है। इनके अतिरिक्त और अनेकों उत्तमोत्तम पुस्तकें आपने लिखी हैं। इन पुस्तकों के प्रकाशित करने के लिये आपने निज स्थान चिरगांव (झांसी) में एक 'साहित्य सदन' नामक प्रकाशन संस्था भी खोल रक्खी है इस सदन से अब तक आपकी और अन्य सुलेखकों की दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यहाँ की कुछ पुस्तकें हमें कुछ दिन हुए समालोचनार्थ प्राप्त हुई थीं। नीचे उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

बक संहार—लेखक—श्री मैथिलीशरण जी गुप्त। पृष्ठ ५६, मूल्य ।≈)—इस पुस्तक में महाभारत के आधार पर भीम द्वारा बक राक्षस की मृत्यु का हाल है। सुन्दर कविता में पाण्डवों के बनवास, ब्राह्मण परिवार के शोक, कुन्ती के उपदेश, भीम की वीरता और बक के संहार का ऐसा रोचक वर्णन है कि पढ़ते ही बनता है।

बन वैभव—लेखक उपर्युक्त, पृष्ठ ५६, मूल्य ।≈)—यह पुस्तक भी महाभारत के आधार पर लिखी गई है। इसमें पाण्डवों के बनवास काल के उस भाग का वर्णन है जब दुर्योधनादि कौरव बन्धु पाण्डवों की दशा देखने मृगया के बहाने बन को गए थे और वहां गन्धर्व राज से युद्ध

कर उसके कैदी हो गए थे। तथा युधिष्ठिर की आज्ञा से जिन्हें अर्जुन ने गन्धर्वों को हरा कर मुक्त किया था। यह वर्णन भी बड़ा ही रोचक और उपदेश पूर्ण है। देखिए धर्मराज कहते हैं:—

"नहीं स्वत्वों का जिनको ध्यान, फेरता है वह विभु का दान।
और करता है निज अपमान, किन्तु हम हैं क्षत्री सन्तान।
करेंगे चाहे जितना त्याग, न छोड़ेंगे भय से निज भाग।"

कितनी निर्भयता और आत्म विश्वास प्रदर्शक पंक्तियां हैं। और देखिए:—

"करें यदि अन्य मनुज दुष्कर्म, तजें तो हम क्यों अपना धर्म?
धैर्य ही धर्म परीक्षा है, वही वीरों की दीक्षा है।"

सैरन्ध्री—लेखक वही, पृष्ठ वही, मूल्य वही और कथानक वही का। इसमें महाभारत के उस कथानक का वर्णन है जिसका सम्बन्ध द्रौपदी के सैरन्ध्री रूपी छद्मवेश से है। विराट राजा के यहां द्रौपदी किस प्रकार रहती थी, उस पर कीचक की कुदृष्टि पड़ने से कैसा क्या हुआ यही सब इस पुस्तक में वर्णित है। जब पापात्मा द्रौपदी से पापाचार करने का प्रस्ताव करता है तो द्रौपदी उसे कितना अच्छा उपदेश देती है:—

"अहो वीर बलवान, विषम विष की धारा से,
बोलो ऐसी बात न तुम मुझ पर-दारा से।
तुम जैसे ही बली कहीं अनरीति करेंगे,
तो क्या दुर्बल जीव धर्म का ध्यान धरेंगे!
इस कारण हे वीर, न तुम यों मुझे निहारो,
फणि-मणि पर निज कर न पसारो, मनको मारो।
प्रेम करूं मैं बन्धु, मुझे तुम बहन विचारो,—
पाप गर्त से बचो, पुण्य-पथ पर पद धारो।"

उपर्युक्त तीनो पुस्तके बड़ी ही मनोरञ्जक और हृदय हारिणी हैं। नीति की जो बातें बीच बीच में दी गई हैं—वे बड़ी उपदेश पूर्ण हैं। इन तीनों पुस्तकों की एक आवृत्ति संयुक्त भी 'त्रिपथगा' के नाम से प्रकाशित की गई है जिसका सुनहरी जिल्द सहित मूल्य १॥) है।

आर्द्रा—लेखक—श्री सियारामशरण जी गुप्त, पृष्ठ १४२, सजिल्द, मूल्य १)—प्रस्तुत पुस्तक में उसके लेखक की १३ कविताओं का संकलन किया गया है। कविताऐं बहुत ही मर्मस्पर्शिणी और भावुकता पूर्ण हैं। कविताओं पर छायावाद, मायावाद या हृदयवाद का प्रभाव है परन्तु उनमें से अधिकांश बोधगम्य हैं। बा० सियारामशरण जी बा० मैथिलीशरण जो के लघुभ्राता हैं और हिन्दी के यशस्वी कवि। आपकी इस पुस्तक का उचित आदर होना चाहिए।

शक्ति—लेखक—श्री मैथिलीशरण जी गुप्त, पृष्ठ २६, मूल्य ।) शक्ति में उस शक्ति की आराधना की गई है जिसके बल से देव और दानवों के युद्ध में दैत्यो की पराजय और देवों को विजय हुई थी। इस युद्ध का वर्णन इस पुस्तक में बड़े अच्छे ढँग से किया गया है। हमारा विश्वास है कि यदि भारतवासी इस पुस्तक का पारायण कर शक्ति सम्पन्न होकर देश द्रोहियों और अपने हित शत्रुओं का नाश करना चाहें तो सहज ही कर सकते है।

भारतेन्दु—सम्पादक—श्री ज्योतिप्रसाद जी मिश्र 'निर्मल', प्रकाशक—शिक्षासदन, कटारा-प्रयाग, आकार सरस्वती, मू० ५) वार्षिक।

'मनोरमा' का परित्यागन कर श्री 'निर्मल' जी ने 'भारतेन्दु' को जन्म दिया है। यह विशेष रूप से शिक्षा सम्बन्धी पत्र है। अभी प्रथम अङ्क ही प्रकाशित हुआ है। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' लोकोक्ति के अनुसार हम समझते हैं कि यह पत्र होनहार है। विद्यार्थियों के तो खास मतलब की चीज है। और लोगो के मनोरञ्जन की भी यथेष्ट सामिग्री है। चित्र भी कई हैं। हम निर्मल जी के इस नए उद्योग का सहर्ष स्वागत करते हैं।

नोट:—हमारे पास समालोचनार्थ और भी अनेक पुस्तकें आई हुई हैं। अगले अङ्क में उन सबका संक्षिप्त परिचय देने का उद्योग किया जायगा। प्रेसक महोदय विलम्ब के लिए क्षमा करें।

—सम्पादक।

विविध विषय

१—सायमन मसक लीला—

१२ अक्टूबर की आधी रात को श्री साइमन ने भारत की भूमि पर अपने चरण रक्खे, अतिथि प्रेमी भारतीय जनता ने "तृणानि भूमिरुदकं" के अनुसार काली झंडियों और "साइमन लौट जाओ" के बुलंद नारे से आपका स्वागत किया। उसी रात को आपने अविलंब पूना की यात्रा की जिसमें स्टेशन स्टेशन पर आपके स्वागत के वही पूर्व कथित मधुर राग गाए गए। बम्बई युवक संघ ने पूना स्टेशन पर आपके स्वागत के लिए काली झण्डियों के बन्दनवार लटकाए तथा बिजली की रोशनी से "साइमन लौट जाओ" का प्रदर्शन किया। इस प्रकार आप पूना आ पहुँचे। यहां भारतीय शंकरनकमेटी और बम्बइया मेम्बरों की कमेटी के साथ साइमन दल तिगुने से भी अधिक हो गया। खैर अब भारतियों के भाग्य निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। बम्बई सरकार का मैमोरेंडम जिसमें सम्भवतः प्रान्तीय शासन स्वतन्त्रता (Provincial Antonomy) की सिफ़ारिश और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की निन्दा की गई थी, साइमन साहब को देदिया गया। अब गवाहियां शुरू हुईं, सबसे पहले सरकारी गवाहों में मि० टर्नर आए। इन्होंने साम्प्रदायिक चुनाव की तो निन्दा की पर अन्य बातों से शासन-शाही की वृत्ति का ही परिचय दिया। दूसरे साहब एक मुसलमान थे। इन्हें प्रत्यक्ष गवाही देने में शर्म महसूस हुई अतः गुप चुप गवाही देकर मिस्टर टर्नर के 'साम्प्रदायिक चुनाव की निन्दा' की निन्दा करदी। अब गैर सरकारी गवाहों में जी हुजूर, सरकार माई बाप के उपासकों ने अपने दिलों के हौसले निकाले। दलितों की ओर से कहा गया "हुजूर ये हिन्दू हमें बहुत सताते हैं हमारी जाति तो इनसे अलग गिनी जाय हम आपकी शरण हैं।" भक्ति और प्रभु भक्ति का क्या ही अपूर्व उदाहरण है! किन्तु साथ में घृणा पतन और बेहयाई की भी हद है! इसी प्रकार सरदार दल और दूसरे मुसलमान दल ने भी अपना अपना दुखड़ा रोया और अपने पृथक चुनावों के अधिकारों की याचना की। इस प्रकार प्रति मेम्बर एक गवाह के हिसाब से गवाही लेकर यह गोरा कमीशन एण्ड

काला कमीशन दक्षिण प्रान्त से उत्तरी प्रान्त को रवाना हुआ। पंजाब की मौ-अतिवर हवा और सफेद कोह की तराई का वायुसेवन करने की लालसा से साइमन गाड़ी धड़ धड़ाती लाहौर पहुँची किन्तु मज़ा किरकिरा हो गया। पंजाब ने अपने पूर्व पाप का प्रायश्चित्त कर डाला। सरकार के हज़ारहा कोशिश करने पर भी शहर में १४४ दफ़ा तथा सभा आदि करने की मनाही करने पर भी कमीशन का ऐसा बहिष्कार हुआ कि साइमन साहब उसे जन्म भर न भूलेंगे। नौकरशाही ने अपनी खूब कोर कसर निकाली। पुलिस ने जुल्म करने की अपनी स्वाभाविक-वृत्ति का खूब ही परिचय दिया किन्तु पंजाब ने जिसने जलियाँ वाला बाग़, गुरु के बाग़ जैसी बीभत्स, अमानुषीय, पैशाचिक लीलाओं को देखा था उसी प्रकार वीरता और बहादुरी के साथ इस घाव को भी सहन किया। लाहौर के पश्चात् कमीशन ने दिल्ली के दर्शन किए पर वहाँ भी हड़ताल और बायकाट की विकट मार से वह बच न सका। दिल्ली से कमीशन आगरा आया। यहां उसके स्वागत की जैसी तैयारी थी उसे वह कभी भूल सकेगा, यह असंभव है। इतना बायकाट होते हुए भी कुछ जी हुज़ूर कमीशन के सामने गवाही देने पहुँच जाते हैं। यह देश का दुर्भाग्य है। पर ऐसे जयचन्दों का अभाव कभी नहीं हुआ यह सब जानते है।

२—पूर्ण स्वातन्त्र्य और उपनिवेशिक राज्य—

हाल ही दो राष्ट्रीय परिषदें हुई हैं। यू० पी० राजनैतिक कान्फ्रेन्स झांसी में हुई थी जिसके सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू थे। आपका भाषण बड़ा ही ओज पूर्ण और अग्नि वर्षा करने वाला था। पूर्ण स्वातन्त्र्य, आर्थिक और सामाजिक स्वाधीनता तथा समानता यही आपके ध्येय हैं। इस सम्मेलन में कई उपयोगी प्रस्ताव पास हुए जिनमें रानी लक्ष्मीबाई का स्मारक बनवाना नेहरू रिपोर्ट का समर्थन और किसान जांच कमेटी स्थापित करना विशेष महत्व के हैं। दूसरा सम्मेलन देहली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का हुआ। जिसमें पञ्जाब के दुर्व्यवहारों के प्रति घृणा प्रकट की गई और कांग्रेस की अन्य कार्यवाहियां हुईं। इन दोनों कान्फ्रेन्सों में जो मुख्य बात हुई वह भारत के लिए पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त करने की घोषणा है। मद्रास कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास कर चुकी थी किन्तु लखनऊ के सर्व दल सम्मेलन ने भारत का ध्येय औपनिवेशिक स्वराज्य ही रक्खा था। इससे भारत के राजनैतिक वायुमण्डल में कुछ विरोध की दूषित वायु चलने का अन्देशा होता था। पं० जवाहरलाल नेहरू ने पृथक "स्वातन्त्र्य भारत संघ" की स्थापना करली थी, पं० मालवीय, लाला लाजपत, डा० एनी-बिसेन्ट आदि औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में थे। कुछ दिनों तक इसका वाद

विवाद भी चला। झांसी सम्मेलन ने मद्रास कांग्रेस से भी एक कदम आगे बढ़ाया ब्रटिश सम्बन्ध-विच्छेद की घोषणा डङ्के की चोट करदी। संशोधकों का संशोधन बिलकुल गिर गया।

३-शोक प्रकाशन—

डा० केशवदेव शास्त्री की असामयिक मृत्यु से किसे मर्मान्तिक वेदना न हुई होगी। आप आर्यसमाज के मुख्य कार्यकर्त्ताओं में से थे। सार्वजनिक कार्यों में आप अधिक भाग लेते थे और देश के राष्ट्रीय प्रवाह के सर्वथा समर्थक थे। आपकी मृत्यु से हिन्दू समाज की एक बहुत बड़ी हानि हो गई है, हम शोक-संतप्त परिवार के साथ अपनी समवेदना प्रकट करते हैं और मृतक आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

भारत सरकार के कानूनी सदस्य श्री सतीरंजनदास की मृत्यु से भारत का एक कानूनी पण्डित खो गया। आप स्वर्गीय देशबन्धुदास के चचेरे भाई थे। सरकार की न्याय प्रियता और शासन में आपका विश्वास था। राजनैतिक क्षेत्र में इनसे हमारा गहरा मतभेद होते हुए भी इनकी दान-शीलता, उदार हृदयता आदि अन्यान्य गुणों के हम कायल हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मृत आत्मा को सद्गति दे।

४-सत्याग्रह आश्रम उद्यम-भवन बना—

महात्मा गांधी के सत्याग्रह आश्रम का रूपान्तर हो गया। इस आश्रम की स्थापना महात्मा गांधीजी ने देश के लिए सच्चे सेवक तैयार करने के उद्देश्य से की थी। जिनको अखंड ब्रह्मचर्य पालन करने, बिना मसाले के सादा भोजन और सादा आचरण, रखने की कैद थी। किन्तु महात्माजी ने अब सोचा कि आश्रम के लोगों में इन कठोर नियमों के पालन करने के लिए शक्ति नहीं है। इसका परिणाम यह होगा कि महात्माजी के जीवनकाल तक ऐसा नियम चल सकेगा, आगे नहीं। अतः एक कमेटी स्थापित हुई, जिसने रिपोर्ट दी है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य की कैद उठा दी जाय। लोग अपनी इच्छानुसार खान पान कर सकें। खद्दर और चर्खे का कार्य पूरी तरह चलता रहे। आश्रम का नाम उद्यम भवन रख दिया जाय। इसमें कार्य करने वालों को समान रूप से वेतन मिले, अर्थात् वेतन का हिसाब कार्य के परिमाण से हो। भिन्न भिन्न कार्यों की दरें सब समान हों। इसके लिए एक कमेटी बन गई है। जिसके प्रधान महादेव देसाई हैं। महात्माजी प्रबन्ध से पृथक् हो गए हैं। हां, कमेटी को अपना परामर्श देते रहेंगे। हम समझते हैं कि आश्रम की इस कायापलट से देश का भला ही होगा। —रमेश वर्म्मा।

५—लाला जी पर प्रहार—

लाहौर में जिस समय सायमन कमीशन पहुँचा था, उसके बायकाट के लिए हज़ारों देशवासी काले झंडे लेकर स्टेशन पर पहुँचे थे। सब से आगे पञ्जाब के शेर वयोवृद्ध लाला लाजपतराय थे। आप भीड़ को शान्त रखने की चेष्टा कर रहे थे कि पुलिस के निर्दय हाथों से आप को तथा आपके साथी अनेक नेताओं तथा इतर लोगों को लाठियों का प्रहार सहना पड़ा। लालाजी ने उस समय बड़ी दृढ़ता से इस प्रहार को सहन किया और उत्तेजित जनताको शान्त रखकर खूनखराबी न होनेदी। परन्तु यह प्रहार लाला जी के हृदय पर वज्र का प्रहार साबित हुआ। ३० अक्टूबर को यह घटना हुई थी, १७ नवम्बर को उसी प्रहार के प्रभाव से हृदय की गति रुक जाने पर आपका प्राणान्त हो गया।

पुलिस के इस प्रहार से देश का तो एक रत्न उठ गया पर नौकरशाही की अन्त्येष्टि का भी दिन निकटतर हो गया। वास्तव में यह लाठियां लाला जी के शरीर पर नहीं पड़ी थीं, वे पड़ी थी वृद्धा भारत माता की छाती पर और भारत माता का कोई सपूत उन्हें तब तक नहीं भूल सकता जब तक उसके मारने वाली नौकरशाही का वह अन्त नहीं कर देता। लाला जी के शब्दों में तो यह एक एक लाठी सरकार के जनाजे में एक एक कील का काम देगी।

लाला जी की मृत्यु पर हमें जरा भी शोक नहीं है। वे जब तक जिए देश के लिए जिए—जब मरे तो देश के लिए मरे, छाती पर प्रहार खाकर रण क्षेत्र में मरे। उनकी सी मृत्यु और उनका सा जीवन पाना प्रत्येक देशहितैषी नवयुवक के लिए आदर्श है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि दस पांच वर्ष लाला जी और बैठे रहते तो उनसे देश का बहुत कुछ हित होता। इसमें भी सन्देह नहीं है कि आज उनका स्थान लेने वाला दूसरा व्यक्ति देश में नहीं है। परन्तु जिस प्रकार आदर्श के लिए कर्त्तव्य क्षेत्र में डटे रह कर उन्होंने अपने प्राण छोड़े हैं और जिन परिस्थितियों में यह सब घटना घटी है उससे देश को जो लाभ हुआ है,

नवयुवकों में जो उत्साह फैला है, देश में तिरस्कार, रोष और क्रान्ति के जो भाव पैदा हुए हैं वे किसी प्रकार भी कम नहीं हैं। हम समझते हैं कि लाला जी की कुर्बानी देश में वह रंग लाएगी जिससे निरंकुशता, नृशंसता और अत्याचार का समूल नाश होगा और देश स्वतन्त्रता की सुखद समीर की हिलोरों से शीघ्र ही सुवासित हो जायगा।

लाला जी के विषय में क्या लिखा जाय! वे वे ही थे। पूर्ण राजनीतिज्ञ तो वे थे ही, साथ ही वे बड़े भारी पंडित, बड़े स्पष्ट वक्ता, बड़े उदार दानी, बड़े निस्पृह सेवक, बड़े ऊंचे समाज सुधारक और बड़े उद्भट लेखक थे। उनकी समता का दूसरा व्यक्ति इस समय देश में नहीं है। उनके गुण वर्णन किए जायँ तो पुस्तक तैयार हो जाय। उनकी सेवाओं का उल्लेख किया जाय तो पोथा बन जाय। उनकी कठिनाइयां और कष्टों को लिखा जाय तो कलम थर्रा जाय। शिक्षा-समाज, धर्म-राजनीति, शिल्प-साहित्य सभी ओर लाला जी ने जितना अधिक काम किया है उतना काम दूसरा एक व्यक्ति कौन कर सकता है? सचमुच यदि भारत आज़ाद होता तो लाला लाजपतराय आज न मालूम किस उच्चतम पद पर सुशोभित होते! देश के सम्राट् होने की योग्यता रखने वाला देश सेवक आज पराधीन भारत में पैदा होने के कारण देश निकाला पाता है, जेल में ठूसा जाता है और मामूली सिपाहियों के हाथ से लाठियाँ खाता है। क्या सन्देह है यदि यही अपमानकारी भावना लाला जी की हृदय की गति रोकने की कारण हुई हो। यदि ऐसा है तो भारतवासी कब तक पराधीन रहेंगे? वे कब तक अपने हृदय सम्राटों को इस प्रकार अपमानित होते देखेंगे? किस दिन की प्रतीक्षा में वे अपने उमड़े हुए जोश को रोके रहेंगे? क्या भारतीय नवयुवक इन प्रश्नों का उत्तर देंगे?

६—आचार्य द्विवेदी जी रुग्ण—

आधुनिक हिन्दी साहित्य संसार के सूर्य, आचार्य श्री पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी इधर कई वर्ष से कमजोर और बीमार हो रहे हैं।

बीच में वे कुछ स्वस्थ हो गए थे पर हाल ही में उनका जो पत्र हमें मिला है उससे विदित होता है कि वे फिर से अधिक रुग्ण हैं और चिकित्सकों ने उनसे किसी को मिलने देने तक की मनाही कर रक्खी है। सुना था कि सहृदय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी उनसे मिलने गए थे पर इसी कारण वे मिल न सके। ऐसी अवस्था में प्रत्येक हिन्दी हितैषी का कर्त्तव्य है कि परमपिता परमात्मा से विशेषरूप से प्रार्थना करे कि आचार्य महोदय को शीघ्रतर आरोग्य लाभ हो और उनकी इस वृद्धावस्था में उन्हें शान्ति मिले। आचार्य द्विवेदी जी जितने दिन तक साहित्य संसार में बैठे रह कर साहित्य सेवियों को पथ प्रदर्शन कराते रहे उतना ही हम लोगों का सौभाग्य समझना चाहिए।

७—भरतपुर का भाग्य—

संगति का मनुष्य के जीवन पर कितना प्रभाव पड़ता है यह किसी से छिपा नहीं है। भरतपुर नरेश श्री कृष्णसिंह जी महाराज हृदय के बड़े सज्जन, सहृदय और जन-सेवी व्यक्ति थे। किन्तु संगति के प्रभाव से उन्हें आज कैसा दिन देखना पड़ रहा है यह समाचार पत्र पाठकों से अविदित नहीं है। भरतपुर के नरेश वे अब भी हैं, पर नाममात्र को। अधिकार उन्हें इतना भी नहीं कि भरतपुर की सीमा में पैर भी रख सकें। ऐसी ही परिस्थिति में रह कर महाराज ने सरकार को पत्र दिया था कि जब मुझे प्रजा की सेवा करने अथवा शासन करने का कोई अधिकार ही नहीं तब मैं उसकी दी हुई राज्य आय से एक पैसा भी लेने का हक़दार नहीं हूं। और मैं दूकान करके अथवा महनत मजदूरी करके अपना पेट पाला करूंगा पर राज्य कोष से दी हुई पैंशन के रूप में सरकार से एक पैसा भी न लूंगा। महाराज के इस सद्भावना पूरित विचारों के लिए हम उनकी जितनी प्रशंसा करें—कम होगी। हमें प्रसन्नता है कि दुर्दशा प्राप्त करके आपकी बुद्धि मलिन होने के स्थान में विकसित हुई। क्या ही अच्छा होता यदि महाराज की बुद्धि का यह विकास दो साल पहिले हो गया होता! उस समय यदि वे अपने संगी-

साथियों से अपना पीछा छुड़ा लेते तो आज उन्हें यह दिन न देखना पड़ता। और न भरतपुर की प्रजा को ही अंग्रेज दीवान के शासन का शिकार बनना पड़ता। भरतपुर से सबक़ सीख कर अब भी यदि अन्य भारतीय नरेश अपना रहन सहन सुधार लें तो अच्छा है अन्यथा एक न एक दिन उन्हें भी ऐसे ही दुर्दिन देखने पड़ेंगे—यह सत्य, ध्रुव सत्य है।

८–क़लम से या तलवार से—

लाहौर में एक मूर्ति के नीचे अङ्गरेजी मे लिखा था 'भारतवासी क़लम से नहीं तलवार से जीते गए हैं।' इन शब्दों को अपमान जनक समझ कर उस लेख को हटाने के सम्बन्ध में कुछ दिन हुए बड़ा आन्दोलन हुआ था। आन्दोलन के फल स्वरूप सरकार ने उस लेख को कुछ बदलवा दिया है। अब वहां लिखा है कि 'भारतवासी क़लम से शासित होना चाहते हैं या तलवार से।' इसी लेख को ध्यान में रखते हुए भारत कोकिल श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अमेरिका में एक व्याख्यान देते हुए हाल ही में कहा है कि भारतीय सरकार हमसे क़लम के द्वारा समझौता करेगी या तलवार के द्वारा। हम भी लाला लाजपत राय की कुर्बानी के बाद ब्रिटिश सरकार से यह स्पष्ट पूछना चाहते हैं कि सरकार भारत को स्वाधीन बनाने के लिए तैयार है या नहीं है? यदि वह चाहे तो जब तक क़लम से काम लिया जा रहा है, तब तक भारतवर्ष को स्वाधीन बनादे; अन्यथा लाचार होकर भारतवर्ष को स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए तलवार उठानी पड़ेगी और उसकी जिम्मेदारी सरकार के हाथ होगी। इसमें कोई शक़ नहीं कि आज भारतवर्ष के पास तलवार भी नहीं है! परन्तु सरकार यह ध्यान रक्खे कि भारतवासी जब अपनी पर आ जावेंगे तब सरोजिनी देवी के शब्दों में वह अपनी हड्डियों को तलवार बना कर ऐसी मार मारेंगे कि जिसके सम्मुख संसार की कोई शक्ति ठहर न सकेगी।

९–अफ़ग़ानिस्तान में सुधार—

अमीर अफ़ग़ानिस्तान के यूरोप से लौटने के पश्चात् वहां एक प्रकार से क्रान्ति हो रही है। शिक्षा, समाज और सरकार के हर एक

अङ्क में अमीर अमानुल्लाह अब महत्वपूर्ण परिवर्तन कर रहे हैं। वहां जो परिवर्तन इस समय हो रहे हैं वे तलवार के ज़ोर से हो रहे हैं। ऐसे ऐसे मामले भी जिनमें बड़ा भारी विरोध है वहां प्रचलित किये जा रहे हैं और जो मुल्ला उनका विरोध करने का साहस करते हैं वे मौत का रास्ता देखते हैं। अफ़गानिस्तान के इस परिवर्तन काल की ओर भारत के मुसलमान देख रहे हैं या नहीं—यह हमें पता नहीं पर यदि वे उससे परिचित हो जांय तो भारत का बड़ा भला हो। उनकी तङ्ग दिली, उनकी स्वार्थ भावना, उनका दक़ियानुसीपन सब शीघ्र ही मिट जाय। परन्तु, क्या ऐसा होगा? होगा, पर अभी उसमें विलम्ब है।

१०—चाँद का फाँसी अङ्क—

मासिक पत्रों के लिए विशेषाङ्क निकालना तो पुरानी बात पड़ गई है, परन्तु विशेष विषयों पर विशेषाङ्क निकालने की चाल नई है। और इस दृष्टि से 'चांद' का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। हाल ही में चांद का फांसी अङ्क निकला है। इसका सम्पादन श्री चतुरसेन जी शास्त्री ने किया है। सचमुच फांसी अङ्क हिन्दी साहित्य में एक क्रांतिकारी प्रयत्न है। इसके कविता, चित्र और लेख रोमाञ्चकारी हृदय को दहलाने वाले और देश-भक्ति से भरे हुए हैं। सम्पादन की सफलता के लिए सम्पादक और प्रकाशक सचमुच बधाई के पात्र हैं। इस अङ्क को देख कर जहां एक ओर फांसी की अमानुषीय प्रथा की ओर से हार्दिक घृणा पैदा होती है वहीं दूसरी ओर हिन्दी साहित्य में ऐसी बढ़िया चीज पाकर हृदय गद्गद हो जाता है।

इस अङ्क के लिए शास्त्री जी और सहगल जी को पुनः बधाई देकर हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे इस अङ्क को एक बार अवश्य देखें। चांद कार्यालय, प्रयाग से यह अङ्क २) में मिलेगा।

VEER SANDESH Regd. No. A 1630

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार-आगरा।

Regd. No. A 1630

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ } कार्तिक सं० १९८५, नवम्बर १९२८ { अङ्क ११

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २) एक अङ्क का मू० ≡)

विषय-सूची

वीर-सन्देश —



भारतीयों के सच्चे हितैषी, महात्मा जी के अनन्य भक्त

दीनबन्धु एण्ड्रूज

महावीर प्रेस, आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(वीर-रस-प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिससे फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग २ } आगरा—कार्तिक सं० १९८५, नवम्बर १९२८ { अङ्क ११

जलता जीवन

[लेखक—श्री० जगन्नाथप्रसादजी "मिलिन्द"]

गूंज उठा है विश्व-विपंचो के स्वर में "बलिदान" !
अये विलासों को मधु-वीणा ! रोको कोमल तान !
सरस सांस ! मत बाधा दो ! बहने दो अब उच्छ्वास !
बहुत बंधा हूँ, और न बांधो मुझे प्रणय के पाश !
अन्तर्ज्वाला में पाता हूँ किसी चित्र का रंग !
पीड़ित को न दिखाओ अपने मोहक चित्र अनंग !
तन्मयता मत भंग करो, ऐ मोह, न रोको पागलपन !
किसी जलन में लय होने दो मेरा यह जलता जोवन।

वीर-रस और उद्भट रचना

[लेखक—श्री० किशोरीदास जी वाजपेयी]

युद्ध-वीर रस में विशेषतः युद्धादि वर्णन में उद्भट रचना उत्कर्षाधायक होती है। ऐसी रचना के लिए कठोर वर्णों का प्रयोग किया जाता है। टवर्ग तथा संयुक्त आदि अक्षर श्रवण-भीषण हैं। विशेषतः इन्हीं का प्रयोग ऐसे स्थलों में अच्छा समझा गया है। परन्तु यह अनिवार्य्य नहीं है। यदि हो तो अच्छा है।

गोस्वामी श्री तुलसीदास आदि कुछ महा कवियों को छोड़ और हमारी भाषा हिन्दी के अधिकांश पुराने कवि ऐसे हैं, जिन्होंने इस विषय में बिल्कुल अन्धाधुन्ध की है! उन्होंने शब्दों को ख़ूब तोड़ा-मरोड़ा है और बिगाड़ा है, इस लिए कि उनमें श्रवण-कटुता आ जाय और रसकी पुष्टि हो जाय। परन्तु यह काम उन्हों ने जिस आशा से किया, वह पूर्ण न हो सकी। ऐसी जगह रस का उत्कर्ष नहीं, अपकर्ष होता है, जहां कोई दोष आ जाय। और, इन कवियों की ऐसी रचनाएँ 'च्युतिसंस्कारता' तथा 'अप्रयुक्तता' आदि दोषों से बेतरह जकड़ गयी हैं। कविवर श्री भिखारीदास का युद्ध वर्णन देखिये:—

"क्रुद्ध दसानन बीस भुजानि सों,
लै कपि रिच्छ अनी सर वट्टत।
लच्छन तच्छन रत्त किये,
दृग लच्छ विपच्छन के सिर कट्टत॥
मारु पछारु पुकारु दुहूँ दल,
रुण्ड झपट्टि डपट्टि लपट्टत।
रुण्ड लरैं भट मत्थनि लुट्टत,
जोगिनि खप्पर ठट्टनि ठट्टत॥"

देखिए, रेखांकित पद किस निर्दयता से बिगाड़े गये हैं, रस-पुष्टि

के लोभ से! परन्तु वह कहां? वस्तुतः ये भ्रष्ट पद कवि के वर्णना-दारिद्र्य के सूचक हैं। यहां रस पुष्ट नहीं, बिलकुल शिथिल हो गया है।

जहां अक्षरों का स्वाभाविक स्वरूप नष्ट न हो और श्रुति-कटुत्व आजाय, वहीं ऐसे वर्णों की उपादेयता है; जैसे:—

"सोहै अत्र ओढ़े जे न छोड़े सीस संगर की,
　　लंगर लंगूर उच्च ओज के अतंका में।
कहै 'पद्माकर' त्यों हुँकरत फुंकरत,
　　फैलत फलात फाल बांधत फलंका में॥
आगे रघुवीर के समीर के तनय के संग,
　　तारी दै तड़ाक तड़ा तड़ के तमंका में।
शंका दै दसानन को हंका दै सुबंका वीर,
　　डंका दै विजय को वीर कूदि गयो लंका मे॥"

इस पद्माकर के पद्य में 'तड़ाक तड़ातड़ के' और 'डंका' आदि पदो मे वह ओज है। यहां रचना में औद्धत्य लानेके लिए व्यर्थ ही किसी शब्द को संयुक्त अक्षरो से मनगढ़न्त तरीके से नहीं बनाया गया है। सब पद स्वाभाविक अपने रूप मे हैं। परन्तु एक कसर यहां भी है— कई अनावश्यक पदों को बीच मे ठूंस दिया गया है, सिर्फ इसी लिए कि रचना उद्धत हो जाय! यह भी दोष है।

यहां गोस्वामी जी के युद्ध-वर्णन का ढंग भी देख लेना बड़ा अच्छा है। अवश्य ही उस से शिक्षा मिलेगी। देखिए:—

"भये क्रुद्ध युद्ध विरुद्ध रघुपति तूण सायक कसमसे,
कोदण्ड ध्वनि अति चण्ड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे।
मन्दोदरी उर कम्प कम्पित कमठ भू भूधर त्रसे,
चिक्करहि दिग्गज दसन गहि यहि देखि कौतुक सुर हँसे॥

यह पद्य कैसा जानदार है। रचना सुन्दर है। टवर्ग भी है और संयुक्ताक्षर भी। परन्तु कहीं किसी को तोड़ मरोड़ कर वैसा बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। सब स्वाभाविक है और देखिए:—

"'कहँ राम' कहि सिर-निकर धावहिं,
देखि मर्कट भजि चले।
सन्धानि धनु रघुवंशमणि,
हँसि सरनि सिर बेधे भले॥
सिर मालिका गहि कालिका,
तहँ वृन्द वृन्दनि बटु मिलीं।
करि रुधिर सरि मज्जन मनहुँ,
संग्राम बट पूजन चलीं॥"

एक और:—

"जनु राहु केतु अनेक नभ पथ,
स्रवन सोणित धावहीं।
रघुवीर तीर प्रचण्ड लागहिं,
भूमि गिरन न पावहीं॥
इक एक शर सिर निकर छेदे,
नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ,
तहँ बिधुन्तुद पोहहीं॥"

रचना रुचिर है। वर्ण-विन्यास बढ़िया है। पद्य बहुत सुन्दर है। उत्प्रेक्षालंकार ने तो रंग ला दिया है! वाह! रघुवीर के प्रचण्ड बाण (रावण के सिरों में) लगते हैं। वे धड़से कट जाते हैं; पर पृथ्वी पर गिरने नहीं पाते; क्योंकि इधर से दूसरे बाण जो छूटते हैं; वे जाकर उन्हें छेद कर ऊपर ही उड़ा ले जाते हैं। ऐसा मालूम होता है कि मानो सूर्य्य ने क्रोध में आकर अपनी किरणों के समूह से जहां वहां राहु को छेद कर पिरो रक्खा है!

युद्ध का वर्णन ऐसा होना चाहिये।

पुराने कवियों को बात जाने दीजिए। आजकल के भी कुछ कवि, जो वीर-रस की कविता करने लगे हैं, श्री शिवाजी और औरंगजेब

अथवा श्री प्रताप और अकबर आदि के युद्ध का वर्णन करते हुए वही दूषित प्रथा स्वीकार करते हैं ! उसी प्रकार शब्दों को तोड़ मरोड़ कर श्रुतिकटुता लाने की चेष्टा करते हैं ! यह उनका कार्य्य साहित्य की दृष्टि से बिलकुल भद्दा है अतएव ऐसा न करना चाहिए।

सम्भव है, ऐसा करने वाले हिन्दी कवि इस विषय में 'पृथ्वीराज' रासो को आदर्श मान कर चलते हों; क्योंकि उसमें भी इसी प्रकार का वर्ण-विन्यास है। परन्तु यह उनकी भूल है। इस विषय में वे उसकी नकल कर के अपनी हँसी करायेंगे। इसका कारण यह है कि रासो जिस समय की जिस बोली (डिंगल) मे लिखा गया है, उसमें वे शब्द वैसे ही बोले जाते थे। उन्हें उसी स्वाभाविक रूप में कवि ने लिखा है। परन्तु आप कविता करते हैं शुद्ध खड़ी बोली या ब्रजभाषा में। अतएव इस विषय में रासो आदि की नकल न करके औचित्य का ध्यान रखना चाहिए। युद्धादि के वर्णन में संयुक्त तथा टवर्गादि-घटित अक्षरों के लाने की चेष्टा जरूर कीजिए, पर स्वाभाविक रूप में; बिगाड़ कर नहीं। तभी रस का परिपोष होगा।

पग न हटायेंगे

[लेखक—कल्याण कुमार जैन "शशि" रामपुर स्टेट]

दुर्गम पथ से नहीं डरेंगे पग हित हेतु बढ़ायेंगे।
नहीं डरेंगे हम घातों से पथ पर बढ़ते जायेंगे ॥ १ ॥

हो स्वतंत्र भारत दुष्टों से निज भुजबल दर्शायेंगे।
विजयी बनकर भू-मण्डल पर अतुल वीर कहलायेंगे ॥२॥

भारत की स्वतंत्र वेदी पर बार बार बलि जायेंगे।
बलि वेदी पर प्राणाहुतियां हंस २ सभी चढ़ायेंगे ॥३॥

मरजायेंगे कट जायें बलिदान यदपि हो जायेंगे।
पर कायर की भांति भूलकर पीछे "पग न हटायेंगे" ॥४॥

जौहरा बाई

[लेखक—श्री चक्खनलाल जी गर्ग बी० ए०, एल० टी०]

प्रातःकाल का समय था, सूर्य ने अभी अपनी आभा से चित्तौड़ के आस पास की भूमि पर अपना अधिकार नहीं जमाया था। शीतकाल के कारण लोगों को अपनी चारपाई पर से उठने का साहस नहीं होता था। परन्तु जिनको अपने देश की धुन सवार है उनको क्या जाड़ा और क्या गर्मी ? राना सांगा क्या अपने जीते जी देख सकते थे कि उनकी प्यारी मातृ भूमि पर यवन लोग शासन करें ? उन्होंने अपने आस पास के पठानों को तो कभी का मार कर छोड़ दिया था, परन्तु जब से बाबर ने देहली पर अपना अधिकार कर लिया था तब से दिन रात उनको एक ही चिन्ता थी और एक ही विचार—कि किस प्रकार बाबर को युद्ध मे परास्त करें और मुग़लों को जमी हुई जड़ को उखाड़ें ? इसीलिये वह इस जाड़े पाले में भी अपने घोड़े पर सवार होकर अपने राज्य के सरदार के पास युद्ध के लिये परामर्श करने जा रहे थे।

जहां देशभक्त होते हैं, वहां कुछ देशद्रोही भी हुआ करते हैं, जो अपने तनिक से स्वार्थ के लिये नीच कार्य करने को उतारू हो जाते हैं। जहां राना सांगा के कुछ भक्त ऐसे थे जो उनके एक पसीने की बूंद गिरने पर अपना रक्त बहा देने को तय्यार थे, वहां कुछ लोग उनसे अप्रसन्न भी थे कि उनके कारण लड़ाइयों से तनिक भी छुट्टी नहीं पाते थे। इसलिये वे लोग राना सांगा का अन्त ही कर देना चाहते थे।

राना अपनी धुन में मस्त घोड़े पर चले जा रहे थे। अपने ध्यान में इतने डूबे हुए थे कि उन्होंने पहाड़ी की आड़ मे खड़े हुए चार मनुष्यों को भी न देखा। वह तो अच्छा हुआ जो घोड़े को सामने पड़े हुए पत्थर से ठोकर लग गई और राना का ध्यान टूट गया। राना का ध्यान तो टूटा साथ ही उनका घोड़ा पछाड़ खाकर गिर पड़ा। फिर क्या

था ? चारों मनुष्य तो इस अवसर की ताक ही में थे, अपनी २ तलवारें खींचकर राना के ऊपर झपटे।

राना जी इसके लिये तय्यार न थे। कुछ क्षण तक तो यही न समझ सके कि बात क्या है, कि इतने ही में एक मनुष्य ने इनकी गर्दन पर वार किया। गर्दन का वार बचाकर राना उछले और अपनी तलवार से उस मनुष्य का सिर धड़ से अलग कर दिया। वे उस मनुष्य पर वार कर रहे थे कि तीनों फिर एक साथ झपटे। राना अब बड़ी कठिनाई में पड़ गये। उन्होंने समझ लिया कि आज यहां से सुरक्षित जाना बड़ा कठिन है, ईश्वर का स्मरण किया और तीनों का वार बचाने लगे।

पर वे तीन थे और यह एक। और तीन भी कैसे? उनके ही सर्दार के भेजे हुए राजपूत। आखिर कब तक उनका वार बचाते। शरीर पर कई घाव हो गये थे, उनसे बराबर रक्त जारी था। अन्त को थक गये और गिरने ही वाले थे कि सहसा उन्होंने सुना 'ठहरो' और वे ज़मीन पर बेहोश गिर पड़े।

\+ + + +

जब राना को चेत हुआ तो अपने को एक फूंस की झोंपड़ी में पड़े पाया। उनके सिरहाने एक युवती बैठी हुई थी। राना उसके तेजमय मुख को देखकर समझ गये कि यह एक स्त्री रत्न है। उनको यह भी स्मरण हो आया कि तीन राक्षसों से बचाने वाली यही महिला है। उन्होंने उसी समय प्रण कर लिया कि इस स्त्री रत्न से अपने कुल को अवश्य सुशोभित करूंगा। थोड़ी देर में उस लड़की का पिता भी उनके पास आ पहुँचा। उसने जब राना का विचार सुना तो अत्यन्त प्रसन्न हुआ। भला कौनसा राजपूत था जो चित्तौर से सम्बन्ध करने में अपना गौरव न समझता हो। थोड़े ही दिनों में जौहरा बाई का विवाह राना सांगा के पुत्र विक्रमाजीत से हो गया।

\+ + + +

सारे चित्तौड़ को जौहरा बाई पर गर्व था और जौहरा बाई को चित्तौड़ पर। जब छोटी सी बालिका ही थी, तभी से वह चित्तौड़ के वीरों की कहानियां सुना करती थी। उन कहानियों को सुन कर उसको रोमाञ्च हो जाया करता और चित्तौड़ की रानी बनने का स्वप्न देखा करती। फिर जब उसे इच्छित फल मिल गया तो क्यों न प्रसन्न होती?

उसकी वीरता की कहानी नगर के बच्चे २ को मालूम हो गई थी। राना सांगा के जीवन की ज्योति असमय म ही बुझ जाती यदि जौहरा बाई ठीक समय पर उनको सहायता को नहीं पहुँचती। यही कारण था, जहां सब लोगों को उसने अपने उपकार से मोल ले लिया था वहां अपनी वीरता से मुग्ध कर रक्खा था।

परन्तु एक मनुष्य जौहरा बाई के गुणों से प्रसन्न न था। वह था उसका पति विक्रमाजीतसिंह। महाराना सांगा अपनी पतोहू की वीरता और गुणों पर मुग्ध थे, वहां विक्रमाजीतसिंह इन्हीं गुणों से उसका आदर नहीं करता था। जो जौहरी होता है वही रत्नों के मोल को जानता है। जो स्वयं अयोग्य है वह दूसरों की योग्यता को क्या जाने? विक्रमाजीतसिंह अयोग्य ही न था बल्कि गर्विस्ट भी था। इसीलिये उस से राज्य के सारे सर्दार अप्रसन्न थे और इसीलिये जौहरा बाई को एक ओर यदि प्रसन्नता थी तो दूसरी ओर ऐसे मनुष्य की पत्नी बनने मे दुःख भी था।

बहुत जल्दी एक ऐसी बात और भी हो गई जिस से जौहरा बाई की तबियत और भी खट्टी हो गई। वह थी विक्रमाजीतसिंह के बड़े भाई की मृत्यु। राना रत्न सांगा को तरह वीर था और उदार भी। उसके समय मे प्रजा उसके पिता को भूलने लगी थी। स्त्रियों की हँसी हँसी में राना और उसका साला एक दूसरे के वैरी हो गये और एक दूसरे को जान लेकर ही पीछा छोड़ा। जब राना रत्न की मृत्यु का समाचार विक्रमाजीतसिंह ने सुना तो बड़ा प्रसन्न हुआ। उस प्रसन्नता की मात्रा इतनी अधिक थी कि वह जौहरा बाई से उसको न छिपा सका। जौहरा

बाई को जब उसके पति ने चित्तौड़ की महारानी बनने के लिये बधाई दी तो उसने इतना ही कहा, 'प्रसन्नता की बात तब है जब आप अपने बड़े भाई की तरह देश का कल्याण करें।'

यद्यपि जौहरा बाई की अन्तरात्मा इस सम्बन्ध से प्रसन्न न थी, तब भी यह बात न थी कि वह अपने पति की सेवा से मुंह मोड़ती हो। क्या एक हिन्दू स्त्री इस बात को नहीं जानती कि विवाह सम्बन्ध केवल सुख भोगने ही के लिये नहीं है, वरन उसका असली धेय यह है कि उस से सारे समाज की सुख वृद्धि हो। इसके लिये उसे यदि अपने को बलिदान भी करना पड़े तो उस से मुंह नहीं मोड़ती। यही कारण है कि हमको भारतीय इतिहास मे हिन्दू ललनाओं के ऐसे रोमाञ्चकारी उदाहरण मिलते हैं जो सारे संसार मे नहीं मिलते।

\+ \+ \+ \+

विक्रमाजीतसिंह को राना हुये अधिक दिन नहीं हुए थे कि उस के बैरियों की बन आई। जो पठान राना साँगा और राना रत्न के भय के मारे थर-थर काँपते थे। वे ही विक्रमाजीतसिंह को निर्बल जानकर उसके ऊपर आ टूटे! विक्रमाजीतसिंह के पिता की उदारता ही बेटे के लिए काँटा हो गई। यदि उसी समय बैरी की जड़ कट जाती तो विक्रमाजीत सिंह को यह दिन न देखने पड़ते। सारे सरदार उनसे पहिले ही अप्रसन्न थे, जब राना ने उनसे सहायता माँगी तो उन्होने कह दिया, अपने 'पायकों' को ले जाओ।

परन्तु पैदल सिपाही पठानो की शिक्षित फौज के सामने कब तक खड़े रह सकते थे, मैदानसे भाग खड़े हुये। विक्रमाजीतसिंह चित्तौड़ छोड़ भाग गया और अपनी माता बहिनों और स्त्री को बैरी की कृपा पर छोड़ गया।

अब राजपूत स्त्रियों को अपनी मान रक्षा का एक ही उपाय रह गया वह था जौहर व्रत का करना। क्योंकि मुसलमानों से यह आशा स्वप्न में भी नहीं की जा सकती कि वे पराई स्त्रियों का मान भङ्ग न करें

जौहराबाई के सामने भी जब यह प्रश्न आया तो उसने ऐसे विचार को कायरता के सिवा कुछ न कहा। वह वीराङ्गना थी। इसलिए रण में मर जाने की अपेक्षा अग्नि में जलना उसको भला न लगता था। उसने अन्य स्त्रियों से ललकार कर कहा 'क्या इस प्रकार कायरता से मरने में लज्जा नहीं आती। यदि मरना ही है तो बैरियों से लड़कर क्यों नहीं मरतीं।'

जौहराबाई की बात सबको पसन्द आई। स्त्रियों ने स्त्री भेष को तिलाञ्जली दी। सबने केशरिया रङ्ग के वस्त्र पहिने और हाथ में तलवार तथा अन्य अस्त्र लेकर पठानों से अपने देश की रक्षा करने चलीं।

पठानों ने समझा था कि विक्रमाजीतसिंह भाग गया है। अब क्या है, चित्तौड़ पर हमारा ही अधिकार हो गया। वे लोग कोट से बाहर इसी प्रकार के सुख स्वप्नों का आनन्द ले रहे थे कि कोट के दरवाजे से अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित वीर रमणियां आती हुई दिखाई दीं पहिले तो वे न समझ सके कि मामला क्या है पर जब जौहरा बाई ने आकर ललकारा तो उनकी आँखें खुलीं।

बहादुरशाह को भी स्त्रियों की इस वीरता पर आश्चर्य हुआ। पर उसको लज्जा न आई कि स्त्रियों से मर्दों का क्या सामना! और कोई वीर होता तो लज्जा से गढ़ जाता और स्त्रियों पर कभी हाथ न उठाता।

स्त्रियों ने लड़ाई में पठानों के एक बार तो छक्के छुड़ा दिये। जिसको अपनी मृत्यु का भय नहीं, उसके वीर होने में क्या सन्देह। स्त्रियां अपनी मातृभूमि के लिये मरने को लड़ती थीं ? और पठान स्वामी की आज्ञा से। पर थोड़ी सी स्त्रियां लाखों पठानों से कहाँ तक लड़तीं ? और फिर आखिर को स्त्रियां ही तो थीं। कब तक मैदान में डटतीं ? थोड़ी सी देर में सब की सब वहीं लेट गईं।

चित्तौड़गढ़ में अब बहादुरशाह के घुसने के लिये कोई रुकावट नहीं थी। उसके सिपाही अपनी विजय के मद में चूर थे और चाहते थे

कि बहुत जल्दी कोट के भीतर घुसकर लूट मार करें और जो स्त्रियां बची हों उनका सतीत्व नष्ट करें।

परन्तु मनुष्य कुछ सोचता है और ईश्वर कुछ करता है। थोड़ी देर के पश्चात् बहादुरशाह की फौज ने देखा कि मुगलों की एक बड़ी सेना चित्तौड़ को सहायता के लिये आ रही है। उनका यह देखना था कि वे सब लोग भाग खड़े हुए और चित्तौड़ को लाज रह गई।

बात यह थी कि विक्रमाजीतसिंह के भाग जाने पर राजमाता कर्णवती ने अपने देश की रक्षा करने के लिये हुमायूं के पास सहायता के लिये 'राखी' भेजी। भला हुमायूं जैसा वीर एक राजपूत स्त्री के इस प्रकार विपत्ति में पड़ने पर, सहायता न देता? तुरन्त ही उसने अपनी बंगाल की विजय छोड़ी और चित्तौड़ का सहायता के लिये आ गया।

यदि जौहरा बाई वैरी को इस प्रकार और कुछ देर तक न फँसाये रहती तो बहुत सम्भव था कि पठान लोग चित्तौड़ को ले लेते और तब हुमायूं के किये कुछ न होता।

विक्रमाजीतसिंह फिर चित्तौड़ का राना हो गया। इस प्रकार जौहराबाई ने अपनी मातृभूमि की अपने प्राण देकर रक्षा की।

वीर भावना

[लेखक—श्री० हरिप्रसाद जी शुक्ल 'हरि']

सुखी नहीं हूं अपने को मैं त्रिभुवन पति कहलाने में।
सुखी नहीं हूं सुरवालाओं से निज चित बहलाने में॥
सुखी नहीं हूं गौरी पति संग मन हर ताल बजाने में।
किन्तु सुखी हूं मातृ भूमि हित अपना शीश कटाने में॥
अन्तर तमकी यही भावना कभी न विचलित हो पावे।
हाँ इसके रक्षण में 'हरि' का जीवन जावे तो जावे॥ १॥

स्वतन्त्रता

[लेखक—श्री० हरिकिशनदासजी जादव भूना "भूत"]

भारत भूमि पूर्व काल में अत्युत्तम और पवित्र समझी जाती थी। संसार में यह सब से अधिक शक्ति शाली, गौरवान्वित तथा महत्व पूर्ण भूमि थी। हिन्दराष्ट्र एक स्वतन्त्र साम्राज्य था तथा उसकी प्रजा धन सम्पत्ति शाली एवं बलवान थी। हमारी सभ्यता उस समय अज्ञान रूपी अंधेरी रात्रि में भटकती हुई अन्य जातियों के लिए पूर्णिमा के चन्द्र के समान पथ प्रदर्शिका थी। एक समय था जब प्रत्येक भारतवासी के हृदय में स्वार्थत्याग, जातिसेवा, देशसेवा, आत्म गौरव, निर्भयता, साहस, उद्योग एवं कर्त्तव्य पालन के भाव विद्यमान थे। किन्तु खेद आज उसके सर्वथा विपरीत हम अपने सम्पूर्ण कर्त्तव्यों को भूल परतन्त्रता की दृढ़ एवं कष्टप्रद बेड़ियो मे जकड़े हुए हैं। हा! आज हम और हमारी प्यारी भारत भूमि पूर्ण रूप से परतन्त्र है। हमारी इस हीनदशा का कारण कुछ व्यक्ति दर्शी नरेशो या शासन कर्ताओं के घृणित कार्यों का फल बताते हैं। यद्यपि यह सर्वथा सत्य है और इसका उदाहरण कई नरेश प्रस्तुत हैं जो आज कल पेरिस में अथवा अन्य विदेशी रमणीय नगरों म वहां की दूषित एवं निर्लज्ज वेश्याओं के साथ लीलाएं कर रहे हैं और भारत की दरिद्र एवं असहाय प्रजा का अमित परिश्रम से प्राप्त धन विवेकहीन एवं दयाहीन होकर बड़ी बुरी तरह से घृणोत्पादक कार्यों मे अपव्यय कर रहे हैं। परन्तु इसका सर्वथा दोष इन्हीं पर नहीं है किन्तु देश के प्रत्येक व्यक्ति और अधिकतर नवयुवकों और सम्पत्ति शाली व्यक्तिओ पर उसका बहुत बड़ा भार है जो अपने जीवन को इधर उधर बद फेलों में नष्ट कर देते हैं और अपना धन धनाढ्य व्यक्ति राजा बहादुर या राय बहादुर की पदवी पाने की आशा मे नष्ट कर देते हैं।

एक समय था जब हमारे शरीर में वीर्य था, हमारे चित्त में उत्साह था, रगों में स्फूर्ति एवं रक्त में वेग था। हमारा धन, हमारी शक्ति सुपथ पर व्यय होती थी। हम अपने सामने किसी निरीह एवं असहाय व्यक्ति के ऊपर अत्याचार नहीं देख सकते थे। किन्तु आज हमारे ही देश में हमारे ही सामने हमारी पूज्य मां-बहिनों के ऊपर भयानक अत्याचार हो रहा है। जब हम देखते हैं और उनकी करुण क्रन्दन ध्वनि हमारे कर्ण कुहरों के परदे फाड़ती है उस समय हमको जोश तो अवश्य आता है किन्तु वह जोश उतनी देर के लिये ही आता है जितनी देर में बिजली चमक कर मेघाछन्न आकाश में लीन हो जाती है। और फिर हम हतोत्साह हो कर बैठ रहते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि अब हममें वह स्फूर्ति एवं शक्ति नहीं जो पहले थी। आज हमारे यहां फूट रूपी अन्धकार सम्पूर्ण भारत के एक कोण से दूसरे कोण तक व्याप्त हो रहा है। हमको सर्व प्रकार सुख पहुंचाने वाले अछूत आज हमारे ही कारण पद-दलित हो रहे हैं। हम उनके छूने में उनसे बोलने तक में अपना अपमान एवं निंदा समझते है और उनसे घृणा करते हैं। हा हमारा अछूतों के प्रति यह व्यवहार कितना घृणित है। यह कारण भी हमारे नत-मस्तक होने का है। हमारा हिन्दू जन संख्या का ⅓ भाग केवल अछूतों मे विभक्त हो रहा है। देखो हमारी कितनी शक्ति अछूतों में विछिन्न हो रही है। क्या यह शक्ति फिर संग्रहीत हो सकती है? हां अवश्य हो सकती है अगर हम संगठन करें तो हमारी सारी शक्ति पुनः संगठित हो सकती है। मुझे हर्ष है कि आजकल संगठन जोर पकड़ रहा है, किन्तु उस रूपसे नहीं कि जिस रूप से होना चाहिये। आज हमको संगठन की नितान्त आवश्यकता है। संगठन करने ही से हम अपनी फूट को निकाल सकेंगे और अछूतो में बिखरी हुई अतुल शक्ति एकत्रित कर सकेंगे। जब हम अछूतो में और अपने मे कोई भेद-भाव न समझेंगे और सुसंगठित हो अपने निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर होंगे तब अपनी विजय अवश्य होगी और हम अपने को शक्ति-सम्पन्न कह सकेंगे। तब एक जीवन

का मङ्गलमय उदय होगा, उस नवीन जोवन में हमारी वर्तमान दुर्बलतायें भस्म हो जावेंगी और उस भस्मावेश की पवित्र वेदी पर नूतन पराक्रम, साहस, शक्ति एवं शौर्य के अङ्कुर प्रस्फुटित होंगे और तभी इस नवीन जीवन के मङ्गलमय प्रभाव को देख कर सारा भू-मण्डल आश्चर्य चकित शब्दों में बोल उठेगा कि—

"आज भारत कितना सुन्दर, प्रतिभा-सम्पन्न, गौरवान्वित, स्वतन्त्र शक्तिशाली एवं महान् है।"

हम इस शुभ मुहूर्त्त का शुभ शब्दों में स्वागत करते हैं।

वीरों की प्रतिज्ञा !

[लेखक—श्री० "चन्द्रजी"-जोधपुर]*

देश में करेंगे बल, धैर्य का प्रचार फेर,
भारत को दासता के पाश से छुड़ाएँगे।
जार जार रोती हैं जो भारत की अबलाएँ,
उनके सब दुःख-द्वन्द्व शीघ्र हम मिटाएँगे।
करते जो सतीत्व भ्रष्ट गुण्डे, देवियों का, उन्हें—
शीघ्र इस कुचेष्टा का फल हम चखाएँगे।
डावांडोल होय चाहे पृथ्वी और सूर्य, 'चन्द्र',
वीर बाँकुरे तो कभी पग न हटाएँगे॥ १॥
आएँ क्यों ना बाधा विघ्न सन्तत हमारे आगे,
धैर्य की कृपाण से हम उनको हटाएँगे।
विद्या धर्म और कर सत्य का प्रकाश फेर,
अन्धकार मूढ़ता का जड़ से मिटाएँगे।
देश और धर्म पर हुए कटिबद्ध अब,
समय पड़ने पै निज शीश भी कटाएँगे।
कहै कवि 'चन्द्र' आय घेरे जल पावक भी,
वीर बाँकुरे तो कभी पग न हटाएँगे॥ २॥

चित्तौड़गढ़ की आदर्श वीराङ्गनाएँ

[लेखक—कुँवर अवधेश्वरजी शर्मा "देवेश"]

'अजयदुर्ग' चित्तौड़ के रक्त रञ्जित इतिहास में वहां की आदर्श वीराङ्गनाओं का स्थान सर्वोपरि अथवा सर्वोच्च है। उनके अद्भुत कार्य कलाप उनकी अदम्य उत्साह पूर्ण रण कौशल की गाथाएं पढ़ सुनकर कौन मानव हृदय होगा जो फड़क न उठे ? भारत ही क्यों संसार भरके किसी भी राष्ट्र अथवा जाति की स्त्रियां उन देवियों की तुलना नहीं कर सकतीं! वे देश तथा धर्म के लिये सर्वस्व तक न्यौछावर कर देने को उद्यत रहती थी। वे ही सच्ची माताएँ, आदर्श कुल वधुएँ एवं बहिनें थीं। वे अपमानित जीवन की अपेक्षा मृत्यु से आलिङ्गन करना हजार दर्जे बढ़कर मानती थीं और अपने लाड़ले पुत्रों को सदा निम्नांकित वाक्यों का उपदेश सुनाया करती थीं।

"अपने कुल को कभी न धब्बा लगाना बेटा ?
धर्म को अपने कलंकित न बनाना बेटा॥
रण में बढ़कर न क़दम पीछे हटाना बेटा।
गर समय आये तो सर काट कटाना बेटा।
दूध को मात के हरगिज़ न लजाना बेटा॥"

तथाः—　　"रण देखे जो क्षत्री डरई।
अन्तकाल सो नरकहि परई॥" इत्यादि।

वे वीरत्व, शील स्वभाव एवं रूप लावण्य की प्रति मूर्त्तियां थीं। वे युद्ध स्थलों में आततायियों तथा धर्मान्ध म्लेच्छों पर भूखी बाघिनों की तरह टूट पड़ती थीं। देशापमान उनको नितान्त असह्य था। धर्म को आघात पहुँचते देख उनकी भौंहें तन जाती थीं! नस नस में गरम खून बहने लग जाता था!!

वे तबला सारङ्गी पर "ताना री री" की जगह मारूबाजों (रण-

बाद्यों) पर मुर्दा दिलों में नव उत्साह व स्फूर्ति उत्पन्न कर देने वाली इस भैरवी राग को मस्त हो हो कर अलापा करती थीं—

"भैरवी बन कर घुसी हूं आज मैं घमसान में।
शत्रुओं का खून पीने आई हूं मैदान में॥
है मेरा आनन्द मङ्गल रक्त ही के पान में।
कामना पाऊंगी चढ़ कर धर्म के बलिदान में॥"

वे अपने सुन्दर किन्तु सुदृढ़ कलाइयों को सुमन गुच्छों अथवा रिष्टवाच आदि फैशनेबिल (!) गहनों से अलंकृत करने के बदले सदा तलवार भाले, बर्छे आदि से ही सजाया करती और विदेशी मलमल किम्बा जरी किनारीदार वस्त्रों के बदले अपने हाथ से बनाये हुए पवित्र खद्दर के वस्त्र अथवा लोहे वर्म (जिरह बख्तर) से ही अपने अङ्गों की रक्षा किया करती थीं। वे अबीर, गुलाल एवं कुमकुम के बदले दुराचारियों और नर पिशाचों के खून से ही होली खेलना अधिक पसन्द करती थीं तथा वेश्यानृत्य के बदले संग्रामभूमि में भूत पिशाचों का अट्टहास एवं डाकिनी जोगिनी आदि का ताण्डव अधिक चाव से देखा करती थीं!!

उनके मुख मण्डल पर सतीत्व की एक विलक्षण आभा विराजती थी। यह वही ज्योति है जो "मिसमेयो" सरीखी दुश्चरित्रा एवं कुल बोरनियों की आंखों में चकाचौंध पैदा कर देती है। यह वही चमक है जिसके सहारे हम अब तक हिन्दुत्व का दावा किये हुए हैं और गर्व से ऊपर को शिर उठाते हैं और यही वह पवित्र आलोक है जिसके समक्ष अन्यान्य सभी राष्ट्रों के नर नारी नत मस्तक हो रहे हैं।

यद्यपि आज न वह पहले का सा चित्तौर है न वैसी आदर्श वीराङ्गनाएं हो, फिर भी उसके बचे खुचे जीर्ण शीर्ण खण्डहर एवं उसका एक एक पत्थर उसके प्राचीन गौरव को सूचित कर रहे हैं। उन देवियों की—उनके सुपुत्रों, राणा लक्ष्मण, प्रताप तथा जयमल और फत्ते की उज्ज्वल कीर्ति अब तक अचल है, अमर है। वह स्वर्णाक्षरों से लिखी जाने योग्य है।

थोड़ी देर के लिये यदि अन्यान्य बातों को सार्वजनिक एवं प्रकृतिप्रदत्त सम्पदा मान कर छोड़ भी दें, तो भी जिस बात के लिए उनका स्थान इतना उच्चत्तम गिना जाता है उसका उल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता ! वह है उनका पवित्र कर्त्तव्यपालन, अपूर्व त्याग तथा आदर्श बलिदान—जौहरव्रत !!

शायद ही आज तक किसी देश की स्त्रियों ने अपनी सतीत्व रक्षा तथा देशोद्धार के निमित्त इतनी बेर इस पुनीत व्रत का पालन किया हो।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारी आर्य देवियां अतीत से ही ऐसे २ कार्य करती आई हैं जिनको आज कल पाश्चात्य देशीय सभ्यता के अभिमानी असम्भव ही मानते हैं पर आधुनिक काल में इन देवियों (चित्तौड़गढ़ की वीराङ्गनाओं) का भी महत्त्व कुछ कम नहीं क्योंकि इनके ज्वलन्त उदाहरण अब तक विद्यमान हैं। अब हम एक दृष्टि आधुनिक स्त्री समाज की हीनावस्था पर डाल लेखनी को यहीं विश्राम देते हैं।

आजकल के स्त्री समाज के गहने आभूषणों की प्रबल लिप्सा, फैशन पर मरने तथा रूढ़िप्रथा पालन इत्यादि को देखकर तो यही कहना पड़ता है, कि हा ! अभागे भारत ! सीता, अनुसूया, महासती मदालसा, वीराङ्गना तारा तथा पद्मिनी इत्यादि देवियों के जन्मदाता भारत ! ओ राम, कृष्ण, प्रताप, शिवा का कर्म भूमि भारत !! तेरी यह दुर्गति ! हा हन्त !!!

किन्तु अब इस प्रकार के दुखड़े रो २ कर हाथ पर हाथ धर बैठ रहने से बचे खुचे अमूल्य धन को खो बैठने के सिवाय और कुछ न होगा ! अब तो सच्ची लगन लगाकर उनका पुनरुद्धार करने से ही लाभ होगा ! यदि सच्चे हृदय से पूछा जाय तो यही वास्तविक उत्तर मिलेगा कि स्त्रियोंको इस हीनावस्था पर पहुँचाने वाले, सुरबाला को अबला पद पर पहुँचाने वाले हमीं मानवी राक्षस हैं। बाल्यवस्था का बेचारी पार भी नहीं करने पातीं कि उनको घूँघट की जेल में कैद कर दिया जाता है। बेचारी कली पूर्ण रूप से विकसित भी नहीं होने पाती कि निर्दय माली

उसे झट से तोड़ कर विलग कर देता है। ठीक यही हाल आज कल के महिला मंडल का हो रहा है। बाल, वृद्ध अथवा बे-मेल ब्याह के कारण वे कन्याएं पूर्ण युवती भी नहीं होने पातीं कि उन पर वैधव्य का वज्र आ गिरता है। न उनकी शिक्षा दीक्षा का ही कोई समुचित प्रबन्ध किया जाता है न उनको आदर्श महिलाओं के चरित्र उपदेश आदि ही सुनाये जाते हैं। उपरोक्त प्रकार के सब साधनों से उन बेचारियों को वंचित रखते हुए भी हम सुधार की आशा रखते हैं यह कैसी धृष्टता है? धिक्कार है ऐसी बुद्धि को!!

प्रथम तो देश के दुर्भाग्य से देश के दुख से दुखी होने वाले इने गिने ही मातृ सेवक हैं, तिस पर भी लकीर के फकीर और बाबा वाक्यं प्रमाणं की उक्ति को चरितार्थ कर सनातन नाम को कलुषित करने वाले बुड्ढे खूसट जब विरोध रूपी रोड़े अटका देते हैं तब टांय २ फिस्स वाला किस्सा हो जाता है। किन्तु मेरी तो उन कर्मण्य युवकों से जो रात दिवस देशोद्धार की धुन में अविश्रान्त परिश्रम कर रहे हैं—यही सादर प्रार्थना है कि वे ऐसे लोगों को निधड़क बकने दें। उनको तो इस ओर ध्यान न देते हुए अपने लक्ष्य की ओर ही निरंतर अग्रसर होना चाहिये।

मित्रो! स्त्रियां पुरुषों का आधा अङ्ग कहलाती हैं। जब तक उनको चित्तौड़ की वीराङ्गनाओं—भारत की विदुषी महिलाओं की चरित्र गाथाएं न सुनाई जांयगी, जब तक हम स्वयं आदर्श बनकर उनको धार्मिक, सामाजिक राजनैतिक कार्यों में भाग न लेने देंगे, तब तक सुधार की आशा करना दुराशा मात्र है। वीर माताऐं ही वीर पुत्र प्रसव करेंगी और तभी भारत में एक बार फिर से राम राज्य की स्थापना हो सकेगी।

अब और तब

[लेखक—श्री० प्रो० विद्याभूषण जी 'विभु', एम० ए०]

अब

लीगल लुटेरों के अलावा यहाँ आज कल,
　　बटमार गाँठकट और जेबकट हैं।
"सावधान रहो" किस भांति लूटते हैं यह,
　　खींच दिखलाते ठौर ठौर चित्रपट हैं॥
खबर लगाई "विभु" खुफिया पुलिस ने है,
　　सैकड़ो ही प्राणहर घूमते सुभट हैं।
हिन्द में उचक्के धक्के फिरते उठाईगीर,
　　खैर जान माल की न डाकू जमघट हैं॥

"तब"

पूर्व नरपतियों का दावा था हमारे यहाँ,
　　लम्पटी न लालची न लंठ है न ज्वारी है।
डाकू चोर मद्यपी न कायर कुटिल कामी,
　　कपटी न पापी आततायी अनाचारी है॥
झूठा जालसाज़ है न निंदक नृशंस खल,
　　दुखिया अनाथ दीन भूखा न भिखारी है।
चित्त में न चिन्ता है किसी को, सुख चैन सब,—
　　नर ब्रह्मचारी "विभु" पतिव्रता नारी है॥

———

क्षत्राणी का आदर्श

[लेखक—श्री० अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय 'दास']

लगभग ४०० वर्ष की बात है। इस अभागे भारतवर्ष के वक्षस्थल पर यवनों के अनेक राक्षसी अत्याचार होते थे। शाहजहां तीन करोड़ के मयूर सिंहासन पर बैठकर ग़रीब किसानों की किस्मत का फैसला करता था। प्रजा की गाढ़ी कमाई हम्माम, मक़बरे, ताजमहल और संगमरमर की नहरें बनवाने मे खर्च की जाती थी। बाप बेटों और भाई भाई में हकूमत के लिये चोटें चलती थीं।

शाहजहां के दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद ये चार लड़के और जहांनारा तथा रोशनारा यह दो लड़कियां थीं। शाहजहां के बीमार पड़ते ही शोणित लोलुप क्षुभित व्याघ्र की तरह चारों भाई आपस में कट मरे। वह शाहजहां के अन्तिम काल तक मयूर सिंहासन के लोभ को न दबा सके।

शाहांजहां के गिड़गिड़ा कर अनुरोध करने पर मारवाड़ केसरी राजा यशवन्तसिंह तीस सहस्र राजपूत सेना लेकर पितृद्रोही औरंगजेब का आक्रमण रोकने के लिए उज्जैन जा पहुंचे। किन्तु कूटनीतिज्ञ औरंगजेब के षड्यन्त्र के सामने उनकी वीरता काम न आई, अन्त मे उन्हें रणक्षेत्र का परित्याग करना पड़ा।

राजा यशवन्तसिंह का शिशोदिया राजकुमारी के गर्भ से जन्म हुआ था और शिशोदिया कुल की एक वीर बाला के साथ विवाह हुआ था। पवित्र शिशोदिया कुल में विवाह कर पाने पर राजपूत राजा अपने को पवित्र और कृतार्थ समझते थे। राजा यशवन्तसिंह की स्त्री जैसे ऊंचे कुल में उत्पन्न हुई थी उसी प्रकार ऊंचे गुणों और अलंकारों से विभूषित था। जब उसने उज्जैन के युद्ध का वृतान्त सुना कि उसके पति की प्रायः समस्त सेना नष्ट हो गई है और वह शत्रु का पराजय न कर रण भूमि

से चला आया है। तब उसको विषम क्रोध और दारुण दुःख हुआ। वह मारे आत्मग्लानि के रो पड़ी और उसी आवेश में सोचने लगा:—

"न जाने मेरे कौन से पाप कर्म का उदय है, जो मुझे ऐसा क्षत्रिय कुल-कलंकी पति मिला। अच्छा होता जो मैं विवाही न जाती, कायर पत्नी तो न कहलाती। विषपान करलूंगी, जीते जी आग में कूद कर प्राण दे दूंगी किन्तु कायर पत्नी न कहलाऊंगी। जब कि मेरे पूर्वज, शरीर में रक्त की एक बून्द रहने तक शत्रुओं का मान मर्दन करते रहे हैं। तब मेरा पति शत्रु के भय से भाग कर आवे और मैं उसे छुपालूं? वीर-दुहिता होकर कायर पत्नी कहलाऊं? लोग क्या कहेंगे? सहेलियाँ ताना मारेंगी और पिता जी तो, मेरा मुंह देखना पाप समझेंगे। ओह! हृदय में कैसी २ उमगें थीं। विजयी होकर आयेंगे, आरती उतारूंगी, उनकी चरण रज लेकर सुहाग की चूनरी में बाँधूगी, तलवार का रक्त लेकर महंदी रचाऊंगी, उनके जख्मों को अपने हाथ से धोऊंगी, उनके शत्रु-सहार रण कौशल को सुनकर मै आपे मे न रहूंगी, मारे गर्व के मेरी छाती फूल उठेगी। दोनो मिलकर मातृ भूमि की बन्दना करेंगे। किन्तु यह सब स्वप्न था जो कि अन्धेरी रात्रि के सन्नाटे में देखा गया था। आह! युद्ध भूमि में वीर गति को भी प्राप्त न हुए, नहीं तो साथ में सती होकर जीवन सुधार लेती।"

रोते रोते शिशोदिया राजकुमारी के मुखमण्डल ने भयावनी मूर्ति धारण करली। वह सर्पिणी के समान फुंकार कर बूढ़े द्वारपाल से बोली "मैं कायर पति का मुंह देखना नहीं चाहती। इस बीर प्रसवा भूमि में रण से भयभीत मनुष्य को आने का अधिकार नहीं, अतएव मेरी आज्ञा से शहर के दरवाजे बन्द करदो।"

द्वारपाल थर थर कांपने लगा, उसकी बुद्धिको काठ मार गया। वह गिड़गिड़ा कर बोला 'महारानीजी का सुहाग अटल रहे। मैं आप की आज्ञा-पालन में असमर्थ हूं, वह हमारे महाराजा हैं, जीवनदाता हैं।"

रानी—नहीं! अब वह जीवनदाता नहीं। जो प्राणों के भय से

भागकर स्त्री के आंचल में छुपे, वह जीवनदाता नहीं। जीवनदाता वह है जो सर्व साधारण के हितार्थ अपना जीवनदान करने को सदा प्रस्तुत रहे।

द्वार०—महारानीजी! वह हमारे अन्नदाता हैं।

रानी—असम्भव! जो दासत्व वृत्ति स्वीकार कर चुका हो, परतन्त्रता के बन्धन में जकड़ा जा चुका हो, जो दूसरे की दी हुई सहायता से अपने को सुखी समझता हो वह अन्नदाता नहीं।

द्वार०—वह परतन्त्र नहीं, अपितु यवन बादशाह के दाहिने हाथ हैं।

रानी—वह भी किसलिये? अपने देश वासियों को नीचा दिखाने के लिए मायावी यवन बादशाह कांटे से कांटा निकालना चाहता है।

द्वार०—अर्थात्—

रानी—यही कि वह कुछ राजपूतों को अपने पक्ष में करके भारत के समस्त राजपूतों को शिखंडी बनाना चाहता है। भारत के हाथों भारत सन्तान का पतन चाहता है। भोले द्वारपाल याद रक्खो, स्वामी सेवक का चाहे जितना आदर क्यों न करे, चाहे मणिमुक्ता देकर उसको सोने की जंजीर से क्यों न सजादे, परन्तु जो दास है वह तो सदा दास ही रहेगा!

द्वार०—महारानी! आपका कथन सत्य है, किन्तु पति फिर भी पति है, उनका अपमान करने से क्या लाभ? क्षमा कीजिये, मैं आपको कुछ सीख नहीं दे रहा हूँ, परन्तु फिरभी पुराना सेवक होने का अभिमान रखते हुए, मैं यह प्रार्थना करता हूं, कि आप इस समय तो उन्हें अन्तःपुर में बुलाकर सान्त्वना दें, पश्चात् क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का ज्ञान कराने के लिए कुछ उतार चढ़ाव की बातें भी करें! इसके विपरीत करने से जग हँसाई होगी और प्रजा भी उद्दंड हो जायगी।

द्वारपाल के समय विरुद्ध व्याख्यान को सुनकर शिशोदिया राज कुमारी झल्ला उठी किन्तु द्वारपाल की स्वामि भक्ति ने क्रोध के पारे को आगे न बढ़ने दिया वह सहम कर बोली—

"तुमसे अधिक मेरे हृदय में उनका मान है। वह मेरे ईश्वर हैं, मेरे देवता हैं, मैं उनकी पुजारिन हूं। परन्तु मालूम होता है वृद्धावस्था में तेरी बुद्धि पर पाला पड़ गया है, वीरता को जंग लग गया है, नहीं तो ऐसी बातें नहीं करता। क्या तू नहीं जानता कि मारवाड़ वीर प्रसवा भूमि है ? यहाँ के निवासी युद्ध से भागना नहीं जानते, वह जानते हैं युद्ध में कट कट कर मरना। महाराज को देखने पर जब उन्हें मालूम होगा कि यहां युद्ध से भागे हुए कायर को भी शरण मिल सकती है, उसका भी आदर होता है तब वह भी यह कुटेव सीख जायँगे। अतएव मैं नहीं चाहती कि मेरे देशवासी कायर बनें।"

वृद्ध द्वारपाल अवाक् रह गया! वह किं कर्त्तव्य विमूढ़ की नाइं पृथ्वी को कुरोदने लगा।

\+ \+ \+

शिशोदिया राजकुमारी की सास भी छुपी हुई यह सब कुछ सुन रही थी। पुत्रवधू के वीरोचित शब्दों से यशवन्त की जननी का रक्त खौल उठा। यह वास्तव में उसका अपमान था। वह दुःख से अधीर हो उठी। पुत्र को पुनः रण-क्षेत्र में कैसे भेजूं—वह यही सोचने लगी। अन्त में उसने क्रोध को दबाकर गर्म लोहे को ठण्डे लोहे से काटा। यशवन्तसिंह को बुलाकर सदा की भांति प्यार कर भोजन जिमाने लगी! सुवर्ण के स्थान में लोहे के बर्तन देखकर यशवन्तसिंह क्रुद्ध हो गये। राजमाता भी दासियों पर कृत्रिम क्रोधित होकर बोलीं—"देखती नहीं हो, मेरा बेटा तो पूर्व ही लोहे से डर कर यहां भाग आया है फिर लोहा ही उसके सामने ला रक्खा!" माता के इस व्यंग से यशवन्तसिंह कट से गये। राज माता अपने उपदेश का अंकुर जमने योग्य भूमि देखकर बोली—

"यशवन्त! वास्तव में तू मेरा पुत्र नहीं। तुझे बेटा कहते हुए मैं मारे आत्मग्लानि के गढ़ी जा रही हूं। यदि तू मेरा पुत्र होता तो शत्रु को पराजित किये बिना न आता। तुझ में मान नहीं, साहस नहीं, अभिमान नहीं। तू कुल कलंकी है, कायर है, शिखण्डी है। तैने राजपूत

कुल में जन्म लेकर इसके उज्ज्वल यश में कलंक लगा दिया। बहू का आत्माभिमान देखकर मेरी छाती गर्व से फूल उठी है, किन्तु साथ ही दारुण अपमान के मारे मैं मरी जा रही हूं। एक तो वह वीर-प्रसवा क्षत्राणी, जिसने ऐसी वीर बाला को जन्म दिया और एक मैं जो तेरे जैसे कुलंगार को उत्पन्न किया! धिक्कार है मेरे पुत्र प्रसव करने को! अच्छा होता जो वन्ध्या होती अथवा तेरी जगह इट पत्थर प्रसव करती जो, मकानो के तो काम आते। अस्तु, जो होना था सो हो चुका। किन्तु, ठहर, मैं तेरा जीवन समाप्त कर देना चाहती हूं। बहू कायरपत्नि नहीं कहलाना चाहती तो मैं भी कायर पुत्र को जीवित रखना नहो चाहती।"

क्रोध के आवेश में वीर माता कटार निकाल कर मारना ही चाहती थी कि यशवन्तसिंह रोकर पैरो पर गिर पड़े। फिर तलवार निकाल कर प्रतिज्ञा की "माता! जब तक मै जीवित रहूंगा युद्ध में रहूंगा युद्ध से कभी विमुख न हूंगा। जब तक शत्रुओं का नाश नहीं कर लूंगा कभी सुख से न बैठूंगा।"

\+ + + +

पुत्र की वीर-प्रतिज्ञा सुनकर राज माता का हृदय उमड़ आया। वह यशवन्तसिंह के सिर पर प्यार से हाथ फेरने लगी। वीर यशवन्तसिंह माता का यह व्यवहार देख कर बोले—

"मां! यह क्या? कहां तो तुम मेरा जीवन समाप्त करना चाहती थी और कहां ···" राज माता बात काट कर बोली—"बेटा क्षत्राणी का अद्भुत स्वभाव होता है। वह युद्ध से भागे हुए पुत्र या पति का मुंह देखना नहीं चाहती। किन्तु पति के वीर-गति प्राप्त होने पर उसके साथ प्रसन्नता पूर्वक सती हो जाती है और विजय प्राप्त कर आने पर तो, उसके बलैयां लेती है क्षत्राणी का आदर्श विचित्र है।"

राष्ट्रपति पं० मोतीलाल नेहरू

[लेखक—श्री० रमेश वर्मा]

एक इतिहास मीमांसक ने कहा है "इतिहास महान पुरुषों का जीवन चरित्र है।" अर्थात् समाज की गति का प्रवाह महान पुरुषों के जीवन-आदर्श के साथ बहता रहता है। जो घटनाएं आज समाज क्षेत्र में नवीन और सामयिक कही जाती हैं कल वे ही प्राचीनता का रूप धारण कर लेंगी और हम उनको इतिहास की श्रेणी में गिनेंगे। अपनी प्राचीनता का अभिमान पूर्वक वर्णन करते हुए हमें यह न भूल जाना चाहिये कि प्राचीन और अर्वाचीन में एक विशेष सम्बन्ध रहता है। इतिहास-जगत के सामान्य-तत्व प्रत्येक काल में अपने उसी रूप में विद्यमान रहते हैं केवल घटनाओं में कुछ अन्तर सा प्रतीत होता है। हमारे पूर्वज धन-धान्य पूर्ण, यशस्वी और सर्वकला निष्णात होते हुए भी त्यागी और तपस्वी ही बने रहते थे तो वर्तमान काल भी इन उदाहरणों का अपवाद नहीं। ऐसी महान आत्माएं वर्तमान भारत में कई हैं जिनको समस्त सांसारिक सुख-विलास, रस क्रीड़ा मौजूद हैं। किन्तु वह सब पर लात मार कर अपना जीवन त्यागी सन्त पुरुषों जैसा व्यतीत कर रहे हैं। पं० मोतीलाल नेहरू उन्हीं त्याग मूर्तियों में एक हैं। आपका गत दस सालों से पूर्व का जीवन बड़ा ही विलास पूर्ण और राजसीठाठ वाला रहा है। आपका वाल्य-काल सुख और लाड़ प्यार में ही बीता यद्यपि पित्र सुख का आनन्द ये कुछ भी न ले चुके थे क्योंकि इनके पिता जो दिल्ली के कोतवाल थे इनके जन्म (१८६१ ई) से चार मास पूर्व ही संसार से चल बसे थे। उनके बाद इनके बड़े भाई मुं० नन्दलाल नेहरू की आधीनता में जो कानपुर मे वकील थे इनका पालन पोषण हुआ वहीं गवर्नमेन्ट स्कूल से इन्होंने मैट्रिक पास किया और इलाहाबाद म्योर कौलेज से एफ० ए० पास करने के बाद वकालत की परीक्षा दी। जिसमें सबसे प्रथम नम्बर पास हुए और इनाम मिला।

वकालत पास करने के बाद आपने बड़े भाई के साथ साथ ही कानपुर में प्रैक्टिस करना प्रारंभ किया किन्तु भाई की शीघ्र ही मृत्यु हो जाने के कारण आप सपरिवार प्रयाग चले आए और यहां हाईकोर्ट में वकालत करते हुए उसके सब से प्रधान एडवोकेट बन गए। आपकी वकालत की आय दो सहस्र रुपए दैनिक से कम न थी। आपका आनंद-भवन वास्तव में राजशाही भवन है। आप धन जोड़ने के भक्त नहीं हैं किन्तु जो कुछ कमाया वह सब शान में फूक दिया। आनन्द-भवन की इमारत और उसके साजो सामान इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। भारत में इनके कपड़े धोने को धोबी पैदा न होकर पैरिस से कपड़े धुल कर आते थे।

पं० जी वकालत करने के साथ साथ ही सार्व-जनिक कार्यों मे भी भाग लेते रहे हैं। आप म्यूनिस्पलबोर्ड प्रयाग के चेयरमैन रह चुके हैं। १९०७ ई० की राजनैतिक कान्फ्रेन्स इलाहाबाद के सभापति चुने गए। सन् १९०९ ई० से यू० पा० कौंसिल के मैम्बर चुने जाते रहे। सन् १९१४ ई० मे इलाहाबाद म्यू० बो० के मैम्बर भी निर्वाचित हुए। आप सन् १९०९ ई० से ही भारतीय कान्ग्रेस कमेटी के मैम्बर है। इस के अतिरिक्त कितनी ही सभा सुसाइटियों के प्रधान, उपप्रधान, मंत्री और कार्य संचालक रह चुके हैं।

असहयोग आंदोलन काल से आपके जीवन में एक विचित्र परिवर्तन होता है अपने उस राज विलास और ठाट बाट के जीवन को ठुकरा कर आप हमारे सामने त्याग की मूर्ति में आते हैं और तब से अब तक पूरे त्याग मूर्ति बने हुए हैं। प्रिन्स-आफ-वेल्स के स्वागत बहिष्कार में आप सरकार के कारावास मे भी सपरिवार निवास कर चुके हैं। आपके एकमात्र पुत्र पं० जवाहरलाल नेहरू निर्धन भारत माता के जवाहर और दीन, निर्धनों के लाल हैं। वास्तव में पिता पुत्र का सा यह अपूर्व त्याग इतिहास मे अन्यत्र मिलना असम्भव है।

आपकी योग्यता से न केवल भारतीय अपितु अन्य देशवासी, पारलियामेन्ट के मैम्बर और बड़े २ राजनीतिज्ञ पूर्ण परिचित हैं।

आपका विशाल राजनैतिक ज्ञान अथाह, अपरिमित एवं अक्षुण्य है। 'लीडर' सम्पादक श्री० चिन्तामणि के शब्दों में आप "भारतीय राजनीति के सब से श्रेष्ठ ज्ञाता हैं"। असेम्बली में सरकारी पक्ष और जनता पक्ष के मेम्बर आपकी युक्तियों, तर्क और धाराप्रवाह वक्तृत्व शक्ति को देख कर अवाक् रह जाते हैं बोलते समय किसी विघ्न कारी की दलील का मुंह तोड़ अकाट्य पूर्ण भाषा में उत्तर देना आपकी आदत मे है। नौकर शाही की लचकती कमर आपके हास्य के कोड़े, विनोद के बाण और नोक झोक की नुकीली कटारी से सदैव कांपती रहती है। राष्ट्र के प्रति आपका और आपके प्रति राष्ट्र का अपरिमित अनुराग है। नेहरू रिपोर्ट जिसके कि आप सर्वे सर्वा हैं आपकी ज्वलंत देश भक्ति एवं अथाह ज्ञान-भंडार की सूचक है। आपके सम्मान के लिए राष्ट्र ने सन् १९१९ ई० की अमृतसर कांग्रेस का सभापति आपको बनाया और इस समय जब कि भारत का राजनैतिक वायु-मंडल पारस्परिक-कलह, जातीय-झगड़े और पार्टी बन्दी की त्रिदोष युक्त वायु मे विष पूरित हो रहा था आपको राष्ट्र का सूत्रधार बनाया। आपने कांग्रेस को जिस प्रकार संगठित किया और अपने राष्ट्रपति सन्देश में जिस व्यावहारिक और व्यापक नीति का आदेश दिया उसके सामने यह एक 'साइमन कमीशन' क्या दस कमीशन भी भारतीय राजनैतिक नौका को डगमगा नहीं सकते जिसका कि कर्णधार इतना दक्ष और चतुर-चूरामणि है वर नौका बड़े बड़े तूफान और भयानक भॅवर जालों से भी टक्कर ले सकती है। हम आशा करते हैं कि हमारे राष्ट्रपति तब तक चिरायु रहें, जब तक कि भारत के भाल से यह पराधीनता की कलुषित कालिख धुल जाय और राष्ट्र के समस्त प्राणी स्वराज्य के सुखोद्यान में निर्भय होकर विचरण करें।

साहित्य परिचय

ऋग्वेदालोचन—प्रणेता-पं० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ; प्रकाशक-पं० सत्यव्रत शर्मा, शान्ति प्रेस, आगरा। पृष्ठ ३६+३०८, मूल्य १॥।)

श्री पं० नरदेव जी शास्त्री मौलिक विद्वान, बड़े विचारवान और सफल लेखक हैं। वेदों के विषय में आपने विशेषरूप से अध्ययय किया है। प्रस्तुत पुस्तक के एक एक पृष्ठ से आपके उस अध्ययन का परिचय प्राप्त होता है। वेद शास्त्रों का अध्ययन करने के इच्छुक इस पुस्तक को अवश्य देखें।

श्री श्रीचण्डी—प्रस्तुत पुस्तक में चण्डी देवी के चरित्र का वर्णन है। चण्डी ने पहले मधु-कैटभ राक्षस का वध किया था—इस खण्ड में उसी का विस्तृत वर्णन है। प्रारंभ में श्रीमान राजा शशिशेखरेश्वर रायबहादुर कृत एक भूमिका है। पुस्तक में डिमाई आकार के १२४ पृष्ठ हैं। कहाँ से मिलती है और क्या मूल्य है यह कुछ भी पुस्तक पर नहीं लिखा है। लेखक हैं श्री श्रीशचन्द्र शर्मा।

आर्यमित्र (ऋष्यंक)—स्थानीय सहयोगी आर्यमित्र प्रति वर्ष दीपावली पर ऋष्यंक नाम से एक विशेषांक प्रकाशित करता है। इस वर्ष भी वह अंक निकला है-पर पहले से अबकी बार उसमें कुछ विशेषता है। पहले अधिकांश लेख स्वामी दयानन्द जी से ही सम्बन्ध रखते थे, अबकी वार वह बात कुछ कम है। इस अंक में कितने ही लेख ऐसे हैं जो आर्यसमाज से सम्बन्ध रखते हुए भी सर्वोपयोगी हैं। कविताएं भी अच्छी हैं। इसके लिए सम्पादक जी को बधाई है।

आरोग्यसिन्धु—यह एक मासिक पत्र है। श्री वैद्य पं० लक्ष्मीनारायण जी के सम्पादकत्व में फिरोजाबाद (आगरा) से प्रकाशित होता है। प्रतिमास ठीक समय पर पूर्णिमा के बाद निकल जाना इसकी विशेषता है। इसमें आरोग्य, चिकित्सा और औषधि विज्ञानविषयक लेख रहते हैं। रोग विज्ञान मे रोगो के होने के कारण, उनसे बचने के उपाय, उनकी चिकित्सा आदि का सविस्तार वर्णन रहता है। पत्र वैद्यों और सर्वसाधारण सज्जनों को समान रूप से बड़ा उपयोगी है। वार्षिक मूल्य ३) है।

चांद (फांसी अङ्क)—चांद के फांसी अंक की एक प्रति हमारे पास समालोचनार्थ भेज कर प्रकाशक महोदय ने हम पर बड़ी कृपा की है। इस कृपा के लिए धन्यवाद न देना ठीक नहीं। अस्तु, हम उनकी इस अपार उदारता के लिए अनेक धन्यवाद देते हैं। इस अंक का सम्पादन आयुर्वेदाचार्य श्री चतुरसैन जी शास्त्री ने किया है। इसमें जितने लेख हैं वे सब फांसी से सम्बन्ध रखते हैं। चित्र भी बहुत हैं और वे सब भी फांसी अथवा फांसी पर चढ़ने वालों के हैं। फांसी के सम्बन्ध में कई आलोचनात्मक विचार पूर्ण लेख भी हैं। कहानियां भी इसी विषय की है और अच्छी है। राष्ट्र-यज्ञ में जिन लोगों ने अपनी आहुतियां चढ़ाई हैं उनके चित्र और चरित्र इस अङ्क की विशेषता है। इन लेखों को पढ़ने से हृदय में एकदम राष्ट्रीयता की हिलोरें उठने लगती हैं। ऐसा सुन्दर अंक सम्पादन और प्रकाशन करने के लिए हम दोनो सज्जनों को बधाई देते हैं!

निम्न लिखित पुस्तकें भी मिल गई हैं। प्रेषक महोदयों को धन्यवादः—

१—हमारे दुःखों का प्रधान कारण—ले० पं० जुगलकिशोर मुख्तार, प्र० जैन संगठन सभा, देहली। मू० –)

२—विनय—ले० पं० रामवल्लभ द्विवेदी, अरविन्द प्र० राजेश्वरी पुस्तकालय, गया। मू० ≡)

३—मोक्ष को कुंजी—प्र० आत्म जागृति कार्यालय, बगड़ी (मारवाड़)।

४—पुनर्विवाह हिन्दू जीवन—ले० राम प्यारी देवी, प्र० पं० छदम्मी लाल शर्म्मा, अलीगढ़। मू० ≡)

५—स्तुति—ले० मुंशी लक्ष्मीप्रसाद जैन, प्रकाशक बाबू प्रभूलालजी जैन रामपुर स्टेट, मूल्य सदुपयोग।

६—जैन-मित्र मंडल देहली का इतिहास और कार्य विवरण—प्र० मंत्री।

७—संत—(मासिक-पत्र) सम्पा० म० शिवव्रतलाल, प्र० दीवान वंशधारीलाल, राधास्वामी धाम, बनारस, मू० ४॥) वार्षिक।

८—आत्मानन्द जैन ट्रेक्ट सुसाइटी की रिपोर्ट १९२७—प्र० मंत्री आत्मानन्द जैन ट्रेक्ट सुसाइटी अम्बाला।

९—अछूतों का जैन मंदिरों में प्रवेश ट्रेक्ट—ले० मोतीलाल पहाड्या, प्र० जैन मित्र मंडल, कोटा, मू०)॥

१०—सम्मेद शिखिर पूजा—ले० मु० लक्ष्मीप्रसादजी जैन, प्र० बाबू प्रभूलालजी जैन, रामपुर स्टेट, मू० सदुपयोग।

११—देवेन्द्र मिलाप—ले० छेदालाल, देसाई प्रेस लश्कर ग्वालियर, मू. प्रेम।

१२—आदर्श जैन चरित माला (मासिक पत्र)—सं० मूलचन्द जैन, प्रका० साहित्यरत्नालय बिजनौर, मू० २) वार्षिक।

१३—उजलेपोश बदमाश—ले० अयोध्याप्रसाद गोयलीय, देहली, मू० —)

१४—जैन कुमार सभा आगरा की नववर्षीय रिपोर्ट—प्र० श्री प्रतापचन्दजी

१५—पचीस बोलका थोकड़ा—प्र० सेठिया जैन ग्रन्थ माला।

१६—खादी का आर्थिक महत्व—ले० श्री० राजेन्द्रप्रसाद, प्र० आचार्य आ० टे० गिडवानी, प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन, मू० =)

१७—आतंक निग्रह फार्मेसी (वृत्तांत)—प्र० वैद्यशास्त्री, जामनगर काठियावाड़।

१८—किसान (किसानोपयोगी श्रेष्ठ मासिक-पत्र)—सं० सुखसंपतिराय भंडारी, प्र० किसान कार्य्यालय यशवंतगञ्ज, इन्दौर, मू० ३) वार्षिक।

१९—अथर्ववेद और जादूटोना—ले० जयदेव विद्यालंकार, प्र० महेश पुस्तकालय, अजमेर, मू० —)॥

२०—द्वादशवर्षीय महोत्सव विवरण—प्र० जैन पारमार्थिक संस्था, इन्दौर।

२१—महावीर (पद्यांक)—सं० विश्वनाथसहाय वर्मा, प्र० श्रीकृष्ण प्रेस, पटना।

विविध विषय

१—स्वतन्त्रता की ओर—

एक समय था जब भारत वर्ष में 'स्वराज्य' कहना जुर्म समझा जाता था। लोग स्वतंत्रता तो क्या ब्रिटिश शासन के भीतर रह कर भी आंशिक स्वराज्य प्राप्त करना बड़ा कठिन काम समझते थे। किन्तु हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस के अनवरत परिश्रम, सैकड़ों क्यों हज़ारों देशभक्तों के आत्म बलिदान और समय के प्रभाव से आज यह स्पष्ट प्रकट होता है कि पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं तो स्वायत्त शासन तो भारत में बहुत शीघ्र स्थापित हो ही जायगा। भारत की स्वतन्त्रता के इस युद्ध की प्रगति का दृश्य इस वर्ष हमारे राष्ट्रीय सप्ताह में कलकत्ते में स्पष्ट दिखाई देता था। बहुत दिन नहीं हुए दिल्ली कांग्रेस के सभापति महामना पं० मदन मोहन जी मालवीय जब दिल्ली पहुँचे थे तब वहां सरकार की आज्ञा न मिलने से सभापति का जुलूस नहीं निकल सका था। परन्तु इसबार राष्ट्रपति पं० मोतीलाल नेहरू का जैसा स्वागत हुआ, उनका जैसा जुलूस निकला, उसे देख कर किस भारतीय का मस्तक ऊंचा न होगा। भारत के इतिहास में शायद यह पहला ही अवसर था जब ३४ घोड़ों की गंगा जमुनी गाड़ी में बैठ कर अपार जन समूह मे कोई सवारी निकली हो। राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच से स्वायत्त शासन ही नहीं पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये पुकार उठाना अब तो एक साधारण बात है पर दस वर्ष पूर्व यही बात कठिन समझी जाती थी। अब तो कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को यह 'अल्टीमेटम' दे दिया है कि एक वर्ष के भीतर यदि भारत में स्वायत्त शासन

नहीं स्थापित किया गया तो भारत पुनः असहयोग कर के पूर्ण स्वतन्त्रता की ओर पैर बढ़ाएगा। यह अल्टीमेटम निरर्थक भी नहीं है। उसके प्रणेता नेताओं ने इसके लिए आन्दोलन भी प्रारम्भ कर दिया है और इस आन्दोलन से भयभीत होकर हमारी सरकार प्रारम्भ ही से दमन करने की बात भी सोच रही है। हाल ही में श्री० जे०एम०एम० गुप्त ने यह स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया है कि यदि सरकार ने दमन प्रारम्भ किया तो सारी शक्तियाँ मिलकर सरकार के विरुद्ध घोर आन्दोलन करेंगी और उस दशा की जिम्मेदारी सरकार के हाथ होगी। महात्मा गांधी जी ने भी अभी 'यग इंडिया' में लिखा है कि यदि सरकार दमन करे तो बड़ा अच्छा हो एक ओर तो उस से यह पता लग जाय कि स्वायत्त शासन (Dominion status) से सरकार का क्या मतलब है और दूसरी ओर उसके दमन करने से हमारे अन्दोलन में सहायता मिले। इतना ही नहीं कांग्रेस ने वर्तमान वर्ष के लिये देश के सम्मुख एक रचनात्मक कार्य क्रम रक्खा है और देश उस कार्य क्रम पर चलने को तैयार हो रहा है। इन सब बातों से स्पष्ट विदित होता है कि भारत अब बड़ी तीव्र गति से स्वतन्त्रता की ओर जारहा है और संसार की कोई शक्ति उसे उस मार्ग से विरत नहीं कर सकती। वह समय अब दूर नहीं है जब पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं तो स्वायत्त शासन रूपी सुखद स्वराज्य भारतवर्ष में अवश्य स्थापित हो जायगा। उसी शुभ दिन की बाट हम उत्सुकता पूर्वक जोहते हैं!

२—प्रति-शोध—

पाठकों से अविदित नहीं है कि लाहौर में सायमन सप्तक के पहुँचने पर पंजाब केशरी लाला लाजपतराय को पिटवाने वाले पुलिस अधिकारी सैण्डर्स का वध कर दिया गया। इस घटना में सरकार को राजनीति की बू आना स्वाभाविक ही है। परन्तु हम पूछते हैं की उसका उत्तरदायित्व किस पर है? वैसे तो अभी तक यह पता ही नहीं लगा कि यह हत्या किसने की थी और क्यों की थी, परन्तु एक बार यह भी मान लिया

जाय कि लाला लाजपतराय के बलिदान का बदला लेने की नीयत से ही यह हत्या हुई है, तो हम पूछते हैं कि इसकी जिम्मेदारी किस पर है? यह मानते हुए भी कि ऐसी हत्याओं से कुछ भी लाभ नहीं, सिद्धान्त रूप से उसके विरुद्ध होते हुए भी, हम तिबारा यह प्रश्न करते हैं कि इसकी जिम्मेदारी किस पर है? क्या लाला लाजपतराय पर लाठियां बरसवाना सरकार की दृष्टि में उचित था? क्या बिना लाठियां बरसवाये वहां शांति नहीं रह सकती थी? (यद्यपि वहां कोई दंगे का भय था ही नहीं!) क्या सरकार ने उन पुलिसमैनों और पुलिस आफीसरों को किसी प्रकार का कोई दंड देना आवश्यक समझा था जिन्होंने यह दुष्कर्म किया था? यदि इन सब प्रश्नों का उत्तर नकार में है तो हम फिर एक बार पूछते हैं कि इस हत्या का जिम्मेदार कौन है? किसी भी निष्पक्ष दृष्टि के व्यक्ति से यदि यह प्रश्न किया जायगा तो उसे यह कहना पड़ेगा कि इस दुर्घटना की पूरी जिम्मेदारी सरकार पर है, उसको वर्तमान नौकरशाही पर है और उसकी लाड़िली पुलिस पर है। किसी एक या अनेक अपराधी या निरपराधी व्यक्ति को इस अपराध में फांसी पर भले ही चढ़ा दिया जाय पर यदि सच्चे अपराधी को फांसी देनी हो तो हम कहेंगे कि उस शासन प्रणाली को फांसी देनी चाहिए जो आज इस देश में वर्तमान है।

३—बंगाल में हिन्दी का प्रचार—

कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर महात्मा गांधी की अध्यक्षता में राष्ट्रभाषा सम्मेलन हुआ था। सम्मेलन ने बंगाल में हिन्दी प्रचार करने के लिए जो आयोजन किया है वह संतोषप्रद तो नहीं है, हां, आशाप्रद बहुत है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के विरोधी अब कम लोग हैं—प्रायः सभी बड़े बड़े उसके पक्ष में हैं, फिर भी हमारे बंगाली भाई उसके अभी बहुत पक्ष में नहीं। कारण स्पष्ट है—वे हिन्दी से बहुत दूर हैं। इसके लिए यह आवश्यक था कि वहां हिन्दी का प्रचार जोरों से किया जाता। इस सम्मेलन ने उसका

श्रीगणेश कर दिया यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। मद्रास में हिन्दी प्रचार करना महात्मा जी के सभापतित्व में निश्चित हुआ था और उन्हीं की अध्यक्षता में उसने सराहनीय सफलता प्राप्त की। बंगाल में भी यह निर्णय महात्मा जी के ही सभापतित्व में हुआ है। क्या ही अच्छा हो यदि यहां भी प्रचार कराने में महात्मा जी स्वयं दिलचस्पी लें। कलकत्ते जैसे नगर में इस काम के लिए रुपए की कमी रहना तो सम्भव नहीं। अब प्रश्न कार्यकर्त्ताओं का रह जाता है सो हम समझते हैं अवश्य पूरा हो जायगा। हम बड़ी उत्सुकता से वहां के कार्य की प्रगति देखेंगे। हमें विश्वास है कि जो लोग भी इस काम को करेंगे, उनके सिर पर सफलता का सेहरा बंधेगा।

४–राष्ट्रभाषा का सम्मान—

विश्वविद्यालयों में राष्ट्रभाषा हिन्दी को सर्व प्रधान स्थान देने का श्रेय बंगाल प्रान्त के कलकत्ता वि० वि० को प्राप्त है। उसके पश्चात् अब तो शायद सभी प्रान्तों में उसको यथोचित सम्मान मिल गया है। पिछले दिनों में मैसूर विश्व विद्यालय ने भी हिन्दी को अपना ऐच्छिक विषय बना लिया है। सचमुच हम हिन्दी भाषी इसके लिए उसके आभारी हैं। परन्तु हिन्दी को ऐच्छिक विषय बनाने से काम नहीं चल सकता। उसे राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हुआ है तो समस्त राष्ट्र में उसका अध्ययन आवश्यक हो जाना नितान्त आवश्यक है। इस ओर और प्रान्तों में तो शायद ही कुछ हो रहा हो पर मद्रास प्रान्त में यह कोशिश हो रही है कि हिन्दी पढ़ना सबके लिए अनिवार्य्य हो जाय। हम समझते हैं जिस प्रकार विश्व विद्यालयों को एक भिन्न भाषा भाषी वि० वि० (कलकत्ता) ने मार्ग-प्रदर्शन किया था उसी प्रकार अनिवार्य्य शिक्षा के सम्बन्ध में भी मार्ग-प्रदर्शन का काम एक भिन्न भाषा भाषी प्रान्त (मद्रास) ही करेगा। यहां हिन्दी के निज प्रान्त में तो कितने ही कालेज ऐसे हैं जिनमें अभी तक हिन्दी को ऐच्छिक विषय के रूपमें भी पढ़ाने का प्रबन्ध नहीं हुआ है। और तो और प्रान्त के सब से बड़े कालेजों में

नाम लिखाने वाले आगरा कालेज में हिन्दी पढ़ाने के सम्बन्ध में तीन चार साल से आन्दोलन हो रहा है परन्तु वहां भी अभी तक उसकी सुनवाई नहीं हुई। सच बात तो यह है कि हिन्दी की जितनी बे-कदरी उसके अपने प्रान्त में है उतनी शायद कहीं भी न होगी! क्या हिन्दी भाषी हिन्दी के सम्मान रक्षा के लिए कुछ करेंगे?

५—अलवर महाराज की रजत जयन्ती—

अलवर में पिछले दिनों सिलवर जुबली की खूब धूमधाम रही। बाहर से कितने ही राजा महाराजा और अंग्रेज अतिथि अलवर पधारे थे, जिनके स्वागत सत्कार में लाखों रुपया खर्च किया गया। झंडी फाटकों, रोशनी, आतिशबाजी, सजावट, महमानदारी, मोटर, तांगा, वर्दी आदि में प्रजा की गाढ़ी कमाई का लाखों रुपया व्यय हुआ। खूब धूमधाम से महाराज की सवारी का निकलना, दरबार खास और दरबार आम का होना, अभिनन्दन पत्रों का दिया जाना, २५ साल की रिपोर्ट का सुनाना, कर्मचारियों को खिताब का देना, कैदियों को छोड़ना, खेल, तमाशे सिनेमा थियेटर आदि सैकड़ों काम इस अवसर पर हुए परन्तु शासन सुधार या प्रजा की भलाई की कोई बात करने की घोषणा हुई हो, सो हमें ज्ञात नहीं। हमारे भारतीय नरेशों की जैसी अवस्था हो रही है उसे देख कर हमें रह रह कर खेद होता है। तमाशा तो यह है कि इन्दौर, नाभा और भरतपुर की दशा देख कर भी अन्य नरेशों की आंखें नहीं खुलतीं। अब भी ये घरफूंक तमाशा देखने में लगे हुए हैं।

६—अफ़गानिस्तान का भाग्य—

सुधार-वीर अमानुल्लाह ने यूरोप से लौट कर पिछले एक वर्ष में सुधारों का जो तांता बांधा था उसका परिणाम अच्छा न हुआ। शाह ने जो सुधार वहां प्रचलित किए थे उनमें से अधिकांश जनता के लिए हितकर ही थे। लड़के और लड़कियों की शिक्षा अनिवार्य करना, उन्हें विदेशों में शिक्षा के लिए भेजना, परदे की प्रथा बन्द करना आदि

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।

Regd. No. A 1630

ॐ

वीर-सन्देश

(वीर-रस प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

भाग २ | मार्गशीर्ष सं० १९८५, दिसम्बर १९२८ | अङ्क १२

सम्पादक—महेन्द्र

महावीर प्रेस, आगरा से प्रकाशित

वार्षिक मूल्य २)   एक अङ्क का मू० ≡)

विषय-सूची

वीर-सन्देश



पंजाब केशरी

स्वर्गीय लाला लाजपतराय

सायमन कमीशन के आगमन के समय पुलिस ने इस पुण्य पुरुष पर लाठियों का प्रहार किया था। डाक्टरों के मत और लोगों के अनुमान से इसी कारण आपकी मृत्यु हुई। भारतीय एसेम्बली ने इसकी जांच करने के लिए एक कमेटी बनाई जिसमें पंडित मोतीलाल नेहरू आदि सात सज्जन हैं। एक महीने में यह कमेटी अपनी रिपोर्ट देगी।

महावीर प्रेस, आगरा।

ॐ

वीर-संदेश

(वीर-रस-प्रधान सचित्र साहित्यिक मासिक-पत्र)

जाग्रत जगमग हो उठे, जिससे फिर यह देश।
सुना रही उन्नति-उषा, वही "वीर-सन्देश"॥

भाग २ } आगरा—मार्गशीर्ष सं० १९८५, दिसम्बर १९२८ { अङ्क १२

समरोत्साहन

[लेखक—कविवर श्री० 'आनन्द' जी]

गरजि गरजि उठो सिंह से सपूत वीरो,
घुमड़ि घुमड़ि रण भूमि में बिखरि जाउ।
तड़पि तड़पि तरवार के प्रहार करो,
कड़कि कड़कि आज गाज बनि गिरि जाउ॥
काटि काटि कट्ट कट्ट कटक कुद्दाल करो,
पटकि पटकि अरि पाटि पाटि परि जाउ।
तरि जाउ रण की त्रिवेनी की प्रचण्ड धार,
करि जाउ देश को स्वतन्त्र परि करि जाउ॥

साहित्य-शास्त्र और नायिका-भेद

[लेखक—श्री० किशोरीदास जी, वाजपेयी शास्त्री]

साहित्य-शास्त्र का सब से पहले साङ्ग निरूपण अग्निपुराण में मिलता है। उसी को बाद में श्री भरत मुनि ने स्वतन्त्र रीति से निरूपण करके एक पृथक् शास्त्र का रूप दिया। फिर तो संस्कृत भाषा में साहित्य विषयक एक से एक बढ़ कर ग्रन्थ बने, और इस विषय का खूब विवेचन हुआ। संस्कृत के साहित्य-शास्त्रियों ने जिस बात को लिया है, उसके विषय में फिर और किसी को कुछ कहने की गुञ्जायश नहीं छोड़ी है। संस्कृत में जैसा कुछ साहित्य शास्त्र पूर्ण है, संसार की और किसी भी भाषा का वैसा आज तक नहीं हो पाया है।

परन्तु, युग-प्रवाह मे बह कर हमारे साहित्य के आचार्यों ने कहीं कहीं ग़लती भी की है। हां, इस शास्त्र के प्राचीनतम आचार्यों में वैसी ग़लतियों का बिलकुल अभाव है। उदाहरण के लिये यही ले लीजिये कि शृंगार को जो 'रस-राज' की पदवी अर्वाचीन आर्यों ने दे डाली है, सो बिलकुल ग़लत है। शृंगार नहीं, किन्तु वीर वस्तुतः 'रस-राज' है। सम्भवतः यह ग़लती अर्वाचीन कवियों और आचार्यों ने आश्रम-दोष के ही कारण की है; क्योंकि तात्कालिक राजा-महाराजा अत्यन्त काम-ग़ुलाम हो गये थे और वीरता की गन्ध भी उनमें न रह गयी थी। * अस्तु—

इसी प्रकार साहित्य-शास्त्र में नायिका-भेद ठूँसने की बात है। संस्कृत भाषा के प्राचीन साहित्य-ग्रन्थों में नायिका-भेद के कहीं दर्शन नहीं होते। इधर केवल 'साहित्य-दर्पण' में ही प्रधान रूप से विस्तृत नायिका-भेद का निरूपण है। ध्यान रखना चाहिये कि साहित्य-दर्पण बिलकुल अर्वाचीन ग्रन्थ है। इसकी रचना उस समय हुई थी, जब ऐश

* इस विषय को भली भांति जानने वालों को हमारी 'साहित्य-मीमांसा' नामक पुस्तक "साहित्य-रत्न-भण्डार, किनारी बाजार, आगरा" से मंगाकर पढ़ना चाहिये। —लेखक

परस्त मुसलमानों का भारत में राज्य था और छोटे-मोटे सभी हिन्दू राजा भी काम के कीड़े बनकर भारत-मानस को विकृत कर रहे थे। परन्तु, सत्य बात सत्य ही रहती है। उसका पक्ष सभी सहृदय करते हैं। साहित्य-दर्पण के बाद 'रस गंगाधर' नामक उच्च कोटि के साहित्य-ग्रन्थ की रचना पण्डितराज श्री जगन्नाथ ने की। रस गंगाधर में भी नायिका भेद का जिक्र नहीं है। कहने का मतलब यह कि अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के ही लिये संस्कृत में किसी किसी ने नायिका-भेद का असम्बद्ध और अनावश्यक निरूपण किया है, जो उनकी "वारविलासिनी भुजङ्गता" को स्पष्ट करता है।

इधर हमारे हिन्दी भाषा के कवियों ने तो नायिका-भेद लिखने में क़लम ही तोड़ दी है। बेहद बाल की खाल निकाली है! इनके नायिका भेदों और नख-शिख-वर्णनों को पढ़कर मन में क्रोध, आश्चर्य, घृणा और करुणा आदि भावों का मन पर एकदम आविर्भाव हो जाता है और एक प्रकार की व्याकुलता सी छा जाती है। यद्यपि हिन्दी के कवियों और साहित्याचार्यों ने साहित्य-शास्त्र (काव्य का लक्षण-ग्रन्थ) लिखने में उतनी सफलता नहीं पायी है—विवेचना प्रस्फुटित नहीं हुई है; पर तो भी उनकी कविता अत्यन्त चमत्कारिणी है, जो नायिका-भेद और नख-शिख वर्णन का उदाहरण स्वरूप है।

जो कुछ भी हो, नायिका-भेद साहित्य-शास्त्र का विषय नहीं है। वास्तव में यह काम शास्त्र का विषय है। अवस्था-भेद या मनो-भावों की भिन्नता के अनुसार नायिकाओं किंवा नायकों का भेद होता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि नायिकाओं के जितने भेद और उपभेद किये हैं, नायकों के भेद उनके शतांश भी नहीं किये। क्या पुरुषों में मनो भावों का प्रस्फुरण नहीं होता, या इनमें अवस्था आदि कृत भेद ही नहीं होते? हों भी, तो होते रहें! उनसे मतलब क्या है। मतलब तो उन्हें नायिकाओं से था। ख़ैर, हमारे कहने का मतलब यही है कि नायिका-भेद या नख-शिख साहित्य-शास्त्र का विषय नहीं, काम-शास्त्र का है।

यदि कहा जाय कि शृंगार के वर्णन में नायिका-भेद कवि को उपयोगी है, इसलिये साहित्य-शास्त्र में उसका वर्णन किया जाता है और इसी कारण वह इस शास्त्र का विषय भी है, तो हम कहते हैं कि संसार में जितनी भी प्रत्यक्ष या परोक्ष वस्तुएं या भाव हैं, सभी कवि के लिये उपयोगी हैं, पर उन सबका वर्णन साहित्य-शास्त्र में नहीं होता और न वे सब साहित्य-शास्त्र के विषय ही हैं। उनका ज्ञान तो कवि अपनी प्रतिभा और सुविधा के अनुसार विभिन्न रीति और विभिन्न शास्त्रों से करता है। साहित्य-शास्त्र कोई भानमती का पिटारा नहीं है, जो उसमें प्रत्येक बात ठूंस दी जाय। अन्यथा, जीव, ब्रह्म और प्रकृति के स्वरूप का निरूपण तथा संसार आदि की असारता का विशदीकरण भी साहित्य-शास्त्र में होना चाहिये और ये सब उसके विषय होने चाहिएँ; क्योंकि शान्त रस का वर्णन करते समय कवि को इन सब बातों की जरूरत पड़ती है और इसी लिये ये सब भी साहित्य शास्त्र के विषय कहे जाने चाहिये; पर, क्या कोई बुद्धिमान् इस बात से सहमत होगा ? कभी नहीं। ये सब विषय साहित्य के नहीं, वेदान्त शास्त्र के विषय हैं और शान्त रस के कवि को इनके ज्ञान का सम्पादन वहीं से करना होगा। इसी प्रकार वीर रस के कवि के लिए घोड़ों की जाति और चाल आदि के ज्ञान की आवश्यकता है; तो क्या इनका निरूपण साहित्य-शास्त्र में होना चाहिये। हरगिज़ नहीं। ये सब विभिन्न विषय है। साहित्य-शास्त्र से इन सबका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। इसी प्रकार नायिका-भेद भी साहित्य-शास्त्र से बिलकुल जुदी चीज़ है। उसे साहित्य शास्त्र में घुसेड़ना बिलकुल अज्ञान और हठ है।

साहित्य शास्त्र का विषय है शब्द और अर्थ का सूक्ष्म विवेचन—वाणी की कारीगरी; बस। रस, गुण, अलंकार, रीति और दोष आदि जितने विषय शब्द अथवा अर्थ से सम्बन्ध रखते हैं, वे सब साहित्य के अङ्ग हैं। फलतः साहित्य शास्त्र को हम सूक्ष्म व्याकरण कह सकते हैं। काव्य के लक्षण शास्त्र को साहित्य कहते हैं और काव्य में शब्द तथा

अर्थ ही प्रधान है। लिखा है—वाक्यं रसात्मकं काव्यम्—रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। और, वाक्य शब्दों का समूह है। किसी का कहना है—"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वाऽपि।" अर्थात्, दोष रहित, गुणयुक्त शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं, फिर चाहें उन में कहीं कहीं अलंकार न भी हों। इसमें भी शब्द आया। आप स्वयं अनुभव से देखें कि काव्य में शब्द ही सब कुछ है, या नहीं। यदि है, तो फिर साहित्य शास्त्र में उसी का विवेचन होना चाहिये और वही उसका विषय है। ऐसी दशा में नायिका भेद को कौन अनुन्मत्त साहित्य शास्त्र का विषय कह सकता है?

यही बात नाट्य प्रकरण की है। साहित्य से नाट्य शास्त्र एक पृथक् वस्तु है। भरत मुनि ने साहित्य-सूत्रों से पृथक् ही नाट्य-सूत्रों की रचना की है—दोनों शास्त्र पृथक् माने हैं, यद्यपि दोनों में गहरा सम्बन्ध है और आर्यों ने भी इन दोनों को पृथक मान कर साहित्य-शास्त्र में नाट्य शास्त्र का विषय नहीं ठूंसा है; पर साहित्य दर्पण में नाट्यप्रकरण भी है।

यहां यह सब लिखने का मतलब यही है कि साहित्य शास्त्र को लोगो ने गन्दा कर डाला है—खूब मनमानी की है। साहित्य के ग्रन्थ नायिका-भेदों से भर जाने के कारण साहित्य पर शृंगार का सिक्का सा जम गया है और इस से दूसरे रसों को, विशेषतः वीर रस को बड़ा धक्का लगा है। कवियों का मन प्रवाह उधर ही बह गया है। परन्तु, अब हमारे साहित्याचार्यों को सोचना-समझना चाहिये और साहित्य का परिस्कार करना चाहिये। पवित्र साहित्य से नायिका भेद और नख-शिख का कूड़ा कचरा साफ कर फिर उसे निर्मल कर देना चाहिये। और नये साहित्य ग्रन्थों की ऐसी रचना करनी चाहिए, जिसमें नायिका-भेद या उच्छृंखल शृंगार की वह भरमार न होकर वीर का साम्राज्य हो।

हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि अब भी हमारे साहित्यिक बन्धु इधर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

खून के आंसू

[लेखक—श्री० रमेश वर्मा]

कमला अपने अंचल की झोली में कुछ लिए जा रही थी। मही-पाल ने मार्ग में रोकते हुए कहा " कहो क्या लिये जा रही हो।

लड़की ने सरल भाव से उत्तर दिया " कुछ नहीं भैया, यह जरा गुड़ लिये जा रही हूं।" " अच्छा यह गुड़ खाना कब से सीखा "—युवक ने कुछ मन बहलाते हुए ढंग से कहा। " छोटे लाला के जन्मोत्सव उपलक्ष में यह बांटना है"—कहते हुए लड़की चली गई।

युवक किसी प्रकार रोककर उससे अधिक बातें करना चाहता था आगे बढ़कर बोला 'कमला ! जरा ठहरो तो' कमला ने पीछे मुड़-कर देखा और यह कहते हुए कि मुझे जल्दी घर पहुँचना है, चल दी। महीपाल ने थोड़ा आगे बढ़कर कमला का अञ्चल झटक लिया और आवेश पूर्वक बोला "क्या सुना नहीं था ? इतना गरूर, बस दो दिन और देखता हूं इसके बाद..........."

कमला के सिरसे दुपट्टा हटते ही उसके शरीर का ऊर्ध्व भाग नंगा हो गया था। झटपट उसने अपना दुपट्टा ओढ़ा और सतर्कता से हटकर खड़ी हो गई। उसके मुंह से कुछ जवाब न निकला पर उसकी क्रोध और आँसू भरी आँखों से प्रतिहिंसा और अपमान का बदला लेने के भाव प्रगट हो रहे थे। इतने में कुछ आदमो उधर से आ निकले विचारी लड़की नीचा सिर किए हुए, अपमान का घूंटसा पीकर चलदी। मही-पाल भी एक ओर को चल दिया। लोगों में महीपाल की इस नीचता और धूर्त स्वभाव की देर तक चर्चा होती रही।

\+ \+ \+ \+

छः दिन बाद का जिकर है, जब कि महीपाल ने कमला के साथ अपमानजनक बर्ताव किया। रामभजन, कमला के पिता, के घर पर राग रंग हो रहा था। पास पड़ौस की स्त्रियां आकर मंगलगान कर रही

थीं। घर के भीतर पण्डित लोग कुछ संस्कार करा रहे थे। संभवतः आज कमला के भाई की छटी पुजी थी। इसी समय दो अजनबी व्यक्ति आकर रामभजन के दरवाजे पर खड़े होगए। लोगोंने उनको नहीं पहिचाना, जब तक कि महीपाल ने आकर उन्हें रामभजन को गिरफ्तार कर लेने का संकेत न दिया ज्योंही रामभजन ने घर से बाहर निकल कर आगन्तुक व्यक्तियों के बारे में पूछना चाहा कि उन्होंने अदालती वारन्ट दिखला कर रामभजन को गिरफ्तार कर लिया। बस रामभज के पकड़े जाते ही आनन्द का घर शोक-भवन बन गया। गायन वाद्य बन्द हो गया। लोग इधर उधर सटकने लगे, स्त्रियां भी अपने २ घरों को लम्बी बनी। महीपाल के भय के कारण किसी ने कुछ बोलना उचित न समझा।

कमला घर के दरवाजे पर खड़ी हुई अश्रु-बिमोचन कर रही थी उसके बापको सिपाही पकड़े लिये जा रहे थे। कमला का छोटा भाई पिता की टांगों से लिपट गया और उसे छोड़ न सका उधर घर में कमला की मा करुण रुदन कर रही थी। किसी की समझ में न आया कि यह क्या बात थी कारण कुछ भी हो लेकिन अदालत के समन से यह प्रगट होता था कि यह गिरफ्तारी बकाया लगान की डिगरी अदा न करने के कारण हुई है। किन्तु रामभजन को इसका कुछ भी हाल मालूम नहीं था वह तो और भी आश्चर्य में रह गया जब उसने सुना कि उसका कुमरपाल (महीपाल का पिता) की जमीदारी का सब खेत भी छूट गया और महीपाल रामभजन के लिखे हुए सौ सौ रुपये के दो स्टाम्पों की वसूलयाबी में उसके घरका सब सामान पौढ़े ढोर, भी नीलाम करा लेगा।

\+ + + +

शरद्काल की वर्षा हो चुकी थी पर बादलों से आकाश अभी घिरा हुआ था, कभी कभी बूंदें भी पड़ने लगती थीं। फूस का छप्पर चारों ओर से टपटप कर चू रहा था। सिवाय एक खाटके जगह के कहीं तिलभर भी ठौर सूखा न था। कभी बिजली कड़कती थी कभी

वर्षा होने लगती थी, पिछवाड़े की तरफ गीदड़, लोमड़ी आदि जंगली जानवर अपशकुन सूचक शब्द करते थे। उनके साथ ही गांव के कुत्ते भी भूकने लगते थे। मा का सिर दोनों हाथों से पकड़े हुए खाट के सिर-हाने की तरफ जमीन में कमला बैठी हुई थी। चिरकाल के बुखार में कमला की मा का शरीर सूखकर कांटा होगया था। तिस पर आज बुखार का वेग अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया था। भगवती कमला की मा का शरीर तप्त लोहा जैसा जल रहा था। बेहोशी की दशा में वह कभी ऊल जलूल बकने लगती थी, कभी लम्बी सांस खींचती थी और कभी हाथ पैर पटकती थी कमला के पास दूसरा कोई भी आदमी न था। छोटे भाई को एक कोने में गूदड़ों से लपेटकर सुला दिया था। दिया मन्द मन्द रोशनी से सामने टिमटिमा रहा था। कमला ने धीमी आवाज से पुकारा "मा मा।"

उत्तर कुछ न मिला।

कुछ समय बाद भगवती ने स्वयं करवट बदली और कहा—कमला!

'हां मा' कमला ने जवाब दिया।

रात कितनी होगी?

आधी रात का समय होगा।

क्या तुम सोई नहीं हो?

नहीं मा

जाओ बेटी सो रहो तुम······

कुछ देर के लिए आवाज फिर बन्द हो गई कमला निस्तब्ध बैठी रही।

तो तुम सोओगी नहीं कमला?

'हां मां सोती हूँ' कह कर कमला ने वहीं दीवार के सहारे अपना सिर टेक लिया किन्तु थोड़ी ही देर में रोगी को छटपटाते देख उसका सिर पकड़ लिया और बोली—"मां कैसे हो?"

कमला ! इस समय तेरे बाप के दर्शन और हो जाते तो—

कमला रो पड़ी पर फिर जोर से हृदय कड़ा किया, बोली-मेरी मा !

कमला रोओ मत, तो क्या उन लोगों ने कहा था तेरे बाप कब तक आ जायेंगे ?

मा, वे आते ही होंगे।

आते ही होंगे ! कमला झूँठ मत बोल। दुष्ट महीपाल ......

उस नर पिशाच का नाम मत लो, मा !

नहीं बेटी मैं कहती हूं, पर मेरे बाद तुम ......

मैं, मा मैं यहां थोड़े ही रह जाऊँगी !

अच्छा मुझे छोटे लाला का मुँह और दिखा दे !

मा, क्या सपना देख रही हो दादा की गिरफ्तारी से चार दिन बाद ही वह मर गया था।

अरी नहीं तुझ से छोटा लाला !

इतने में किवाड़ों पर खटका हुआ, दोनों की आंखें उधर लग गईं कमला की चीख सी निकल गई भगवती की लम्बी हिचकी के साथ आंखें बन्द हो चलीं। दुष्ट महीपाल अपने नग्न वेश में सामने खड़ा हुआ दीख पड़ा।

वीरोत्साह

[लेखक—श्रीयुत डा० सुवर्णसिंह जी वर्म्मा]

तड़प तड़प कर उठो शेर की तरह गिरो बिजली बन कर।
ध्रुव की तरह डटो मैदाँ मे सीना सिपर करो तन कर॥
दुश्मन हो हैरान न जाने पाये मारो चुन चुन कर।
वार न हो बेकार, रहो हुशियार, बढ़ादो गिन गिन कर॥
देखे जोश खरोश तो दिल दुश्मन का दंग हो।
तन मन धन कुर्बान कर आजादी की जंग हो॥

भीष्म पितामह

[लेखक—श्री० मदनगोपालजी पोद्दार बी० ए०]

भारतवर्ष में उत्पन्न, हिन्दी भाषा का ज्ञाता शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जिसने पूज्य भीष्म पितामह का नाम न सुना हो। जिन लोगों ने महाभारत का अवलोकन किया होगा वे तो विशेषतया पितामह से परिचित होंगे। भीष्म पितामह एक आदर्श व्यक्ति थे जिनके जीवन चरित्र से हरएक मनुष्य कुछ न कुछ उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए उपदेश रूपी मार्ग निकाल सकता है। यहां पर उनका पूरा वृतान्त न देकर केवल उनका संक्षिप्त जीवन चरित्र और उसके ग्रहणीय साधारण उपदेश लिखना ही पर्याप्त होगा।

पितामह, महाराज शान्तनु के पुत्र थे। इन्हीं शान्तनु से महाभारत का कथा भाग प्रारम्भ होता है। भीष्म जी के बचपन का इतिहास अद्भुत, मनोहर, उपदेश प्रद एवं श्रवणीय है। पर यहां इतना कहना कि भीष्म जी महाराज शान्तनु द्वारा स्त्री रूप श्री गंगाजी के गर्भ से उत्पन्न और आठवें वसु का अवतार थे यथेष्ट है। इनका पहला नाम देवव्रत था। इनके नाम का परिवर्तन इस प्रकार हुआ। एक समय महाराज शान्तनु मृगया को गये और बन मे अनाघ्रात पूर्व परिमला उनकी घ्राणेन्द्रिय को परि पूर्ण करती हुई अनुभव हुई। वे मधुकर की भांति उस गन्ध को खोज में चले। चारों तरफ दौड़ते हांफते अन्त में उस स्थान पर पहुँच गये। वह अतीव मनो मोहक गन्ध एक धीवर की कन्या के शरीर से निकल कर समस्त वन मण्डल को सुगन्धित एवं प्राणियों के हृदय को आनन्द प्रदान कर रही थी। महाराज ने उसके सौन्दर्य और प्रतिमा को देखकर अपने आपको अति कष्ट से उसकी ओर आकृष्ट होने से रोका और उसके पिता के पास जाकर उसका विवाह अपने साथ करने को कहा। धीवर ने कहा, महाराजा आपके ऐसा उच्च कुलोत्पन्न वर शायद ही मेरी लड़की के भाग्य में बदा हो। मैं आपके इस प्रस्ताव को स्वीकार

करता हूँ पर एक प्रतिज्ञा आपको करनी पड़ेगी कि आपका उत्तराधिकारी इसी लड़की की सन्तान हो अन्य कोई नहीं। महाराज निरुत्तर होगये और खेद से पीछे पाँव लौट आये! महाराज के हृदय में उस मूर्ति ने अपना स्थान बना लिया था। उसके बिना महाराज को चैन नहीं। सब राजकार्य छोड़ दिया और चिन्तित होकर महल के अन्दर ही रहने लगे। उन्हें कुछ भी अच्छा न लगता था मन्त्री गणों के उनको प्रसन्न करने के उद्योग निरर्थक थे। उस रोग दवा की दशा से वे अनभिज्ञ थे। यह हाल देखकर देवव्रत बड़े चिन्तातुर हुए और पिता की इस दशा का कारण जानने का भरसक उद्योग किया। अन्त में उन्हें कारण मालूम हो गया और मन्त्रियो को साथ ले दासराज के पास उसकी पुत्री सत्यवती को मांगने के लिए कूंच कर वे सब लोग वहां पहुँचे और देवव्रत जी ने धीवर से कहा कि हे दासराज तुम अपनी सुशीला नव यौवना व अद्भुत परिमल से पूर्ण सत्यवती को मेरे पिता के साथ विवाह दो। धीवर ने कहा—महाराज! आपकी आज्ञा सिर माथे पर, पर—इतने में ही देवव्रत जी ने कहा—हे दासराज मुझे तेरी शंका मालूम है और मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं कभी भी राज्यासन पर न बैठूँगा न उसके लिये विरोध करूंगा। इस पर भी दासराज को सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा महाराज! आपकी संतान—देवव्रत अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से सब मतलब मत समझ गये और ऊंचा हाथ उठाकर भीष्म प्रतिज्ञा की—"मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा और विवाह भी न करूंगा।" इतना सुनते ही उपस्थित मण्डली ने साधु साधु कहकर दांतो तले अङ्गुली दबाई। दासराज का रोम रोम प्रसन्न होगया। ये सत्यवती को ले आये और पिता के साथ विवाह कर दिया। तभी से आपका नाम भीष्म प्रख्यात हुआ। पितृ भक्ति की पराकाष्ठा को पहुँच गये और अपने सांसारिक सुख के स्वार्थ की तनिक भी परवा न की। उपरान्त महाराज शान्तनु का देहान्त होगया और भीष्म पर सब भार आ लटका। आपही के उद्योग से पांडव-कौरव को इतनी अच्छी अस्त्र शस्त्र विद्या सिखलाई गई कि उस

समय में इनसे प्रबल कोई राज्य न रहा। ये आप ही की आज्ञा पालन न करने का फल था कि दुर्बुद्धि दुर्योधन द्वारा महाभारत रूपी युद्धाग्नि में अनेकों वीर स्वाहा होगये और हमेशा के लिये परलोक को चले गये। और ये आप ही की आज्ञा पालन करने का फल था कि पांडव धर्म पथ पर टिके रहे और सदा विजयी हुए।

भीष्म जी पराक्रम मे अद्वितीय थे। आप काशिराज की पुत्री अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका के स्वयंबर में जाकर समस्त राजाओं को पराजय करके अपने सौतले भाइयो के लिये उन्हे ले आये। आप दयालु थे और मनुष्य मात्र से सहानुभूति रखते थे। जब अम्बा ने कहा कि मेरी इच्छा विचित्र वीर्य को बरने की नही है तो आपने उसे आज्ञा देदी वह कहीं भी जा सकती और मन चाहे मनुष्य के साथ विवाह कर सकती है। यही अम्बा इनसे क्रुद्ध होकर अगले जन्म में इनके मारणार्थ शिखण्डी रूप में उद्भव हुई थी। ये वीरों को प्रेम भी खूब करते थे। अर्जुन को तो ये प्राणों से भी प्रिय समझते थे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि आप इनको युद्ध समय में अपनी मृत्यु का कारण बतलाते हुए बिलकुल नहीं हिचकिचाये। और जब दूसरे दिन युद्ध मे शिखण्डी को आगे करके अर्जुन इनसे लड़ने लगा तो आपने (शिखण्डी को) आगे देख युद्ध करना बंद कर दिया और शत्रुओं की मार सहते रहे। इसका एक मात्र कारण ये था कि आप स्त्रियों पर बाण न चलाते थे। प्राण छोड़ दिये प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी, धन्य है!

धर्मात्मा पुरुषों में तो आप अग्रगण्य थे। धर्म को इतना निभाया कि पराकाष्ठा होगई। ये इसीलिये धर्मात्मा पांडवों को चाहते थे पापात्मा कौरवों को नहीं। उनकी तरफ से लड़ते थे पर चाहते थे तन मन से पांडवों की विजय। पर इस प्रेम जाल में फंस कर आपने धर्म नहीं गंवाया। जब आप युद्ध स्थल मे आते थे तो घोर शत्रुओं के समान पांडवों से युद्ध करते थे, स्नेह होने के कारण उस युद्ध में कुछ भी त्रुटि न थी। कहां तो वह इतना प्रगाढ़ प्रेम और कहा इतनी निर्दयता का युद्ध कि उस

के सहने में अर्जुन के सिवाय सब असमर्थ हों। धर्म के ज्ञाता और धर्म के उपदेशक होने का सब से बड़ा प्रमाण महाभारत शान्ति पर्व में मिलता है जब कि ५८ रोज ब्रह्मचर्य के प्रभाव से शरशय्या में पड़े हुए पांडवों को उपदेश दिया है। यदि महाभारत में शान्ति और भीष्म पर्व निकाल लिया जाय तो शायद ही उसका इतना महत्व रहे। आपके ब्रह्मचर्य के प्रभाव से काल की भी गति आपके समीप आने से रुद्ध होती थी। और मृत्यु इनको आपकी बिना इच्छा के न मार सकी। आपने स्वतः ही अपनी इच्छा से अन्त में प्राण त्याग किये थे। आप श्रीकृष्ण के पूर्ण भक्त थे। इस भक्ति में लवलीन रहने पर भी आप अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध न जाते थे। आपने एक दफे प्रतिज्ञा की थी कि आनन्द कन्द नन्द नन्दन भक्त रंजन श्रीकृष्ण को युद्ध स्थल में अस्त्र लेने के लिए बाध्य करेंगे क्योंकि श्रीकृष्ण नियमानुसार उस समय अस्त्र न ले सकते थे। पर आप अपने अतीव पराक्रम से उसमें कृत कार्य होगये।

कहां तक लिखा जाय। लेखनी में इतनी शक्ति नहीं कि बाल ब्रह्मचारी–कौरव कुल तिलक भीष्म पितामह के गुणगान को प्रशंसा समाप्त हो सके।

रक्त की सरिता

[लेखक—श्री० पं० मदन शर्मा, झालरा पाटन सिटी]

बिना अस्त्र शस्त्र ही के, प्रबल प्रचण्ड बन,
ठोक भुज दण्ड बढ़े, जावो रण-रङ्ग में।
सहे जावो बल्लम बांस, बर्छी, कटार, तेग,
तेज तलवार के हों, घाव अङ्ग अङ्ग में॥
झुण्ड के झुण्ड रुण्ड, मुण्डन के लगादो ढेर,
प्रलय मचादो सिंहों, चहुँ ओर जङ्ग में।
छक्के छुड़ादो रक्त वर्ण-सा मचादो फाग,
सरिता बहादो वीरो, रक्त ही के रङ्ग में॥

जनता की मनोवृत्ति

[लेखक—एक मनचला]

जनता की मनोवृत्ति किस ओर अधिक झुकी हुई है, इस बात का पता उसके कार्यों से ही चलता है।

शृंगार नहीं, कुत्सित शृङ्गाराभास के अत्यधिक मन्थन से जो हलाहल निकला और उसने हमारे समाज की जैसी कुछ दुर्दशा की वह किसी से छिपा नहीं है। इस शृंगाराभास ने उत्साह-प्रकृतिक वीर रस को एक दम दबा दिया! यह उत्साह ही, जो जीवन का मूल है, जब मुमूर्षु किंवा मृत हो गया तब फिर जीवन का पूछना ही क्या है। सब कुछ सामने है!

जनता की मनोवृत्ति अभी तक बदली नहीं है। इतना सब भोग चुकने पर भी उसकी मानसिक स्थिति में कुछ भी परिवर्तन नजर नहीं आता। यद्यपि जबानी जमा-खर्च खूब हुआ करता है।

यद्यपि आजकल सभा-समाजों में वीरता के गीत सुनाई पड़ने लगे हैं। बड़े बड़े नेता इस गुण को लाने के लिए सचेष्ट हैं परन्तु तो भी जनता की मनोवृत्ति किधर है, यह कुछ छिपी बात नहीं है। साफ है कि अभी तक भारतीय प्रजा शृङ्गाराभास के उस कीचड़ से निकली नहीं है। इसके प्रमाण हैं।

आप देखें कि हिन्दी में उच्च श्रेणी की कितनी पत्रिकाएं और पत्र हैं और उनमें से कितनी ऐसी हैं जो विशुद्ध वीर भाव के प्रचार में व्यस्त हों। आप देखते हैं कि प्रायः सभी बड़ी बड़ी पत्रिकाएं उसी कुत्सित मनोवृत्ति की ओर झुकी हुई हैं। वे अपने पाठकों का दिल खुश करने के लिए भरपूर चेष्टा करती हैं। तरह तरह की कविताएं, कहानियां और तसवीरें उनके दिल को खुश करने के लिए निकाली जाती हैं। हमारा तात्पर्य किसी की निन्दा में नहीं है। वस्तुस्थिति ही प्रदर्शित करना हमारा उद्देश्य है। अतः उदाहरण के तौर पर कुछ लिखना द्वेष न समझना चाहिए। हमारे कथन की

पुष्टि के लिए 'सुधा' की साहित्य-संख्या नं० २ में प्रकाशित 'मधुर मिलन' और 'स्नान' नाम से जो चित्र हैं, उन्हें देखिए। स्त्री शिक्षा के प्रधान पत्र चांद में प्रकाशित 'चुम्बन' आदि कविताएँ पढ़िए और देखिए कि जनता की मनोवृत्ति किधर है। जनता को खुश करके ग्राहक संख्या बढ़ाने के लिए यह सब किया जाता है। चित्र तो 'चांद' में अभिसारिकाओं तक के प्रकाशित होते हैं। आजकल की जनता के मन का अनुसरण ये पत्रिकाऐं करती हैं, इसीलिए इनके ग्राहक बने हुये हैं।

अब इधर दूसरी ओर देखिए। इधर विशुद्ध मनोभावों को लेकर 'त्यागभूमि' और' 'विशाल भारत' का अवतार हुआ है। इन दोनों का उद्देश्य कुछ और है। ये जनता की मनोवृत्ति का अनुसरण न करके उसे दूसरी ओर लगाने में व्यस्त हैं। फल इसका यह है कि इनके यहां ग्राहकों का रोना ही पड़ा रहता है! अभी तक इनके ग्राहक पर्याप्त संख्या में नहीं हो सके हैं। इसका कारण यही है कि ये न तो वैसे चित्र देते हैं और न वैसी कविता, कहानियां ही। तब फिर भारतीय जनता उनकी ग्राहक कैसे बने? इससे जनता की मनोवृत्ति का पता क्या नहीं चलता?

और आगे बढ़िए। जनता मे वीर भाव का प्रचार करने के लिए 'वीर-सन्देश' और 'महारथी' ये दो मासिक पत्र कुछ दिनों से निकल रहे हैं। परन्तु, शोक के साथ लिखना पड़ता है कि ये बेचारे बहुत ज्यादा घाटा खाकर जी रहे हैं परन्तु अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ हैं। पर, यह कब तक चलेगा? क्या इससे जनता की मनोवृत्ति का पता नहीं चलता?

हमें इस मनोवृत्ति को बदलना चाहिये। हमें वीर-भावों का संग्रह करना चाहिए। यह सत्साहित्य के द्वारा ही हो सकता है। परन्तु ऐसे साहित्य की ही उपेक्षा की जा रही है! ऊपर सामयिक साहित्य का जिक्र किया गया है। यही दशा सब जगह है। अभी अभी 'वीरसतसई' का प्रादुर्भाव हुआ है। उसपर मुग्ध होकर सम्मेलन ने उसके रचयिता को 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' द्वारा सत्कृत किया है। किन्तु बहुत से साहित्य-धुरन्धर इससे खिन्न हैं! उनकी समझ में इस वर्ष इस पारितो-

षिक का दुरुपयोग किया गया है ! यहां हम इस विषय पर अधिक न लिखेंगे । सहृदय स्वयं जांच कर लें ।

यह वस्तुस्थिति है । हमें इसे पलटना चाहिये । अन्यथा हमारा कल्याण नहीं । इसका उपाय यही है कि वीर साहित्य का प्रचार किया जाय ।

वीर-प्रतिज्ञा

[लेखक—श्री० कवि कर्ण जी]

१

धारण करूँगा गुण वीरता के जीवन में,
छोड़ूंगा विवाद, काम कर दिखलाऊँगा;
तीर सा निशाने पर जाकर लगूँगा खुद,
आग पापियों के पाप-पुर में लगाऊँगा ।
छल-बलधारी ढोंगियो के ढोंग दूर कर,
घर-घर धारा सुविचार की बहाऊँगा;
लक्ष्य एक होगा—कर परहित प्राण-दान,
'कर्ण' के समान कहीं वीर-गति पाऊँगा ।

२

डालकर जनता के जीवन में जान फिर,
काम उपकार के अनेक कर जाऊँगा;
काट लघुता को फाँस, पाठ पढ़ समता का,
भारत में गुरुता की नींव धर जाऊँगा ।
मेट कर छुआछूत-छिद्र सब आपस के,
भद्रता के भाव सब ही में भर जाऊँगा;
बनकर सच्चा कर्णधार भव सागर से,
'कर्ण' ले सभी को साथ सीधा तर जाऊँगा ।

क्यों बुलाते हो ?

[लेखक—श्री० कुं० गवेन्द्र सिंह जी नाग]

वह कैसे आवे ? उसे बार बार बुलाने को कहते हैं किंतु में पूंछता हूं तुमने उसके लायक अपने को भी बना लिया या नहीं ? जिस समय वह पहले आया था तब क्या दशा थी और अब क्या है ? कभी अपनी ओर भी देखा है ।

हिरण्याक्ष के अत्याचार पर वेदों के उद्धार के लिये आया था । अब कितने वेदों का पाठ करते तथा उस के अनुकूल चलते हैं ?

पृथ्वी को अन्याय अत्याचार से पूरित देख कर शूकरावतार के उद्धार के लिये आया था । अब तुम पृथ्वी का कितना मान करते हो ? तनिक तनिक से टुकड़े पर बाप बेटे की भाई भाई की, स्त्री स्त्री की लड़ाई दृष्टि पड़ती हैं । क्या यही देखने को उसे बुलाते हो ?

वह आया था । उस ने पिता के वचन के लिये पृथ्वी का साम्राज्य त्याग कर बन बन भटकना स्वीकार किया । ऋषिमुनियों की दुर्दशा देख कर जार जार रोया । वह रोकर ही नहीं रह गया उन की रक्षा की और राक्षसों के संहार की प्रतिज्ञा की । मित्र की दुर्दशा देखकर हंसा नहीं किंतु उस को पुनः राज्य पर प्रतिष्ठित किया । मूर्ख और नीच जान कर भक्त का अनादर नहीं किया किन्तु झूठे बेर खाये । स्त्री के हरने पर रोकर अपने घर नहीं बैठा किंतु पूर्ण राजनीतिज्ञता दिखा कर अपने शत्रु का सर्व नाश कर दिया । अब तुम क्या करते हो जो उसे बुलाना चाहते हो ? अपने सामने ही अपने मातृ कुल का अपमान देखते हो और चुप होकर घर में बैठ रहते हो । अपने मित्र को गिरता देख कर हंसते हो । थोड़े से धन के लिये अपने बंधुवर्ग का नाश करने को तैय्यार होते हो । मूर्ख और नीच जाति से कोई संपर्क नहीं रखना चाहते हो । क्या इसी बिर्ते पर उस को बुलाना चाहते हो ?

वह आया था। गोधन का ह्रास देख कर उसने बन बन फिर कर गौ चराई। कला का ह्रास देख कर मधुर मुरली पर सब को गा नचा दिया। समाज का ह्रास देख कर वस्त्र चुरा कर ले भागा। शारीरिक बल का ह्रास देख कर अखाड़े खुलवाये बड़े २ मल्लों को पछाड़ दिया। दुष्ट राजा की दुष्टता देख कर छल बल से नष्ट कर धर्म राज्य की प्रतिष्ठा की। भक्तों को दुखित देख कर पग पग पर उन को बचाया। मित्रता ऐसी निभाई कि मित्र का रथ तक हांका। वीर की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये रण प्रांगण मे चक्र लेकर कूद पड़ा। अपने बांधवों को कुमार्ग पर जाते देख कर नष्ट कर दिया। इस प्रकार वह आया था। तुमने उसके आने के लिये कौन २ से मार्ग खोल रक्खे हैं? वह वीरों को प्यार करता है। उसने मित्र को बिछड़ता देख कर उसकी नस नस में वीरत्व का संचार कर दिया। वह तुम कायरों के यहां आवेगा, जो अपनी कुल ललनाओं की रक्षा नहीं कर सकते। अपने इष्ट देवताओं की रक्षा करना तो दूर अपने गले पर छुरी फिरते हुए भी उठ कर खड़े नहीं होते। तुम चाहते हो कि वह आवे। तनिक अपनी ओर देखो तो सही तुमने उसके आने के लिये क्या तैयारी की है? सदा अपमान करने पर भी वह किसी न किसी रूप में तुम्हें दिखाई भी पड़ा। तब भी तुमने उसका कुछ मान किया।

उसने बढ़ती हुई हिंसाग्नि में महावीर बन कर दया का जल बरसाया। बुद्धदेव बन कर प्रेम का प्रसार किया। शंकर बन कर धर्म की स्थापना की। दयानंद बन कर तुमको जगाया। क्या तुमने इस रूप में उसको देखा उसके पग पर चलने की चेष्टा की। नहीं। फिर भी उसे चाहते हो?

प्रताप सिंह, गोबिंद सिंह, शिवाजी के रूप में तुम्हारे साम्राज्य के लिये रक्त की नदी बहाई। क्या तुमने उसको पहचाना?

यदि उसे चाहते हो तो अपनी भुजाओं का भरोसा कर अपने पगों पर खड़े हो जाओ। भीष्म की सी प्रतिज्ञा कर लो। तब वह आवेगा।

तुम कायरों के यहां आकर क्या उसे अपमान कराना है उसे अपनी धूल उड़वाना है।

वह वीरो को प्यार करता है। भक्तो की रक्षा करता है साधुओं पर दृष्टि रखता है। प्रेम का प्रसार चाहता है। विश्वबंधुता का भूखा है। जब अपने को तैयार कर लोगे, वह स्वयं आ जावेगा। तुम्हें हृदय से लगावेगा। उस के आने के लिये तैय्यार हो जाओ वह आयेगा, आयेगा, आयेगा। अपनी मधुर मुरलो के सुरो को सुना कर तुम्हे अपनावेगा।

बन कर वीर धर्म पालोगे डटे रहोगे रणथल में।
लख कर के अपमान मातृकुल थिर न रहोगे निज मन में॥
तब वह मधुर मनोहर आनन आकर स्वयं दिखावेगा।
वसुधा प्रेम मयी होयेगी प्रियतम बन वह आयेगा॥

बंधु प्रीति

[लेखक—श्री० रमेश वर्म्मा]

होते आज कृष्ण, कर्म योग का पढ़ाते पाठ,
भीषम सिखाते बात धर्म-राज नीति की।
पार्थ द्रोण युद्ध का बताते ढँग आज हमें,
दानवीर कर्ण सीख देते दान रीति की॥
सत्य पाठ धर्म-राज का जो पढ़ लेते हम,
रहती न शंक नेक आज नीति भीति की।
होता न पतन महाभारत न होता कभी,
पाली गई होती जो पै रीति बँधु प्रीति की॥

क्षात्र धर्म्म

[लेखक—श्री० सबलसिंह जी वर्मा]

"मृगराजाधिपति ! मेरे शरीर से तू अपनी क्षुधा शान्त करले और नन्दिनी को छोड़ दे क्योंकि इसकी रक्षा का भार मेरे ऊपर है, रक्षणीय वस्तु की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है ।"

सरल और भोली नंदिनी विकराल भीम-काय व्याघ्र के पंजे में फंसी हुई थी जिससे जीवित मुक्ति पाना असम्भव था । दलीप जिसके ऊपर नन्दिनी की रक्षा का भार था इस दयनीय दृश्य को देख न सका, उसका तपस्या मय हृदय सन्ताप का ज्वाला से दहक उठा । साथ ही "संमुखे शत्रु संयुद्धे" देखकर सहज वीरोचित धर्म जग उठा । गुरु की थाति स्वरूप दी हुई कामधेनु कन्या नन्दिनी जब मृगेन्द्र ने बलात् अपने पंजे में लेली; साहाय्य वांछिता, कातर-दृष्टा नन्दिनी को देख तत्काल ही राजा का हाथ धनुष पर गया किन्तु दैवो गति के कारण शर-संधान में अपने को अशक्य देख कठहरे में बंद बलवान मृगेन्द्र की तरह व्याकुल हो उठा, अतः बदले मे अपनी जान देकर नन्दिनी की रक्षा करली जाय, इसी संकल्प की पूर्त्ति के लिये उसने मृगराज से उक्त वचन कहे, यह नृपराज दलीप का उस समय का कर्तव्य था जो हमारे सामने क्षात्र धर्म्म का सच्चा स्वरूप प्रगट करता है। समय की गति के कारण, आत्मश्लाघा और स्वार्थ की गंध आजाने से आज हम उस क्षात्र-धर्म्म का वास्तविक रूप भूल बैठे हैं । आज कल क्षात्र धर्म्म का प्रयोग उसके विकृत अर्थ में हो रहा है किन्तु भारतीय क्षात्र धर्म्म का सच्चा आदर्श यही था । अति प्राचीन वेद-काल से लेकर महाभारत काल तक समस्त आर्य्य-जाति इसी आदर्श की पालक थी । "बाहू राजन्य कृतः" इस वेद-वाक्य में क्षत्रिय को भुजाओं की उपमा देना, एक गंभीर, सम्यक भाव पूर्ण अर्थ का द्योतक है, यद्यपि शरीर में समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग अपने २ स्थान पर सुव्यवस्थित दशा में शरीर-संचालन क्रिया के हेतु अपेक्षित हैं । इनमें

से एक का भी आसन डिगमिगाने से समस्त शरीर का आसन डोल जाता है किन्तु दोनों बाहुओं को उनके स्थायी और नैमित्तिक नियम पालने में विशेष गौरव है, शरीर के किसी भाग को लक्ष करके कोई व्यक्ति वार करना चाहता है हाथ स्वत. उस भाग की रक्षा को उठेंगे और स्वयं आघात सहकर उस भाग की रक्षा करेंगे। दूसरे तमाम खाद्य पदार्थ जिनके द्वारा शरीर-संचालन होता है हाथों द्वारा ही उपार्जन किये जाते हैं इस कारण से भी हाथ ही समस्त शरीर के पोषक और पालक हैं।

भारतीय इतिहास मे क्षात्र-धर्म्म प्रधान है। रामायण और महा भारत जो इतिहास की दृष्टि से उच्च कोटि के ग्रन्थ है दोनों वीर रस पूर्ण हैं और वास्तव मे इतिहास का महत्व ही क्षात्रधर्म के ऊपर अवलम्बित है। सम्पूर्ण जातियों के इतिहास मे एक सामान्य बात पाई जाती है अर्थात् दो विरुद्ध शक्तियो का संघर्षण, बलवान शक्ति का निर्बलों पर अत्याचार, निर्बलों मे क्षात्र धर्म की उत्तेजना और अन्त में न्याय शक्ति को विजय। यही संक्षेप में इतिहास का सार है। वेद में भी 'आर्य्य' और 'दस्यु' नामक दो शक्तियों का विरोध पाया जाता है फिर काल क्रमानुसार ये दोनों शक्तियां भिन्न २ नामों मे स्थित रही हैं और जब जब मानव जाति का नूतन इतिहास लिखा जायगा इन शक्तियो का किसी न किसी रूप में अस्तित्व रहेगा, इसी कारण इतिहास काल में क्षात्र धर्म्म का स्थान अमिट है। पंच भूतात्मक सृष्टि की रचना ही (सत, रज, तम) त्रिगुण मयी है।

जिस प्रकार एक राजा को अपने राज्य में सुख और चैन स्थापित करने, चोर डाकुओं से प्रजा की रक्षा करने और बाह्य आक्रमण कारियों से बचने के लिए सैनिक-बल की अपेक्षा होती है उसी प्रकार ईश्वर के इस सुविशाल राज्य (सृष्टि) में, मानव धर्म के नियम पालन करने, प्रजा वर्ग में शान्ति और समृद्धि की वृद्धि करने के लिये विशेष सैनिक बल, क्षात्र धर्म्म की आवश्यकता होती है।

सैनिक बल से यहां हमारा तात्पर्य उस सैन्य-संगठन से नहीं है जो किसी जाति को गुलाम बनाने के लिए, उसके स्वाभाविक स्वत्वों का

अपहरण करने की गरज से एकत्र की जाती है जिसके व्यय में प्रजा वर्ग का कोष रिक्त होता है किन्तु सैनिक बल वह शक्ति है जो ईश्वर प्रदत्त मानवी-अधिकारों को रक्षा के निमित्त प्रत्येक व्यक्ति को संचय करना चाहिये !

क्षात्र धर्म को सार्व भौमिकता रामायण और महाभारत कालीन इतिहास में स्पष्ट नजर आती है। सम्पूर्ण-कलानिष्णात् कोविद जन भी जब तक कि वह क्षात्र धर्म की दीक्षा से दीक्षित नहीं होता था उसको कला असम्पूर्ण कही जाती थी। क्षत्रिय कुमारों के लिये तो यह अनिवार्य कर्तव्य था ही, ब्राह्मण आदि अन्य वर्ण भी इस धर्म के पालक थे। भृगु कुल-शिरो-मणि परशुराम तथा द्रोणाचार्य व कृपाचार्य का ब्राह्मण होते हुए भी क्षात्र धर्म का पालन करना दोनो कालों की क्षात्र धर्म परायणता का उदाहरण है। राज कुमारों में क्षात्र-धर्म विशिष्ट राजकुमार ही विशेष गौरव की दृष्टि से देखा जाता था। तथा अन्य वर्णों के लोगो की शिक्षा बिना क्षात्र धर्म के अधूरी समझी जाती थी। बड़े २ आचार्य इस शिक्षा के लिए नियुक्त होते थे किन्तु जैसा कि प्रकृति का नियम है कोई वस्तु उन्नति को चरम सीमा को पहुँच कर फिर उसका पतन अवश्यभावी होता है अतः महाभारत रूपी नर मंध यज्ञ में जहां और और कलाओं लोप हुआ वहां इस सर्वतो भावी क्षात्र धर्म का संहार विशेष अनिष्ट मूलक था।

फिर जहां इस धर्म का उपयोग प्रजा रक्षण, शान्ति स्थापन तथा ईश्वरीय नियम पालन के अर्थ होता था वहां इसकी उपयोगिता, पारस्परिक कलह, निर्बलों को पीड़ा देना तथा वैयक्तिक-श्रेष्ठता के रूप में परिवर्तित होगई। दशा यह होगई कि पोछे लोग, अपने को दूसरों के समक्ष बलवान सिद्ध करने और अपना स्वामित्व दूसरों पर स्थापित करने को ही क्षत्रियोचित धर्म कहने लगे और इस प्रकार क्षात्र धर्म अपने उस प्राचीन आदर्श का द्योतक न रहा।

महाभारत के पश्चात् पृथ्वीराज के समय तक प्राचीन क्षात्रधर्म

क भग्नावशेष इतिहास में मिलते हैं। पृथ्वीराज का शब्द-भेदी बाण चन्द्रभाट का उत्कट कवि होते हुए भी उद्भट शूर दोनों ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी तक प्राचीन आर्य क्षात्रधर्म को सुधि दिलाते हैं, चन्द्रकृत पृथ्वीराज रासो वीर धर्म प्रधान है। वीर छन्द, कविता, (आल्हा) जो आजकल गाई जाती है, इसी समय की परिस्थिति को सूचक है। आल्हा, ऊदल चन्देलवन्शीय रजवाड़ों के वीरत्व प्रदर्शक कृत्य तथा जयचन्द आदि की तत्कालीन वीर धर्म पालक गाथाओं का उल्लेख हमें इसमें मिलता है, यद्यपि ये अतिशयोक्ति के विशेष बन्धन से जकड़ी हुई हैं, किन्तु इसमे सन्देह नहीं कि उस काल में पराधीनता की बेड़ी पहिनने के पूर्व आर्य-जाति मे क्षात्र धर्म का एक विशेष प्रकाश था किन्तु इस धर्म के साथ जो दूसरे गुणों की आवश्यकता है उसको लोग भुला चुके थे तथा साथ ही कई दुर्गुणों ने भी अपना प्रभुत्व जमा लिया था शर-सन्धान कला में निपुण अतुल बल सम्पन्न पृथ्वीराज विषयों की चोट से बचे हुए नहीं थे। नववधू संयोगिता के साथ दिन रात राज-महल में रहने तथा राज्य और बाह्य शत्रुओं की परवाह न करने के कारण ही पृथ्वीराज अपना राज खो बैठे। साथ ही पारस्परिक फूट ने कोढ़ मे खाज का काम किया। तब से क्षात्र-धर्म विहीन जाति की जैसी कुछ अवस्था होनी चाहिए, हमारी होती रही है। वर्तमान काल में तो क्षात्र धर्म का प्रायः अभाव सा ही है यहाँ तक कि बहुत से मनचाहे आधुनिक विज्ञानी (Scientists) तथा कुछ बालू की भीत पर संसार शान्ति (World Peace) स्थापन का स्वप्न देखने वाले लोग इस कला को संसार से उठा देने में ही अपना श्रेय समझते हैं। पहिले प्रकार के मनुष्यों का दावा है कि आधुनिक काल में जब कि बम्ब, जहरीली गैस तथा अन्यान्य प्राणनाशक मशीनों का आविष्कार हो गया है, शारीरिक बल, तेज व वीरता की ऐसी कुछ आवश्यकता नहीं रह जाती। किन्तु उन्हें यह सोचना चाहिए कि क्षात्रधर्म का उपयोग इन गैस और मशीनगनों की तरह नर-संहार करने को नहीं, इसके द्वारा तो मनुष्य

के अन्दर छिपी दैवी शक्ति का आविर्भाव होता है, दूसरे प्रकार के मनुष्यों को यह सोचना चाहिये कि संसार से यदि निर्बल सबल का प्रश्न उठ जाय, अच्छे बुरे का प्रश्न उठ जाय तथा न्याय अन्याय का प्रश्न उठ जाय तो सैनिक शक्ति भी उठ जाना सम्भव है अन्यथा यह सब मन की तरंग हैं। इनका व्यावहारिक स्वरूप आकाश-कुसुमवत है, संसार में सर्वत्र एक से सात्विकी वृत्ति के पुरुष नहीं हो सकते। अल्प कालीन परिस्थिति को देख एक अनिवार्य्य धर्म का अभाव समझ लेना भारी भूल है।

भारत वर्ष में इधर कुछ समय से युद्ध-कला का अभाव सा होता चला आ रहा है, कारण कि पहिले एक ही राजा को अपने समय में कई-कई युद्ध करने पड़ते थे जिससे इस कला को उपयोगिता राजा और प्रजा दोनों को प्रतीत होती थी। वर्तमान कालीन राजाओं के लिए युद्ध स्वप्न जैसी वस्तु हो गई है आज कल तो हमारे राजे और रईस लोग विलासिता, मद्यपान तथा अन्याय भोग पदार्थों के साथ युद्ध करते दीखते हैं। तात्पर्य यह नहीं कि सब ही राजा लोग ऐसे हों। अभी कई एक देश और जाति के कर्णधार ऐसे हैं जो वीरोचित धर्म का पालन कर रहे हैं। किन्तु जब तक इस धर्म को सच्ची शिक्षा प्रजावर्ग को न दी जाय इस कला का पुनर्जीवन नहीं हो सकता। कई देशों में परिस्थिति के अनुभवी जनों के उद्योग से सैनिक शिक्षा अनिवार्य हो गई है किन्तु दुर्भाग्य से जहाँ हमारी वर्तमान शिक्षा अधिकांश में दोष पूर्ण है वहां इसमें सबसे अधिक दोष यह है कि इसमें वीरोचित धर्म की शिक्षा का सर्वथा अभाव है। आजकल की शिक्षा हमें मुर्दादिली और नपुंसकता का सबक सिखाती है।

यहां के विद्यार्थी जीवन पर एक दृष्टि डालने से हृदय में करुणा और निराशा का वेग उद्वेलित होता है। पीत चेष्टा, अस्थि-चर्मावशिष्ट जिनमें सुडौलता का नाम भी नहीं, ये जीवन संग्राम के लिए तैयार होने वाले नवयुवक भविष्य में देश और जाति का कल्याण करेंगे ? वह कैसी

पंजाब केशरी लाला लाजपतराय

[लेखक—श्री रमेश वर्मा]

दो मास से अधिक हो चुके, माता भारती की गोद से उसका प्यारा लाल उठ गया। भारतीयाकाश का जाज्वल्यमान सितारा अस्त हो गया। देश के बत्तीस करोड़ नर नारियों ने अपने आंसुओं की धारा से उसकी पुण्य स्मृति में श्रद्धाञ्जलि अर्पण की, किन्तु काल अपने अटल नियम को कब छोड़ने वाला है। पञ्जाब का शेर अनन्त निद्रा में सो गया, भारतीय राजनैतिक मंच सूना हो गया, हिन्दू जाति का आधार स्तंभ जाता रहा। उसका रिक्त स्थान निकट भविष्य में पूरा हो सकेगा, इसका सहज अनुमान नहीं किया जा सकता।

पञ्जाब प्रान्त के लुधियाना जिले में जगरांव नामक एक गांव है, इसी में सन् १८६५ ई० में लाला राधाकिशन के सुख सदन को इस दीप शिखा ने आलोकित किया था। विदुषी माता और योग्य पिता की संरक्षता में सादगी, स्वाभिमान, धार्मिकता और स्मरण शक्ति आदि गुण बालपन में ही इनमें पैदा हो गए थे जिनका इनके उत्तर जीवन में असाधारण विकाश हुआ। इनके पिता अध्यापक थे अतः बालपन की अधिकांश शिक्षा इन्हें पिता द्वारा ही मिली। एन्ट्रेंस पास करने के बाद आप लाहौर में उच्च शिक्षा प्राप्त करने गए और वहीं से सन् १८८५ में कानून की वकालत परीक्षा पास की। पढ़ने में अपने साथ के विद्यार्थियों से सदैव इनका नम्बर ऊंचा रहता था। विद्या प्राप्त करने की उत्कट लगन थी और उसके लिए खूब परिश्रम करते थे। जब तक ये पढ़ते रहे, बराबर इनको सरकारी वजीफा मिलता रहा।

वकालत पास करने के बाद आपने हिसार में प्रैक्टिस शुरू की और धीरे धीरे अपने समय के नामी वकीलों में हो गए। लाहौर में हाईकोर्ट में वकालत करते समय इनकी आमदनी बहुत बढ़ गई थी परन्तु वकालत जैसे पेशे को भी ये बड़ी ईमानदारी और सचाई से

चलाते थे। बहुत सा रुपया पैदा किया लेकिन अपने पल्ले कुछ नहीं रक्खा।

लाला जी की धर्म निष्ठा बचपन में ही चमकने लगी थी। इनके पिता आर्य-समाजी थे। अपने विद्यार्थी जीवन में ही लाला जी आर्य-समाज के प्रचार के लिए कोशिश करते थे। स्वामी दयानन्द की स्मृति में इन्होंने लाहौर में डी० ए० वी० कालेज की नींव डाली और अपनी आमदनी का अधिकांश भाग कालेज की भेंट कर दिया। इसके अतिरिक्त अनेक शिक्षा संस्थाओं को इन्होंने मुक्त हस्त से दान दिया। एक एक साल में ये अपनी आमदनी से पचास पचास हजार रुपए तक दान दे देते थे। इनकी ऐसी फैयाजी उम्र के आखीर तक रही।

लालाजी की सेवाएँ एक मुखी नहीं थीं। इनका हाथ सब विभागों में सब ओर था। सामाजिक और धार्मिक सुधारों के साथ राजनैतिक सुधार के आप कट्टर पक्षपाती थे और पिछले जीवन में तो इनका यही प्रधान लक्ष्य रहा। पञ्जाब के बाहर लालाजी की ख्याति कराने वाली दो घटनाएं हैं। उन दिनों सरकारी राजनैतिक क्षेत्र में सर सैयद अहमदखां की तूती बोलती थी। मुसलमान तो उन्हें अपना बादशाह ही समझते थे। सर सैयद साहब ने मुसलमानों को कांग्रेस से प्रथक रहने के लिए कांग्रेस की नीति की आलोचना की। लाला जी पहिले सैयद साहब के भक्तों में से थे किन्तु उन्होंने, सर सैयद की आलोचनाओं का अकाट्य भाषा में उत्तर दिया और उनकी दलीलों के सामने सैयद साहब को निरुत्तर होना पड़ा। बंबई में इंडियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन था, विषय निर्धारिणी कमेटी में सर फीरोज शाह मेहता की गर्जन सुनाई देती थी। उन दिनों भारत के इस प्रगाढ़ कानून पंडित, बेताज के बादशाह का मुकाबिला करना सरल काम नहीं था किन्तु मतभेद के प्रस्ताव में लाला जी की युक्तियों और तर्कनाओं के सामने फीरोज शाह का रङ्ग फीका पड़ गया।

सन् १८९७ ई० में और फिर १९०० ई० में लाला जी ने, अपने देश की प्रजा को अकाल की असह्य भूख से तड़पते देखकर पञ्जाब में

आन्दोलन किया। सन् १९०१ ई० में सरकारी अकाल-कमीशन के सामने आपने अपनी सिफारिशें पेश कीं और सरकार ने इनकी शिफारिशों के अनुसार अमल किया। १९०५ ई० में महामना गोखले के साथ आप यूरोप में भारतीय राजनैतिक आंदोलन के लिए गए। वहां जगह २ आपने भारत के सम्बन्ध मे व्याख्यान दिए। इङ्गलैंड से आपने अमेरिका की यात्रा की। पश्चिमी देशों में स्वतंत्रता की बढ़ती हुई लहर को देख कर जब आप भारत लौटे तो पूरे राष्ट्रवादी हो गए।

किसी स्वतंत्रतावादी व्यक्ति का अभ्युदय भारत की गोरी सरकार को कभी सह्य नहीं हुआ है। इसी कारण जब लालाजी ने स्वदेशी आंदोलन में भाग लिया और सरकार के बंगाली दमन कानून की तीव्र निंदा की तो उसने आपको मांडले के लिए निर्वासित कर दिया जिसके फल स्वरूप भारत में घोर आंदोलन हुआ। अन्त में सरकार को अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ी। सन् १९०७ ई० मे भारत के सार्वजनिक जीवन में लाला जी का नाम सर्व प्रथम लिया जाता था।

यूरोपीय महायुद्ध के समय लालाजी देश में न थे। वे अमरीका चले गए थे और वहीं भारत के लिए आन्दोलन करते रहे और लिखते रहे। सन् १९२० ई० में वे भारत लौटे और कलकत्ता की स्पेशल कांग्रेस के सभापति चुने गए। उनकी अध्यक्षता मे असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ जिसके लिए उन्हें सरकारी जेल की हवा खानी पड़ी।

लालाजी प्रौढ़ वक्ता, तेजस्वी लेखक और विलक्षण प्रतिभा के व्यक्ति थे। उनकी 'यंग-इंडिया' और 'अनहैपी इंडिया' अद्वितीय पुस्तकें हैं। पिछली पुस्तक में उन्होंने मिस-मेयो की 'मदर इंडिया' का अकाट्य युक्तियों में उत्तर दिया है। उनका निकाला 'दी प्युपिल' साप्ताहिक-पत्र देश की सेवा कर रहा है। उनकी 'सरवेन्ट आफ प्यूपिल सुसाइटी' देश की मान्य संस्थाओं में से है।

आप लोकमान्य की नीति के पालक और महात्मा जी के भक्तों में से थे। यूरोप और अमेरिका में आपका यथेष्ठ मान था। भारतीय व्यवस्थापिका सभा में 'नेशनल पार्टी' के आप लीडर थे।

साइमन कमीशन के लाहौर आगमन के अवसर पर पुलिस ने आपके ऊपर लाठियों की वर्षा की और उसीके फल स्वरूप आपका शरीरान्त हुआ। अन्तिम समय की उनकी दो सीख हैं, पहिली "बृटिश शासन का भारत में अन्त हो चला है इनके जुल्म की लाठी उस मुर्दा शासन का कफन बनेगी" दूसरी बात "भारतीय नवयुवकों के कंधों पर मैं राष्ट्र का बोझ छोड़ता हूं वे ही इस डूबते भारत की नैया पार लगाऐंगे" देखें हमारे देश के नवयुवक अपने नेता की इस आज्ञा को किस प्रकार चरितार्थ करते हैं।

साहित्य परिचय

पद्य प्रवेशिका—सम्पादक—श्री सुवर्णसिंह जी वर्मा 'आनन्द', प्रकाशक—मुकुन्द मंदिर, बेलनगंज आगरा। पृष्ठ ११७, मूल्य ॥)—पुस्तक हिन्दी कविता प्रेमी नए जिज्ञासुओं के लिए लिखी गई है। हिन्दी परीक्षाओं के विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकते हैं। प्रारम्भ में कविता के अंगों—रस, अलंकार, पिंगल का वर्णन किया गया है। पश्चात् छंदों के भेद और उदाहरण हैं। उदाहरण में हिन्दी के पुराने और नए कवियों की रचनाओं का संकलन रुचिपूर्ण और अच्छे ढँग से किया गया है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक प्रतीत होती है। क्या ही अच्छा हो यदि यह पुस्तक स्कूलों की दसवीं कक्षा और सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के लिए स्वीकार कर ली जाय।

मानसी—लेखक—श्री पं० रामनरेश जी त्रिपाठी, प्रकाशक—हिन्दी मंदिर, प्रयाग। पृष्ठ ८२, मूल्य ॥)—त्रिपाठी जी की स्फुट कविताओं

का यह संग्रह श्री गोपाल नेवटिया जी ने किया है। किसी घटना अथवा प्रभाव के कारण कवि की मानसथली में जो विचार-धारा फूट निकलती है वही शब्द और भाषा की योजना द्वारा काव्य-सरिता बन जाती है। इस पुस्तक में त्रिपाठी जी की इसी काव्य सरिता का आनन्द मिलता है। अन्तरंग के अनुसार ही पुस्तक का बहिरंग भी बड़ा सुन्दर और मनोमोहक है।

जीवन-ज्योति—अनुवादक—श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रकाशक—रत्नाश्रम आगरा, पृष्ठ ६४, मूल्य पांच आने—जीवन रत्नमाला की यह प्रथम पुस्तक है। व्यावहारिक जीवन के मुख्य अङ्गों पर इसमें अच्छा प्रकाश डाला गया है। जीवन संग्राम के लिए तैयार होने वाले नवयुवकों को किन २ गुणों की आवश्यकता होती है यह इस पुस्तक में भली भांति समझाया गया है। कुमार-संतति इसे पढ़ कर बड़ा लाभ उठा सकती है।

मुक्ति और उसका साधन—लेखक ब्र० शीतलप्रसाद जी, प्रकाशक—जैन मित्र मंडल, दरीबा, देहली। पृष्ठ २८, मूल्य एक आना। जैन धर्म के अनुसार सांसारिक क्रियाओं को करते हुए मनुष्य अपना चरम लक्ष (मोक्ष) कैसे प्राप्त कर सकता है यही प्रस्तुत पुस्तक में समझाया गया है। पुस्तक पठनीय है।

निम्न लिखित पुस्तकें भी मिल गई हैं। प्रेषकों को धन्यवादः—

१—देवेन्द्र मिलाप—ले० छेदालाल, लश्कर। कुंवर देवेन्द्र जी जैन के मृत्यु शोक में श्रद्धांजलि कविता। मूल्य -)

२—जैन धर्म और विधवा विवाह—ले० सव्यसाची, प्र० दौलतराम जैन, दरीबा, देहली। मूल्य -)॥

३—खल मंडल—ले० खलकण, प्रकाशक अयोध्याप्रसाद शर्मा, स्वाधीन प्रेस, झांसी।

४—विधवा विवाह समाधान—ले० सव्यसाची, प्र० जैन बाल-विधवा सहायक सभा, देहली।

विविध विषय

१—अफगानिस्तान का भाग्य—

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में आज अफगानिस्तान का प्रश्न विशेष महत्व का है। स्थिति में अभी कोई सुधार नहीं हुआ। दैनिक समाचारों के आधार पर यही जाना जाता है कि अफगानिस्तान में आज कल कोई सरकार नहीं है। बादशाह अमानुल्लाह के तख्त छोड़ने पर उनके भाई इनायतुल्ला केवल तीन दिन ही सिंहासन का सुखोपभोग कर सके। जिस दिन से बच्चा सकाऊ काबुल पर काबिज हुआ है, तरह तरह की अफवाहें उसके सम्बन्ध में उड़ रही हैं। यद्यपि उसने अपने आप को "गाजी हबीबुल्ला" के नाम से अमीर घोषित कर दिया है, किन्तु अभी तक वह मंत्रि-परिषद् बनाने में असफल रहा है। उसके पक्ष वालों को छोड़ काबुल का बहुमत उसके विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त अली अहमदजान और मलिकगौसुद्दीन ने भी अपने आप को अमीर होने का दावा किया था। निश्चय रूप से अभी नहीं कहा जाता कि काबुल के तख्त पर किसकी हुकूमत होगी। अधिकांश अफवाहें निराधार हैं। लोग कुछ अंदाज से और कुछ काबुल से आए व्यक्तियों के कहने के आधार पर मन गढ़ंत बातें बना लेते हैं। हमारी सरकार ने तो इन समाचारों पर भी सैंसर लगा दिया है। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि अफगान की स्थिति आज कल इतनी डावाँडोल है कि क्या मालूम निकट भविष्य में इसका दुष्परिणाम दूसरी सरकारों को भी उठाना पड़े। कुछ अखबारों के आधार पर यह भी अनुमान होता है कि कहीं भावी महासमर की भूमि अफगानिस्तान ही न बन जाय। यदि ऐसा हुआ तब तो वास्तव मे अफगानिस्तान बेलजियम बन जावेगा।

इसके उत्तर में 'सोवियट' रूस, और एक कोने पर 'ब्रिटेन की शक्ति' है। पिछले चन्द सालों से इन शक्तियों में परस्पर मनोमालिन्य बढ़ रहा है। यदि अमानुल्लाह की पीठ सोवियट सरकार ठोकने को तैयार है और अमानुल्लाह अभी तक अफगानिस्तान के बादशाह बने हुए हैं तो इंगलिश गवर्नमेन्ट, जैसा कि हाउस आफ कोमन्स में एक प्रश्न के उत्तर में प्रत्यक्ष कहा गया है "बादशाह अमानुल्लाह ने गद्दी छोड़ दी है और इंगलिश गवर्नमेन्ट उन्हें तब तक बादशाह स्वीकार नहीं करती जब तक कि उनकी सम्पूर्ण प्रजा फिर से उन्हें अमीर घोषित न करे" इसके अन्त-प्रदेश में जो रहस्य छिपा है उसके आगे "निरपेक्ष भाव की दुहाई" काफूर हो जायगी। समर न हो, इस मानव-घाती बवंडर व्याधि से ईश्वर अपनी सन्तान की रक्षा करे! पर यदि भवितव्यता ने अपना नाट्य खेला और संसार के राष्ट्रों की फिर संचित कुकृत्य-वासनाएँ विस्फोटक पदार्थों, वायुयानों, मशीनगनों और बंदूकों के रूप में सजीव रूप धारण कर आ खड़ी हुई तो एक बार महा प्रलय की आंधी चल निकलेगी फिर वर्तमान वर्तमान नहीं रहेगा, पृथ्वी के गोले का रंग बदल जायगा। देशों की राजनीति पलटा खा जायगी। तब अफगानिस्तान का भाग्य क्या होगा ? —यह भविष्य के गर्भ में स्थित है।

२—स्वदेशी आन्दोलन—

सन् १९३० ई० की साल भारत के स्वतंत्रता संग्राम में क्या रंग लाएगी, इसको स्वातन्त्र्य-सरिता की पीयूष धारा में पुण्यस्नानों का फल लूटने के इच्छुक बड़ी ही उत्सुकता से देख रहे हैं। किन्तु उस धारा के निर्मल जल तक पहुँचने के पूर्व उनको कितने ही गंदे नाले तै करने पड़ेंगे, यातनाओं के कड़े फल चखने होंगे। सन् १९२१ और बाईस का आन्दोलन भारत के जन साधारण को जगा गया अब सन १९३० का युद्ध कमर कस कर लड़ने का है। उसके लिए कलकत्ता कांग्रेस में महात्मा गांधी द्वारा बताए हुए कार्य-क्रम के अनुसार प्रत्येक आजादी के मतवाले को आचरण करना पड़ेगा जिसमें स्वदेशी का प्रश्न सब से

महत्व का है। असहयोग आन्दोलन में कितनी ही बार कितने ही स्थानों में विदेशी वस्त्रों का बृहद् होलिका दाह हुआ। उसी क्रिया को फिर प्रचंड रूप में पालन करने को महात्मा गांधी आज उपदेश देते हैं। उनका आदेश है कि प्रत्येक देशाभिमानी अपने घर बाहर पड़ोसियों और नगर निवासियों सबको खद्दर धारण करावें। कौंसिल में काम करने वाले लोग सरकारी कारोबार में खद्दर का उपयोग करावें। देशी सौदागरों से विदेशी वस्त्र खरीदवाना बिल्कुल बन्द करादें और इसके लिए द्वारावरोध (पिकेटिंग) किया जाय। यदि देश के प्रेमी जन अपने सर्वमान्य नेता के इन उपदेशों का यथावत आचरण रूप दे डालें और घर बाहर से, नीचे ऊपर सब स्वदेशी मय हो जावें तो दुखी भारत की यह लौह श्रृंखलाएँ अधिक काल तक टिकी नहीं रह सकें। लेकिन हम विलासिता के शिकार हुए इन बातों को कहां तक याद रख सकते हैं। कितनी बार इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर हम अपनी कमजोरियों से पतन के गर्त में गिर जाते हैं। यदि देश की खातिर हम अपनी विलासिता और ऐहिक सुख लिप्सा को विदाई नहीं दे देते तो स्वतंत्रता के सुहावने काल की आह्वान करने के हम अधिकारी नहीं हैं। आशा है देश के सपूत अब की बार अपने कर्तव्य का पूर्णतः पालन करेंगे।

३-इतिहास के नए पृष्ठ—

समय प्रगतिशील है। कहां हैं वे लोग जो विद्यार्थियों को राजनीति के हौआ से डराया करते थे। वे कहते थे कि विद्यार्थियों की नई भावनाएं और विचार कोमल कलिका के समान हैं। उन्हें विकसित होने तक राजनैतिक तुषार पात से रक्षा करते रहो। किन्तु वह कली दधीचि की हड्डी निकली। गुजरात कालेज के विद्यार्थियों की हड़ताल ने 'मानव स्वतंत्रता' के इतिहास में नए पृष्ठ जोड़े हैं। प्रिन्सपिल को मालूम न था कि उसके बेजा नियंत्रण और अनधिकार चेष्टा के विरुद्ध इतना घोर आन्दोलन हो जायगा। अब वह जमाना नहीं जब कि मनुष्य अपने ईश्वर प्रदत्त स्वाभाविक अधिकारों को सत्ताधारियों की मुहर छाप का सार्टी-

फिकेट पा लेने पर भोगा करेगा। मामला ऐसा विशेष संगीन नहीं था। विद्यार्थियों की शर्त के अनुसार प्रिन्सिपल के आज्ञा वापिस लेने से ही शान्ति हो जाती पर इस हड़ताल से शिक्षा ले कर भारत के भावी राष्ट्र-निर्माताओं में अपने अधिकार पर डटे रहने, अत्याचार और पाशविकता का सामना करने की भावना जाग्रत होनी थी अतएव हड़ताल को आगे बढ़ने से रोकने के लिए दोनों ओर से प्रयत्न होने पर भी सफलता शीघ्र नहीं हुई। उस दिन महात्मा गांधी की अध्यक्षता में साबरमती के तट पर विद्यार्थियों की सभा हुई थी जिसमें महात्मा जी ने विद्यार्थियों को स्वदेशी आन्दोलन करने, स्वतंत्रता के युद्ध में सैनिक बनने और जनता की सेवा करने का उपदेश दिया था। सरदार वल्लभ भाई पटेल, मि० नरीमन आदि कई नेताओं ने विद्यार्थियों की सभा में भाग ले कर उनको कर्त्तव्य पालन का उपदेश दिया। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ने एक दिन हड़ताल कर के और कई जगह के विद्यार्थियों ने तथा "भारतीय युवक संघ", सभाओं ने अपने सहानुभूति सूचक संदेश भेज कर गुजरात कालेज के विद्यार्थियों के उत्साह को बढ़ाया, ता० ३० जनवरी को गुजरात के प्राइमरी स्कूलों के छात्रों तक ने हड़ताल मनाई। उसी दिन और भी सैकड़ो स्थानों पर .भाएं हुईं। शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारी और शिक्षा मंत्री परिस्थिति का अवलोकन करने आए। उनके आने पर विद्यार्थियो का एक बड़ा जुलूस अहमदाबाद की आम सड़कों पर मौजूदा प्रिन्सिपल के हटाने के सम्बन्ध में अपनी घोषणा करता हुआ निकला। प्रायः तीन सप्ताह विद्यार्थियों ने हड़ताल में बिताए। यह जानते हुए भी कि इस हड़ताल से उनका एक वर्ष खराब हो रहा है—वह पीछे न हटे।

आखिर सत्याग्रह की विजय हुई। विद्यार्थी लोग जीते। सरकार को बीच में पड़ना पड़ा और उसने विज्ञप्ति निकाली कि विद्यार्थियों की मांग मंजूर की जाती है। अब न तो 'टर्मीनल' परीक्षाएं होंगी और न जुर्माना देना होगा। सरकार की इस घोषणा से भी विद्यार्थी संतुष्ट न हुए। उनकी दो मांगें और थीं—एक किसी विद्यार्थी के साथ

हड़ताल के कारण सख्ती न की जाय। दूसरे हड़ताल के कारण विद्यार्थियों की अनुपस्थिति से वार्षिक परीक्षा का जो अधिकार मारा गया है वह न मारा जाय और उनका यह एक वर्ष नष्ट न हो। विद्यार्थियों की दृढ़ता के सामने प्रिंसिपल को भी घुटने टेकने पड़े और अपनी विज्ञप्ति के द्वारा उसने उनकी शेष दोनों मांगों को स्वीकार करते हुए विद्यार्थियों के प्रति सद्भाव प्रकट किए। अपनी सम्पूर्ण विजय हो जाने पर विद्यार्थियों ने सत्याग्रह समाप्त किया और बारदोली के बाद हाल ही सत्याग्रह रूपी अमोघ अस्त्र का अचूक प्रभाव संसार को दिखा दिया। इसके लिए गुजरात कालेज के विद्यार्थी वास्तव में बधाई के पात्र हैं।

४–घासलेटी आन्दोलन—

हिन्दी में इस समय एक नया प्रश्न छिड़ा हुआ है जिस पर पक्ष और विपक्ष में कितने ही महानुभावों के लेख निकल चुके हैं। इस आन्दोलन के सृष्टा हिन्दी संसार के चिर-परिचित आन्दोलक, विशालभारत सम्पादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी हैं। इस आन्दोलन में उन पुस्तकों का विरोध किया जा रहा है जो इधर तीन चार वर्ष के भीतर प्रकाशित हुई हैं और जिनके लेखकों का उद्देश्य समाज में प्रचलित कुरीतियो का नग्न चित्र खींच कर उनका मूलोच्छेदन करना है। चतुर्वेदी जी ने ऐसे साहित्य को घासलेटी नाम दिया है। उसके प्रकाशन को देश और समाज के लिए हानिकारक समझ कर आप उसका विरोध कर रहे हैं। इस पक्ष में हिन्दी के अनेक ख्यातनामा लेखक और विचारशील विद्वान् हैं। दूसरे पक्ष के लोग, चतुर्वेदीजी के आन्दोलन के विरोधी, यह दिखा रहे हैं कि ऐसे साहित्य की समाज को आवश्यकता है। समाज की कुरीतियों को प्रकाशित करना यद्यपि अप्रिय सत्य कहना है पर समाज के हित के लिए यह तो कहना ही पड़ेगा। इस पक्ष में भी अनेक सज्जन अपने विचार प्रकाशित कर चुके हैं। परन्तु अभी तक हिन्दी के अधिकांश विद्वान् और हितैषी इस प्रश्न पर चुप लगाए हुए हैं। इसके तीन कारण हो सकते हैं। १—वे इस आन्दोलन को अनावश्यक समझते हों। २—वे यह समझते हों कि इस आन्दोलन

से जिनका विरोध किया जाता है उनको अनावश्यक प्रसिद्धि मिलती है। जिन पुस्तकों का प्रचार रोकना चाहिए उनका प्रचार और बढ़ता है। ३—वे एक ही दृष्टि से देख कर आन्दोलन प्रारंभ होने से पूर्व ही ऐसी पुस्तकों पर अपनी सम्मति प्रकट कर चुके हों अतः अब अपना मत बदलने में विवश हों। चौथा कारण यह भी हो सकता है कि हमारे अधिकांश हिन्दी के विद्वान आलस्यवश इस पर कुछ लिखते हों। इन चारों कारणों पर विचार करने पर पता चलेगा कि यद्यपि यह आन्दोलन व्यर्थ है उससे कोई वास्तविक लाभ न होगा फिर भी यदि साहित्य क्षेत्र में कुछ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं जिसका प्रकाशन समाज के लिए हानिकारक है तो समाज के विद्वानों की सम्मति उसके सम्बन्ध में अवश्य प्रकाशित हो जानी चाहिए। उन पुस्तकों की बिक्री और उनके पढ़ने को सर्वथा रोकने का तो हमारे पास साधन नहीं है पर लोकमत बनाना हमारे हाथ में है। हम जनता में यह बात प्रकट कर सकते हैं कि अमुक पुस्तक उपादेय है या हेय। इसके बाद भी जो व्यक्ति उन्हें पढ़ेगा, हमें विश्वास है वह उन्हें संभल कर पढ़ेगा।

दूसरा कारण लेखक या पुस्तक को अनावश्यक प्रसिद्धि देने की है। उसके सम्बन्ध में हमारी तुच्छ सम्मति यह है कि संसार में सैकड़ों हजारों पुस्तकें छपती हैं और उनमें से कुछ बिकती भी हैं, परन्तु धूम उनमें से कुछ ही की मचती है। जिस पुस्तक को प्रसिद्धि साहित्यिक संसार में नहीं हो जाती उसकी ओर प्रायः समालोचकों की दृष्टि नहीं जाती और वह पुस्तक आक्षेपों से बच जाती है। परन्तु जो पुस्तक किसी भी कारण से प्रसिद्धि पा चुकी है अथवा जो लेखक किसी भी परिस्थित में प्रसिद्ध हो चुका है उस पुस्तक या उस लेखक की पुस्तकों पर विद्वानों को ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। अतः यह सोचकर कि आन्दोलन करने से किसी लेखक या पुस्तक को अनावश्यक प्रसिद्धि मिलेगी चुप बैठे रहना ठीक नहीं।

जो विद्वान् किसी पुस्तक को एक बार पढ़कर या बिना पढ़े ही

मुद्रक व प्रकाशक, कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी बाजार—आगरा।